लेखक
(खादी के पश्चिमी ढंग के वस्त्रों में)

पृथ्वी-परिक्रमा

लेखक

गोविन्ददास

भूमिका-लेखक

श्री गणेश वासुदेव मावलंकर

अध्यक्ष, लोकसभा

१९५४

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली-६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य १२)

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्सवे, दिल्ली-६

भूमिका

सेठ गोविन्ददास देश-विदेशों की विस्तृत यात्रा कर चुके हैं, साथ ही हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं लेखक हैं। उनकी पुस्तक में न केवल लेखक द्वारा सन् १९५२ में विश्व के विभिन्न भागों की यात्रा का विवरण दिया गया है, वरन् उन देशों के राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक जीवन पर लेखक ने अपना मत भी सरल भाषा में व्यक्त किया है। लेखक केवल वर्तमान जीवन पर ही प्रकाश नहीं डालता वरन् संक्षेप में उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी स्पष्ट करता है, जिससे पाठक को वर्तमान परिस्थिति के मूल तक पहुँचने में सहायता मिलती है। वर्तमान आखिर भूतकाल के आधार पर ही विकसित होता है। अतः प्रस्तुत पुस्तक जिन देशों में लेखक गया उन देशों की इमारतों एवं स्मारकों का विवरण मात्र ही नहीं वरन् उन देशों का संक्षिप्त राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास भी है। एक प्रकार से प्रस्तुत पुस्तक को विश्व इतिहास का एक ठोस भाग कहा जा सकता है। मैं इसे एक भाग ही इसलिए कहता हूँ कि लेखक ने सारे विश्व की यात्रा नहीं की। जिन देशों में लेखक गया उनके लिए तो यह एक "एनसाइक्लोपीडिया" ही है।

इस विदेश-यात्रा के पहले भी सेठ गोविन्ददास विदेशों में घूम चुके हैं। कैनेडा की प्रस्तुत यात्रा उन्होंने ऑटावा में ८ सितम्बर से १३ सितम्बर १९५२ तक हुए कामनवेल्थ पार्लियामेंटरी कान्फ्रेन्स में भाग लेने वाले भारतीय प्रतिनिधिमण्डल के सदस्य के रूप में की। वे सन् १९५० में भी न्यूज़ीलैंड में हुए इसी संस्था के सम्मेलन में प्रतिनिधि के रूप में यात्रा कर चुके थे। सेठ गोविन्ददास उस प्रतिनिधिमण्डल के नेता थे। ऑटावा सम्मेलन का नेतृत्व भारतीय संसद् के अध्यक्ष के नाते मुझे प्राप्त हुआ। उस समय प्रतिनिधिमण्डल के दौरे में हम लोगों ने लगभग सारे कैनेडा की साथ-साथ यात्रा की थी और इसलिए मैं इस स्थिति में हूँ कि व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर सेठ गोविन्ददास द्वारा वर्णित इस यात्रा की सत्यता एवं सफलता की पुष्टि कर सकूँ। मेरा विश्वास है कि मेरा यह प्रमाण इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त होगा कि विभिन्न अन्य देशों की यात्रा एवं सांस्कृतिक इतिहास का जो वर्णन लेखक ने किया है वह सत्य एवं शुद्ध है।

कैनेडा यात्रा के समय हम लोग एक ही होटल में ठहरते रहे हैं यद्यपि भिन्न-भिन्न कमरों में। जब भी हमें उनका दरवाजा खटखटाने का अवसर आता हम देखते कि सेठ गोविन्ददास मेज पर बैठकर कुछ लिखने में व्यस्त हैं। आरम्भ में तो हमारा अनुमान था कि वे अपनी डाक निपटा रहे हैं, लेकिन जब हम सभी को यह अनुभव होने लगा कि वे हमेशा मेज पर बैठे कुछ लिखने में व्यस्त रहते हैं तब एक बार मैंने पूछा कि वे इस प्रकार निरन्तर क्या लिख रहे हैं। उनका उत्तर मिला कि वे अपनी सारी यात्रा का वृत्तान्त लिखने में व्यस्त हैं। उस समय भी मेरी कल्पना नहीं थी कि यह वृत्तान्त केवल दर्शनीय स्थानों, व्यक्तियों एवं स्मारकों के वर्णन से कहीं अधिक व्यापक एवं विस्तृत होगा। प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ने के बाद ही मुझे ज्ञात हुआ कि यह पुस्तक केवल वर्णनात्मक ही नहीं वरन् एक ऐसी पुस्तक है जो आगे बढ़कर प्रत्येक देश की प्राचीन पृष्ठभूमि और साथ ही वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों तक का वर्णन करती है। पुस्तक से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक देश के इतिहास, धर्म, संस्कृति, कला इत्यादि का परिश्रमशील अध्ययन किया गया है। अतः प्रस्तुत पुस्तक प्रत्येक ऐसे पाठक के लिए अत्यन्त उपयोगी है जो कि पुस्तक में वर्णित देशों के समस्त जीवन से परिचय प्राप्त करने का इच्छुक हो।

लेखक ने पुस्तक में जिन व्यापक विषयों पर लिखा है उन्हें समझने के लिए प्रस्तुत पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ना आवश्यक है। उदाहरण के लिए जिस समय लेखक इस्लाम धर्म की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर विचार करता है उस समय सुकरात के दर्शन की भी चर्चा करता है, सन्त मुहम्मद के विषय में जानकारी कराता है और यहूदियों के इतिहास पर नये इज़रायल राज्य के निर्माण तक प्रकाश डालता है। विभिन्न जातियों का वर्णन भी वह करता है और उनके सम्बन्ध में अनेक दिलचस्प बातें बताता है। वह बताता है कि यूरोपीय विद्वानों के अनुसार पाश्चात्य संस्कृति की जन्म-भूमि मिश्र में भी गाय को पवित्र माना जाता है। आज यूरोप के वे विद्वान् भी मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई के बाद यह मानने लगे हैं कि भारतीय संस्कृति मिश्र से भी कहीं अधिक प्राचीन है। सेठ गोविन्ददास स्वयं गौ-भक्त हैं तथा गौ-रक्षा के लिए उन्होंने अनेक उल्लेखनीय प्रयत्न किये हैं। अतः स्वाभाविक ही है कि मिश्र के इस उदाहरण से उन्हें अपने कार्यों के लिए समर्थन प्राप्त हो।

वे अपनी पुस्तक में विभिन्न देशों के दाह-संस्कारों का वर्णन करते हैं तथा अरब इज़रायल सम्बन्धों पर विचार करते समय हमारे समक्ष फिलस्तीन के शरणार्थियों की समस्या प्रस्तुत करते हैं। आज हमें भी जिस शरणार्थी समस्या का सामना करना पड़ रहा है उसकी पृष्ठभूमि में यह वर्णन अत्यन्त उपयोगी है। इस भूमिका में मेरे लिए उन सारे विषयों का उल्लेख करना असंभव है जिनकी चर्चा लेखक ने की है। मैं पाठकों से अनुरोध करूँगा कि वे पूरी पुस्तक का अध्ययन करें।

सेठ गोविन्ददास ने अपनी अधिकांश यात्रा वायुयान द्वारा की, इसलिए अल्प समय में ही वे विस्तृत क्षेत्र की यात्रा कर सके । यद्यपि शारीरिक दृष्टि से उन्होंने वायुयान द्वारा ही यात्रा की, किन्तु जहाँ तक उनके विभिन्न देशों के निरीक्षण का प्रश्न है उन्होंने शब्दार्थ के अनुसार उन देशों पर सचमुच एक 'विहंगम दृष्टि' प्रस्तुत की है ।

उन्होंने एशिया, अफ्रिका, यूरोप और अमेरिका में स्थित अनेकों पश्चिमी, पूर्वी और दक्षिणी देशों की यात्रा की । प्रस्तुत पुस्तक में अफ्रिका के मिश्र, यूरोप के ग्रीस, इटली, स्विटज़रलैंड, फ्रांस और इंगलैंड, दक्षिण के कैनेडा, अमरीका और हवाई तथा पूर्वी एशिया के जापान, हांगकांग, चीन, स्याम और बर्मा का वर्णन है ।

पुस्तक सरल एवं आकर्षक शैली में लिखी गयी है तथा एक बार पढ़ना आरम्भ करने पर अबाध रूप से पूरी पुस्तक पढ़ डालने की इच्छा बलवती हो उठती है ।

मेरा विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण निधि है, जिससे कि सामान्य पाठक विश्व के विभिन्न देशों की अतीत एवं वर्त्तमान की समस्याओं, जातियों, धर्मों, राजनीतिक विचारधाराओं तथा विभिन्न संघर्षों एवं अन्य प्रश्नों को समझने के लिए सहायता प्राप्त कर सकता है । हम सब सेठ गोविन्ददास के आभारी हैं कि उन्होंने इतने परिश्रम से इस पुस्तक को लिखा ।

मैं व्यक्तिगत रूप से भी उन्हें धन्यवाद देता हूँ, क्योंकि उनकी पुस्तक ने मेरी कैनेडा-यात्रा की स्मृतियों को पुनः ताजा कर दिया और अनेक ऐसी बातों को जानने में भी सहायता दी है जिनकी ओर ध्यान देने के लिए यात्रा में न तो मेरे पास समय था और न ही उनके समान सूक्ष्म-निरीक्षण की दृष्टि ।

नई दिल्ली
२७ सितम्बर, १९५४

गणेश वासुदेव मावलंकर
अध्यक्ष,
लोकसभा

सूची

लेखक (बैठे हुए) दायीं ओर जगमोहनदास और बायीं ओर घनश्यामदास (खड़े हुए)

१

इस पृथ्वी-परिक्रमा का उपक्रम तथा भारत से बिदा

जब कामनवैल्थ पार्लिमेन्टरी एसोसियेशन के सेक्रेटरी जनरल सर हावर्ड डेंगविल ने मुझे सितम्बर सन् '५२ में कामनवैल्थ पार्लिमेन्टरी कान्फरैन्स के कैनेडा में होने की निश्चित सूचना दी और कामनवैल्थ पार्लिमेन्टरी एसोसियेशन की कार्य-कारिणी, जिसे जनरल कौंसिल कहा जाता है, के सदस्य होने के कारण मुझे उक्त परिषद् में आने का निमन्त्रण भेजा तभी मैंने सोच लिया था कि मुझे कैनेडा जाने का जो अवसर मिलेगा उसका उपयोग मैं पृथ्वी-परिक्रमा के लिए भी कर डालूँगा। कैनेडा जाने के रास्ते में यूरोप पड़ता ही है और कैनेडा से अमेरिका लगा हुआ है। लौटना फिर वही यूरोप होकर हो सकता है अथवा अमेरिका के पश्चिमी छोर के न्यूयार्क से अमेरिका के पूर्वी छोर सैनफ्रैंसिस्को आकर। वहाँ से जापान और चीन होकर आने में कुछ चक्कर अवश्य पड़ता है और कुछ रुपया भी अधिक लगता है, पर जीवन में बार-बार ऐसे अवसर नहीं आते, अतः मैंने पृथ्वी की इस परिक्रमा को करने का ही निर्णय किया। अफ्रीका, मलाया, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, फीजी आदि मैं पहले हो आया था अतएव इस यात्रा के बाद हमारे संसार के प्रायः समस्त प्रधान-प्रधान देशों का मेरा भ्रमण हो जायगा और इस भ्रमण के कारण संसार की समस्याओं का अध्ययन, इस विचार ने इस पृथ्वी-परिक्रमा के विचार को और अधिक उत्तेजना दे दी।

परन्तु कामनवैल्थ पार्लिमेन्टरी एसोसियेशन की कार्यकारिणी का सदस्य होना, इस परिषद् के लिए भारत से जो प्रतिनिधिमंडल जाने वाला था, उस मंडल का सदस्य होना नहीं था। प्रतिनिधिमंडल को चुनने का अधिकार था भारत की इन्टर-पार्लिमेन्टरी यूनियन की शाखा को, जिसके सभापति थे भारत की लोकसभा के अध्यक्ष श्री मावलंकर। भारत की इन्टर-पार्लिमेन्टरी यूनियन की यह शाखा इस प्रकार के प्रतिनिधिमंडलों के चुनाव का अधिकार सदा अपने सभापति को दे दिया करती थी। इस बार भी यही होने वाला था अतः कामनवैल्थ पार्लियामेन्टरी एसोसियेशन की कार्य-कारिणी के सदस्य होने पर भी कैनेडा में होने वाली इस परिषद् के प्रतिनिधिमंडल का मेरा सदस्य होना श्री मावलंकर पर निर्भर था। बिना प्रतिनिधिमंडल के सदस्य

हुए भी कामनवैल्थ पार्लिमेन्टरी एसोसियेशन की कार्यकारिणी के सदस्य होने के कारण इस हैसियत से भी मैं कैनेडा की परिषद् में जा सकता था, लेकिन उस कार्यकारिणी का मेरा सदस्य रहना भी कामनवैल्थ पार्लिमेन्टरी एसोसियेशन की भारतीय शाखा पर निर्भर था। कामनवैल्थ पार्लिमेन्टरी एसोसियेशन के संविधान के अनुसार उसकी कार्यकारिणी के सदस्य उसकी भिन्न-भिन्न शाखाओं द्वारा चुने जाते हैं। यदि मैं प्रतिनिधिमंडल का सदस्य न होता तो कार्यकारिणी का सदस्य भी कोई दूसरा व्यक्ति ही चुना जाता। मंडल का सदस्य न होकर कार्यकारिणी के सदस्य के नाते कैनेडा की परिषद् में न तो मैं जा सकता था और यदि कार्यकारिणी की सदस्यता में परिवर्तन न किया जाता और मैं कार्यकारिणी के सदस्य के नाते कैनेडा जाता तो उसका कुछ अर्थ भी न था, क्योंकि उस हैसियत से जाने में मैं परिषद् की कार्रवाई में भाग न ले सकता था। अतः मैं प्रतिनिधिमंडल के नाम के निर्णय की प्रतीक्षा करने लगा।

तारीख ३१ मई, सन् ५२ को कामनवैल्थ पार्लिमेन्टरी एसोसियेशन की भारतीय शाखा की बैठक हुई। उसमें प्रतिनिधिमंडल के चुनाव का अधिकार श्री मावलंकर को दे दिया गया। उसके कुछ ही दिन बाद मुझे सूचना मिली कि मैं प्रतिनिधिमंडल का एक सदस्य चुना गया हूँ। पर अब मेरे सामने एक दूसरा प्रश्न उपस्थित हुआ कि मंडल का नेता कौन होगा और उसके नेतृत्व में मेरा जाना कहाँ तक मेरे आत्म-सम्मान के अनुकूल पड़ेगा ? यह प्रश्न मेरे लिए इस कारण और अधिक महत्त्व का हो गया कि न्यूज़ीलैंड में सन् '५२ में जो परिषद् हुई थी उसके भारतीय प्रतिनिधि-मंडल के नेतृत्व का भार मुझ पर रखा गया था। पर इस असमंजस में मुझे बहुत समय तक न रहना पड़ा। बहुत शीघ्र मुझे सूचना मिल गयी कि या तो प्रतिनिधिमंडल के नेतृत्व की जिम्मेदारी फिर मुझ पर रखी जायगी या श्री मावलंकर स्वयं प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व करेंगे। श्री मावलंकर के लोकसभा के अध्यक्ष होने के कारण उनके नेतृत्व में जाने में मुझे कोई आपत्ति न हो सकती थी। अतः मैंने प्रतिनिधिमंडल के सदस्य होने की अपनी स्वीकृति भेज दी। कुछ दिन के बाद मुझे अन्य प्रतिनिधियों के नाम मालूम हुए। पूरा प्रतिनिधिमंडल न्यूज़ीलैंड के समान ही पाँच प्रतिनिधियों का था। इनके नाम थे—श्री मावलंकर, श्री अनन्तशयनम आयंगर, प्रोफेसर रंगा, श्री अनुसूया बाई काले और मैं। न्यूज़ीलैंड के प्रतिनिधिमंडल के मुझे छोड़ अन्य कोई प्रतिनिधि इस मंडल में नहीं थे। पार्लिमेन्टरी सदस्यों की संख्या काफी है और बहुत लोग विदेशों को जाने के इच्छुक भी रहते हैं। अतः हर प्रतिनिधिमंडल में प्रायः नये लोगों को ही भेजा जाता है, पर मैंने सुना कि मेरे सम्बन्ध में इस अपवाद का यह कारण था कि न्यूज़ीलैंड के प्रतिनिधिमंडल के नेता के रूप में मैंने जो काम किया था वह काम कुछ उच्चकोटि का माना गया था।

मेरे कुटुम्बियों को मेरे कैनेडा जाने का वृत्त उसी समय से मालूम था जब से इस सम्बन्ध में श्री हावर्ड डैंगविल का पत्र मेरे पास आया था। मेरे कुटुम्ब में मेरे छोटे पुत्र जगमोहनदास मेरे साथ जाने के लिए बड़े इच्छुक थे। जगमोहनदास का विद्यार्थी-जीवन बड़ा प्रतिभाशाली रहा था। उन्होंने अपनी इन्टर, बी. ए., एल एल. बी. सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में पास की थीं। हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं पर भी उनका अच्छा अधिकार था। वे अब मध्य प्रदेश विधानसभा के भी सदस्य थे। अतः उनसे मुझे भी सारे दौरे में सहायता मिलेगी, इस दृष्टि से, साथ ही यह दौरा उनके भावी जीवन के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा। इस दृष्टि से मैंने उन्हें अपने साथ ले जाने की स्वीकृति दे दी। इसी बीच कलकत्ते में मेरे बड़े पुत्र मनमोहनदास का एक आपरेशन था। जब मैं वहाँ गया तब मेरे छोटे दामाद श्री घनश्यामदास बिन्नानी का भी मेरे साथ जाने का निर्णय हुआ। इस प्रकार हम तीनों के इस प्रवास की तैयारी आरम्भ हुई।

सबसे पहला प्रश्न था पूरे कार्यक्रम का निर्णय करना। भारतीय प्रतिनिधि-मंडल तारीख २७ अगस्त को जाने वाला था, क्योंकि कैनेडा में परिषद् थी सन् '५२ के तारीख ८ सितम्बर से १३ सितम्बर तक। तारीख २७ अगस्त को एरोप्लेन से बम्बई से चलकर तारीख २८ को लंदन पहुँचना और वहाँ से एक चारटर्ड एरोप्लेन से संसार के भिन्न-भिन्न देशों के अन्य प्रतिनिधिमंडलों के साथ भारतीय प्रतिनिधिमंडल का कैनेडा जाना निश्चित हुआ था। हम लोग कैनेडा पहुँचने के पहले रास्ते के देशों का दौरा कर लेना चाहते थे, अतः हमने तारीख ३१ जुलाई को ही जाने का निर्णय किया। इसमें कोई दिक्कत नहीं हुई। कामनवैल्थ पार्लिमेन्टरी एसोसियेशन के नियमों के अनुसार इन प्रतिनिधिमंडलों के यातायात का खर्च एसोसियेशन की उस देश की शाखा देती है जिस देश में परिषद् होती है। कैनेडा की इस शाखा ने भारतीय प्रतिनिधिमंडल के जाने की व्यवस्था बी. ओ. ए. सी. कम्पनी के हवाई जहाजों से की थी। जब मैंने बी. ओ. ए. सी. कम्पनी वालों से तारीख २७ अगस्त के बदले ३१ जुलाई को ही जाने की अपनी इच्छा प्रकट की तब उन्होंने कहा कि इस व्यवस्था में कोई अड़चन न होगी। जगमोहनदास और घनश्यामदास अपने-अपने खर्च पर जा रहे थे अतः वे किसी भी एरोप्लेन से कभी भी जाने के लिए स्वतन्त्र थे।

दूसरा प्रश्न था, कपड़ों का। अफ्रीका, न्यूज़ीलैंड और आस्ट्रेलिया में मैंने अपना काम शेरवानी, चूड़ीदार पाजामे और गान्धी टोपी से चलाया था। अफ्रीका में तो भली भाँति यह काम चल गया था, क्योंकि वहाँ भारतीय काफी संख्या में रहते हैं, पर न्यूज़ीलैंड और आस्ट्रेलिया में नहीं। न्यूज़ीलैंड और आस्ट्रेलिया में जहाँ कहीं भी भारतीय प्रतिनिधिमंडल के सदस्य भारतीय ढंग के कपड़े पहनकर जाते, वहाँ

के सभी निवासी उन्हें इस प्रकार घूरते जैसे किसी विचित्र जीवों को देख रहे हों और कुछ विशिष्ट अवसरों को छोड़ इधर-उधर घूमने-घामने में कोई इस प्रकार का घूरा जाना पसन्द नहीं करता। इसीलिए पंडित जवाहरलाल जी विदेशों में सदा यूरोपीय ढंग के कपड़े पहनते हैं। इस विषय में जो अनुभव मुझे न्यूज़ीलैंड और आस्ट्रेलिया में हुआ था उसके कारण मैंने भी पृथ्वी-परिक्रमा की इस यात्रा के लिए यूरोपीय ढंग के कपड़े बनवाने का ही निश्चय किया, पर सब हाथ से कते और बुने हुए। जगमोहनदास भी वर्षों से शुद्ध खादी हो पहनते हैं। उन्होंने भी हाथ से कते-बुने यूरोपीय ढंग के कपड़े बनवाये। घनश्यामदास ने भी यूरोपीय ढंग ही अपनाया; हाँ, उन्हें खादी पहनने का संकल्प न था।

और तीसरा प्रश्न था भिन्न-भिन्न देशों के 'विसा' का। विदेश जाने के लिए केवल 'पासपोर्ट' से काम नहीं चलता। पासपोर्ट मिलने के पश्चात् हर देश में जाने के लिए एक और आज्ञापत्र की आवश्यकता होती है जिसे 'विसा' कहते हैं। चूंकि मैं पार्लिमेन्टरी प्रतिनिधिमंडल में जा रहा था, इसलिए मेरे विसा का प्रबन्ध भारत सरकार ने किया। घनश्यामदास एक बहुत बड़े रोजगारी कुटुम्ब 'बिन्नानी मैटिल वर्क्स' के मालिक श्री गोवर्धनदास जी बिन्नानी के पुत्र हैं। उन्होंने अधिकांश देशों का अपना यह प्रबन्ध कलकत्ते में कर लिया। जगमोहनदास को यह इन्तजाम दिल्ली में ही करना पड़ा तथा घनश्यामदास को भी अमेरिका तथा कुछ देशों का दिल्ली में। रूस और अमेरिका छोड़कर अन्य देशों के लिए इस प्रबन्ध में कोई कठिनाई नहीं हुई। पर रूस और अमेरिका के विसा प्राप्त करने में हमें जो तजुरबे हुए वे उल्लेखनीय हैं।

'विसा' शब्द का यथार्थ अर्थ है पासपोर्ट की जाँच और उस पर हस्ताक्षर किया जाना। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय जगत के राजनीतिक सम्बन्धों के विषय में बड़े-बड़े सिद्धान्तों का वर्षों से प्रतिपादन हो रहा है और संस्कृत विद्वानों के 'वसुधैव कुटुम्बकम्' से लेकर यू. एन. ओ. के वर्तमान सिद्धान्त तक पर्याप्त विचार हो चुका है फिर भी यह अभी भी निर्विवाद रूप से सत्य है कि वर्तमान राष्ट्रों के वैदेशिक सम्बन्ध केवल स्वार्थ पर ही निर्भर हैं। पाश्चात्य डिप्लोमेसी का आधार ही अपने राष्ट्र का हित माना जाता है। यद्यपि स्वतन्त्र भारत की वैदेशिक नीति ने कालान्तर से इस सिद्धान्त का विरोध किया है और वर्तमान भारतीय वैदेशिक नीति भी दुनियाँ के हित को अपने राष्ट्रीय हित से अधिक महत्त्वपूर्ण मानती है तथापि इस नीति का अभी आधुनिक डिप्लोमेसी पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ पाया है। वैदेशिक नीति से सम्बन्धित जितने भी कार्य आधुनिक दृष्टिकोण से किये जाते हैं वे सभी, इसी राष्ट्रीय स्वार्थ पर अवलंबित रहते हैं। विसा के रूप में विदेश जाने की अनुमति देते समय

भी विभिन्न राष्ट्रों के दूतावास भी इसी आधारभूत दृष्टिकोण से सभी बातों को देखते हैं। जैसा पहले लिखा है मेरे अधिकांश विसा लेने का प्रबन्ध तो भारतीय सरकार की ओर से होने वाला था किन्तु जगमोहनदास को तो दिल्ली में स्वयं ही विसा लेने की व्यवस्था करनी थी। हम लोगों की बड़ी इच्छा थी कि इस यूरोपीय भ्रमण के अवसर पर हम लोग सोवियत यूनियन, चेकोस्लोवेकिया, पोलेंड इत्यादि साम्यवादी देशों को भी देखें। सोवियत यूनियन के विसा लेने में सदैव दिक्कत होती है, यह मैंने सुना था इसलिए सोवियत यूनियन का विसा लेने के लिए जाने का मैंने स्वयं ही निश्चय किया। सोवियत दूतावास को टेलीफ़ोन किया गया यह पूछने को कि विसा मिल सकेगा या नहीं। उत्तर मिला कि अंग्रेजी में अधिक बात टेलीफ़ोन पर हो सकना सम्भव नहीं दूतावास में व्यक्तिगत बात आवश्यक है। मैं जगमोहनदास और बी. ओ. ए. सी. के प्रतिनिधि श्री ब्रिगेनजा को लेकर सोवियत दूतावास पहुँचा। सोवियत 'काउंसल' बड़ी शिष्टता से मिले। उन्होंने कुछ देर तक बातचीत की, फिर कहा कि वे इस सम्बन्ध में निश्चित उत्तर दो दिन बाद दे सकेंगे, क्योंकि उन्हें मास्को से बातचीत करनी पड़ेगी। दो दिन बाद टेलीफ़ोन करने पर ज्ञात हुआ कि अभी तक मास्को से कोई उत्तर नहीं आया है। चूँकि हम लोगों को रवाना होने की जल्दी थी इसलिए यह निश्चय किया गया कि मास्को से उत्तर आते ही लन्दन के भारतीय दूतावास को सोवियत दूतावास, नयी दिल्ली, समाचार भेजने की व्यवस्था कर देगा और कदाचित् लन्दन में हमें सोवियत यूनियन जाने की अनुमति प्राप्त हो जायगी।

मैंने सदैव ही सोवियत यूनियन में जो महान् प्रयोग हो रहा है उसे आदर की दृष्टि से देखा है। मैं ही क्या दुनियाँ के गरीब देशों के निवासियों को पिछले पच्चीस वर्षों से रूस ने जो अपूर्व प्रगति की है उससे प्रेरणा मिलती रहती है। मेरा यह मत है कि इस महान् प्रयोग को दुनियाँ के निवासियों को अधिक से अधिक देखना और समझना चाहिए जिससे वे इसका अधिक से अधिक लाभ उठा सकें। इसी दृष्टिकोण से मैं यही आशा करता था कि सोवियत दूतावासों को अधिक से अधिक लोगों को सोवियत यूनियन जाने की अनुमति देना चाहिए। सोवियत दूतावास में मैंने जो बातचीत की उससे मुझे पूरा सन्तोष नहीं हुआ। प्रत्येक छोटी-छोटी बात पर मास्को का इतना कड़ा नियंत्रण मेरी समझ में नहीं आया। एक भारतीय नागरिक को, जिसे भारतीय सरकार ने सोवियत यूनियन जाने की अनुमति दे दी, वहाँ जाने के लिए विसा देने में मास्को की अनुमति में इतनी आनाकानी की क्या आवश्यकता है, यह मेरी समझ के बाहर की बात थी। प्रत्येक दूतावास में अधिक से अधिक जिम्मेदार व्यक्ति रहते हैं। राजदूत का दर्जा, मन्त्री से नीचा नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में विसा सम्बन्धी बातें दूतावास को ही तय करने का अधिकार होना चाहिए। यथार्थ में

दूतावासों के विविध कार्यों में एक सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य विसा देने का भी है। यदि सोवियत-व्यवस्था अच्छी है, यदि सोवियत भूमि नये राज्य में शस्य श्यामला हुई है, यदि सोवियत संस्कृति का उच्चकोटि का विकास हुआ है तो फिर उसे दुनियाँ की आँखों से छिपाने की क्या आवश्यकता है ? रंगीन पत्रिकाओं में जिस जीवन के चित्र प्रकाशित होते हैं, जहाँ की उन्नति की तीव्र गति की छवि को पत्रिकाओं में अंकित करने का प्रयत्न होता है क्या उस जीवन की सहज प्राकृतिक आकृति विकृत हो सकती है ? कदापि नहीं।

सोवियत यूनियन जाने की इच्छा से कम तीव्र लालसा हमें अमेरिका जाने की भी नहीं थी। मेरे अमेरिकन विसा की व्यवस्था तो भारतीय सरकार ने की थी, इसीलिए मुझे विसा का न तो कोई शुल्क ही देना पड़ा और न कोई कठिनाई ही हुई। जगमोहनदास और घनश्यामदास दोनों ने ही नयी दिल्ली स्थित अमेरिकन दूतावास से विसा लेने का निश्चय किया था और रवाना होने से दो दिन पूर्व वे अमेरिकन दूतावास में अमेरिकन काउंसलर से भेंट करने गये। इसके पूर्व जा सकना इसलिए सम्भव न हो सका कि अन्य देशों के विसा, रिजर्व बैंक से रुपये इत्यादि की अनुमति लेने में पासपोर्ट की लगातार आवश्यकता पड़ती रही।

दिल्ली का अमेरिकन दूतावास नयी दिल्ली की एक भव्य इमारत में है। इस इमारत का नाम 'भावलपुर हाउस' है। भावलपुर के राजा साहब ने दिल्ली के राजधानी होने के बाद अनेक अन्य भारतीय राजाओं के सदृश इस भव्य भवन का निर्माण कराया था, जिससे आमदनी कम होने पर भी उनके राज्य की प्रतिष्ठा में कोई कमी न रहे। जैसे ही आप इस इमारत के प्रवेश-द्वार से भीतर जाते हैं एक टट्टे के आच्छादन के नीचे मोटरों की एक लम्बी कतार खड़ी रहती है, जिससे यह ज्ञात होता है कि अमेरिकन दूतावास में जितने लोग कार्य करते हैं लगभग सभी के पास एक-एक मोटर है। अमेरिका में प्रत्येक चार नागरिकों पर एक मोटर है तो यहाँ विदेश में प्रत्येक अमेरिका-निवासी के पास यदि एक गाड़ी हो तो आश्चर्य की बात नहीं। अमेरिकन दूतावास के मकान का प्रत्येक कमरा एयरकंडीशंड है। जिस समय विसा लेने का प्रयत्न हो रहा था उन दिनों मकान को पुनः सुसज्जित किया जा रहा था। भारत का अमेरिकन दूतावास बहुत बड़ा है। प्रत्येक कार्य के लिए एक अलग अफसर है और उसके अलग कर्मचारी हैं। फौजी मामलों के लिए 'मिलिटरी एटेची', खेती के लिए 'एग्रीकल्चर एटेची' और इसी तरह प्रत्येक बात के लिए एक अलग अधिकारी नियुक्त है। यथार्थ में दूतावासों का कार्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। राजनीतिक सम्बन्धों के अतिरिक्त दूतावासों को मानव-जीवन के सभी क्षेत्रों के सम्बन्ध की जानकारी एकत्र करके अपने देशों को भेजनी चाहिए,

जिससे अपने देश की उन्नति में पूर्ण सहायता मिले। यदि खेती पर उनका एक अलग अफसर भारत में नियुक्त है तो यह उसका काम है कि भारतीय खेती-विज्ञान की जो विशेषताएँ हैं उनकी सभी जानकारी तथा नवीन अनुसन्धान की दिशा और उनके फल सम्बन्धी पूरे समाचार अपने देश को भेजे। भारतीय अमेरिकन दूतावास यह कार्य अत्यधिक सुचारु रूप से करता होगा। अमेरिकन दूतावास की चहल-पहल ही इसका सबसे बड़ा प्रमाण मालूम होता है। प्रत्येक कार्य को अच्छी से अच्छी तरह से करने का प्रयत्न अमेरिकन करना चाहते हैं और इसीलिए विसा लेने के लिए भी उन्होंने कानून द्वारा अधिक से अधिक जानकारी लेने की प्रथा बनायी है। अमेरिकन विसा लेते समय सबसे पहले आपको इस प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करना पड़ता है कि आप किसी 'टोलेटेरियन' पार्टी—कम्युनिस्ट, फेसिस्ट या किसी अन्य—के सदस्य नहीं हैं। इसके बाद आपके हाथ की प्रत्येक उँगली के निशान लिये जाते हैं। अपने तीन चित्र देने पड़ते हैं जो अलग-अलग फार्मों पर चिपकाये जाते हैं और सबसे आवश्यक वस्तु, कम से कम भारतीय यात्रियों के लिए, डालर का सार्टीफिकेट देना पड़ता है। किसी भी यात्री के लिए जो जल्दी में हो इतनी जानकारी देना वैसे ही एक तबालत की वस्तु हो जाती है। फिर जिस रूखे-सूखे शिष्टाचार-विहीन ढंग से इसे लेने का प्रबन्ध अमेरिका के भारतीय दूतावास में किया गया, उससे तो यह सारा प्रकरण एक दण्ड-विधान-सा हो जाता है। जगमोहनदास और घनश्यामदास ने अपने जो चित्र तैयार कराये थे वे फोटो के चमकदार कागज (ग्लेज्ड पेपर) पर न होकर चमक-विहीन (डल सरफेस) कागज पर थे। सर्वप्रथम तो पहले दिन ही यह कह दिया गया कि इन चित्रों से काम नहीं चलेगा, इन्हें चमकदार कागज पर लाइये। यह बताने का कि विसा की बहुत जल्दी है क्योंकि एक दिन ही बाद हवाई जहाज रवाना हो जाता है, कोई असर नहीं पड़ा। फिर जगमोहनदास के पासपोर्ट पर इम्पीरियल बैंक की सही थी कि उन्हें काफी डालर दे दिये गये हैं। किन्तु यह निरर्थक माना गया और इम्पीरियल बैंक के एक अतिरिक्त पत्र की माँग की गयी, जिसमें यह लिखा था कि उन्हें डालर निश्चित रूप से दे दिये गये हैं; यद्यपि उस सही का अर्थ ही यह होता है। मुझे ऐसा लगा कि यह ढंग अमेरिकन जीवन-पद्धति के अनुसार बिलकुल ही नहीं है। अमेरिका तो इस बात में विश्वास करता है कि कार्य जल्दी से जल्दी और अधिक से अधिक सहूलियत देते हुए होना चाहिए। फिर दूतावासों को तो विशेष रूप से सावधान रहना आवश्यक है।

इन दो प्रभुताशाली वर्तमान राष्ट्रों के 'विसा' प्राप्त करने के अनुभव विशेष रूप से उल्लेखनीय रहे। अन्य देशों के दूतावासों ने और विशेष रूप से कैनेडा तथा स्विट्ज़रलैंड के दूतावासों ने तो बड़ी शीघ्रता और अत्यधिक सौजन्यता से विसा

का कार्य निपटाया । हाँ, इटली का विसा बम्बई से मिल पाया, क्योंकि इटली के काउंस्लर वहीं रहते हैं । उसे प्राप्त करने के लिए पासपोर्ट और आवेदन-पत्र बम्बई भेजने पड़े । फीस भी इटली के विसा में सबसे अधिक लगी । जब जर्मनी के विसा में सवा रुपया और स्विटज़रलैंड में सवा ग्यारह रुपये लगे, तब इटली के विसा में इकतीस रुपये लगे ।

हम तारीख ३१ जुलाई को रवाना हो रहे थे । भारत लौटने की कोई निश्चित तिथि तय कर सकना कठिन था, पर हम किन-किन देशों को जायँगे यह हमने तय कर लिया । रूस का हमें विसा न मिला था अतः रूस को छोड़ हमने निम्नलिखित देशों को जाने का निर्णय किया—

१. मिश्र	८. अमेरिका
२. यूनान	९. हवाई
३. इटली	१०. जापान
४. स्विट्ज़रलैंड	११. चीन
५. फ्रांस	१२. हांगकांग
६. इंगलैंड	१३. स्याम
७. कैनेडा	१४. बर्मा

रवाना होने के पहले मुझे जो अन्य आवश्यक काम निपटाने थे उनमें पहला था मेरी गैरहाज़िरी में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के काम की व्यवस्था । इसके लिए प्रान्तीय कांग्रेस की कार्यकारिणी की बैठक तारीख १९ और २० जुलाई को नागपुर में हुई । मेरी गैरहाज़िरी में प्रान्तीय सभापति का काम चलाने के लिए रायपुर के महन्त लक्ष्मीनारायन दास जी नियुक्त हुए ।

दूसरा काम था जबलपुर जाकर सब कुटुम्बियों से मिलना । न्यूज़ीलैंड जाते हुए मेरे कुटुम्बियों और खासकर माता जी तथा मेरी धर्मपत्नी ने मुझे जिस प्रकार बिदा किया था वह मुझे वैसा का वैसा स्मरण था । उस बात को लगभग दो वर्ष बीत चुके थे । इस बीच माता जी और अधिक वृद्ध हो गयी थीं तथा अस्वस्थ भी थीं । पर चूँकि मैं दो वर्ष पहले ही एक लम्बी वैदेशिक यात्रा कर आया था, इसलिए इस समय माता जी या मेरी पत्नी उतनी अधिक चिन्तित न थीं जितनी मेरी न्यूज़ीलैंड यात्रा के समय । प्रान्तीय कार्यकारिणी की बैठक के बाद तारीख २० को ही मैं नागपुर से जबलपुर आया । न्यूज़ीलैंड जाने के समय जबलपुर वालों ने मेरी बिदा के लिए जैसे आयोजन किये थे, इस बार भी वे करना चाहते थे, परन्तु दिल्ली में भारतीय संसद् का अधिवेशन चल रहा था और जाने के पहले मैं दिल्ली से कम से कम गैरहाज़िर रहना चाहता था। अतः मैंने इन आयोजनों को लौटने पर करने का आग्रह
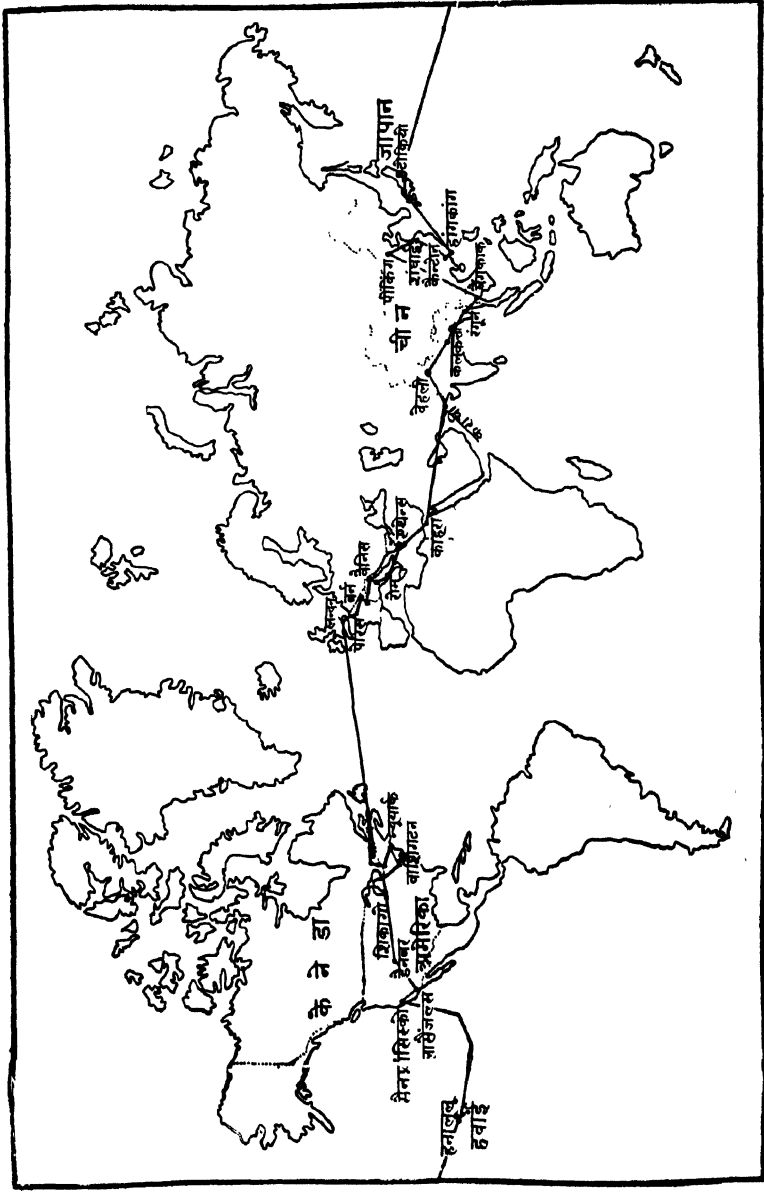
किया, जो कठिनाई से ही लोगों ने स्वीकार किया। जबलपुर भी मैं दो ही दिन रहा। जैसा ऊपर लिखा गया है इस बार मेरे कुटुम्बी मेरी इस यात्रा के सम्बन्ध में पहले के समान चिन्तित न थे फिर भी विदा का दृष्य कारुणिक तो हो ही गया। माता जी ने चलते-चलते जो कहा था वह मैं पूरी यात्रा में विस्मृत न कर सका। उनके शब्द कुछ इस प्रकार के थे—"तुम वर्षों जेल रह आये हो। अफ्रीका, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया न जाने कहाँ-कहाँ हो आये हो। तुम्हारी यह यात्रा भी कुशलपूर्वक हो और कम से कम तुम्हारे लौटने तक मैं जीती रहूँ जिससे आखीर वक्त तुम्हारे हाथ की लकड़ियाँ तो मिल जायँ।"

जबलपुर स्टेशन पर हमें विदा करने कुटुम्बियों, मित्रों तथा अन्य लोगों की एक खासी भीड़ इकट्ठी हो गयी। जगमोहनदास की पत्नी विद्या तथा मेरा पौत्र रविमोहन हमें पहुँचाने हमारे साथ ही दिल्ली आये। हमारे दिल्ली पहुँचने के चार-पाँच दिन बाद घनश्यामदास जबलपुर वालों से मिलने जबलपुर गये और वहाँ से दिल्ली आ गये। उन्हें पहुँचाने उनके पिता श्री गोवर्धनदास जी बिन्नानी भी दिल्ली पधारे।

भारत छोड़ने के पहले हम लोग कोई एक सप्ताह दिल्ली रहे। दिल्ली में यात्रा की सारी तैयारी हुई जिसमें विसा लेना मुख्य था और ये विसा जिस प्रकार मिले इसका विवरण पहले दिया जा चुका है।

इस एक सप्ताह में दिल्ली में जो सबसे बड़ा काम हुआ वह था राष्ट्रपति-भवन में संसदीय हिन्दी परिषद् की ओर से भारतीय भाषाओं के संगम का एक आयोजन। यह आयोजन अपने ढंग का एक निराला ही आयोजन था। कई उत्तर और दक्षिण भारत की भाषाओं की कविताएँ पढ़ी गयीं। भारत-नाट्य का प्रदर्शन हुआ और उत्तर भारत की भाषाओं के साहित्य पर लोकसभा के सदस्य श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तथा दक्षिण भारत की भाषाओं के साहित्य पर लोकसभा के उपाध्यक्ष श्री अनन्तशयनम आयंगर के भाषण हुए। राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद स्वयं इस आयोजन में उपस्थित थे और यह आयोजन उन्हें कुछ ऐसा अच्छा जान पड़ा कि उन्होंने कहा कि भारतीय भाषाओं के संगम के लिए कोई पचास वर्ष पूर्व बंगाल के न्यायाधीश श्री शारदाचरण मित्र ने भिन्न-भिन्न भाषाओं के साहित्य को देवनागरी-लिपि में छापने के लिए 'देवनागर' नाम का एक पत्र निकाला था वैसा ही एक पत्र फिर से संसदीय हिन्दी परिषद् को निकालना चाहिए। संसदीय हिन्दी परिषद् के अध्यक्ष की हैसियत से मैंने तत्काल घोषणा कर दी कि राष्ट्रपति की इच्छा को हम लोग शीघ्र से शीघ्र कार्य रूप में परिणित करेंगे। हर्ष की बात है कि यह पत्र अब त्रैमासिक रूप में प्रकाशित होने लगा है। इसके संरक्षक स्वयं राष्ट्रपति हैं और इसके कार्य-

कारी सम्पादक हैं श्री डॉक्टर नगेन्द्र तथा श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन। इसके सम्पादक-मंडल और इसकी संचालक समिति में भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओं की चोटी के लोग हैं। इस पत्र का भारत की सारी भाषाओं में बड़ा अच्छा स्वागत हुआ है।

राष्ट्रपति-भवन के इस समारोह में एकत्रित लोगों को मालूम था कि मैं पृथ्वी-परिक्रमा पर जा रहा हूँ। राष्ट्रपति तथा अन्य लोगों ने बड़े उत्साह से इस समारोह में मुझे बिदा दी।

तारीख ३१ जुलाई की संध्या को हम एक दीर्घकाय चार एंजिन के वायुयान से भारत-भूमि से बिदा हुए। किस प्रकार अश्रुपूर्ण नेत्रों और गद्गद् स्वर से श्री गोवर्धनदास जी बिन्नानी और विद्या आदि ने हमें बिदा किया। जब वायुयान उड़ा तब जगमोहनदास और घनश्यामदास के संग के कारण कुछ अधिक मानसिक उद्वेग से मैंने निर्विघ्न यात्रा के लिए भगवान की वन्दना की।

२

दिल्ली से काहरा तक

भारत के पालम हवाई अड्डे से उड़कर हमारा वायुयान सबसे पहले कराँची में उतरा। इस उड़ान में वायुयान को लगभग ढाई घण्टे लगे। कराँची भूमि को जब हमारे हवाई जहाज ने स्पर्श किया, उस समय मुझे वह समय याद आया जब सन् १९३१ में कांग्रेस का अधिवेशन कराँची में हुआ था। कांग्रेस का यह अधिवेशन कराँची में हुआ था सन् '३० के सत्याग्रह-आन्दोलन के बाद, जिसकी समाप्ति हुई थी गान्धी-अरविन-पैक्ट से। वह आन्दोलन भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सन् '२० के व्यापक असहयोग आन्दोलन के बाद देश का दूसरा व्यापक आन्दोलन था और चूंकि उसकी समाप्ति गान्धी-अरविन-पैक्ट से हुई थी, जिस पैक्ट पर ब्रिटिश सल्तनत के सबसे बड़े भारत में रहने वाले प्रतिनिधि भारत के वाइसराय ने भारत के सबसे बड़े नेता भारतीय हृदय-सम्राट महात्मा गान्धी को अपने बराबर का व्यक्ति मान हस्ताक्षर किये थे, इसलिए उस आन्दोलन का महत्त्व बहुत बढ़ गया था। असहयोग आन्दोलन के समान ही सन् '३० का सत्याग्रह का आन्दोलन भी स्वराज्य-प्राप्त करने के लिए हुआ था और यद्यपि गान्धी-अरविन-पैक्ट होने के बाद भी स्वराज्य उतना ही दूर था, जितना इस पैक्ट के पहले, तथापि गान्धी जी का वाइसराय के बराबर बैठकर किसी ऐसे दस्तावेज पर दस्तखत करना ही अपनी एक विशेषता रखता था। यों तो गान्धी जी और लार्ड अरविन की क्या बराबरी थी? लार्ड अरविन के सदृश न जाने कितने वाइसराय इंगलैंड से भारत आ चुके थे और उनके बाद भी कुछ आये, जबकि मेरे मतानुसार गौतम बुद्ध के बाद भारत में एवं जीज़स क्राइस्ट के बाद संसार में महात्मा गान्धी के सदृश महापुरुष ने जन्म नहीं लिया था, तथापि राजनैतिक क्षेत्र में अधिकार वाले पदों का एक विशिष्ट स्थान होता है। गान्धी जी ने यद्यपि अपने समय में भारतीय जीवन के हर क्षेत्र का नेतृत्व किया था तथापि भारत की स्वतन्त्रता उनके जीवन का प्रधान कार्य था और इस क्षेत्र में भारत के वाइसराय की बराबरी में बैठ किसी पैक्ट के हस्ताक्षर अपनी एक विशेषता रखते थे। ऐसे पैक्ट के बाद होने वाले कांग्रेस-अधिवेशन की महत्ता आप से आप बढ़ गयी

थी। भारत स्वतन्त्र नहीं हुआ था, परतन्त्रता की बेड़ियाँ ढीली भी नहीं पड़ी थीं, गान्धी जी की हर इच्छा पूर्ण हो यह परिस्थिति भी नहीं आयी थी तभी तो गान्धी जी सरदार भगतसिंह की फाँसी तक न रुकवा सके थे फिर भी कांग्रेस के उस कराँची अधिवेशन में एक अभूतपूर्व जोश दिखाई पड़ता था। और उस समय भारत भूमि के टुकड़े होकर पाकिस्तान की रचना होगी तथा कराँची पाकिस्तान की राजधानी बनेगी इसकी किसे कल्पना थी ? यद्यपि पाकिस्तान का नारा कई वर्ष पूर्व आरम्भ हो गया था और इसे आरम्भ करने वाले कदाचित् 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' गीत के गायक महाकवि इक़बाल थे, कैसी 'आयरनी' तथापि कराँची-कांग्रेस के समय यह नारा कुछ मनचले सम्प्रदायवादियों की मनचली कल्पना का विषय था। उस समय तो पाकिस्तान के संस्थापक क़ायदे आज़म जिन्ना तक का भारतीय राजनीति में उनके भारत के स्वातन्त्र्य-युद्ध में भाग न लेने के कारण कोई स्थान न रह गया था और जिन क़ायदे आज़म जिन्ना का कराँची के कांग्रेस-अधिवेशन के समय भारतीय राजनीति में कोई स्थान नहीं था उन्हीं जिन्ना का कितने शीघ्र उत्थान हुआ तथा उन्हीं के प्रयत्न से पाकिस्तान की स्थापना हुई। यह सब हुआ जिन्ना के व्यक्तित्व के कारण अथवा परिस्थितियों के कारण ? एक पुराना विवाद का विषय चला आ रहा है कि व्यक्ति समय का निर्माण करता है या समय व्यक्ति का। श्री जिन्ना के व्यक्तित्व को लेकर मैं भी इसी विचारधारा में गोते लगाने लगा। श्री जिन्ना का व्यक्तित्व अनेक विशेषताओं से भरा हुआ था, इसमें सन्देह नहीं। इस देश की राजनैतिक बागडोर गान्धी जी के हाथ में आने से पूर्व इस देश की राजनीति में और इस देश की प्रधान राजनैतिक संस्था कांग्रेस में जिन्ना का बहुत बड़ा स्थान रह चुका था। कांग्रेस के गान्धी जी के हाथ में आने पर जिस प्रकार उस काल के अनेक राजनैतिक नेताओं ने कांग्रेस को छोड़ दिया, उसी प्रकार जिन्ना ने भी। परन्तु इन कांग्रेस छोड़ने वालों में से अनेक नरमदल के नेताओं ने जिस तरह 'लिबरल फेडरेशन' नाम की एक अलग संस्था बनायी वैसी कोई बात जिन्ना ने नहीं की, वरन् मुस्लिम लीग तक को जिन्ना ने हथियाने का प्रयत्न नहीं किया। गान्धी-युग के त्यागमय स्वतन्त्रता के संग्रामों में जिन्ना अपने जीवन की विशिष्ट आदतों के कारण भाग न ले सकते थे अतः वे गान्धी की आँधी में 'जैसी बहै बयार पीठ पुनि वैसी कीजै' सिद्धान्त के अनुसार चुपचाप बैठे रहे, यहाँ तक कि कुछ वर्षों के लिए देश को छोड़कर विलायत चले गये, वहाँ वकालत करते रहे। सन् १९२० में धारासभाओं के चुनावों का कांग्रेस ने बहिष्कार किया था। जिन्ना साहब ने कांग्रेस छोड़ दी थी, पर वे भी उन चुनावों में खड़े नहीं हुए। हाँ, कांग्रेस में रहते हुए जो जिन्ना राष्ट्रीयता के सबसे बड़े पुजारियों और साम्प्रदायिकता के सबसे बड़े विरोधियों में एक थे उन्हीं जिन्ना ने

धीरे-धीरे समय-समय पर मुस्लिम-हितों की बातें कहना अवश्य प्रारम्भ किया। साइमन कमीशन के अवसर पर, नेहरू कमिटी की रिपोर्ट के समय, पहली गोलमेज परिषद् में तथा अन्य अनेक अवसरों पर उन्होंने जो कुछ कहा और किया उस इतिहास को देखने से पाकिस्तान की स्थापना जिस नींव पर हुई उस नींव की जुड़ाई किस प्रकार हो रही थी इसका पता लग जाता है। और अन्त में ज्योंही उन्होंने देखा कि मुसलमानों में साम्प्रदायिकता का जहर अच्छी तरह फैल गया है तथा मौलाना मुहम्मदअली की मृत्यु के पश्चात् मुसलमानों में कोई नेता नहीं रह गया है त्योंही अपने समस्त पुराने राष्ट्रीय सिद्धान्तों को ताक में रख एक कट्टर से कट्टर सम्प्रदायवादी नेता के रूप में वे फिर से राजनैतिक क्षेत्र में कूद पड़े। अब जिस प्रकार गान्धी जी ने पुरानी राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस को हाथ में ले अपने समस्त कार्यक्रम को कार्यरूप में परिणत किया था उसी प्रकार श्री जिन्ना ने मुस्लिम लीग को हाथ में ले अपना कार्य कार्यरूप में परिणत करना आरम्भ किया। अन्तर इतना अवश्य था, और यह बहुत बड़ा अन्तर था, कि गान्धी जी के कार्यक्रम में कुछ करने की बातें थीं और इस करनी में त्याग तथा तपस्या आवश्यक थी। जिन्ना के कार्यक्रम में करने को कुछ नहीं था, जो कुछ था कहने को था और इस कथनी में न त्याग की जरूरत थी, न तपस्या की; वरन् गान्धी जी की करनी ने देश की जनता से जो त्याग और तपस्या करायी थी और जिसके कारण विदेशी सत्ता कमजोर पड़ती जा रही थी उसका उपयोग जिन्ना को अपने कथनी के कार्यक्रम में होता जा रहा था। अंग्रेजों की नीति वर्षों से मुस्लिम-परस्त थी ही। हिन्दुओं और मुसलमानों को लड़ाते रहना तथा इस प्रकार अपना उल्लू सीधा करना, यह अंग्रेज वर्षों नहीं युगों से करते आ रहे थे। श्री जिन्ना ने अंग्रेजों से मिलकर भारत को कोई हानि पहुँचाई, यह कहना जिन्ना के साथ अन्याय करना है। उन्होंने यह कभी नहीं किया, पर अंग्रेजों की इस नीति का उन्होंने अपने उत्कर्ष के लिए पूरा-पूरा उपयोग अवश्य कर लिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन्ना के व्यक्तित्व में एक नहीं अनेक विशेषताएँ थीं। यदि जिन्ना के सदृश कुशल राजनीतिज्ञ मुसलमानों में न होता तो पाकिस्तान कदापि स्थापित न हो सकता था। व्यक्ति समय का निर्माण करता है या समय व्यक्ति का, इस विवाद को जब हम सामने रखते हैं तो जिन्ना का व्यक्तित्व विशेषताओं से रहित था और केवल समय ने जिन्ना को बना दिया, हम यह नहीं मान सकते, पर साथ ही एक विशिष्ट परिस्थिति के कारण ही जिन्ना का इतना अधिक उत्कर्ष हो सका, इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता। सन् '२० के पूर्व भी जिन्ना राजनैतिक क्षेत्र में मौजूद थे। यदि जिन्ना के व्यक्तित्व के कारण ही सब कुछ हुआ तो सन् '२० में उन्हें राजनैतिक क्षेत्र से अलग क्यों होना पड़ता? एक विशिष्ट परिस्थिति के उत्पन्न होने पर ही जिन्ना को सफलता मिल

सकी, इसे भी कौन ग्रस्वीकार कर सकता हूं ? व्यक्ति समय को बनाता है या समय व्यक्ति को इस विषय में मैं सदा ही एक बात कहा करता हूँ कि दोनों का ग्रन्योन्य सम्बन्ध है। श्री जिन्ना ने पाकिस्तान-निर्माण के समय को बनाने में सहायता पहुँचायी इसमें सन्देह नहीं, पर साथ ही उस समय ने जिन्ना को भी बनाया यह भी पूर्णतया सत्य है। हाँ, एक बात ग्रौर। प्रायः महापुरुष ग्रपने समय का निर्माण उन सिद्धान्तों पर करता है जिन सिद्धान्तों पर उसे विश्वास होता है। गान्धी जी ने भी यही किया था। पर श्री जिन्ना के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। जिन सिद्धान्तों पर पाकिस्तान का निर्माण हुग्रा वे सिद्धान्त जिन्ना को व्यक्तिगत रूप से कभी भी मान्य न थे। इस एक ग्राश्चर्यजनक बात का सच्चे इतिहास को सदा उल्लेख करना ही होगा। जो कुछ हो, करांची कांग्रेस के समय जिस पाकिस्तान की चर्चा तक कोई महत्त्व न रखती थी वही पाकिस्तान ग्राज स्थापित हो चुका था ग्रौर करांची उसकी राजधानी थी। क्या क्या हुग्रा था पाकिस्तान की स्थापना के समय ग्रौर उसके बाद भी कितने निर्दोषों का खून बहा था, कितनी सती-साध्वियों का धर्म नष्ट हुग्रा था, कितने मासूम बच्चे ककड़ियों ग्रौर भुट्टों के सदृश काट डाले गये थे। कितने लखपति ग्रौर करोड़पति कंगाल हो गये थे। कितने ऐसे थे कि उनके महल नष्ट हो ग्राज उन्हें झोंपड़ी भी नसीब न थी। कितने ऐसे थे जिनके यहाँ सैकड़ों नौकर नौकरी करते थे, पर ग्राज उन्हें ही नौकरी करनी पड़ रही थी। शरणार्थियों की विकट समस्या केवल देश-विभाजन का परिणाम थी। भारत के ग्रन्न-कष्ट में भी इस विभाजन का कम हाथ न था। ग्रौर जब मेरे मन में यह सब ग्राया तब मैं एक बात ग्रौर सोचने लगा—पाकिस्तान की स्थापना के ग्रनुकूल समय ग्रौर इस समय के महान् मुस्लिम नेता श्री जिन्ना के होने पर भी यदि गान्धी जी तथा कांग्रेस के ग्रन्य नेता देश का विभाजन स्वीकार न करते तो क्या कभी पाकिस्तान हो सकता था ? ग्रौर जब मैं यह सोचने लगा तब मेरे मन में उठा कि हमारे नेताग्रों ने देश को शीघ्र से शीघ्र स्वतन्त्र कराने ग्रथवा ग्रपने स्वयं के उत्कर्ष के लिए इस सम्बन्ध में कोई जल्दबाजी की कार्यवाई तो नहीं कर डाली थी ? पहले भी ऐसे प्रश्न एक नहीं हजारों बार मेरे मन में उठ चुके थे ग्रौर इन प्रश्नों का उत्तर न मुझे कभी मिला था ग्रौर न ग्राज ही मिल रहा है।

सन् १९३१ में मैं करांची जहाज से गया था ग्रतः करांची का हवाई ग्रड्डा मैंने पहली बार देखा। हवाई ग्रड्डे की बनावट दिल्ली के विलिंग्डन एरोड्रोम के सदृश थी, परन्तु दिल्ली के विलिंग्डन एरोड्रोम की ग्रपेक्षा वह ग्रधिक स्वच्छ, प्रकाशमय ग्रौर व्यवस्थित दिखायी दिया। लांज में प्रवेश करते ही कायदे ग्राजम का रंगीन चित्र दिख पड़ा। बड़ा सुन्दर चित्र था। यह चित्र

देखकर मुझे उस समय का स्मरण आया जब पहले-पहल सन् १९२३ में मैंने श्री जिन्ना को देखा था। मैं केन्द्रीय धारासभा का सदस्य सर्वप्रथम सन् १९२३ में हुआ था जब पंडित मोतीलाल जी नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेसवादी स्वराज्य पार्टी बनाकर धारा-सभाओं में गये थे। मेरी अवस्था उस समय केवल २७ वर्ष की थी और उस समय केन्द्रीय धारासभा के सदस्यों में मैं सबसे अल्पवयस्क था। तब से लेकर अब तक ३० वर्षों में जब-जब कांग्रेसवादी धारासभाओं में रहे मैं सदा केन्द्र में ही रहा। सन् १९२३ से भारतीय संविधान सभा के निर्माण तक श्री जिन्ना भी केन्द्रीय धारासभा में ही रहे थे और उनका और मेरा थोड़ा-बहुत व्यक्तिगत सम्बन्ध भी रहा था। श्री जिन्ना के उस चित्र को देखकर उनसे सम्बन्ध रखने वाली कितनी बातें मुझे याद आयीं। क़ायदे आज़म के इस चित्र के सिवा उस लांज की जिस अन्य वस्तु ने मेरा ध्यान आकर्षित किया वह थी लांज में काश्मीर के चित्रों का प्रदर्शन। श्री जिन्ना के चित्र के अतिरिक्त लांज के सारे चित्र काश्मीर के दृश्यों के ही थे। काश्मीर के दृश्यों के इतने अधिक चित्रों की वजह से मेरे मन में उठा कि क्या केवल काश्मीर का प्राकृतिक सौन्दर्य ही इसका कारण है, और यदि ऐसा है तो क्या पाकिस्तान में प्राकृतिक सौन्दर्य के और कोई ऐसे स्थान हैं ही नहीं जिनके चित्र वहाँ लगाये जायें ? मुझे जान पड़ा कि काश्मीर का प्राकृतिक सौन्दर्य ही इसका एक मात्र कारण नहीं है। मुझे तो यह सन्देह हुआ कि पाकिस्तान की सरकार इसे स्वयं याद रखने तथा अन्यों को याद दिलाने का लगातार प्रयत्न करना चाहती है कि काश्मीर पाकिस्तान का है, भारत का नहीं।

हम लोगों ने सुना था कि भारतीयों के साथ पाकिस्तान के लोगों का व्यवहार अच्छा नहीं होता। हमें उपाहार-गृह में ही इसका अनुभव हो गया। बी. ओ. ए. सी. के इस हवाई जहाज में मेरे दामाद, मेरे पुत्र और मेरे इन तीन यात्रियों के अतिरिक्त अन्य कोई भारतीय यात्री नहीं था। अन्य यात्रियों को खाने-पीने की जो सामग्री दी गयी, वह हमें नहीं, साथ ही हमारे प्रति खानसामों के व्यवहार में भी शिष्टता न थी।

लगभग ११ बजे रात्रि को हवाई जहाज ने करांची का हवाई अड्डा छोड़ दिया। जब करांची से हवाई जहाज रवाना हुआ तब भारत और पाकिस्तान के बीच की वर्तमान समस्याओं के सम्बन्ध में जगमोहनदास तथा घनश्यामदास से और मुझ से बातचीत चल पड़ी। भारत और पाकिस्तान के बीच मतभेद वाले बड़े तीन ही तो मामले हैं—पहला काश्मीर का; दूसरा एक देश छोड़कर दूसरे देश जा बसने वालों की सम्पत्ति का; और तीसरा नहरी पानी का।

जहाँ तक काश्मीर का प्रश्न है वैधानिक रूप में काश्मीर पूरी तरह भारत का

अंग हो चुका है। अन्य किसी राज्य की तरह ही काश्मीर के नरेश ने भारतीय संघ में शामिल होने के दस्तावेज पर दस्तखत किये थे और आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा के लिए भारत से तुरन्त सैनिक सहायता की माँग की थी। सहायता की दुहाई देने पर तो नैतिक दृष्टि से और भारत संघ का अंग बन जाने के नाते व्यवहारिक रूप से भारत काश्मीर की सहायता करने को बाध्य था। पाकिस्तान की शह पाये हुए आक्रमणकारियों ने काश्मीर में कैसा तहलका मचा दिया था और उसके कारण कैसी त्राहि-त्राहि मच गयी थी, यह सर्वविदित है। भारतीय सेना ने न केवल काश्मीर को आक्रमणकारियों के खूँखार पंजों से छुटाया बल्कि वहाँ पुनर्निर्माण का भी काम किया। काश्मीर की जैसे भी हो सका भारत ने सहायता की और इसके लिए काश्मीर सरकार ही नहीं काश्मीर की जनता भी भारत का आभार मानती है।

आक्रमणकारियों के पीछे पाकिस्तान सरकार का हाथ था यह तो संयुक्त राष्ट्र में भी स्पष्ट हो चुका है और इसीलिए भारत ने बराबर इस बात पर जोर दिया कि पाकिस्तान को काश्मीर में आक्रमण करने वाला घोषित किया जाय किन्तु एंग्लो-अमेरिकी कूटनीति के कारण वह सम्भव नहीं हुआ। यही नहीं एक सीधी-सादी बात काफी उलझ गयी और आज दिन तक भी सुलझ न सकी।

निष्पक्ष होकर भारत और पाकिस्तान की तुलना करने पर तो यही दिखायी देता है कि पाकिस्तान के मन में ही कमजोरी है। काश्मीर को बल-प्रयोग द्वारा हड़पने का प्रयत्न भारत ने नहीं पाकिस्तान ने किया और बल प्रयोग कमजोरी का पहला लक्षण है। जब देशी रियासतों के नरेशों को स्पष्ट यह अधिकार दे दिया गया था कि वे जिस ओर चाहें झुकें और किसी भी भूखंड के साथ मिल जायँ तो पाकिस्तान को बल प्रयोग करने की क्या आवश्यकता थी ? खैर, पाकिस्तान की ओर से यह हुआ और भारत की ओर से काश्मीर-नरेश की प्रार्थना स्वीकार कर ली गयी तथा काश्मीर वैधानिक रूप से भारत का अंग बन गया तो भी हमारे लोकतन्त्र के प्रेमी नेता जवाहरलाल जी ने यही कहा कि काश्मीर के भविष्य का निपटारा करने का अन्तिम अधिकार वहाँ की जनता को होगा एवं जैसे ही उचित अवसर आयगा जनमत संग्रह किया जायगा। इसे हम अपने प्रधान मन्त्री की स्वाभाविक उदारता के अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं?

काश्मीर की समस्या अब पाँच वर्ष पुरानी हो चुकी है। भारत की मूल शिकायत यह थी कि पाकिस्तान काश्मीर में आक्रमणकारी है और उसे आक्रमणकारी घोषित किया जाय। संयुक्त राष्ट्र में ब्रिटेन और अमेरिका की कूटनीति के कारण यह प्रश्न सदा ही दबा दिया गया, क्योंकि फिर यह सवाल उठता कि यदि पाकिस्तान आक्रमणकारी है तो क्यों न उसके विरुद्ध भी वैसी कार्रवाई की जाय जैसी उत्तर

कोरिया के विरुद्ध की गयी है।

भारत और पाकिस्तान के साथ संयुक्त राष्ट्र के प्रतिनिधि काश्मीर-समस्या को लेकर जो कुछ बातचीत करते रहे हैं वह १३ अगस्त, १९४८ और ६ जनवरी, १९४४ के प्रस्तावों के आधार पर होती रही है। यह सुझाव संयुक्त राष्ट्र के भारत-पाकिस्तान कमीशन की ओर से रखे गये थे और संयुक्त राष्ट्र द्वारा स्वीकृत हैं। इसमें काश्मीर की समस्या को तीन चरण में हल करने की व्यवस्था है—युद्ध-विराम, अस्थायी-सन्धि और जनमत-संग्रह।

जनरल निमिट्ज़ जनमत-संग्रह के प्रबन्ध अधिकारी नियुक्त भी किये जा चुके हैं। इधर काश्मीर में नयी वैधानिक स्थिति पैदा हो गयी है। वहाँ विधान सभा की स्थापना हो चुकी है और राज्य के लिए अलग संविधान बनाया जा रहा है। अब प्रश्न यह है कि जनता की इच्छा को व्यक्त करने वाली विधान सभा की स्थापना के बाद सारी स्थिति क्या होगी?

उधर काफी समय से डॉक्टर ग्राहम बड़े धैर्य के साथ भारत और पाकिस्तान के साथ काश्मीर की उलझन के सम्बन्ध में बातचीत करते रहे हैं और वे इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि काश्मीर में भारत और पाकिस्तान की स्थिति में मूल अन्तर यह है कि भारत तो यह कहता है कि राज्य की सुरक्षा का उस पर विशेष उत्तरदायित्व है और पाकिस्तान इस बात पर जोर देता है कि वहाँ निष्पक्ष और न्यायपूर्ण जनमत-संग्रह होना चाहिए इससे सम्बद्ध काश्मीर में सैनिक रखने के अधिकार पर भी मतभेद है। भारत कहता है कि काश्मीर राज्य की सुरक्षा के लिए बाकी सेना हटा लेने पर भी भारत को कम से कम इक्कीस हजार सैनिक रखने का अधिकार होना चाहिए और उधर पाकिस्तान अधीन इलाके में चार हजार असैनिक हथियारबन्द जवान रहने चाहिएँ। पाकिस्तान भारत के लिए अठारह हजार सैनिक तो स्वीकार करता है, लेकिन इस बात की माँग करता है कि पाकिस्तान अधीन काश्मीर में ६ हजार सैनिक रहने दिये जायँ।

यह गुत्थी ऐसी है जो कि आसानी से सुलझने वाली नहीं है और संयुक्त राष्ट्र में एंग्लो-अमेरिकी गुट का रवैया ऐसा है कि कभी तो एक पलड़े को झुका दिया जाता है और कभी दूसरे को।

भारत और पाकिस्तान के मतभेद की दूसरी समस्या भारत छोड़कर पाकिस्तान अथवा पाकिस्तान छोड़कर भारत जा बसने वालों की सम्पत्ति की है। स्वतन्त्रता के बाद जब से यह समस्या उठी है तब से आज तक सुलझाई नहीं जा सकी है। कहना चाहिए पाकिस्तान सरकार का रवैया ही अधिकांश रूप में इसके लिए जिम्मेदार है। भारत सरकार ने कुछ सुझाव रखा है कि यह समस्या सरकारी

स्तर पर निपटायी जाय अर्थात् दोनों देशों की सरकारें इस काम को अपने हाथ में ले लें। पाकिस्तान का कहना है कि सरकार के लिए इस समस्या को सम्हालना बड़ा कठिन है इसलिए अलग-अलग बे-घर लोगों पर ही यह जिम्मेदारी रहे कि वे जाकर अपनी सम्पत्ति का निपटारा कर आयें। पाकिस्तान भारत के सुझाव को क्यों नहीं मानता इसका कारण यह है, कि पाकिस्तान के विचार में उसे मान लेने से पाकिस्तान को नुकसान रहेगा।

अब जरा सम्पत्ति की समस्या की ओर गौर कीजिए। पाकिस्तान से आने वाले हिन्दू-सिख गाँवों में कोई ६० लाख अथवा १ करोड़ एकड़ जमीन छोड़ आये हैं, जबकि भारत से जाने वाले मुसलमान ५० लाख से कुछ ही अधिक। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान में छोड़ी गयी जमीन बड़ी उपजाऊ थी और सिंचाई के लिए नहरों का जैसा प्रबन्ध था वैसा संसार में बहुत कम जगहों पर होगा। भारत से जाने वाले मुसलमानों के द्वारा उतनी अच्छी जमीन नहीं छोड़ी गयी।

जहाँ तक शहरी सम्पत्ति का सम्बन्ध है, हिन्दू और सिख पाकिस्तान में ४ लाख ३६ हजार से अधिक मकान, २२ हजार मकानों के प्लाट और ११ हजार कारखाने छोड़ आये हैं जबकि मुसलमान भारत में कुल २ लाख ८७ हजार मकान, ६ हजार ६ सौ मकानों के प्लाट और १ हजार ७८४ कारखाने छोड़ गये हैं।

स्पष्ट है कि पाकिस्तान में जो सम्पत्ति छूट गयी है उसका मूल्य भारत में छोड़ी गयी सम्पत्ति से कहीं ज्यादा है। यही कारण है कि पाकिस्तान भारत के सुझाव को नहीं मानता। भारत का कहना है कि दोनों सरकारें विस्थापितों को मुआवजा देने के लिए जिम्मेदार हों। दोनों देशों के प्रतिनिधियों का एक कमीशन मिलकर दोनों में छोड़ी गयी सम्पत्ति का मूल्य आंके और जितनी रकम ज्यादा आये वह दूसरे देश को चुका दी जाय। फिर मुआवजे का सारा काम अपने-अपने देश की सरकार सम्हालें। इसके विपरीत पाकिस्तान यह कहता है कि बे-घर लोग खुद जाकर सम्पत्ति का निपटारा करें। इससे एक तो उन्हें बेहद कष्ट होगा, उनका खर्च भी होगा और उनकी सम्पत्ति का मूल्य उठेगा नहीं क्योंकि वहाँ के खरीददार यह समझ बैठेंगे कि इसे तो आखिर सम्पत्ति को किसी तरह बेबाक करना ही है।

भारत और पाकिस्तान की तीसरी उलझन नहरी पानी की है। पाकिस्तान में बहने वाली कुछ नहरों के हेड वर्क भारत में हैं। बंटवारे के बाद पानी के सम्बन्ध में कठिनाई उपस्थित हुई। पाकिस्तान चाहता है कि उसे पानी बराबर मिलता रहे और यह उसका अधिकार भी माना जाय, पर भारत को अपने विकास के लिए भी तो इस पानी की आवश्यकता है इसलिए उसने कहा कि पाकिस्तान एक निश्चित समय के भीतर अपने लिए पानी का प्रबन्ध कर ले।

जब इस समस्या पर दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने विचार किया तो भारत ने सुझाव रखा कि विशेषज्ञ स्थिति की पड़ताल करें। परिणाम यह हुआ कि अमेरिका के एटम शक्ति कमीशन के और टैनसी वैली अथारिटी के पिछले प्रधान श्री डेविड लिलियनथल ने जाँच के बाद सिफारिश की कि जिस पानी की पाकिस्तान को आवश्यकता है उसकी भारत को भी। इसलिए उन्होंने सुझाव रखा कि जिस प्रकार अमेरिका में सात राज्यों ने मिलकर इस तरह की योजना बना रखी है उसी तरह भारत और पाकिस्तान सिन्धु नदी के मैदान की सभी नदियों से लाभ उठायें और इसमें विश्व बैंक से सहायता ली जाय। इसके बाद भी समस्या अभी विचाराधीन ही बनी हुई है और किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँचा जा सका है।

पाकिस्तान का पुराना मन्त्रिमंडल बदलकर श्री मुहम्मद अली के वहाँ के प्रधान मन्त्री होने के बाद पाकिस्तान और भारत का सम्बन्ध कुछ सुधरता हुआ दिख रहा है। देखें, आगे क्या होता है। पर इतना तो निश्चित ही है कि भारत की वैदेशिक नीति सबसे मैत्री रखने की है। फिर पाकिस्तान तो हमारा पड़ौसी है। हम पाकिस्तान से किसी प्रकार का झगड़ा नहीं चाहते और जो सवाल झगड़े के हैं उन्हें हल करना चाहते हैं।

बहुत रात गये तक हमारी ये बातें होती रहीं। बातें करते-करते ही हमें नींद आने लगी। बैठे-बैठे ही एरोप्लेन में नींद लेने का अभ्यास मुझे न्यूजीलेंड की यात्रा से हो गया था और जगमोहनदास तो हर हालत में सो सकते हैं, घनश्यामदास का भी शायद यही हाल है। जब मेरी नींद खुली तब पो फट रही थी और मैंने देखा कि वायुयान बसरा में उतर रहा है। थोड़ी देर में बसरा की भूमि को एरोप्लेन ने स्पर्श किया। जब हम एरोप्लेन से उतरे तब जगमोहनदास और घनश्यामदास से मुझे मालूम हुआ कि वे लोग अच्छी तरह सो लिये हैं।

बसरा हवाई अड्डा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। दक्षिणी-पूर्वी एशिया और यूरोप के बीच चलने वाले सभी हवाई जहाज यहाँ से गुजरते हैं। यहाँ पर वे विश्राम करते हैं और पैट्रोल आदि लेते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय विमान परिवहन के लिए तो यह समूचे मध्यपूर्व का केन्द्र-बिन्दु है। बसरा का महत्त्व इसलिए भी और अधिक है कि वह बन्दरगाह भी है। इस तरह आज के संसार में बसरा का महत्त्व ईराक की राजधानी बगदाद से भी ज्यादा है।

यहाँ पर अरबों के सम्बन्ध में कुछ चर्चा करना अनुचित न होगा।

इस समय अरबों की संख्या पाँच-छः करोड़ होगी और अरब देश में रहने वाले अरबों की संख्या-लगभग सवा करोड़ है। अरब देश में रहने वाले अरब ही

शुद्ध जाति के हैं, अन्य तो मिश्रित हो गये हैं। ये लोग मिस्र, लीबिया, ट्यूनीशिया, एल्जीरिया और मोराको में काफी बड़ी संख्या में पाये जाते हैं।

अरब इस्लाम धर्म के मानने वाले हैं जिसके प्रवर्तक मोहम्मद साहब थे। मोहम्मद साहब के जन्म के पूर्व अरब में सेमेटिक जाति के लोग रहते थे। रेगिस्तानी प्रदेश के लोग घूमने फिरने वाले होते थे और घाटियों में बसे हुए लोग खेती और व्यापार करते थे। मक्का और मदीना व्यापारिक और सांस्कृतिक विकास के केन्द्र थे।

मोहम्मद साहब का जन्म उनके पिता अब्दुल्ला की मृत्यु के बाद मक्का में हुआ था। जब उनकी आयु ६ वर्ष की हुई तो उनकी माता भी चल बसीं। मोहम्मद साहब का जन्म-काल ५७० ईसवी माना जाता है। ६१२ ईसवी में उन्होंने अपने दर्शन का प्रतिपादन किया। उन्होंने—अल्लाह, कयामत, जकाव (दान) नमाज़ और इस्लाम का प्रचार किया। दो जुलाई ६२२ ई० को लोगों के सताने पर वे और उनके साथी मदीना चले गये।

मुस्लिम धर्म के मूल सिद्धान्त हैं—अल्लाह और उसके नबी में विश्वास करो (मोहम्मद साहब को अन्तिम नबी माना जाता है); कुरान में यकीन रखो; कयामत का दिन याद रखो; किस्मत का भरोसा करो, क्योंकि अल्लाह ने सबकी किस्मतें पहले से लिख दी हैं।

मुसलमान के पाँच प्रधान कर्तव्य माने गये हैं—हर रोज़ पाँच नमाज़ पढ़ो; रमजान में रोजे रखो; जकात अर्थात् दान करो; मक्का की हज करो और धर्म के लिए मर मिटो।

'जो मरेगा बहिश्त जायेगा, जो जीवित रहेगा वह राज करेगा'—इस नारे को लेकर मुसलमान धरती के कोने-कोने में छा गये। मिस्र, स्पेन, यूनान, अफ़गानिस्तान, भारत, चीन, इण्डोचाइना आदि सर्वत्र इस्लाम का बोलबाला हो गया।

मोहम्मद साहब की मृत्यु के सौ वर्ष पश्चात् उनके मतानुयायियों का एक इतने बड़े साम्राज्य पर आधिपत्य हो गया था जो कि बिस्के की खाड़ी से सिन्धु तक, चीन तक और अराल सागर से नील नदी के उद्गम-स्थल तक फैला हुआ था। यह साम्राज्य चरमोत्कर्ष तक पहुँचे हुए रोमन साम्राज्य से भी बड़ा और अधिक प्रभावशाली था। इस समय इस्लाम मत के अनुयायियों की संख्या तीस करोड़ है। बिभिन्न जातियों के लोगों ने इस धर्म को अंगीकार कर रखा है। संसार में हर आठ व्यक्तियों में से एक मुसलमान है। जिस प्रकार किसी समय यह कहा जाता था कि ब्रिटिश साम्राज्य में कभी सूरज नहीं डूबता उसी प्रकार कहा जाता है कि दिन और रात का ऐसा कोई पहर नहीं जाता जब संसार में कहीं न कहीं नमाज़ न पढ़ी जा रही हो।

एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करने से भी अधिक अरबों ने एक स्थायी संस्कृति की नींव डाली। नील नदी के देश में टिगिस और यूफ्रेटीज के तट पर जिस सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ उसने यूनानी और रोमन सभ्यता से बहुत-कुछ लिया और फिर मध्य युगीन यूरोप को ऐसा बहुत-कुछ दिया जिससे आधुनिक युग के समारम्भ में योग प्राप्त हुआ। मध्य युग के आरम्भकाल में मानव-विकास के लिए जो कुछ अरबों ने किया अन्य किसी जाति ने नहीं किया। आज भी यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि मोराको से लेकर इण्डोनीसिया तक इस्लाम एक जीवित शक्ति है। इसी तरह अरबी भाषा एक जीवित भाषा है जिसका प्रयोग करने वालों की संख्या पांच करोड़ है। मध्य युग में कई शताब्दियों तक अरबी भाषा मानव-ज्ञान, संस्कृति और प्रगति की भाषा रही। नवीं और बारहवीं शताब्दी में अरबी भाषा में दर्शन, चिकित्सा, इतिहास, भूगोल और खगोल शास्त्र आदि के उत्तम ग्रन्थों की रचना की गयी। पश्चिम यूरोप की भाषाओं पर अरबी अक्षरमाला का प्रभाव आज भी स्पष्ट है। लेकिन अक्षरमाला के पश्चात् संसार में आज भी अरबी अक्षरमाला का ही सबसे अधिक प्रयोग होता है।

आधुनिक युग में अरब राष्ट्रीयता का विकास १८४७ में सीरिया में हुआ। फिर तुर्कों के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ हुआ। १९१४-१८ की लड़ाई में अरबों ने ब्रिटेन का साथ दिया और बदले में स्वतन्त्रता प्राप्त की। युद्ध के पश्चात् जो कुछ हुआ उससे अरब सन्तुष्ट नहीं हुए। बाद में अरबों का आन्दोलन यहूदियों के विरुद्ध जोर पकड़ गया। यहूदियों और उनके राज्य इसरायल का विरोध करने के लिए अरब लीग की स्थापना की गयी और यद्यपि इसरायल राज्य बन चुका है फिर भी अरबों का वैमनस्य भाव तो आज भी बना ही हुआ है।

३

उस पुरातन-भूमि में जहाँ कभी पानी नहीं बरसता

हमारा वायुयान जब काहरा पहुँचा तब काहरा के ६ बजे प्रातःकाल का समय था, परन्तु भारत के इस समय १२।। बज गये थे अर्थात् एक ही रात में ३।। घण्टे का अन्तर पड़ गया था। मुझे यह अन्तर देखकर न्यूजीलैंड की यात्रा के समय का अन्तर याद आया। उस यात्रा में पूर्व की ओर जाने के कारण समय आगे चलता था और इस यात्रा में पश्चिम की ओर जाने के कारण पीछे। तो जो यह कहा जाता है कि चाहे दिन बड़ा हो चाहे रात पर २४ घण्टे के दिन तथा रात में न एक क्षण बढ़ता, और न घटता, है यह चाहे एक स्थान के लिए सर्वथा सत्य हो, पर यदि मनुष्य एक स्थान से किसी दूसरे सुदूर स्थान को जावे तो उसके लिए चौबीस घण्टे का दिन और रात घण्टों बढ़ या घट सकता है। दिल्ली से काहरा की दूरी २,८६६ मील है और दिल्ली से यहाँ एरोप्लेन को पहुँचने मे १५।। घण्टे लगे थे।

काहरा की धरती पर पैर रखते ही हमने मिश्र देश की उस पुरातन-भूमि को प्रणाम किया जहाँ कभी पानी नहीं बरसता, पर जहाँ मानव के कदाचित् सबसे पहले संस्कृति और सभ्यता का प्रसार किया था।

मिश्र की सभ्यता का उदय ईसा के ७ हज़ार वर्ष पूर्व हुआ था। अब तक मानव सभ्यता का यही प्रारम्भ माना जाता है यद्यपि मेरा इससे मतभेद है; मैं तो मानव सभ्यता का प्रारंभ इससे बहुत पहले मानता हूँ खैर, अभी तक जितने अनुसन्धान हुए हैं उनसे मिश्र की सभ्यता ही सबसे पुरातन है, यही प्रमाणित हुआ है। वर्ष गणना, अंकगणित और लेखन के लिए अक्षर सबसे पहले मिश्र में ही ईजाद हुए। यहीं सर्वप्रथम खेती और सिंचाई का आरम्भ हुआ। मांसाहार के साथ मनुष्य ने आदिकाल में कुछ ऐसी घास के पौधे ढूँढे थे जिनमें अनाज पैदा होता था। इन्हीं पौधों की खेती मनुष्य हाथ से जमीन खोदकर किया करता था। मिश्र में सर्वप्रथम उसने बैलों की सहायता से खेती करना सीखा। हाथ से जमीन खोदना तो पहले से प्रचलित हो चुका था किन्तु पशुओं की शक्ति का उपयोग मानव कार्यों के लिए करना सभ्यता के प्रशस्त रथ पर एक बड़ा महत्त्वपूर्ण और लम्बा कदम है। मिश्र में यह कदम सबसे पहले उठाया गया और यहीं से मिश्र की सभ्यता का प्रारम्भ हुआ। मनुष्य की भौतिक शक्तियों की एक

सीमा है। भौतिक शक्ति में मानव कई पशुओं से पीछे है। अधिकतर पशुओं में मानव से कहीं अधिक बल रहता है। मनुष्य ने सृष्टि पर अपना साम्राज्य ज्ञान के कारण स्थापित किया है। बुद्धि और कौशल से पशु या अन्य शक्ति के स्रोतों को अपने उपयोग में लाकर ही तो मानव ने सभ्यता और संस्कृति निर्मित की है। वह दिन मानव-इतिहास के सबसे महत्त्वपूर्ण दिनों में से एक है जिस दिन मिश्र के आदिम मानव ने बैलों की शक्ति के सहारे नील नदी के कछार में सर्वप्रथम खेती प्रारम्भ की थी। इस खेती के सहारे जिस अतिरिक्त धन का उपार्जन हुआ था उसी से मिश्र की प्राचीन सभ्यता निर्मित हुई। मिश्र देश का मृत्यु का देवता 'सेरापीज़' बैल के आकार का है। बैलों के महत्त्व के कारण गाय को मिश्र देश में पवित्र माना गया। कहा जाता है कि संसार में मिश्र में ही गाय को सर्वप्रथम पूजनीय समझा गया। यहाँ की पूजनीय गाय की मूर्ति का नाम है 'एपिस'।

यूनानी ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटस (Herodotus) ने लिखा है—"मिश्र के निवासी एक विशेष जलवायु में, एक ऐसी नदी के किनारे, रहते हैं जिसके सदृश कोई नदी नहीं है और उन्होंने ऐसे रीति-रिवाज अपनाये हैं जो अन्य मनुष्यों के रीति-रिवाजों से लगभग सर्वथा भिन्न हैं।" मिश्र की प्राचीन संस्कृति का स्मरण करते समय हमें मिश्र देश की विशिष्ट बनावट और जलवायु का ध्यान आ जाता है, जिसके कारण यह सांस्कृतिक विशेषता थी। भूमध्यसागर के दक्षिणी तट पर स्थित उत्तर-पूर्व अफ्रिका का यह देश कोई बहुत बड़ा देश नहीं है, किन्तु सागर,कड़ी चट्टानें, रेत के विशाल मैदान, नीरव गगन और सर्वगुण सम्पन्न जीवनदायिनी शक्ति रूपा नील नदी नेइस देश में कुछ अपूर्व विशेषता ला दी है जोअन्यत्र दुर्लभ है। समूचे मिश्र देश का क्षेत्रफल है ३,८३,००० वर्ग मील और आबादी है १,६०,३८,५२६। सभ्यता के उदय के समय की आबादी की तो कल्पना ही की जा सकती है किन्तु इतिहासकारों ने उसे पचास लाख के लगभग माना है। ५० लाख की आबादी का यह देश एक रेत का मैदान मात्र है किन्तु इसी में मिश्रियों के विश्वास के अनुसार हापी (Haapi) नील नदी के देवता ने नील सरिता के रूप में एक विचित्र विशाल उपत्यका निर्मित की है जो चारों ओर की ऊजड़ता में एक अद्भुत उपजाऊ कछार है। इस कछार को बड़े-बड़े मरुस्थल पूर्व और दक्षिण से एवं भूमध्यसागर उत्तर की ओर से मानव-समाज से अलग करते हैं। मिश्र देश के दो प्रधान भाग हैं—उत्तरी मिश्र और दक्षिणी मिश्र। अफ्रीका के अन्तस्तल में स्थित अलबर्ट और विक्टोरिया न्यानजा नामक विशाल सरोवरों से नील निकली है। मैंने अपनी १९३७-१९३८ की अफ्रीका यात्रा में नील के इस उद्गम-स्थल को देखा था। भूमध्यसागर तक लगभग चार हजार मील बहने वाली नील नदी संसार की सबसे बड़ी सरिताओं में से एक है। नील नदी की लम्बाई ३,६०० मील है। संसार की

नदियों में इसका तीसरा नम्बर है। अनेक स्थलों पर इसका पाट बहुत चौड़ा और गहराई भी बहुत अधिक है। मैंने अफ्रीका की यात्रा के समय कई स्थलों पर इस नदी में दीर्घकाय दरयाई घोड़े (हिपोपुटेमस) देखे थे, वे हमें काहरा में, जहाँ नील नदी बहती है, नहीं दिखायी दिये।

इस नदी के अन्तिम ६७५ मील असवान नगर के पास स्थित पहले केटेरेक्ट से लेकर भूमध्यसागर तक मिश्र देश है। असवान से डेल्टा के प्रारम्भ तक के ५०० मील तक दक्षिणी मिश्र और दक्षिणी मिश्र की सतह से ३०० फुट नीचे डेल्टा के प्रारम्भ से भूमध्यसागर तक उत्तरी मिश्र। मिश्र देश नील नदी है, मिश्र नील का वरदान है। पुराने इतिहासकारों से लेकर आज तक भूगोल विशेषज्ञ सभी यह मानते हैं। मिश्र का ४/५ भाग आज भी रेगिस्तान है। केवल पंचम भाग आबाद है और वही नील नदी की उपत्यका है। ग्रीष्म के मई महीने में नील नदी में सबसे कम पानी रहता है। जून माह से वार्षिक पूर प्रारम्भ हो जाते हैं। सफेद नील और नीली नील अबीसीनिया की उच्चतम भूमि से वर्षा का पानी एकत्र कर नील में ले आती है और साथ ही अबीसीनिया के सघन बनों के सड़े हुए झाड़-झंखाड़ों का खाद भी। यही सब मिश्र स्थित उपत्यका में फैल जाता है। इसके साथ ही पोटाश और खेती के लिए लाभ-दायक अन्य खनिज-पदार्थ भी अबीसीनिया और उसके आसपास के पर्वतों से बहकर नील नदी के जरिये मिश्र पहुँच जाते हैं। नील नदी की उपत्यका में इस प्रकार स्वाभाविक ढंग से अच्छी से अच्छी सिंचाई हो जाती है और वहाँ की फसलों को अच्छे से अच्छा खाद मिल जाता है। इसी खाद और सिंचाई के कारण मिश्र में वर्ष में तीन-तीन चार-चार फसलें होती हैं। इसीलिए प्राचीन मिश्रवासियों ने नदी और उसके द्वारा लायी हुई काली मिट्टी की कल्पना अपने सबसे अधिक प्रिय देवता ओसरिस (Osiris) के रूप में की थी।

उत्तरी और दक्षिणी मिश्र एक दूसरे के पूरक हैं। दक्षिणी मिश्र छोटा और चौड़ा है, उत्तरी मिश्र लम्बा और सकरा। उत्तरी मिश्र में हरियाली एक छोटी-सी पट्टी के रूप में है, शेष हिस्सा लाल रेत और चट्टानों से पूर्ण है। दक्षिणी भाग में उपत्यका की चौड़ाई बहुत अधिक है। यदि उत्तर की उपत्यका कहीं-कहीं केवल १२ मील चौड़ी है तो उसका दक्षिणी भाग किसी-किसी स्थान पर ६० मील से भी अधिक चौड़ा है। उत्तरी और दक्षिणी मिश्र में सम्मिलित रूप से लगभग ऐसी प्रत्येक वस्तु उपलब्ध है जिससे सभ्यता बनती है। प्राकृतिक साधनों से परिपूर्ण सुवर्ण की खदानों से घिरी हुई मिश्र की इसी विलक्षण भूमि पर सर्वप्रथम राजनीतिक संगठन की आव-श्यकता पड़ी थी और यहीं उत्तरी और दक्षिणी मिश्र पर एक साथ शासन करने तथा नील नदी की देन का उचित और पूर्ण उपयोग करने के लिए राजनैतिक सत्ता

का प्रादुर्भाव हुआ था। इस सत्ता की स्थापना के लिए एक ऐसे स्थल की खोज थी जहाँ से पूरे मिश्र पर शासन किया जा सके और मेम्फिस, वर्तमान काहिरा नगर के निकटवर्ती स्थान को सर्वप्रथम इस महान् कार्य के लिए चुना गया। चलते पहिये से विहीन उस युग में जहाँ एक जगह से दूसरी जगह जाना, सामान ले जाना, एक सबसे बड़ी समस्या थी, सर्वश्रेष्ठ आवागमन मार्ग नील के तट पर स्थित मेम्फिस नगर का एक अपना महत्त्व था जो वर्तमान काहिरा को भी बहुत दूर तक विरासत में मिला है।

काहिरा में उतरते ही मिश्र के रेगिस्तानी तथा आबाद हिस्से स्पष्ट दीख जाते हैं; दोनों एक दूसरे से मिले हुए; रेगिस्तानी भाग सूर्य की किरणों में चाँदी के चूरे के सदृश चमकती हुई बालूका और आबाद हिस्सा नाना प्रकार के वृक्ष, लता और गुल्मों से हरा कच्छ। आबाद हिस्से मे उल्लेखनीय वस्तु होती है कपास। मिश्र की रुई का तार जितना लम्बा होता है, संसार के किसी देश की रुई का नहीं और इसका कारण मिश्र देश की भूमि के अतिरिक्त कदाचित् उस भूमि पर कभी पानी न बरसना है। यह अनावृष्टि जहाँ एक ओर मिश्र के लिए शाप सिद्ध हुई वहाँ दूसरी ओर वर भी; क्योंकि मिश्र की सारी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति केवल उसकी रुई से होती है। सारे संसार के देशों मे इस रुई की माँग रहती है। पतला सूती कपड़ा इस रुई के मिश्रण के बिना बन ही नहीं सकता। मिश्र में इस रुई से बहुत कम कपड़ा बनता है और अधिकतर कपास बाहर भेजा जाता है। नील नदी की उपत्यकाओं में उसी के नीर की सिंचाई से वह कपास उत्पन्न होता है, जिससे यह रुई बनती है। मिश्र में जिन दिनों कपास के बोंडे तैयार हो जाते हैं मिश्रियों का काम और चहल-पहल बढ़ जाती है। कपास चुनने के लिए कई स्त्रियां और बच्चे खेतों में फैल जाते हैं। सारी की सारी कपास सिकन्दरिया से ही बाहर भेजी जाती है। यह शहर काहिरा नगर का आधा होगा लेकिन यह किसी पूर्वी देश का नगर न मालूम होकर यूरोप या अमेरिका का-सा शहर मालूम होता है।

मिश्र देश में वायुयान से उतरते ही मिश्र देश की भूमि और नील नदी के प्रवाह के अतिरिक्त वहाँ के निवासियों की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। मिश्र के निवासियों का वर्ण भारत के निवासियों के सदृश ही गेहुँआ है। यूरोपीय पोशाक के अतिरिक्त आजकल मिश्र के पुरुषों की पोशाक है गले से पैरों की एड़ी तक धारीदार कपड़े का लम्बा चोगा और सिर पर लाल रंग की फुंदने वाली तुर्की टोपी। यूरोपीय ढंग की पोशाक पहनते हैं उनमें भी अधिकांश सिर पर तो तुर्की टोपी ही लगाते हैं। स्त्रियों में भी यूरोपीय तरीके की पोशाक का बहुत प्रचार दिखा। स्त्रियों की मिश्र की पोशाक एक काले रंग का बुर्का है, पर यह बुर्का रहता है गले से पैर तक, चेहरा इस बुर्के से नहीं ढका जाता। मिश्र की स्त्रियों की पोशाक सौन्दर्य से सर्वथा

रहित जान पड़ती है इसीलिए वहाँ की स्त्रियों ने कदाचित् यूरोपीय पोशाक अपना ली है। भारत में पुरुषों में तो यूरोपीय पोशाक का काफी प्रचार हो गया है, पर स्त्रियों में एंग्लो-इंडियनों तथा कुछ पारसियों को छोड़ शायद ही कोई महिला यूरोपीय ढंग के कपड़े पहनती हो; विदेशों में भी भारतीय रमणियाँ अपने देश की पोशाक पहनती हैं। इसका कारण कदाचित् साड़ी का अनिर्वचनीय सौन्दर्य है। स्त्रियों की इतनी सुन्दर पोशाक शायद संसार के किसी देश में नहीं है।

मिश्र देश के निवासियों के सम्बन्ध में काहरा नगर में सारी जानकारी हो जाती है। दक्षिणी मिश्र के अनेक निवासी आपको काहरा की सड़कों पर घूमते हुए मिलेंगे। उत्तरी मिश्र और दक्षिणी मिश्र के निवासियों में अन्तर अवश्य है। रंग में भी अन्तर है, यद्यपि बहुत नहीं। हाँ, सूडान के गहरे रंग के लोग भी कभी-कभी बहुत स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो जाते हैं। चेहरे की बनावट में भी भिन्नता है। दक्षिणी मिश्र के लोग अफ्रीकन हैं और उत्तरी मिश्र के निवासी एशिया के देशों के सदृश हैं। मिश्र में इन दिनों फिलस्तीन और निकटवर्ती देशों से आये हुए अनेक अरब भी दिख जाते हैं। काकेशिया के पास वाले देशों के निवासी अत्यधिक सुन्दर हैं और इसीलिए कदाचित् फिलस्तीन से आये हुए लोग बहुत ही स्वरूपवान हैं। उनमें से कुछ तो यूरोपीय देशों के निवासियों से भी अधिक सुन्दर थे। यूरोप के देशों में यद्यपि वर्ण अत्यधिक गौर होता है किन्तु चेहरे की बनावट में उतना लालित्य सदैव ही नहीं रहता। केश के रंगों में भी यूरोप में बड़ी विविधता होती है; यद्यपि पिंगल केशों का सौन्दर्य कभी-कभी बहुत मनोरम होता है तथापि सदैव ही वह सुन्दर नहीं दीखता। फिलिस्तीन की ओर से आये हुए अरब लोगों के बाल काले थे, वर्ण अत्यधिक गौर और चेहरे की बनावट में अपूर्व सुन्दरता थी। यदि हम बाहर से आये हुए अरब-वासियों को छोड़ दें तो मिश्र-निवासियों में प्रधानतया अफ्रीकी और एशियाई ये दो फिरके स्पष्ट रूप से पाये जाते हैं। इन्हें हम उत्तरी और दक्षिणी कह चुके हैं। जलवायु और वातावरण उद्भिज सृष्टि और प्राणी जगत का निर्माण करते हैं इसे तो अब निर्विवाद माना जाता है। उत्तरी मिश्र के जलवायु की भीषणता ने वहाँ के निवासियों को सरल, बलिष्ठ और लड़ाकू बनाया है। दक्षिणी मिश्र पर भूमध्यसागर की जलवायु का प्रभाव है और इसीलिए यहाँ के लोग कल्पनाशील, चतुर, शान्तिप्रिय और आमोदप्रिय हैं। खजूर वृक्ष की डालियों को मिश्र-निवासी शान्ति की सूचक मानते हैं।

प्राचीन काल से ही मिश्र देश की विशिष्टताओं ने वहाँ के निवासियों पर गहरा प्रभाव डाला है। मिश्र के लोग काफी सावधान हैं, क्योंकि बिना सावधानी के उनका काम नहीं चल सकता। यदि वर्षा-विहीन देश में नील नदी की एकमात्र जीवन-

दायिनी शक्ति का ठीक उपयोग करना था तो बिना सावधानी के वह हो नहीं सकता था। नील नदी में इतनी बाढ़ें आती हैं कि उनका हिसाब रखना और इसी के अनुसार सारी व्यवस्था करना आवश्यक था। कदाचित् नील नदी की बाढ़ों का हिसाब ठीक से रखने के लिए ही हायरोग्लिफिक लिपि (Hierogliphic) का आविष्कार सर्वप्रथम मिश्र में हुआ था। इसी प्रकार मिश्र देश के प्राकृतिक दृश्यों ने, वहाँ के नैसर्गिक वायुमंडल ने मिश्र-निवासियों की कला और जीवन-पद्धति पर विशेष असर डाला है।

एरोप्लेन से उतरते ही हम लोगों के पासपोर्ट, विसा, हैजे और माता के टीकों के कागजातों की जाँच हुई और अचानक एक झगड़ा उठ खड़ा हुआ। कलकत्ते और दिल्ली दोनों जगह घनश्यामदास मिश्र देश का विसा लेना भूल गये थे। बिना विसा के वे केवल २४ घण्टे मिश्र में रह सकते थे, पर चौबीस घण्टे पूरे हो जाते थे दूसरे दिन प्रातःकाल नौ बजे। दूसरे दिन प्रातःकाल कोई वायुयान काहरा से न जाता था। दूसरा वायुयान था दूसरे दिन रात को ९ बजे। अतः उनका पासपोर्ट मिश्र देश के अधिकारियों के पास हवाई अड्डे पर हमें जमा करना पड़ा तथा यह पत्र लिखकर देना पड़ा कि घनश्यामदास दूसरे दिन ९ बजे रात के प्लेन से रवाना हो जायेंगे। पासपोर्ट, विसा और टीकों की जाँच के बाद चुंगी (कस्टम्स) में हमारा सामान जाँचा गया और तब हम एरोड्रोम छोड़ सके। एरोड्रोम पर बहुत झंझट हुई। हमें बी. ओ. ए. सी. के प्रतिनिधि श्री नियोक्तिर्डास से बड़ी सहायता मिली, अन्यथा हम और झंझट में पड़ते। यह झंझट अवश्य कम हो जाती यदि भारतीय दूतावास से कोई सज्जन हवाई अड्डे पर आ जाते, पर बाद में मालूम हुआ कि यद्यपि भारतीय सरकार ने मेरे आने की सूचना यहाँ के दूतावास को भेज दी थी पर हमने जो अपनी पहुँच का तार भेजा था वह इस दूतावास को हमारे वायुयान पहुँचने के बाद मिला।

पर दिल्ली में यूनान का दूतावास न रहने के कारण दिल्ली में यूनान का विसा मिलना सम्भव नहीं था। इतना हमने अवश्य किया था कि अपने पासपोर्टों में भारत-सरकार से यूनान जाने की आज्ञा भी लिखवा ली थी। काहरा में हम यूनान का विसा लेने का प्रयत्न करेंगे यह हमने सोचा था, अतः एरोड्रोम से हमने भारतीय दूतावास जाकर यूनान का विसा लेने के लिए भारतीय दूतावास से कहने का विचार किया, परन्तु बी. ओ. ए. सी. के प्रतिनिधि श्री नियोक्लिडीस ने कहा कि वे यूनान के ही हैं तथा यूनानी दूतावास के लोगों को भलीभाँति जानते हैं अतएव इसके लिए भारतीय दूतावास जाने की आवश्यकता नहीं, वे ही चलकर यह विसा दिला देंगे।

श्री नियोक्लिडीस की सलाह के अनुसार उन्हें साथ ले हवाई अड्डे से हम सीधे यूनानी दूतावास पहुँचे। श्री नियोक्लिडीस की दूतावास के लोगों से सचमुच बड़ी अच्छी पहचान थी। फिर यूनानी दूतावास के लोग भी हमें बड़े सज्जन जान पड़े। यहाँ कोई १५ मिनिट में ही बिना जरा सी भी किसी दिक्कत के हमें यूनान के विसा मिल गये। यूनान के दूतावास के लोगों का व्यवहार हमारे साथ अत्यधिक सौजन्यतापूर्ण रहा।

अब हमारा ध्यान काहरा शहर की ओर गया जिसे देखते हुए हम सेमिरेमिस (Semiremis) होटल की ओर चल पड़े जहाँ ठहरने की हमने एरोड्रोम से ही व्यवस्था करली थी और जो काहरा के सर्वश्रेष्ठ होटलों में से एक था। काहरा ठीक बम्बई के सदृश शहर है। करीब-करीब वैसी ही सड़कें, वैसे ही मकान। बम्बई भी काफी साफ-सुथरा नगर है, पर सफाई में काहरा का नम्बर बम्बई से भी ऊँचा है। मिश्र देश पुराना होने पर भी काहरा सर्वथा नवीन ढग का नगर है। आबादी है करीब बीस लाख। खूब फैलकर बसा है। काहरा मे हाल ही में राजनैतिक दृष्टि से कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटी थीं, जिनमें सबसे मुख्य थी मिश्र के बादशाह फारूक का सिंहासन-च्युत होना। एक प्रकार से वह घटना एक छोटी-मोटी राजनैतिक क्रान्ति कही जा सकती है, पर चूँकि बिना खून बहे राज्य-परिवर्तन हो गया था, इसलिए इस घटना को संसार का राजनीति मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान मिलते हुए भी क्रान्ति का-सा स्थान न मिला था। बादशाह फारूक का मिश्र के सभी क्षेत्रों में अत्यधिक अप्रिय हो जाना इस बिना खून की क्रांति का प्रधान कारण था। फारूक सन् १९३३ में सिंहासनासीन हुए थे और सिंहासन पर बैठने के पश्चात् अनेक वर्षों तक वे मिश्र में काफी जनप्रिय भी रहे। सिंहासन पर बैठने के समय उनकी आयु सोलह वर्ष की थी। कुछ वर्षों से इन्द्रिय-लोलुपता और अनैतिक आचरणों के कारण वे जनता के बीच अप्रिय होने लगे, और फिर तो यह अप्रियता इतनी बढ़ी कि राज्य की सेना भी उनके विरुद्ध हो गयी। सेना के इस विद्रोह का नेतृत्व किया श्री मुहम्मद नगीब ने, जो मिश्र के प्रधान मन्त्री श्री मेहरपाशा के भी परम मित्र थे। झगड़ा बहुत दिनों से चल रहा था, पर भीतर भीतर ही। २३ जुलाई को बहुत ही सबेरे जनरल नगीब ने बिना किसी रक्तपात के सरकार का तख्ता पलट दिया। जिस समय सेना ने विद्रोह किया उस समय शाह फारूक सिकन्दिरिया के अपने गर्मियों के महल में थे। उस समय प्रधान मन्त्री दिलाली पाशा थे, जिन्होंने २३ तारीख की दोपहर को ही इस्तीफ़ा दे दिया। उधर सेना ने बादशाह फारूक के पास पैगाम भेजा कि वे तत्काल सिंहासन छोड़ें और २४ घण्टे के अन्दर देश छोड़ दें; यदि उन्होंने ऐसा किया तो सेना उनके सात मास के बच्चे को मिश्र का बादशाह घोषित करने को तैयार है अन्यथा फारूक परिणामों को भोगने

के लिए तैयार हो जायें। फारूक अपनी बढ़ती हुई अप्रियता से परिचित थे, अतः उन्होंने बहुत पहले से ही करोड़ों रुपया विदेशों में जमा कर रखा था। बिना सेना के वे कर ही क्या सकते थे। फिर मिश्र के राजनैतिक नेता और जनता भी सेना के साथ थी। सेना की इस इच्छा के सामने फारूक ने सिर झुका दिया। फारूक का सात मास का पुत्र मिश्र का बादशाह घोषित हुआ और फारूक ने २६ जुलाई को मिश्र छोड़ दिया। हाँ, अपने बादशाह पुत्र को सात वर्ष की अवस्था तक अपने पास रखने की सेना से उन्हें अनुमति मिल गयी। सुना कि बादशाह फारूक की बिदाई बड़ी कारुणिक हुई। सेना ने जिन मुहम्मद नगीब के नेतृत्व में यह क्रान्ति की थी वे तथा मिश्र के मंत्रिमंडल के सभी सदस्य फारूक को बिदा करने जहाज तक गये थे। हाँ, उस समय इसके अतिरिक्त और कोई प्रदर्शन नहीं हुआ। २१ तोपें दागी गयीं और मिश्र के राष्ट्रगान की धुन बजायी गयी। गद्दी छोड़ते समय शाह की आयु ३२ वर्ष की थी। शाह फारूक और महारानी नरीमन २६ जुलाई को नेपुल्स में पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने इटली में एक साधारण व्यक्ति की हैसियत से रहने की इजाजत माँगी जो उन्हें प्राप्त हो गयी।

काहरा नगर में यद्यपि पूर्ण शान्ति थी, तथापि शासन चल रहा था फौजी कानून के द्वारा, अतः शान्ति का वायुमंडल होते हुए भी सारे वायुमंडल में एक विशेष प्रकार का खिंचाव और सन्देह दृष्टिगोचर हुआ।

हमारा होटल नील नदी के किनारे बड़े ही रमणीय स्थल पर था। होटल एक विशाल इमारत थी; अत्यन्त साफ-सुथरी। लगभग १२ बजे दोपहर को हम होटल पहुँचे। काफी गरमी थी। मौसम करीब-करीब दिल्ली के सदृश था।

होटल पहुँचते ही सबसे पहले हमने भारतीय दूतावास को फोन किया। जब हमने फोन किया, उसी समय उनके पास हमारी पहुँच का तार पहुँचा था। आजकल दूतावास में कोई व्यक्ति दूत के पद पर न था, दो सेक्रेटरी थे—श्री नायर और श्री वेंकटेश्वरम्। दूतावास वालों ने इस बात पर बड़ा खेद प्रकट किया कि तार देर से मिलने के कारण वे हवाई अड्डे पर न आ सके और उन्होंने सूचना दी कि श्री वेंकटेश्वरम् तत्काल हमसे मिलने आ रहे हैं। नित्य के कार्यों से निवृत्त होकर, श्री वेंकटेश्वरम् से मिल, दूसरे दिन प्रातःकाल साढ़े नौ बजे भारतीय दूतावास जाने का समय नियुक्त कर, हम लोग मिश्र देश के प्रधान-प्रधान स्थानों को देखने रवाना हुए। एक मार्ग-प्रदर्शक (गाइड) की हमने तजवीज कर ली जो मिश्री होते हुए भी अंग्रेजी भाषा अच्छी तरह जानता था और अंग्रेजी में हमें हर वस्तु को समझा सकता था।

सबसे पहले हम लोग मुहम्मद अली की मस्जिद देखने गये। इस मस्जिद की

नींव मिश्र के बादशाह मुहम्मद अली ने सन् १८३० ई० में रखी थी और यह १८४७ ई० में पूरी हुई। कितनी विशाल, भव्य और सुन्दर इमारत थी। मस्जिद की दीवारों में बाहर और भीतर दोनों ओर एलाबेस्टर नामक एक प्रकार का संग-मरमर लगा हुआ था। जिसे हम संगमरमर कहते हैं और जो भारत में मकराने तथा इटली में बहुतायत से पाया जाता है, उस संगमरमर और इस एलाबेस्टर में मुख्य अन्तर यह है कि यह एलाबेस्टर बहुत दूर तक पारदर्शी है। धुँधले किये हुए शीशे के एक ओर प्रकाश रखने से जिस प्रकार उस प्रकाश की झलक दूसरी ओर दिखती है उसी प्रकार इस एलाबेस्टर में से। फिर यह श्वेत न होकर प्रायः रंगीन रहता है और इसमें बड़े सुन्दर रंगीन लहरिये रहते हैं। भीतर की दीवारों के इस संगमरमर का भिन्न-भिन्न रंगों का उसी पत्थर का स्वाभाविक लहरिया और पत्थरों को जोड़ते समय एक पत्थर के लहरिये का दूसरे पत्थर से कारीगरी से मेल बैठाना देखते ही बनता था। संगमरमर का स्वाभाविक रंग का ऐसा लहरिया हम लोगों ने जीवन में पहली बार देखा था। मार्गदर्शक ने हमें बताया कि मस्जिद में लगा हुआ वह सारा संगमरमर मुहम्मद अली ने मिश्र देश के सबसे बड़े चेंपस के पिरामिड से खुदवाकर मँगवाया था। मस्जिद की ऊँचाई उसके आलम की विशालता आदि सभी दर्शनीय थे, पर सबसे अधिक ध्यान को आकर्षित करता था मस्जिद का रंग-बिरंगा एलरबेस्टर (चित्र नं० १)।

इस मस्जिद को देखकर हम लोग इसी के निकट बनी हुई अल अजहर मस्जिद को देखने गये। यह मस्जिद मुहम्मद अली की मस्जिद से बहुत पुरानी थी। इसका निर्माण सन् ९७० ई० में प्रारम्भ होकर सन् ९७२ ई० में समाप्त हुआ था। इसकी प्राचीनता और इसके मुख्य आलय में मौलवी के खड़े होने के स्थान पर पत्थर की पच्चीकारी के सुन्दर काम के सिवा अन्य कोई विशेषता इसमें न थी।

इन दोनों मस्जिदों को देखने के पश्चात्, हमने एक सड़क पर से खलीफों के मकबरे देखे (चित्र नं० २)। यहां से हम लोग काहरा का मुख्य बाजार देखने पहुँचे। इस बाजार की इमारतों में तो प्राचीनता का कोई लवलेश भी न था, पर बिकने वाली वस्तुओं में आधुनिक काल की वस्तुओं के साथ-साथ कुछ प्राचीन काल की चीजें भी दिखायी दे जाती थीं, जिनमें मुख्य थे 'क्यूरिओ' (चित्रनं० ३-४)। हमने बाजार से पत्थर के कुछ 'क्यूरिओ' मिश्र के भिन्न-भिन्न दृश्यों की कुछ फोटो और प्राचीन तथा अर्वाचीन मिश्र पर कुछ पुस्तकें खरीदीं।

बाजार से हम उस समय संसार की सात अद्भुत वस्तुओं में से एक मिश्र के प्रसिद्ध पिरामिड देखने रवाना हुए, जब शुक्ल पक्ष की दसमी का चाँद अच्छी तरह से मिश्र के निर्मल गगन में चमकने लगा, क्योंकि हमने सुना था कि हमारे जन्मस्थान
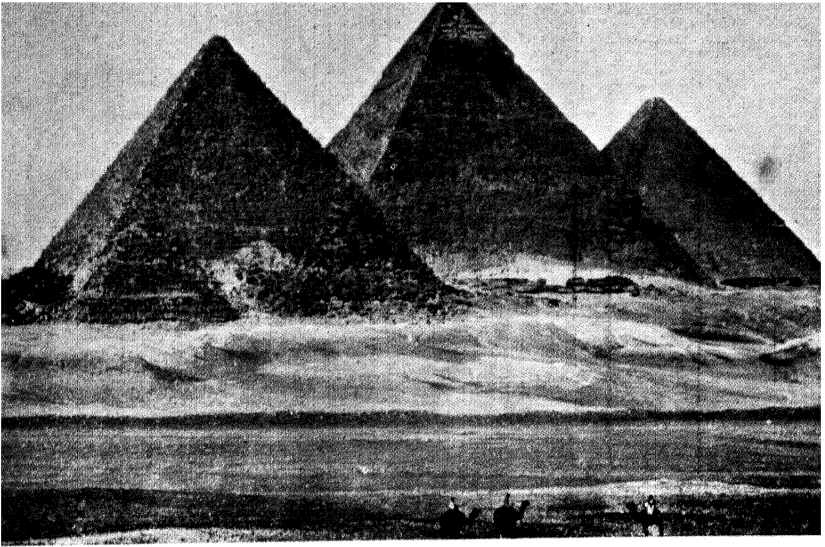
५. गिज़ाह के तीनों प्रसिद्ध पिरामिड

६. स्फिक्स (Sphinx)

जबलपुर में नर्मदा के भेड़ाघाट तथा आगरे के ताजमहल के सदृश पिरमिड भी ज्योत्सना की नीलिमामय श्वेतता में अपना एक विशेष सौंदर्य प्रदर्शित करते हैं।

मिश्र में पिरमिडों का निर्माण पिरमिड युग में हुआ जो ईसा के २८१५ वर्ष पूर्व से २२९४ वर्ष पूर्व तक माना जाता है। इस बीच प्राचीन राजवंश की तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठी पीढ़ियों ने राज्य किया। पिरमिड युग में निर्मित सभी पिरमिड नील नदी के पश्चिमी तट पर बने हैं।

यों तो मिश्र में इस समय ज्ञात पिरमिडों की संख्या लगभग ८० है, किन्तु इनमें सबसे बड़े पिरमिड तीन हैं। ये तीनों पिरमिड एक ही स्थान गिजाह के पठार पर एक दूसरे के अत्यन्त सन्निकट बने हैं (चित्र नं० ५)। सबसे बड़ा पिरमिड चेपस (Chepos) ने बनवाया था और यह महान् पिरमिड के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरा पिरमिड चफरन (Chephren) ने बनवाया जो उसी के नाम से प्रसिद्ध है। तीसरे पिरमिड का निर्माता माइसेरिनस (Mycerinus) था। ये बादशाह प्राचीन राजवंश की चौथी पीढ़ी के हैं।

महान् पिरमिड की विशालता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि ब्रिटेन के संसद भवन और सेंटपॉल (St. Paul) गिरजाघर को पिरमिड के भीतर रख लिया जाय तो भी जगह शेष रहेगी। अगर इस पिरमिड के एक-एक घन फुट के टुकड़े कर दिये जायँ और उन्हें भूमध्य रेखा के साथ एक दूसरे से सटाकर रखा जाय तो उनसे दुनिया के घेरे का दो-तिहाई भाग घिर जायगा। यह पिरमिड १३.१ एकड़ भूमि पर बना है और इसकी प्रत्येक भुजा ७५६ फुट लम्बी है। इस समय इसकी उँचाई ४५१.४ फुट है पर पहले इससे ३१ फुट अधिक थी।

चफरन के पिरमिड की प्रत्येक भुजा ७०८ फुट यानी चेपस के पिरमिड से कोई ४८ फुट कम है। इसकी उँचाई ४४७½ फुट यानी चेपस के पिरमिड से २½ फुट कम है। उँचाई पर बना होने के कारण इस बात का भ्रम होता है कि यही सबसे बड़ा पिरमिड है। पहले इसकी उँचाई ४७१ फुट थी यानी चेपस के पिरमिड की पहले की उँचाई से दस फुट कम।

माइसेरिनस (Mycerinus) के पिरमिड की प्रत्येक भुजा ३५६½ फुट और उँचाई २०४ फुट है। कहा जाता है कि पहले यह ११४ फुट अधिक ऊँचा था।

मिश्र के रेगिस्तानी प्रदेश की पृष्ठभूमि में ये विशाल पिरमिड आकाश को छूते प्रतीत होते हैं और इस बात का स्मरण दिलाते हैं कि मनुष्य क्या कर सकता है। जहाँ एक ओर हमें इनसे मनुष्य की शक्ति का बोध होता है वहाँ दूसरी नश्वरता का भी और हम इस पार्थिव संसार से दूर आध्यात्मिक जगत में विचरनेलगते हैं।

पर इसमें सन्देह नहीं कि संसार की सात अद्भुत वस्तुओं में से एक इन पिरमिडों का माना जाना सर्वथा सही निर्णय है, कितने विशाल हैं ये पिरमिड!

शिलाखंडों को जोड़-जोड़कर ये पिरमिड बनाये गये है। जब वजन उठाने की क्रेन आदि मशीनें न थीं तब ये शिलाखंड उठा-उठाकर कैसे इतनी उँचाई पर से लाये गये, यह एक आश्चर्य से स्तम्भित कर देने वाली बात है। हमारे मार्ग-प्रदर्शक तथा वहां के अन्य लोगों ने हमें बताया कि पहले इन पिरमिडों के बाहरी भाग संगमरमर से पटे हुए थे। एक पिरमिड के ऊपरी कुछ भाग में अभी संगमरमर लगा हुआ है, पर बाद में बादशाह मुहम्मद अली यहाँ का संगमरमर निकलवाकर ले गया और उस संगमरमर से मुहम्मद अली की उस विशाल मस्जिद का निर्माण हुआ, जिसका वर्णन पहले आ चुका है। संगमरमर लगे हुए ये पिरमिड चाँदनी में एक अद्भुत नजारा दिखाते होंगे इसमें सन्देह नहीं, पर संगमरमर निकल जाने पर भी ज्योत्स्ना में इनका अपना एक सौन्दर्य है, यह निश्चित है।

प्रकाश और परछाईं में हर तरफ इन पिरमिडों का निरीक्षण करने के बाद हम इन्हीं के निकट मिश्र देश के अन्य विश्वविख्यात स्विग्स (Swings) को देखने चले। पिरमिडों के समान ही यह भी एक महान् विशालकाय वस्तु है। इस स्विग्स का शरीर है सिंह का और चेहरा है एक पुरुष का, कदाचित् बादशाह चफरन का (चित्र नं० ६)। इसका निर्माण हुआ था ईसा के लगभग तीन हजार पाँच सौ वर्ष पूर्व। इसकी लम्बाई है २४० फुट और उँचाई ६६ फुट। पाँवों को छोड़ बाकी यह समूचा स्विग्स एक ही विशाल चट्टान से बना है। बाद में यह सदियों तक रेत से पुरा रहा। सन् १८१८ में इसके चारों ओर की रेत हटाकर इसे फिर से निकाला गया है।

आज की इस घुमाई के बाद हमने यह तय किया कि दिन के प्रकाश में भी कल हम इन आश्चर्यजनक वस्तुओं को देखेंगे। जब हम अपने होटल को लौटे तब रात के करीब दस बज चुके थे। होटल पहुँचते ही हम लोगों ने खाना मँगाया और खाने के बाद जब खाने का बिल हमारे पास आया तब हमें कम आश्चर्य नहीं हुआ। हम तीनों शाकाहारी थे। हमने जो खाना मँगाया था उसमें डबल रोटी, मक्खन, शाकाहारी सूप, उबले साग-भाजी, फल और फल का रस था। भारतवर्ष में बड़े से बड़े और अच्छे से अच्छे होटल में ऐसे खाने के तीन-चार रुपये से अधिक न लगते, पर यहां के एक बार के खाने में लगे एक-एक व्यक्ति के अंग्रेजी एक-एक पाउंड के लगभग यानी करीब तेरह-तेरह रुपये। भारत के बाहर हमने आज पहले-पहल भोजन किया था अतः हमने सोचा कि जिस बड़े होटल में हम ठहरे हैं वह होटल इस कीमती खाने का कारण हो सकता है, पर दूसरे दिन जब हमने दोपहर का खाना एक दूसरे होटल में खाया और इसका बिल भी करीब-करीब उतना ही हो गया तब हमें भारत की और भारत के बाहर की भोजनों की कीमत के अन्तर का पता लग गया। भारत में कहा जाता है कि खाद्य-वस्तुओं की कीमत बहुत अधिक है, पर जब हम भारत

तथा अन्य स्थानों की खाद्य-वस्तुओं के मूल्य का मिलान करते हैं तब हमें मालूम होता है कि आज भी भारत में खाद्य-वस्तुओं का मूल्य कितना कम है। अन्य देशों में यदि इतनी अधिक कीमत भी लोगों को नहीं अखरती और भारत में इतना सस्ता मूल्य भी अखरता है तो इसका कारण भारत के लोगों तथा अन्य देशों के लोगों की आर्थिक अवस्था है। इस पूरी यात्रा में हमें भारत के सदृश सस्ता खाना कहीं भी नहीं मिला। हाँ, अन्य स्थानों से लन्दन में खाना अवश्य सस्ता था, पर भारत के खाने से तो उसका भी मूल्य काफी अधिक था।

दूसरे दिन प्रातःकाल ९॥ बजे हम भारतीय दूतावास को गये। दूतावास का यह मकान भारत सरकार का है और इसे उस समय लिया गया था जब श्री सैयद-हुसैन मिश्र में भारत के राजदूत बनाकर भेजे गये थे। सुन्दर मकान है, सुन्दर स्थल पर, नील के किनारे, पर मकान का पूरा उपयोग नहीं हो रहा है, यह होना चाहिए। भारत सरकार की नीति है कि भिन्न-भिन्न देशों के भारतीय दूतावासों के निज के मकान हो जायँ। मैं वर्षों से पार्लिमेन्ट की वैदेशिक-विभाग-कमिटी का सदस्य रहा हूँ। मैंने इस नीति का सदा समर्थन किया है। लम्बी दौरान में इससे खर्च भी कम पड़ता है और बाहरी देशों में हमारी प्रतिष्ठा भी बढ़ती है। दूतावास के प्रधान सेक्रेटरी श्री नायर तथा अन्य कर्मचारी भी मुझे बड़े अच्छे जान पड़े। भारतीय दूतावास से हमें अजायबघर तथा अन्य स्थानों को दिखाने के लिए एक ऐसे सज्जन को दिया गया जो मिश्र की भाषा के साथ ही अंग्रेजी भी जानते थे। इनका नाम था श्री सैयद। ये अरब के एक शरणार्थी थे, जो अरबों और यहूदियों के झगड़े के समय फिलिस्तीन में लाखों की सम्पत्ति छोड़कर भागकर मिश्र में आये थे और अब भारतीय दूतावास में काम कर रहे थे।

यों तो यहूदी अपना राज्य बनाने का प्रयत्न बहुत समय से कर रहे थे, किन्तु फिलिस्तीन में एक अलग यहूदी राज्य की स्थापना का सूत्रपात २ नवम्बर, १९१७ की उस घोषणा से हुआ जिसे बेलफर घोषणा (Balfour declaration) कहा जाता है। १९२३ में ब्रिटेन को शासन-प्रबन्ध चलाने का जो आदेश दिया गया था उसमें यह सिद्धान्त निहित था। यह आदेश यहूदी गणराज्य इसरायल की स्थापना की घोषणा के साथ ही समाप्त हुआ, इस पर इसरायल और अरब राज्यों में युद्ध छिड़ गया। मिश्र ने अरब देशों को संगठित करने में प्रमुख भाग लिया। इसी उद्देश्य के लिए अरब लीग की भी स्थापना हुई, जिसका प्रधान कार्यालय काहरा में है। यद्यपि इसरायल के प्रति अरब देशों, विशेषकर मिश्र, का मनमुटाव अब भी बना हुआ है, लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण अरब राज्यों को चुप हो जाना पड़ा है; वैसे मिश्र इसरायल जाने वाले सामान के स्वेज नहर से गुजरने पर अब भी बड़ी निगरानी रखता है।

इसरायल राज्य की स्थापना १५ मई, १९४८ को हुई। इसरायल और पड़ोसी अरब राज्यों के अल्पकालीन किन्तु भीषण युद्ध के पश्चात् यूनान के रोड्स (Rhodes) नामक स्थान में अस्थायी सन्धि पर दस्तखत किये गये। जिन देशों ने सन्धि पर दस्तखत किये उनके नाम हैं—मिश्र, लेबनान, जार्डन और सीरिया। सन्धि पर दस्तखत फिलिस्तीन सम्बन्धी संयुक्त राष्ट्र के मध्यस्थ और संयुक्त राष्ट्र फिलिस्तीन समझौता कमीशन की देखरेख में किये गये। जनवरी १९४९ में पहले आम चुनाव हुए और डाक्टर वीज़मैन (Dr. Weizmann) इसरायल गणराज्य के पहले प्रधान बने।

इसरायल सरकार इस बात के लिए वचनबद्ध है कि बाहर से आने वाले सभी यहूदियों को इसरायल में स्थान दिया जायगा। १९४९ में कोई साढ़े तीन लाख लोग इसरायल आये।

अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से इसरायल राज्य को संसार के अधिकतर देश स्वीकार कर चुके हैं और १२ मई, १९४९ को उनसठवें सदस्य के रूप में वह संयुक्त राष्ट्र में शामिल हो चुका है।

इसरायल राज्य की सबसे बड़ी विशेषता एक यह हुई कि उन्होंने अपनी राज्य-भाषा हिब्रू को बनाया। हिब्रू एक मृतभाषा है, परन्तु इतने थोड़े समय में भिन्न-भिन्न स्थानों से आकर बसने वाले यहूदियों ने हिब्रू सीख ली। आज वहां के गणतन्त्र की सारी कार्रवाई हिब्रू में होती है। हमारे देश ने जिस हिन्दी को अपनी राज्य-भाषा और राष्ट्र-भाषा स्वीकार किया है वह हिब्रू के सदृश मृतभाषा नहीं है। आज भी इस देश की आधी से अधिक जनता की वह मातृभाषा है और शेष में से भी उसे न समझने वालों की संख्या नगण्य है। क्या हमारे लिए यह लज्जा की बात नहीं है कि अभी भी हमारे देश की केन्द्रीय सरकार का प्रायः सारा कार्य एक विदेशी भाषा अंग्रेजी में चलता है और उसके समर्थक भी कम नहीं पाये जाते? अंग्रेजी का स्थान हिन्दी पन्द्रह वर्षों में ले लेगी यह हमने अपने संविधान द्वारा घोषित किया है, पर जिस गति से हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान दिलाने का प्रयत्न चल रहा है उससे तो पन्द्रह क्या पन्द्रह के ऊपर एक शून्य जोड़ने से जो संख्या हो जाती है उतने वर्षों में भी हिन्दी को उसका उचित स्थान प्राप्त होने वाला नहीं है। इस विषय में हमें इसरायल के हिब्रू-प्रेम से स्फूर्त्ति और प्रेरणा मिलनी चाहिए।

श्री नायर से बिदा हो श्री सैयद के साथ हम लोग काहरा का अजायबघर देखने गये। बड़ा भारी अजायबघर का भवन है और उसमें भारी तथा बहुत प्राचीन संग्रह है। इस संग्रह में मूर्त्तियां हैं, चित्र हैं, आभूषण हैं, वस्त्र हैं और सबसे अधिक हैं लाशें, जिन्हें मिश्र की प्रसिद्ध 'ममी' के नाम से पुकारा जाता है तथा कब्रों में

१२. तूतएन्खग्रामुन की ममी के ऊपर का स्वर्ण का चेहरा

१३. तूतएन्खग्रामुन की ममी का स्वर्ण का ढक्कन
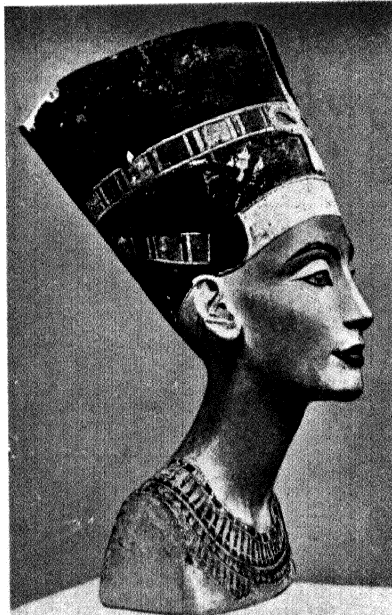
१४. निफरतिती की पाषाण-मूर्ति

मिला हुआ विविध प्रकार का सामान। इस कब्रों के सामान में सबसे अधिक संग्रह है थेब्स (Thabes) में मिला हुआ मिश्र के बादशाह तूतएन्ख आमुन की कब्र का सामान। तूतएन्ख आमुन की यह कब्र सन् १६२२ में मिली थी। तूतएन्ख आमुन की ममी अभी भी उसी जगह है, पर उस ममी पर एक के बाद एक जो सात कफन लगाये गये थे वे सब इस अजायबघर में ले आये गये हैं। ये कफन कोई साधारण कपड़े के नहीं हैं, ये हैं एक प्रकार की सन्दूकें, जिन पर सच्चा सोना प्रचुर परिमाण में लगा हुआ है। ये सन्दूकें इस प्रकार बनी हुई हैं कि एक सन्दूक दूसरी सन्दूक के भीतर आ जाती है और इस प्रकार अन्त में सात सन्दूकों की एक सन्दूक हो जाती है। अन्तिम सातवीं सन्दूक में तूतएन्ख आमुन की ममी थी। लाश को छोड़, ये सातों सन्दूकें इस अजायबघर में एक दूसरे से अलग कर, सात शीशे के बड़े-बड़े बक्सों में सजायी गयी हैं। इस कफन के सात बक्सों के अतिरिक्त तूतएन्ख आमुन की कब्र से निकला हुआ न जाने कितना सामान संग्रहीत है—तूतएन्ख आमुन के बैठने की स्वर्ण की कुर्सियाँ, उसके सोने का स्वर्ण का पलँग, उसकी हिरण्य की बनी हुई पालकी उसके स्वर्ण के तथा अनेक प्रकार के रंगीन पत्थरों के आभूषण, उसके बर्तन, कपड़े और न जाने क्या-क्या। (चित्र नं० ७ से १३ तक) भिन्न-भिन्न रंगों के पत्थरों के आभूषणों में, इस समय हीरे, पन्ने, माणिक आदि जिन रत्नों और मोतियों का प्रचार है उन रत्नों अथवा मोतियों के कोई भूषण नहीं हैं, जिससे जान पड़ता है कि तूतएन्ख आमुन के काल में ये रत्न और मुक्ता ईजाद न हुए थे। नित्य के व्यवहार का शायद ही कोई ऐसा सामान हो जो इस कब्र में से न निकला हो, यहां तक कि खाने की रोटियां, मिठाई और सूँघने के सुगंधित द्रव्य भी निकले थे। तूतएन्ख आमुन का देहान्त ईसा के १३५० वर्ष पूर्व हुआ था, केवल १६ वर्ष की अवस्था में। उसकी लाश की ममी बनाकर उस ममी के साथ यह सब सामान गाड़ा गया था। कब्र बड़े विशाल रूप में बनायी गयी थी और उसमें ये सारे पदार्थ बड़ी व्यवस्था से सजाकर तब उस कब्र को ऊपर से मिट्टी आदि से ढाँका गया था। यह तूतएन्ख आमुन की कब्र एक ऐसी कब्र थी जो बिलकुल पूर्ववत ही मिली थी। इस कब्र के अतिरिक्त अन्य कब्रों का सामान आधुनिक काल के बहुत पूर्व ही लुटेरों के द्वारा हटाया जा चुका था। फिर तूतएन्ख आमुन इख्नाटेन (Ikhnaton) का दामाद था और थेब्स के मिश्री सम्राटों के प्रसिद्ध राजकुटुम्ब का अन्तिम सम्राट था। इस प्रसिद्ध राजकुटुम्ब ने मिश्र पर दो सौ तीस वर्ष तक राज्य किया। इख्नाटेन इस राजकुटुम्ब का अन्तिम प्रभावशाली सम्राट् था। इसने अपने युग में एक नवीन धर्म का प्रतिपादन किया था, जिसमें सूर्य (Afon) की सर्वशक्तिशाली ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठा की गयी थी। इसने सबसे पहले एक ईश्वरवादी धर्म का प्रारम्भ किया था। पुरानी रूढ़ियों का इस युग में अन्त हुआ था और प्राचीन मिश्र के कलाकारों ने बहुत

समय बाद एक बार फिर स्वतन्त्र वातावरण में कला की उपासना की थी। इसी कारण इस कब्र में टूतनाटेन के राज्यकाल की अमूल्य कलाकृतियों का संग्रह मिलता है और मिश्र के इतिहास में इन अनुपम कलाकृतियों का एक विशेष स्थान है। प्राचीन मिश्र के स्मृति-चिह्नों में इस समाधि के संग्रह का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और काहरा के संग्रहालय में भी सबसे आकर्षक संग्रह यही है।

इस कब्र के सामान के सिवा अजायबघर का अन्य अधिकांश सामान भी मृतकों से ही सम्बन्ध रखता है; इसलिए मैंने तो इस अजायबघर का नाम मुरदों का अजायबघर रखा। प्राचीन मिश्र में मृतक शरीर का बड़ा महत्त्व था। उसे इस प्रकार के मसाले लगाकर कफ़न में बन्द किया जाता था कि लाश हजारों वर्षों के बीत जाने पर भी सड़ती न थी और सुरक्षित रहती थी। यह मसाला किन चीजों से कैसे बनता था इसका पता अनेक प्रयत्न करने पर भी अब तक वैज्ञानिक नहीं लगा पाये हैं। यद्यपि रूस में लेनिन की लाश को भी सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु लेनिन की मृत्यु को अभी बहुत समय नहीं बीता है और सुना जाता है कि उसके इधर-उधर से क्षय होने के कुछ लक्षण भी दिखायी पड़ने लगे हैं। फिर पुराने मिश्र में लाशों को इस प्रकार सुरक्षित रखने के प्रयत्न के अतिरिक्त लाशों के साथ जीवित अवस्था के उपयोग का सामान भी गाड़ा जाता था। प्राचीन मिश्र के लोग यह मानते थे कि मृतक कब्र में इस सब सामान का उपयोग कर सकेगा। मेरे मन पर तो मुरदों के इस अजायबघर का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। मुझे मृतकों की बड़ी-बड़ी समाधियें, मकबरे आदि कभी भी अच्छे नहीं लगते, फिर मिश्र के इस अजायबघर में तो इस मुरदाबाद की पराकाष्ठा है। इन समाधियों, मकबरों, मुरदों से सम्बन्ध रखने वाली सभी प्रकार की वस्तुओं में मुझे आसक्ति-भावना परमोत्कृष्ट रूप में दिख पड़ती है और जब मैं इन वस्तुओं को देखता हूँ तब मुझे सदा हिन्दुओं का दर्शन स्मरण हो आता है। हिन्दुओं में मृतक शरीर के अवशेष के अवशेष को भी कभी भी नहीं रखा जाता। लाश जला दी जाती है, भस्म और हड्डियों को किसी पवित्र नदी में प्रवाह कर दिया जाता है। जिस स्थान पर लाश का अग्नि-संस्कार होता था वहां भी पहले कोई समाधि या छतरी नहीं बनती थी। यह प्रथा हमने बौद्धों और मुसलमानों से सीखी। हमारे धर्म, हमारी संस्कृति, में मृत्यु का महत्त्व है, बड़ा भारी महत्त्व है, पर मृतक का नहीं। हर आर्य उत्कृष्ट से उत्कृष्ट भावनाओं को लेकर मरना चाहता है या तो इस आवागमन से छुटकारा और मोक्ष-पद प्राप्त करने के लिए या फिर से अच्छा जन्म पाने को। जो मर चुका है उसकी लाश कयामत के दिन कब्र में से उठेगी या वह लाश इस संसार की पार्थिव वस्तुओं का फिर से कोई उपयोग कर सकेगी, इसकी कल्पना तक हमारा दर्शन नहीं करता। इसीलिए हम

१५. तूतएन्खआमुन की पाषाण-मूर्ति (ईसा के १३५८ वर्ष पूर्व)
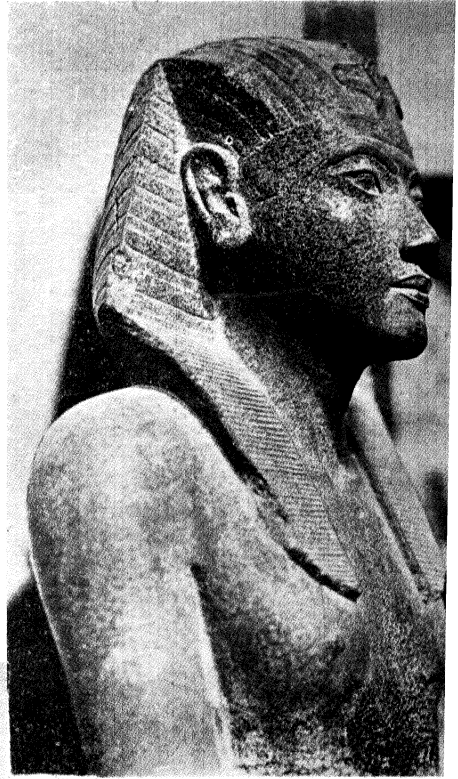
१६. मिश्र के एक शासक रेमोसिस द्वितीय की ममी; ऊपर का आच्छादन खोलने के बाद

१७. तुथमासिस तृतीय और अमून देवता
का ३४४० वर्ष पुराना चित्र
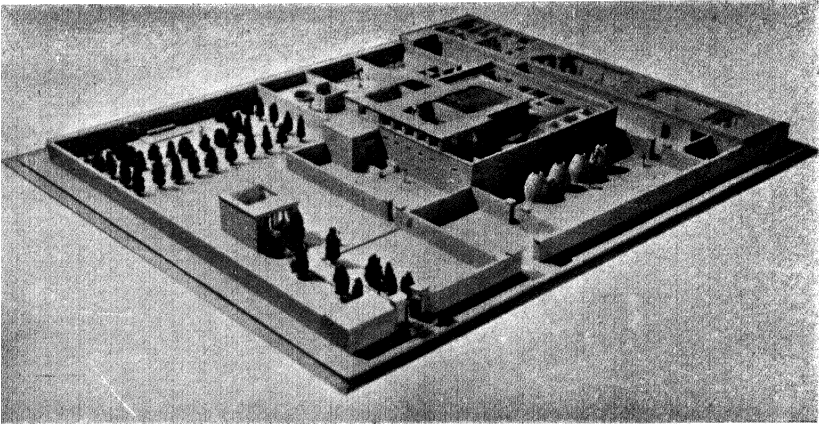
१८. ३३२९ वर्ष पुराना एक मिश्री भवन का नक्शा

लाशों को न गाड़ते, न किसी पार्थिव वस्तु को उनके साथ दफ़नाते हैं। हमारे दर्शन में जीवितावस्था में जो कार्य किये जाते हैं उनको महत्त्व है, अच्छी मृत्यु उन्हीं कर्मों से होती है, अच्छा पुनर्जन्म उन्हीं कर्मों से होता है और मोक्ष तक उन्हीं कर्मों से मिलता है। हमारे यहाँ जीवन का परमोत्कृष्ट लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है और उस लक्ष्य को पहुँचने की पहली सीढ़ी अनासक्ति है। मिश्र में लाशों की ममी बना उनके साथ सारा संसार गाड़ना मुझे आसक्ति की चरम सीमा जान पड़ी। फिर हमारे यहाँ मृत्यु को यदि महत्त्व है तो जीवन को भी। अरे ! जीवन का तो इतना महत्त्व है जितना किसी देश या समाज में नहीं। हमारा जीवन मृत्यु से समाप्त ही नहीं होता। मृत्यु आत्मा को नहीं मार सकती और आत्मा का पुनर्जन्म होता है अतः इस पुनर्जन्म की भावना के कारण मृत्यु के निराशावाद से आच्छादित न हो हमारा जीवन आशावाद के वायुमंडल में विचरण करता है। मोक्ष-प्राप्ति से उतर जीवन का प्रधान लक्ष्य होता है फिर से उत्तम जन्म पाना। इसीलिए हमारे देश के विशिष्ट स्थानों के संग्रह आदि ऐसी मूर्तियों, ऐसे चित्रों, ऐसी वस्तुओं के हैं जो भावनाओं को जीवन की ओर ले जाते हैं, मृत्यु की ओर नहीं। इस अजायबघर को देख अन्त में एक भाव मेरे मन में और उठा। तूतएन्ख आमुन के सदृश व्यक्ति के साथ इतना पार्थिव संसार इसलिए गाड़ा गया था कि वह अपने अल्प जीवन में उसका यथेष्ट उपभोग न कर पाया था। हाय ! हजारों वर्षों तक गड़े रहने के बाद भी वह सबका सब संसार उसी रूप में वापस निकल आया ! लालसा रह गयी वैसी की वैसी, बिना तृप्ति के प्यासी की प्यासी ! हमें जो अन्य विशिष्ट वस्तुएँ दिखीं वे थीं (१) बेगम निफरतिनी की पाषाण मूर्ति (चित्र नं० १४) तूतएन्ख आमुन की पाषाण मूर्ति (चित्र नं० १५) रेमोसेस द्वितीय की ममी (चित्र नं० १६) लगभग ३४०० वर्ष पुराना एक चित्र (चित्र नं० १७) और ३३२९ वर्ष पुराना एक मिश्री मकान का नकशा (चित्र नं० १८)।

हम दोपहर का भोजन करने एक रैस्टराँ में पहुँचे। वहाँ से हम श्री नायर के यहाँ चाय के लिए गये। यहाँ श्री नायर के साथ श्रीमती नायर तथा एक पत्र-प्रतिनिधि से भी हमारी भेंट हुई। श्री नायर के यहाँ से श्री सैयद के साथ हम फिर दिन के समय पिरमिडों को देखने आये। यद्यपि इन पिरमिडों का भी मृतकों से ही सम्बन्ध था और अभी हम मृतकों के ही अजायबघर से चलकर यहाँ आये थे तथापि मुरदों से सम्बन्ध रखने पर भी हमें इन पिरमिडों में जीवित हाथों का ही अधिक कौशल दिख पड़ा। दिन में हमें इन पर्वताकार पिरमिडों की और अधिक विशालता दिखायी दी। जब हम पिरमिडों से लौट रहे थे तब एक दिलचस्प घटना हो गयी। नील नदी के एक पुल पर जगमोहनदास एक दृश्य को

तस्वीर उतार रहे थे। उन्होंने अपना कैमरा ठीक किया ही था कि एक पुलिस वाला पहुँचा और उसने फौजी कानून के अनुसार तस्वीर उतारने की मुमानियत बता जगमोहनदास को गिरफ्तार कर लिया। हम सब एकदम घबड़ा गये और हम सभी ने उसे कहा कि तस्वीर उतारी ही नहीं गयी है, पर वह कब माननेवाला था, हम सबको लेकर वह थाने चला। थाने में हम लोगों के पासपोर्ट इत्यादि देखने तथा हम लोग ऐरे-गैरे न होकर कुछ प्रतिष्ठा रखने वाले व्यक्ति हैं, यह जान लेने और भारतीय दूतावास के श्री संयद के प्रयत्न से जगमोहनदास रिहा हो सके।

सन्ध्या के सात बज रहे थे तथापि अँधेरा न हो रहा था। मालूम हुआ आजकल जैसे-जैसे आप उत्तर में अधिक आगे बढ़ेंगे, दिन बढ़ता ही जायगा। यहाँ आजकल पौ फटने से सन्ध्या को अँधेरा होने तक १६ घंटे का दिन और ८ घंटे की रात चल रही थी। नारवे में तो आधी रात को सूर्य के दर्शन होते थे जिसका वर्णन कुछ वर्षों पहले की अंग्रेजी की एक प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका श्रीमती मेरी करोली ने अपने एक उपन्यास में किया है। एक जमाने में मेरी करोली की बड़ी प्रसिद्धी थी। मैंने भी उनके कुछ उपन्यास पढ़े थे। उनमें से मुझे तो कई पसन्द भी आये थे, पर न जाने कैसे आज उन्हें कोई न जानता है और न पढ़ता है।

हमारी इच्छा अभी काहरा के जू को देखने की थी, परन्तु अँधेरा न होने पर भी सात बज रहे थे और जू ६ बजे ही बन्द हो जाता था अतः हम सीधे टी. डब्ल्यू. ए. एयरलाइन के दफ्तर को आये। काहरा से एथिन्स बी. ओ. ए. सी. का हवाई जहाज न जाता था इसलिए हमें अब दूसरी लाइन से जाना था। इस लाइन में भी हमारा रिजर्वेशन आदि हो चुका था। टी. डब्ल्यू ए. के दफ्तर से हम एरोड्रोम पहुँचे और यद्यपि आशा यही करके गये थे कि अब बिना किसी विशेष घटना के ठीक समय हम एथिन्स को रवाना हो सकेंगे, पर ऐसा न हो सका। हवाई अड्डे पर जाते ही मालूम हुआ कि मिश्र की सरकार का नया हुक्म यह आया है कि जो यात्री टेम्परेरी यात्री नहीं हैं वे बिना सरकारी आज्ञा के मिश्र नहीं छोड़ सकते। जगमोहनदास और घनश्यामदास का पासपोर्ट टेम्परेरी यात्री का था पर मेरा नहीं, अतः मेरा जाना रोक दिया गया। अब तो अधिकारियों से टेलीफोन चलना शुरू हुआ। हवाई जहाज के उड़ने को चंद मिनिट ही बाकी थे। घनश्यामदास ठहर न सकते थे, मैं बिना इजाजत के जा न सकता था, जगमोहन अवश्य जाने या ठहरने के लिए स्वतन्त्र थे, पर वे क्या करें यह वे निर्णय न कर पा रहे थे। एक विचित्र परिस्थिति थी। खैर यही हुआ कि एरोप्लेन जाने के चार-पाँच मिनिट पहले मुझे जाने की आज्ञा किसी तरह मिल गयी। हाँ, पहले से जाने की इजाजत न लेने के कारण मुझ पर एक छोटा-सा जुर्माना अवश्य कर दिया गया, जिसे मैंने सत्याग्रह आन्दोलन के

ादृश न देना उचित न समझ जेल जाने की अपेक्षा तत्काल पटा देना ही श्रेयस्कर
समझा। आज काहरा फौजी कानून का हमें भी थोड़ा-सा अनुभव हो गया—एक जगह
गगमोहन हुए गिरफ्तार और एक जगह मुझे पटाना पड़ा जुर्माना। गनीमत यही हुई
के मनोरंजक अनुभव तो हमें हो गये, पर जुर्माने के कुछ रुपये देने के सिवा हमें न
ो कोई कष्ट उठाना पड़ा और न हमारे कार्यक्रम में ही कोई गड़बड़ी हुई।

दिल्ली छोड़े हमें अभी दो दिन ही हुए थे, पर इन दो दिनों में ही हमने कितना
ेखा और समझा था। महीनों और हफ्तों जिन यात्राओं में लगते थे उन्हें शनैः-शनैः
उत्तरोत्तर शीघ्रगामी यातायात के साधनों ने कितना सुगम बना दिया था। इन दो
देनों में हम हजारों मील उड़ चुके थे। एक प्राचीनतम मिश्र देश को देख कर हम एक
ूसरे प्राचीनतम देश यूनान को जा रहे थे। किसी समय इन दोनों देशों का संसार में
कतना महत्त्व था! आज पुरातत्त्ववेत्ताओं या इतिहास अथवा कला प्रेमियों के सिवा
केसी की दृष्टि में भी इन देशों का कोई महत्त्व न रहा था। पर इन दो दिनों में भी
मेश्र में हमने जो कुछ देखा था और उसके सम्बन्ध में अब तक जो कुछ पढ़ा था उसके
कारण वायुयान की रफ्तार के साथ ही हमारे मन में एक पर एक न जाने कितनी
बातें उठने लगीं।

ठीक समय हमारा वायुयान एथिन्स रवाना हो गया।

४

मिश्र देश के सम्बन्ध में कुछ शब्द और

संसार की सभ्यता का सूत्रपात मिश्र में हुआ, आज अधिकांश विद्वान यही मानते हैं। मिश्र में ही प्रथम भौतिक संस्कृति, स्थापत्यकला, कृषि, बागबानी एवं वस्त्र-विन्यास का विकास हुआ। वहीं पर सर्वप्रथम भौतिक शास्त्र, खगोल शास्त्र, औषध-विज्ञान, इंजीनियरी आदि विज्ञानों का विकास हुआ। वहीं पर सर्वप्रथम न्याय, शासन-व्यवस्था एवं धर्म की नींव पड़ी। यूरोप को बाद में जो कुछ यूनान ने दिया उसे यूनानियों ने मिश्र से ही प्राप्त किया था। यूनानी इतिहासकारों ने स्वयं ही मिश्र की नील घाटी के ज्ञान-भंडार के प्रति आभार प्रकट किया है, जिसे उन्होंने मौखिक रूप में प्राप्त किया था।

जैसा पहले कहा जा चुका है मिश्र की सभ्यता का उदय प्रागैतिहासिक काल से अर्थात् ईसा से कोई सात हजार वर्ष पूर्व मेनेस (Menes) के शासन-काल से मिलता है, यद्यपि कुछ इतिहासकार मिश्र के इतिहास को तीन हजार चार सौ वर्ष प्राचीन ही मानते हैं।

अत्यन्त सकरे नील घाटी प्रदेश में इस सभ्यता का क्योंकर उदय हुआ यह अवश्य ही बड़े आश्चर्य की बात है। भौगोलिक दृष्टि से देखने पर मिश्र को एक लाभ अवश्य था कि वह तीन महाद्वीपों के संसर्ग में था, एशिया, यूरोप और अफ्रीका। हो सकता है कि अपनी इस विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण ही मिश्र सभ्यता का भी केन्द्र-बिन्दु बन गया हो। मिश्र की सभ्यता का पता उस सामान से ही तो चलता है जो कि मिश्रवासी मुरदों के साथ कब्र में गाड़ दिया करते थे। अनावृष्टि और शुष्क जलवायु के कारण ये वस्तुएँ आज भी सुरक्षित अवस्था में मिल जाती हैं।

मिश्र के इतिहास में इतने अधिक शासकों ने राज्य किया कि उनको ३० राज्य-वंशों में बाँटकर ही स्मरण रखा जा सकता है। सभी इतिहासकारों ने मिश्र के बादशाहों को, जिन्हें फराओ कहा जाता था, इसी प्रकार वर्गीकृत किया है। इन फराओं में से चेपस को एक महान पिरमिड के निर्माता के रूप में लोग जानते ही हैं। वैसे मिश्र का सबसे शक्तिशाली शासक टाटमीज तृतीय माना जाता

है। मिश्र का अन्तिम बड़ा शासक रेमोसेस द्वितीय माना जाता है। उसके पश्चात् मिश्र का पराभाव शुरू हो गया और मिश्र उन ईरानियों के अधिकार में चला गया जो बाद में सिकन्दर महान् के आक्रमणों से पराजित हो गये। सिकन्दर का साम्राज्य बहुत थोड़े दिन चला। बाद में उसके सेनापति के एक वंश के शासक मिश्र पर राज्य करते रहे और इस वंश की अन्तिम महारानी क्लिओपैट्रा हुई जिसके बारे में कहा जाता है कि वह विश्व की सबसे सुन्दर साम्राज्ञी हुई है। ईसा से तीस वर्ष पूर्व मिश्र पर रोमवासियों का अधिकार हो गया। सात सौ वर्ष बाद अरबों ने मिश्र पर आक्रमण किया और वह उनके अधीन चला गया। १५१७ में ओटोमन साम्राज्य के शासक सलीम प्रथम ने सीरिया, फिलिस्तीन और मिश्र पर आधिपत्य जमा लिया। १७९८ में नेपोलियन ने भारत पर विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से मिश्र पर आक्रमण किया और उसे अपने अधीन किया, यद्यपि अधिक समय तक उसका वहाँ आधिपत्य न रह सका। १८०१ में नैपोलियन अंग्रेजों से हार गया, पर इस समय अंग्रेज भी दो वर्ष से अधिक वहाँ नहीं टिक सके। इसके बाद मोहम्मद अली का युग आया। मोहम्मद अली के पोते इस्माइल ने अपने राजसी ठाटबाट के लिए स्वेज नहर के कई शेयर ब्रिटेन सरकार को बेचकर इतना कर्ज कर लिया कि मिश्र की हालत फिर बिगड़ गयी। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ब्रिटेन ने मिश्र की राजनीति में महत्त्वपूर्ण भाग लिया और उसके बाद जगलुलपाशा के नेतृत्व में मिश्र की स्वाधीनता का आन्दोलन चला। १९३६ में ब्रिटेन और मिश्र के बीच संधि हुई जो १९४७ में मिश्र सरकार ने भंग कर दी। इसके बाद रक्तहीन क्रान्ति के कारण शाह फारूक को मिश्र छोड़ना पड़ा। अब जनरल नगीब ने प्रधान मन्त्री के रूप में शासन की बागडोर सम्हाली है, और मिश्र को एक प्रजातन्त्र (रिपब्लिक) घोषित किया है। अब मिश्र एक नये संविधान की तैयारी में है और जनरल नगीब बार-बार कह चुके हैं कि मिश्र को तो भारत जैसा संविधान चाहिए।

मिश्र के निवासियों में किस-किस स्थान के लोग हैं यह पहले कहा जा चुका है। ८१ प्रतिशत मुसलमान हैं। ६२ प्रतिशत लोगों की आजीविका खेती है। कपास अनाज, चीनी प्रमुख पैदावार हैं। मिश्र से निर्यात कपास, बिनौलों, प्याज और सोना चाँदी का होता है; आयात तम्बाकू, ओट, चावल, कोयला, खाद और कपड़े आदि का होता है। जैसा कहा जा चुका है मुख्य निर्यात कपास का ही है। शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा नहीं है, यद्यपि प्रायमरी, सेकंडरी तथा विशेष स्कूलों का प्रबन्ध है और दो सरकारी विश्वविद्यालय भी हैं।

१९३३ में ही मिश्र में ७ से १२ वर्ष तक की उम्र के बच्चों के लिए शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी थी। १९४४ में प्राथमिक शिक्षा मुफ्त कर दी गयी और माध्यमिक शिक्षा १९५० में। १९५१ में बच्चों के लिए किंडर गार्टन स्कूलों की संख्या

२३३ थी, जिनमें ८४ हजार से अधिक विद्यार्थी थे। सरकारी और गैरसरकारी प्राइमरी स्कूलों की संख्या ६,५८३ और सेकंडरी स्कूलों की संख्या १७७ थी। मिश्र की सरकारी भाषा अरबी है।

मिश्र की अर्थव्यवस्था पर विचार करते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि एक तो वहां की आबादी बहुत घनी है और दूसरे बेकारी बहुत बढ़ी हुई है। नील घाटी के चप्पे-चप्पे में जिस तरह खेती होती है और वहां जितने अधिक कपास की उपज होती है, उतनी तो कदाचित् दुनियां के किसी भाग में नहीं होती, किन्तु इस पर भी मिश्र के किसानों के रहन-सहन का स्तर बहुत निम्न है। स्वास्थ्य और मकान आदि की स्थिति बड़ी खराब है। कहा जाता है कि इस समस्या का मूल कारण भूमि का अनुचित वितरण है। इसके अतिरिक्त खेती के तरीके भी पुरानें ढंग के हैं। यह हर्ष की बात है कि जनरल नगीब भूमि-समस्या की ओर पूरा ध्यान दे रहे हैं।

जहां तक मिश्र में बेकारी का प्रश्न है यह समस्या बड़ी भीषण है। शाह के युग में तो इस ओर विशेष ध्यान दिया ही नहीं गया। यदि कहीं मिश्र में कपास की खेती इतनी अच्छी न होती और उसके पास नील नदी और स्वेज नहर जैसे साधन न होते तो भगवान जाने मिश्र की आज क्या दशा होती।

अन्त में मिश्र के भविष्य के सम्बन्ध में कुछ कहे बिना इस अध्याय को समाप्त कर देना ठीक न होगा। जैसे सुदूरपूर्व में पिछले दशक जापान, भारत और चीन इन तीन शक्तियों का विकास हुआ है उसी तरह मध्यपूर्व में मिश्र और ईरान का उदय हो रहा है। ईरान अपने तेल के कारण और मिश्र अपनी सैनिक स्थिति के कारण भविष्य में संसार के इतिहास पर बड़ा प्रभाव डालेंगे इसमें सन्देह नहीं। दुर्भाग्य से ब्रिटेन का सम्बन्ध इन दोनों ही देशों से है। किन्तु जहां ब्रिटेन ने ईरान में नासमझी की नीति अपनाकर अपनी उंगलियां जला डाली हैं वहां मिश्र के सम्बन्ध में उसने बड़ी सूझ-बूझ का परिचय दिया है। सूडान के सम्बन्ध में ब्रिटेन और मिश्र में जिस तरह समझौता हो गया है, उससे यह स्पष्ट प्रकट है। सूडान में आम चुनाव होने ही वाले हैं और भारत के चुनाव-कमिश्नर श्री सुकुमार सेन सूडान चुनाव कमीशन के प्रधान होकर गये हैं। स्वेज नहर प्रदेश का मामला भी उसी तरह निपट जाने की आशा है। मिश्र का दावा है कि अंग्रेजों को वहां रहने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि अब मिश्री अपनी रक्षा आप करने में समर्थ हैं।

लाल सागर को भूमध्य सागर से मिलाने वाली स्वेज नहर १०३ मील लम्बी है, इसकी गहराई ३४ फुट और चौड़ाई औसत से १९७ फुट है। सस्ते जमाने में भी इसके निर्माण पर दो करोड़ सत्तानवे लाख पच्चीस हजार पौंड खर्च हुआ था। सत्रह

नवम्बर १८६९ से इसमें होकर जहाजों का आना-जाना हो रहा है। यह नहर पूर्व को पश्चिम से मिलाने वाली कड़ी है। ब्रिटेन सैनिक दृष्टि से और व्यापार की दृष्टि से भी इस प्रदेश पर प्रभुत्व बनाये रखना चाहता है। किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक शतरंज की चालों में मिश्र की राष्ट्रीय उमंगें तो नहीं कुचली जानी चाहिएँ। हमारा अनुमान है कि जगह-जगह के अनुभव के बाद ब्रिटेन जबरदस्ती मिश्रियों की इच्छा के विरुद्ध नहीं जायगा और मिश्रियों को ही इस बात का अवसर देगा कि वे अपनी रक्षा का भार अपने मजबूत कन्धों पर सम्हाल सकें।

कुछ लोग मिश्र के नये नेता जनरल नगीब को मिश्र का अतातुर्क कहते हैं। मिश्र की हाल की क्रान्ति में जनरल नगीब का हाथ नहीं था यह कोई नहीं कह सकता, परन्तु वहाँ जनरल नगीब को सर्वेसर्वा मानकर उसी के हाथ में भावी मिश्र का भाग्य मिश्र के इस काल के अन्य कार्यकर्त्ता नहीं सौंपना चाहते। किसी भी महान् व्यक्ति के जन्म और कार्य के बाद उसके चले जाने पर जो एक अभाव की स्थिति आ जाती है मिश्र वाले चाहते हैं कि वह स्थिति उनके देश में न आने पावे; इसीलिए जनरल नगीब बिना अन्यों की सलाह के कुछ भी करने की शक्ति नहीं रखते। उन्हें छोटी से छोटी बातें तक अपने साथियों से पूछनी पड़ती हैं और उनके साथी जनरल नगीब को अपने से केवल एक कदम आगे चलने तथा अपने साथियों को साथ ले जाने वाला व्यक्ति मानते हैं, इससे अधिक कुछ नहीं।

जनरल नगीब न तुर्की के अतातुर्क हैं, न जर्मनी के हिटलर, न इटली के मुसोलिनी, न रूस के स्तालिन और न स्पेन के फ्रांको। वे भारत के गान्धी और नेहरू भी नहीं हैं।

५

सुकरात की ज्ञान धरा पर

हमारा वायुयान एथिन्स काहरा के समय से १२ बजे रात्रि को पहुँचा, पर एथिन्स के इस समय १ बज चुके थे। एथिन्स कुछ ऐसे स्थल पर है कि काहरा के पश्चिम में पड़ता है अतः यहाँ का समय काहरा से उल्टा एक घंटा आगे रहता है।

एथिन्स में उतरते ही मुझे 'ट्रायल एण्ड डैथ ऑफ़ साक्रेटीज' पुस्तक में कभी पढ़े हुए सुकरात के संवाद स्मरण हो आये। जिस समय यूनान अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर था उस समय वहाँ संसार के सर्वश्रेष्ठ विचारकों में से एक सुकरात ने मानव की विचारधारा को एक विशिष्ट प्रवाह में बहाने का जो प्रयत्न किया था, हजारों वर्षों के बीत जाने पर, उसका अपना एक महत्त्व है। आज भी सुकरात के उन संवादों को पढ़ मानव के ज्ञान की सीमा कितनी बढ़ जाती है।

जिस न्यायालय ने सुकरात को प्राणदंड दिया उससे उन्होंने क्या अनुरोध किया, जरा गौर कीजिए—

"आपसे मेरी केवल एक ही याचना है। जब मेरे पुत्र बड़े हों और आपको ऐसा प्रतीत हो कि उनमें थोड़ी-बहुत धन-लिप्सा है अथवा उनमें गुण ग्राहकता के अतिरिक्त अन्य कोई प्रवृत्ति है तो आप उन्हें दंड दें और उन्हें उसी प्रकार सताएँ जिस प्रकार मैंने आपको सताया है। यदि वे कुछ भी न होते हुए कुछ होने का प्रपंच रचें तो आप उनकी इसी प्रकार भर्त्सना करें जैसे मैंने आपकी की है। यदि आप ऐसा करेंगे तो हम समझेंगे कि मुझे और मेरे पुत्रों के साथ न्याय हुआ है।······खैर, अब हम लोगों का समय हो गया मेरे लिए मृत्यु के आलिंगन करने का और आपके लिए जीवन उप· भोग करने का, पर हम दोनों में कौन अच्छी यात्रा पर अग्रसर हो रहा है यह एक ईश्वर के सिवा और कोई नहीं कह सकता।"

ऐसा ही एक और उदाहरण लीजिए—

"गलत शब्दों का प्रयोग अपने आप में तो एक त्रुटि है ही उससे आत्मा भी कलुषित हो जाती है।"

सुकरात ने यूनानी दर्शन और विचारधारा को एक नयी दिशा में ढाला।

उनसे पहले के सभी दार्शनिक भौतिकवादी (Materialist) थे, किन्तु उन्होंने उसमें आध्यात्मवाद (Spritualism) का पुट दिया जिसे बाद में उनके मेधावी शिष्य अफलातूँ ने चरम उत्कर्ष पर पहुँचा दिया।

ऐसे सुकरात को उस समय के एथिन्स के निवासियों ने प्राणदंड दिया था और इस प्राणदंड की घोषणा के बाद जेल से भागने के समस्त साधनों के उपलब्ध होते हुए सुकरात ने जेल से भागना अनैतिक मान प्राण बचाने की अपेक्षा नीति की रक्षा के लिए प्राण देना ही उचित माना था। जेल से भागकर प्राण बचाना उचित है या प्राण देना, इस विषय पर भी सुकरात ने जेल में ही एक लम्बा वाद-विवाद किया था।

इस विवाद में उन्होंने प्रतिपादित किया था कि आत्मा अमर है, मृत्यु एक मित्र के समान है जो आती ही है और मनुष्य को छुटकारा दिला देती है। इसीलिए मनुष्य को अपनी आत्मा में विश्वास रखना चाहिए। सुकरात के ये विचार गीता के उस उपदेश से मिलते-जुलते हैं जो भगवान् कृष्ण ने रणभूमि में अर्जुन को दिया था कि यह संसार (कर्मभूमि है, मनुष्य के मन को दुर्बल बनाने वाली माया ममता मनुष्य को पास नहीं फटकने देनी चाहिए और अनासक्त भाव से कर्त्तव्य-रत रहना चाहिए। यह सोचना कि कोई किसी को मार सकता या आत्मा मर सकती है कोरा भ्रम है। नीचे दिया गया एक अंश उस समय का है जब सुकरात से यह प्रश्न पूछा गया कि आपको किस तरह दफनाया जाय—

"यदि मैं आपकी पकड़ में आऊँ और बचकर न जा सकूँ तो आप मुझे जैसे चाहें दफना दें।......क्रीटो को समझाना मेरे लिए कठिन है कि वही तो मैं सुकरात हूँ जो आप से इस समय वार्तालाप कर रहा हूँ। वह समझता है कि मैं तो वह हूँ जिसे अभी थोड़ी देर में मृत पाया जायगा और उसकी जिज्ञासा है कि वह मुझे किस प्रकार दफनाये। मुझे यह आश्वासन दिलाने के लिए खासा लम्बा भाषण देना पड़ा है कि जहर का प्याला पीते ही मैं यहाँ नहीं रहूँगा बल्कि उन सुखों का उपभोग करने चला जाऊँगा जो इस संसार से जाने वालों को प्राप्त होते हैं। किन्तु मुझे प्रतीत होता है कि अपने को और आपको इस प्रकार सांत्वना देने का भी क्रीटो पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसलिए जिस प्रकार न्यायाधीशों के लिए क्रीटो मेरा जामिन बना था उसी तरह आप मेरे जामिन बनिए, किन्तु भिन्न रूप में। क्रीटो इस बात के लिए जामिन हुआ था कि मैं यहाँ रहूँगा। आप इस बात के लिए जामिन बनिए कि मैं अवश्य नहीं रहूँगा बल्कि ओझल और अदृश्य हो जाऊँगा। तब क्रीटो को कम पीड़ा होगी और जब वह मेरा शरीर जलते या दफनाये जाते देखेगा तो वह यह सोचकर मेरे लिए शोक नहीं करेगा कि कोई दुःखद बात तो नहीं हो रही है और मेरे अन्तिम संस्कार पर यह नहीं कहेगा कि हम सुकरात को दफना रहे हैं।"

गरल-पान से पहले जब क्रीटो ने कहा कि अभी तो सूर्य पर्वत-शिखर पर है और दिन पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ इसलिए आप अभी क्यों विष-पान करते हैं तो सुकरात ने उत्तर दिया—"कुछ देर बाद में ही विष-पान करने से क्या हाथ आयेगा ? कुछ क्षण और जीवित रहकर और इस प्रकार जीवन के प्रति आसक्ति दिखाकर मैं स्वयं अपना ही तो उपहास करूँगा।"

इस प्रकार हँसते-हँसते उस साहसी वीर ने ईश-वंदना की और विष-पान कर लिया। कितनी दुःखद और दारुण थी यह मृत्यु पर इससे पहले ही सुकरात ने अपने साथियों से कह दिया था कि "खबरदार आप लोगों में से कोई न रोये, क्योंकि रोना कमजोरी का लक्षण है और मुख्य रूप से इसीलिए मैंने स्त्रियों को यहाँ से दूर हटवा दिया है।"

सुकरात को प्राणदंड दिया गया था विचार स्वातन्त्र्य के प्रचारके अपराध पर। सुकरात के बाद भी पश्चिम में इस प्रकार के अनेक महापुरुषों को इसी प्रकार के दंड मिले हैं, जिनमें मुख्य थे जीजस क्राइस्ट। विचार-स्वातन्त्र्य की सहिष्णुता एक बड़ी भारी सहनशीलता है। भारत में हमें यह सहिष्णुता जितनी अधिक दिखायी देती है उतनी संसार के किसी देश में नहीं। भारतवासी प्रारम्भ से ही ईश्वरवादी रहे हैं, पर यदि कोई विरला व्यक्ति निरीश्वरवादी भी हुआ है और उसने अपने मत का प्रचार करने का प्रयत्न किया है तो उसे कभी भी नहीं रोका गया। भगवान राम के समय यदि एक ओर ईश्वरवादी ऋषि-मुनियों के आश्रमों की बड़ी भारी संख्या थी तो दूसरी ओर चार्वाक के इकलौते निरीश्वरवादी मत को भी रोकने का कोई प्रयत्न नहीं हो रहा था। बाद में बौद्ध और जैन मत का प्रचार भी नहीं रोका गया। विचार-स्वातन्त्र्य और हर व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार चलने की आजादी हमारी संस्कृति की प्रधान बात रही है। भारत को छोड़ विचार-स्वातन्त्र्य की ऐसी उपासना किसी देश या किसी संस्कृति में देखने को नहीं मिलती।

एथिन्स के हवाई अड्डे पर भी हमारे पासपोर्टों, टीके के कागजों आदि की जाँच होने के बाद चुंगी में हमारे सामान की जाँच हुई। यहाँ भारतीय दूतावास तो था नहीं और काहिरा के सदृश बी. ओ. ए. सी. का भी हमें कोई प्रतिनिधि नहीं मिला; इसलिए यह सारा काम हम लोगों को ही करना पड़ा। पर चूँकि विसा आदि सब चीजें मौजूद थीं और काहिरा के सदृश एथिन्स में न कोई राजनैतिक घटना हुई थी और न शासन ही फौजी कानून के अनुसार चल रहा था, इसलिए चाहे इस सब कार्य में समय लगा हो, पर और कोई दिक्कत नहीं हुई।

हवाई अड्डे से हम लोग टी. डबल्यू. ए. के दफ्तर में पहुँचे और वहाँ से एक अच्छे होटल का प्रबन्ध करने टी. डबल्यू. ए. के व्यवस्थापक से कहा। हमें किंग

गार्जे होटल में जगह मिली और रात को तीन बजे के करीब हम पलँग की शरण ले सके।

दूसरे दिन प्रातःकाल नित्य कर्मों से छुट्टी पा कोई १० बजे दिन को हम एथिन्स देखने रवाना हुए। एथिन्स कोई बहुत बड़ा नगर नहीं है। आबादी है करीब तेरह लाख; पर यदि एथिन्स बड़ा नगर नहीं है तो यूनान भी कोई बड़ा देश नहीं। यूनान देश का क्षेत्रफल ५० हजार १४७ वर्गमील और आबादी है लगभग ७५ लाख ३५ हजार। ऐसे छोटे-से यूनान देश ने यथार्थ में सारे पश्चिम का इतिहास बनाया है। यदि आप यूनान को पश्चिम के नक्शे में से निकाल दें तो पश्चिम में इतिहास, विचार, दर्शन, कला किसी भी क्षेत्र में रह क्या जाता है? छोटे-से यूनान के लिए यह क्या गौरव की बात नहीं है? सबसे पहले हमारा ध्यान हमारे होटल के सामने के ही एक लम्बे-चौड़े सिमेन्ट से पक्के बने हुए मैदान पर गया। यह मैदान आधुनिक एथिन्स का सबसे प्रमुख स्थान है। इसके चारों ओर एथिन्स नगर की बड़ी-बड़ी होटलें, बैंक, हवाई यात्रा की कम्पनियों के दफ्तर आदि सभी प्रधान-प्रधान चीजें हैं। मैदान में सैकड़ों नहीं हजारों कुर्सियां लगी रहती हैं, जिन पर सन्ध्या को एथिन्स के भिन्न-भिन्न भाग के स्त्री-पुरुष आकर बैठते, वार्तालाप करते और खाते-पीते हैं।

इस मैदान के बाद जब हमारी दृष्टि इस मैदान के चारों ओर तथा अन्य दूर-दूर तक दिखने वाली इमारतों एवं सड़कों पर गयी तब हमें मालूम हुआ कि मिश्र देश के प्राचीनतम देश होने पर भी जिस प्रकार मिश्र देश की वर्तमान राजधानी काहरा पर प्राचीनता का कोई प्रभाव न होकर काहरा एक सर्वथा नवीन नगर है, वही हाल एथिन्स का भी है। आधुनिक एथिन्स के इस प्रधान विभाग की इमारतें और सड़कें आदि सभी काहरा के सदृश ही पूर्णतया नवीन ढंग के थे। एथिन्स शहर भी बम्बई से बहुत-कुछ मिलता-जुलता था, पर बम्बई और काहरा दोनों से अधिक साफ-सुथरा।

मकानों और सड़कों के बाद हमारा ध्यान वहां के नागरिकों की ओर गया। रंग में वे भारतीयों तथा मिश्र के लोगों से कुछ अधिक साफ हैं, पर एकदम श्वेत नहीं। उनके रंग में भी गेहुँए रंग की छाया है। चेहरे और अंगों की बनावट में हम प्राचीन यूनान की मूर्तियों के कदाचित दर्शन करना चाहते थे, पर यत्र-तत्र बहुत कम लोगों मे हमें पुराने यूनान की बनावट नजर आयी। शेष थे सर्वथा आधुनिक। पोशाक स्त्री और पुरुषों की पूर्ण रूप से यूरोपीय थी। मिश्र में जो थोड़ी-बहुत स्त्रियां काले बुरके पहनती थीं और कुछ पुरुष गले से एड़ी तक लम्बे झोले तथा फुंदने वाली लाल तुर्की टोपियां वैसे प्रकार के वस्त्र यहां के लोगों के न थे। आखिर अब हम यूरोप में आ गये थे।

१६. आर्कोपोलिस पर्वत पर पार्थनीन खंडहरों में एथीना के मन्दिर के स्तम्भ

२०. पार्थेनीन खंडहरों का एक भाग
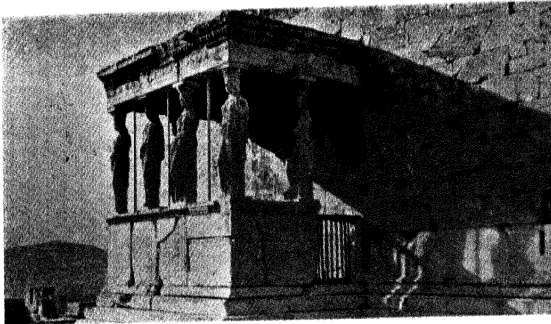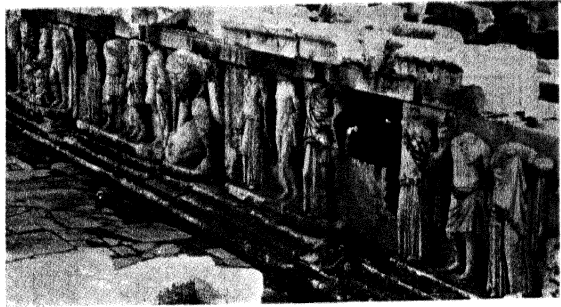
२१ पार्थेनीन खंडहरों का एक भाग

२२. यूनान का एक पुराना स्टेडियम

२४. सुकरात

२३. विश्वविद्यालय की इमारत

२५. अफलातूं
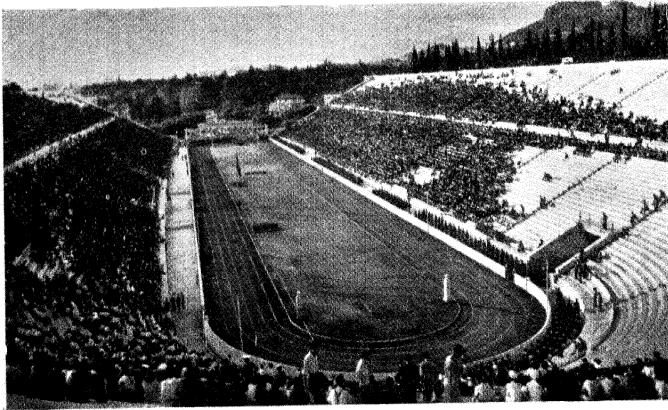
२६. एक नया स्टेडियम
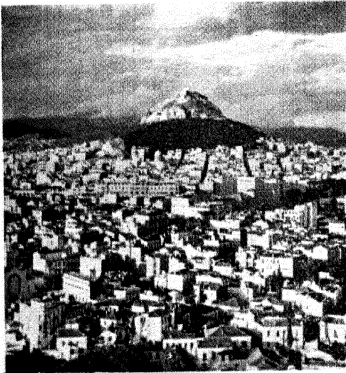
२७. विहंगम दृष्टि में एथिन्स

२८. प्राचीन वेश में यूनान के दो सैनिक

मुकुट और ऊपर के शरीर पर इधर-उधर कुछ वस्त्र के प्रदर्शन के अतिरिक्त शेष मूर्ति नग्न है। दोनों मूर्त्तियाँ नयी हैं, परन्तु उनके चेहरे और अंग पुरानी यूनानी कला के अनुरूप हैं। यूनान की मूर्त्ति एवं चित्र दोनों कलाओं में पुरुषों और स्त्रियों को अधिकतर नग्न रूप में ही प्रदर्शित किया गया है। इसका कारण मानव शरीर के सौंदर्य का प्रदर्शन है, कोई कामुक भावना नहीं और सच्ची कलामय इन मूर्त्तियों तथा चित्रों के दर्शन से मन में कोई विकारमय भावनाएँ उत्पन्न भी नहीं होतीं। नीचे की सीढ़ियों के दोनों ओर सुकरात और अफ़लातूँ की मूर्त्तियाँ थीं। ये भी कोई प्राचीन काल की बनी हुई मूर्त्तियाँ नहीं हैं, आधुनिक काल में ही बनी हैं, पर कितने भावपूर्ण थे इनके चेहरे। सुकरात के मुख पर जो भावनाएँ चित्रित की गयी थीं उनसे जान पड़ता था जैसे वे समस्त संसार का मजाक उड़ा रहे हैं और अफलातूँ के मुख से अत्यधिक गम्भीर चिन्तन दिख पड़ रहा था। दोनों के दाढ़ी थी और शरीर पर भारतीय उत्तरीय तथा धोती के सदृश वस्त्र, जो प्राचीन यूनान में भी पहने जाते थे (चित्र नं० २३ से २५)। अकादमी की इमारत की सामने की दीवार में प्राचीन यूनान के कुछ सुन्दर रंगीन चित्र चित्रित थे और हमें इस इमारत की यही सबसे बड़ी विशेषता जान पड़ी।

आज का लंच (दोपहर का भोजन) हमने समुद्र के किनारे के एक रैस्टराँ में किया। यह स्थल अत्यन्त रमणीय था, परन्तु बम्बई और मद्रास का समुद्र-तट इससे कहीं अधिक सुहावना है। गरमी काफी थी और अनेक स्त्री-पुरुष समुद्र में नहा रहे थे तथा अनेक प्रकार की जल-क्रीड़ाएँ कर रहे थे। स्त्रियों की जल-बिहार की पोशाक हमें तो बड़ी अश्लील जान पड़ी। गले से बहुत नीचे तक का अंग, पूरी बाहुएँ और पैरों से बहुत ऊपर तक जाँघें सर्वथा खुली हुई। केवल वक्षस्थल का थोड़ा-सा हिस्सा और कमर से जाँघ के आरम्भ होने तक का थोड़ा-सा भाग ढका हुआ था। स्त्री-पुरुष संग-संग नहाते हुए इस जल-विहार में मग्न थे। कई लोग रैस्टराँ में खाना भी खा रहे थे और समुद्र की बालू पर लेटे हुए अपने अंगों को और भी अधिक खोलकर सूर्य-स्नान कर रहे थे।

लंच के बाद हम कुछ समय और इधर-उधर घूमकर होटल पहुँचे और फिर होटल के सामने के उस सिमेन्ट के मैदान में पैदल घूमने को निकले, जो मैदान अब एथिन्स के नागरिकों से खचाखच भर गया था। इस घुमाई में हमें एथिन्स के नागरिक जीवन का पूरा पता लगा। यह पहला यूरोपीय नगर था जहाँ इस दौरे में हम आये थे। हमें यहाँ का सारा जीवन एकदम "ईट, ड्रिंक एन्ड बी मैरी"—खाओ-पियो मस्त रहो, के अनुरूप जान पड़ा। यूरोप नित्य के जीवन में भी कितना भौतिकवादी हो गया है इसका यह समुदाय प्रत्यक्ष उदाहरण था। हमारे देश की भी हमारे पूर्ण

अध्यात्मवादी होने तथा आधिभौतिकता से आँखें बन्द कर लेने से यथेष्ट हानि हुई है, इसमें सन्देह नहीं, पर यदि जीवन का लक्ष्य केवल–"ईट, ड्रिंक एन्ड बी मेरी"—हो जाय तो वह भी इकंगा जीवन ही होगा। जीवन में अध्यात्म और अधिभूत दोनों का उचित मिश्रण होने से ही वह पूर्ण जीवन हो सकता है।

दूसरे दिन हमने यूनान के दो अजायबघर देखे। इनमें एक का नाम था 'विनैकी म्यूजियम' और दूसरे का 'नेशनल म्यूजियम'। विनैकी म्यूजियम का संग्रह विविध प्रकार का है—मूर्त्तियाँ, चित्र, कपड़े, आभूषण, हथियार आदि। सारा संग्रह बड़ी सुन्दरता से सजाया गया है, परन्तु संग्रह में हमें कोई विशेषता न जान पड़ी। नेशनल म्यूजियम देखकर तो हमें बड़ी निराशा हुई। हम आशा करके गये थे कि वहाँ हमें यूनान की वे मूर्त्तियाँ देखने को मिलेंगी जिनकी छोटी-छोटी प्रतिमूर्त्तियाँ एवं चित्र हम न जानें कितने वर्षों से कितने स्थानों एवं कितने रूपों में देखते आ रहे हैं। परन्तु वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि वह सारी सामग्री गत लड़ाई के समय बन्द करके रख दी गयी है। लड़ाई समाप्त हुए वर्षों बीत चुके थे और इन वर्षों में दुनियाँ में न जाने कितनी नयी-नयी एवं महत्त्वपूर्ण बातें हो चुकी थीं; फिर इस सामग्री को यूनान वालों ने अब तक क्यों बन्द रखा है यह हमारी समझ में न आया। नेशनल म्यूजियम का जो संग्रह इस समय वहाँ था वह यूनान के प्राचीन इतिहास की दृष्टि से सर्वथा नगण्य था। इन दोनों अजायबघरों में कोई विशेषता न होने पर भी मिश्र के मुरदों का अजायबघर देखने से मेरे मन पर जैसा प्रभाव पड़ा था वैसा बुरा कोई प्रभाव न पड़ा।

तारीख ५ को दोपहर को १ बजे हमारा वायुयान जाता था। बिना किसी विशिष्ट घटना के हमने एथिन्स रोम के लिए छोड़ दिया और जब हम एथिन्स से रवाना हुए तब हम सोचने लगे एथिन्स तथा यूनान के सम्बन्ध में अनेक बातें।

६

कुछ और शब्द एथिन्स तथा यूनान पर

प्राचीन काल की तरह आज भी एथिन्स यूनान की राजधानी है, किन्तु उसका गौरव उसके वर्तमान में न होकर उसके अतीत में है। एथिन्स के ध्वस्त खंडहर हमें उस वैभव का स्मरण कराते हैं जो कभी था और आज नहीं है, किन्तु कला और संस्कृति के प्रेमी आज भी इस नगर के आकर्षण से बच नहीं सकते।

यूनान का नाम मात्र लेने से उस पुरातन देश का स्मरण हो आता है जहाँ सर्वोत्तम श्रेणी के साहित्य और कला का सृजन हुआ था। मिश्र, चीन और भारत की तरह इस देश को भी मानव संस्कृति का एक उद्गम स्थल होने का गौरव प्राप्त है। वर्तमान युग में यूनान का उतना अधिक महत्त्व भले ही न हो, किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से आज भी यूनान सारे संसार को, विशेषकर पश्चिमी संसार को, ओत-प्रोत प्रभावित किये हुए है।

दक्षिण की ओर यूनान प्रायद्वीप भूमध्यसागर से घिरा हुआ है। उत्तर में अल्बानिया, युगोस्लाविया और बल्गारिया ये तीन बाल्कन देश हैं। यूनान का पश्चिमी तट बहुत ऊँचा और पहाड़ी है। इस तट पर बन्दरगाहों का सर्वत्र अभाव है। इसके विपरीत पूर्वी तट खाड़ियों और बन्दरगाहों से परिपूर्ण है। लगभग सभी बड़े-बड़े नगर पूर्वी तट पर बसे हैं। इटली और यूनान में यही अन्तर है कि इटली के सभी प्रमुख नगर पश्चिमी तट पर हैं जबकि यूनान के पूर्वी तट पर। यूनान में कोई २२० टापू हैं, जिनमें सबसे बड़ा क्रीट है।

यूनान का इतिहास ईसा के जन्म से कई शताब्दी पहले का है। होमर कवि ईसा से कोई एक हजार वर्ष पहले हुआ था। समूची यूनानी संस्कृति ईसा से पहले की है। यूनान देश को तब हैलस कहते थे और यहाँ के निवासी हेलेनीज कहलाते थे। यूनान तब एक संयुक्त राष्ट्र के रूप में संगठित न था बल्कि 'नगर राज्यों' (City states) में विभक्त था। इस प्रकार के छोटे-छोटे राज्य होने का कारण भौगोलिक भी हो सकता है, क्योंकि सारा यूनान पर्वत-श्रेणियों द्वारा विभक्त है। इस प्रकार हरएक प्रदेश में अपने अलग शासन तथा रीति-रिवाज और कानून रहे होंगे। इन राज्यों

में आपसी सद्भाव अथवा मेल-जोल नहीं पाया जाता था। पारस्परिक स्पर्धा और लड़ाई-झगड़ों में ही अन्त में यूनान की शक्ति का ह्रास हो गया।

यद्यपि उस युग में यूनान में कोई डेढ़ सौ नगर राज्य थे, पर सबसे बड़ा नगर राज्य एथिन्स था। यह स्थान समुद्री शक्ति, साहित्य-कला और विद्या का भी केन्द्र था। इसके अतिरिक्त पश्चिम में वोहठिया और दक्षिण में स्पार्टा नामक नगर राज्य थे। स्पार्टा निवासी साहसी योद्धा होते थे और वे राज्य भर के लोगों को सैनिक शिक्षा देकर उन्हें युद्ध के लिए तैयार करते थे। परिणाम यह हुआ कि स्पार्टा का विकास महान् सैनिक-शक्ति के रूप में हुआ।

सिकन्दर महान् ने नगर राज्यों पर विजय और अधिकार प्राप्त करने में सफलता पायी, किन्तु उनमें एकता पैदा करने और उन्हें एक राष्ट्र का रूप देने में वह भी असफल रहा। ईसा से ३२३ वर्ष पूर्व उसकी मृत्यु होने पर समस्त यूनानी साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। दो सौ वर्ष पश्चात् यूनान रोम साम्राज्य का अंग बन गया। पाँचवीं शताब्दी में यूनान पर तुर्कों का अधिकार हो गया और उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक रहा। १८३२ में ब्रिटेन, फ्रांस और रूस की सहायता से यूनान को मुक्त होने में सफलता मिली। १९२४ में यूनान में गणराज्य की स्थापना हुई। सन् १९३५ में जनमत संग्रह के बाद वहाँ पुनः एकतंत्र स्थापित हुआ। दूसरे महायुद्ध में, तटस्थ रहने की इच्छा होते हुए भी इटली यूनान पर चढ़ बैठा और १९४१ से तीन वर्ष तक उस पर जर्मनी और इटली इन शत्रु देशों का अधिकार रहा। सन् १९४४ में पुनः मुक्त होने पर भी यूनान की परेशानियाँ खत्म नहीं हुई और सरकार सम्हालने के लिए वाम पक्ष एवं दक्षिण पक्ष में संघर्ष चलता रहा। अभी हाल के आम चुनाव में दक्षिण पक्ष की विजय हुई है। मार्शल पैपेगौस की 'ग्रीक रैली पार्टी' को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ है और उन्होंने प्रधान मंत्री के रूप में देश के शासन की बागडोर सम्हाल ली है।

युद्ध में यूनान की भारी क्षति हुई। यूनान सरकार के ही अनुसार पाँच लाख यूनानी मारे गये और यूनान की सम्पदा का लगभग तिहाई भाग नष्ट हो गया। इसलिए यूनान को सहायता की काफी आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त युद्ध से पहले की यूनान की अनेक आर्थिक समस्याएँ है जिनका हल होना भी आवश्यक है। युद्धोपरान्त की आर्थिक कठिनाइयों और राजनैतिक हलचलों के कारण, जिन्होंने गृहयुद्धों का रूप धारण कर लिया था, यूनान सरकार के सामने यह भी समस्या पैदा हो गयी थी कि वह अपने देश की रक्षा कर सके और रूस का प्रभाव न फैलने दे।

यद्यपि यूनान के चार बटा पाँच भाग में पर्वत हैं फिर भी वह एक कृषि प्रधान देश ही है। नदियाँ कम और छोटी हैं एवं वर्षा भी अधिक नहीं होती। मुख्य फसलें

तम्बाकू, गेहूँ, जौ, अंजीर और कपास की हैं। इसके अतिरिक्त अंगूरों के भी बड़े-बड़े बाग हैं। इधर कुछ कारखानों का भी विस्तार हुआ है, जिनमें से मुख्य जैतून के तेल, शराब, कपड़े, चमड़े और साबुन के हैं। रेलवे लाइन की लम्बाई १६६८ मील हैं। यूनान के पर्वतों से संगमरमर बड़ी मात्रा में प्राप्त होता है।

सुना कि देश के भीतरी भाग में रीति-रिवाज और पोशाक पुरानी ही चली आती है, पर एथिन्स में कुछ सैनिकों को छोड़ (चित्र नं० २८) इस तरह की पोशाकें पहने हुए लोग हमें दिखायी नहीं दिये। दिन भर के परिश्रम के बाद देहातों में जहाँ यूनानी लोग एकत्र होते हैं वहाँ बूढ़े लोग कहानियाँ सुनाते हैं। अपने देश में जैसा चौपाल का वातावरण होता है लगभग वैसा ही यूनानी ग्रामीण जीवन का समझना चाहिए। यूनानवासी अपनी प्राचीन परम्पराओं के विशेषकर नृत्य-कला के प्रेमी हैं। एक और बात में यूनानियों की भारतीयों से समानता है। यूनान में विवाह गिरजाघर में न होकर घर में होता है और वधू वर के साथ जाना नहीं चाहती। अन्त में वर अपने परिवार वालों के साथ आकर वधू को एक तरह से 'जबरदस्ती' अपने साथ ले जाता है।

यूनान में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का दरजा नीचा माना जाता रहा है, किन्तु इन दिनों काफी अन्तर पड़ा है। यद्यपि आज भी यूनान में स्त्रियाँ मुख्य रूप से गृहस्थी का ही भार सम्हालती हैं, किन्तु अब वे समाज के विभिन्न क्षेत्रों में अग्रसर हो रही हैं। अनुमान है कि स्त्रियों की हीनता का कारण यूनान पर तुर्कों का ४०० वर्ष तक का शासन है।

जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है सात से बारह वर्ष तक की उम्र के बच्चों के लिए शिक्षा अनिवार्य है। व्यापार, कृषि और टेक्नीकल शिक्षा का वह स्तर नहीं रहा है जिसके लिए यूनान प्राचीन काल में सारे संसार में विख्यात था।

यूनान की जिस कला का समस्त संसार पर प्रभाव पड़ा है वह स्थापत्यकला और मूर्त्तिकला है। स्थापत्यकला में वहाँ के स्तम्भों की तमाम दुनियाँ में नकल की गयी है। हमारे देश में भी ब्रिटिश साम्राज्य काल की पुरानी इमारतों, विशेषकर कलकत्ते की इमारतों, में इन स्तम्भों के सदृश ही स्तम्भ बने हुए हैं। कलकत्ते की इन इमारतों में वहाँ के टाउनहाल के स्तम्भ यूनानी स्तम्भों के पूर्ण प्रतीक हैं। यूनान की मूर्त्तियों के अंग-प्रत्यंग अत्यन्त सुडौल रहते हैं इसलिए वहाँ की प्रसिद्ध मूर्त्तियाँ नग्न रहती हैं। यूनान की मूर्त्तिकला से यदि किसी देश की मूर्त्तिकला स्पर्धा कर सकती है तो भारत की। यूनान की मूर्त्तिकला इतनी परिष्कृत रहने पर भी संसार की जो सबसे अच्छी दो मूर्त्तियाँ मानी जाती हैं वे भारत की मूर्त्तियाँ ही हैं। एक नटराज की मूर्त्ति और दूसरी सारनाथ की बुद्ध-प्रतिमा।

स्थापत्यकला और मूर्त्तिकला के अतिरिक्त यूनान का दार्शनिक और ललित

साहित्य भी पश्चिम के साहित्य का सर्वोत्कृष्ट साहित्य है और सारा पश्चिमी साहित्य उसी पर आधारित है। ललित साहित्य का सर्वोत्कृष्ट रूप जो नाटक है, भारत के पश्चात् उसका विकास संसार में यूनान में ही हुआ था।

बालकन प्रदेश और यूनान—बालकन प्रदेश में यूनान, अलबानियाँ, यूगोस्लाविया, हंगरी, रूमानियाँ, बल्गारिया और टर्की ये देश आते हैं। दूसरे महायुद्ध में जर्मनी ने इस प्रदेश को रौंद डाला था और रूस को गम्भीर खतरा पैदा हो गया था। युद्ध-काल के तुरन्त बाद रूस ने इस प्रदेश में अपना प्रभाव जमाने की कोशिश की। अपने जीवन के अन्तिम आठ वर्ष में स्तालिन ने बालकन प्रदेश पर सबसे अधिक दबाव डालने का प्रयत्न किया, किन्तु वहीं उन्हें सबसे अधिक असफलता मिली। उन्होंने तुर्की को डराने धमकाने, यूनान की नींव पर कुठाराघात करने और यूगोस्लाविया को पुनः अपने बाहुपाश में लेने की कोशिश की, किन्तु इन तीनों स्थलों पर उन्हें निराश होना पड़ा।

इन तीनों ही देशों में बढ़ती हुई गहरी मित्रता न केवल इन तीनों के लिए हितकारी सिद्ध होगी वरन् संसार के लिए भी कल्याणकारी साबित होगी। इन तीनों देशों की एकता का पहला कदम १६५२ में उठाया गया, जब ये देश उत्तरी एटलांटिक संधि संस्था के अधीन औपचारिक रूप में एक दूसरे की सहायता के लिए बाध्य हो गये।

किन्तु इन तीनों देशों की मित्रता होने पर भी अनेक कठिनाइयाँ अभी भी हल नहीं हो पायी हैं। उदाहरण के लिए एक कठिनाई है यातायात-व्यवस्था की। रेल से इन देशों में सम्पर्क स्थापित है, किन्तु यह रेल-व्यवस्था संसार में अत्यन्त धीमी गति वाली है। संयुक्त रक्षा के लिए समुचित आयोजन भी आवश्यक है। एक समय प्रेक्षकों का यह भी विचार था कि संयुक्त रक्षा की योजनाओं में इसलिए भी बाधा पड़ेगी कि यूनान और तुर्की तो एटलांटिक संधि संस्था के देश हैं किन्तु यूगोस्लाविया नहीं है।

बालकन प्रदेश के इन तीनों देशों की मित्रता का एक स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि तीनों देशों की राजधानियों में अब यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि पूर्वी यूरोप के देश यूरोप में कोरिया की सी स्थिति पैदा नहीं कर सकेंगे। बल्गारिया, रूमानियाँ, हंगरी अथवा अलबानियाँ तब तक कोई आक्रमण स्वयं न कर सकेंगे जब तक कि उन्हें रूस में भारी सहायता प्राप्त होने की आशा न हो।

संसार की भावी परिस्थिति कैसी रहेगी यह बहुत दूर तक इस बात पर निर्भर है कि संसार व्यापी युद्ध टाला जा सकता है या नहीं। यह सभी जानते हैं कि भारत को छोड़ संसार के सारे देश आज दो गुटों में बँटे हुए हैं। यह भी सर्वविदित है कि एक गुट का नेतृत्व अमेरिका के हाथ में है और दूसरे गुट का रूस के। बालकन प्रदेश के छोटे-छोटे देश भी यद्यपि इन गुटों के बाहर नहीं हैं, परन्तु फिर भी इतना मानना पड़ेगा कि अपने-अपने गुट की भी हर बात पर इनसे 'तथास्तु' न कहलाया जा सकेगा।

७

पश्चिम के उस देश में जो सदा कलाकारों को प्रिय रहा है

जब हमने इस यात्रा का कार्यक्रम बनाया था तभी कैनेडा और अमेरिका को छोड़ सबसे अधिक समय लन्दन और इटली देश को देने का निश्चय किया था। लन्दन को इसलिए कि ग्रेट ब्रिटेन से हमारा युगों तक सम्बन्ध रहा था, स्वतन्त्र होने के पश्चात् आज भी अपने देश के बाहर हमारा सम्बन्ध ग्रेट ब्रिटेन से ही सबसे अधिक है और इटली को इसलिए कि प्राकृतिक और सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से यूरोपीय देशों में इटली का अपना एक विशेष स्थान है। इसीलिए दुनियाँ के न जाने कितने प्रकृति और संस्कृति प्रेमी वहाँ केवल जाते ही न थे, पर अनेकों ने अपनी जन्मभूमि न होते हुए भी इटली को ही अपना निवास-स्थान बना लिया था। अंग्रेजी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवियों में से बायरन, शैली, कीट्स आदि इटली में ही अधिकतर रहते थे और उनकी मृत्यु भी इटली में ही हुई थी।

इटली को प्रकृति ने असीम सौन्दर्य दिया है। वहाँ की पर्वत-श्रेणियाँ, वन, झीलें, नदियों के तट आदि सभी स्थलों पर प्रकृति के भिन्न-भिन्न प्रकार के सुन्दर स्वरूप अपनी अद्भुत छटा दिखाते हैं। यूनान के बाद वहाँ की सारी संस्कृति का केन्द्र रोम हो गया था और सिकन्दर के बाद रोमन साम्राज्य के सीज़रों ने अपने राज्य-विस्तार के साथ-साथ संस्कृति का विस्तार भी प्रचुर परिमाण में किया था। रोम नगर शताब्दियों तक पश्चिमी संसार का हर दृष्टि में प्रधान नगर रह चुका था। संगमरमर की खानों के बाहुल्य तथा उन खानों से निकलने वाले अत्यधिक शुभ्र साथ ही भिन्न-भिन्न रंग के पत्थरों ने वहाँ की स्थापत्य और मूर्तिकला के उत्कर्ष में कितना योग दिया था। माइकिल एंगलो, राफेल आदि चित्रकारों ने दीवालों पर तथा कैनवास पर जैसे महान् और सजीव चित्र बनाये हैं वैसे चित्र संसार के अन्य किसी देश में किसी जमाने में भी निर्मित नहीं हुए। यद्यपि सिसरों के समान दार्शनिक और दांते के समान महाकवि भी उस भूमि पर जन्म ले चुके थे, फिर भी इतना कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि स्थापत्य, मूर्तिकला और चित्रकला का वहाँ जितना विकास हुआ था, दर्शन तथा साहित्य का नहीं। दर्शन में भारत एवं साहित्य में अन्य अनेक देश इटली

से कहीं आगे रह चुके थे और आज भी हैं।

इटली दक्षिण यूरोप के मध्य भाग में एक प्रायद्वीप है। इसके पूर्व में एड्रियाटिक सागर है, दक्षिण में आयोनियन सागर और पश्चिम में टाइरनियन सागर। दूसरी बड़ी लड़ाई के बाद इटली के चार जिले फ्रांस के पास चले गये और कुछ भाग यूगोस्लाविया, यूनान, अल्बानियाँ आदि के पास चला गया। इसी प्रकार इटली के उपनिवेशों पर भी उसका नियंत्रण नहीं रहा।

यूरोप का नक्शा देखने से इटली की आकृति एक बूट की-सी है, जिसके पंजे के सामने सिसली एक ऐसा तिकोना पत्थर प्रतीत होता है, जिसमें वह ठोकर मारने ही वाला हो। समूचे इटली की लम्बाई ७६० मील है, चौड़ाई उसकी डेढ़ सौ मील से किसी भी स्थान पर अधिक नहीं है, अधिकतर तो सौ मील ही है। इटली का क्षेत्रफल है १,३१,००० वर्ग मील। वहाँ की आबादी है चार करोड़ सत्तर लाख से कुछ अधिक। रोम अभी भी इटली का प्रधान नगर एवं वहाँ की राजधानी है। वहाँ की आबहवा मातदिल है। जाड़ों में बहुत कम स्थानों पर बरफ गिरता है और गर्मियों में सख्त गर्मी नहीं होती। आजकल वहाँ गर्मी का मौसम चल रहा था।

हमारा हवाई जहाज जिस समय रोम पहुँचा उस समय रोम के तीसरे पहर के २॥ बजे थे। रोम का समय एथिन्स से एक घण्टे पीछे था। हमारी पहुँच का तार यहाँ ठीक समय पहुँच गया था अतः भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव श्री उमाशंकर बाजपेई और श्री बालकृष्णन हवाई अड्डे पर मौजूद थे। श्री उमाशंकर, श्री गिरजाशंकर बाजपेई के पुत्र हैं और मैं दिल्ली से ही उन्हें भलीभांति जानता था। भारतीय दूतावास के लोगों के हवाई अड्डे पर रहने के कारण हमारे पासपोर्ट तथा अन्य जाँचों में बहुत अधिक समय न लगा। हमारे ठहरने की व्यवस्था भारतीय दूतावास ने ही रिअले (अंग्रेजी में रायल) होटल में की थी। हवाई अड्डे से हम होटल आये। रास्ते में हमें रोम नगर का कुछ भान हो गया। काहरा और एथिन्स के सदृश रोम भी एक आधुनिक नगर है, पर कई जगह दिल्ली के पुराने फाटकों और शहर पनाह क सदृश यहाँ भी प्राचीन रोम के कुछ फाटक तथा यहाँ-वहाँ से टूटी हुई चाहर-दीवारी के कुछ हिस्से दीख पड़ते हैं। कुछ संगमरमर के प्राचीन मकान भी हैं और उन पर कुछ मूर्त्तियाँ। रोम में काहरा और एथिन्स के सदृश स्वच्छता हमें दृष्टिगोचर न हुई। यहाँ के निवासियों में हमें गेहुएँ वर्ण की झाँई और अधिक दिखायी दी। स्त्री-पुरुष सभी की वेशभूषा यूरोपीय थी।

जब हम होटल पहुँचे तब हमने देखा कि हमारा होटल नया न होकर पुराना है और पुराना होने के कारण पुराने मकानों में जैसी ऊँची छत और बड़े दरवाजों के बड़े-बड़े कमरे होते हैं उस प्रकार के इस होटल के कमरे हैं। हमें तो यह होटल, अब

तक हम जिन होटलों में ठहरे थे, उन सबसे अच्छा जान पड़ा। होटल में अपना सामान आदि रख हमने इटली घूमने का कार्यक्रम बनाया। आरम्भिक कार्यक्रम में हमने इटली को पाँच दिन दिये थे, पर इतने थोड़े समय में इटली किसी प्रकार भी न देखा जा सकता था। हमने एक दिन इटली के लिए और बढ़ाया, पर इतने पर भी हम इटली के सभी प्रधान स्थानों को अपने कार्यक्रम में शामिल न कर सके। रोम, फ्लॉरेन्स और वेनिस ये तीन ही स्थान हमारे कार्यक्रम में रखे जा सके। हमें इस बात का खेद रहा कि नेपिल्स और उसी के सन्निकट पुराने पांपिआयी के खोदे हुए खंडहर हमारे कार्यक्रम में शामिल न हो सके; पर कोई उपाय न था, छः दिन से अधिक समय हम किसी प्रकार भी इटली को न दे सकते थे क्योंकि लन्दन से कैनेडा हमें एक निश्चित तारीख को रवाना होना था। एक बात हमें और निर्णय करनी पड़ी। रोम से जिनीवा तक की यात्रा हमें रेल से करने का निर्णय करना पड़ा अन्यथा हम फ्लॉरेन्स और वैनिस न जा सकते थे।

होटल से हम सीधे भारतीय दूतावास को गये और वहाँ भारतीय राजदूत श्री प्रेमकिशन से मिल दूतावास के अन्य कर्मचारियों से मिले तथा वहाँ का काम देखा। यहाँ का दूतावास एक किराये के मकान में है।

दूतावास से हम फिर होटल लौटे और भोजन से निवृत हो रात को एक मार्ग-प्रदर्शक की पर्यटक बस में अन्य अनेक यात्रियों के साथ रात्रि के रोम को देखने चले। रात्रि को रोम सचमुच बड़ा सुन्दर जान पड़ा। बिजली के भिन्न-भिन्न रंगों के ट्यूबों से बने हुए बाजारों की दूकानों के साइनबोर्डों तथा अन्य प्रकार के बिजली के प्रकाश से सारा नगर जगमगा रहा था। दोपहर को हवाई अड्डे से होटल जाते हुए हमें रोम में स्वच्छता की जो कमी दृष्टिगोचर हुई थी रात्रि को वह भी छिप गयी थी। पर्यटक बस चलती जाती और मार्ग-प्रदर्शक लाउड स्पीकर द्वारा स्थानों का वर्णन करता जाता, अंग्रेजी और फ्रांसीसी दो भाषाओं में।

सबसे पहले हमें एक फव्वारा दिखाया गया। इसकी पानी की धाराएँ नीचे लगे बिजली के बल्वों के कारण रंग-बिरंगी हो गयी थीं। इस फव्वारे को देख मुझे सन् १६११ की इलाहाबाद प्रदर्शनी का ठीक ऐसा ही फव्वारा याद आया। मैं समझता हूँ इसी फव्बारे को ध्यान में रख इलाहाबाद की उस प्रदर्शनी का वह फव्वारा बनाया गया होगा। इलाहाबाद प्रदर्शनी के उस फव्वारे के अतिरिक्त हमें मैसूर के वृन्दावन के फव्वारे भी याद आये। यद्यपि उन फव्वारों की जलधाराएँ भी इसी प्रकार बिजली के भिन्न-भिन्न रंगों के बल्वों से चमकती हैं पर इसके सिवा इस फव्वारे की बनावट और मैसूर के वृन्दावन के फव्वारों की बनावट में कोई साम्य नहीं है, वह तो इलाहाबाद की प्रदर्शनी के फव्वारे में ही था। इलाहाबाद की उस प्रदर्शनी का चालीस वर्ष

बीत चुके थे। इन चालीस वर्षों में मैंने इस फव्वारे के सदृश अन्य कोई फव्वारा न देखा था, पर चालीस वर्ष बीत जाने पर भी इस फव्वारे को देखते ही चालीस वर्ष पुरानी चीज मुझे याद आगयी। कितना स्मरण रहता है मानव के मस्तिष्क को। हर चीज उसे याद रहती है, ऐसा नहीं, पर जिस वस्तु का मन पर गहरा प्रभाव पड़ जाता है वह शायद नहीं भूलती। मुझे याद है कि इलाहाबाद-प्रदर्शनी के उस फव्वारे का मेरे मन पर गहरा प्रभाव पड़ा था अतः चालीस वर्ष बीत जाने पर भी उसी के सदृश एक चीज देख मुझे उस फव्वारे का स्मरण हो आया।

फव्वारे को भली भाँति देखते हुए हम रोम की संगमरमर की प्रसिद्ध इमारत, विक्टर इमेनुअल मेमोरियल पहुँचे। बस यहाँ खड़ी हो गयी और हम सब यात्रियों ने बस से उतर इस इमारत का निकट से परीक्षण किया। मार्ग-प्रदर्शक ने इस इमारत का पूरा विवरण बताया जो इस प्रकार है—

सम्राट् इमेनुअल द्वितीय के स्मारक के रूप में इस इमारत का निर्माण सन् १८८५ से १६११ के बीच हुआ था। यह स्मारक इटली की एकता और स्वतन्त्रता का प्रतीक माना जाता है। इसका यह काम सम्राट विक्टर द्वितीय के शासन-काल में सम्पन्न हुआ था। इसका मानचित्र सकोनी नामक कलाकार ने तैयार किया था। यह सफेद पत्थर का बना हुआ है। एक स्तम्भ पर सम्राट इमेनुअल की कांसे की मूर्त्ति है (चित्र नं० २६)। इस इमारत को देखने के पश्चात् हम रोम के कुछ पुराने स्थानों को देखने चले। इसके बाद हम पहुँचे रोम के एक पुराने कुए पर जहाँ आजकल एक रेस्टराँ है।

रेस्टराँ में बाकी के यात्रियों में से अधिकांश ने तो रोम की प्रसिद्ध शेम्पीन मदिरा पी, पर हम तीनों ने सन्तरे का शर्बत। कहा जाता है कि रोम की मदिरा संसार में सबसे अच्छी होती है और इतने पर भी इतनी सस्ती कि पानी से भी उसकी कीमत कम।

रेस्टराँ से हम गये रोम के एक प्रसिद्ध रात्रि-क्लब में। रात्रि-क्लब की लीला जीवन में हमने सर्वप्रथम रोम में ही देखी। यह रात्रि-क्लब हमें तो कामवासनाओं के उभारने तथा व्यभिचार करने का जीता-जागता स्थल दृष्टिगोचर हुआ। एक विशाल मंडप में सैकड़ों कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं। एक ओर था रंगमंच, जिस पर पियानो, वायलन आदि सारे पश्चिमी वाद्य यन्त्रों का एक अच्छा आरचेस्ट्रा बज रहा था। मंडप की कुर्सियाँ भरी हुई थीं नर और नारियों से, जो खा रहे थे, पी रहे थे, धीरे-धीरे वार्तालाप भी करते हुए मुस्करा रहे थे और हँस रहे थे। सबसे अधिक पी जा रही थी वारुणी। आरचेस्ट्रा के सामने कभी होता था नृत्य और कभी गान। इटली की भाषा तो हम जानते न थे, अतः जब गान होता तब गायकों की स्वर-लहरी ही हम सुन पाते तथा उन स्वरों के साथ देख पाते गायकों के हावभाव; हाँ, नृत्य हम उसी तरह देख सकते जिस

तरह अन्य लोग। नृत्य की अपनी एक भाषा होती है जिसे कहा जाता है मुद्राएँ और जो मुद्रा-शास्त्र में पारंगत नहीं होते वे इन मुद्राओं का एक-सा ही अर्थ लगाते हैं। फिर इस रात्रि-क्लब के नृत्यों की मुद्राओं का अर्थ समझ सकना तो बड़ा ही सरल था। उनमें भारतीय नृत्य पद्धतियों में भारत नाट्य, कथाकली, गरभा, मैनपुरी और कथक पाँचों में से किसी की भी गूढ़ता न थी। रूस की प्रसिद्ध नर्तकी मैडम पवलवा की इस घोषणा को, कि भारत ने ही नृत्यकला और वैज्ञानिक नृत्यकला का सर्वप्रथम आविष्कार किया है और भारत की नृत्यकला ही सर्वोत्कृष्ट नृत्यकला है, यद्यपि अनेक वर्ष बीत चुके थे तथा भारत के प्रसिद्ध नर्तक श्री उदयशंकर और रामगोपाल आदि की पश्चिम सराहना भी काफी कर चुका था, परन्तु इस रात्रि-क्लब के इस नृत्य में उन मुद्राओं का कोई स्थान न था। यहाँ के नृत्य की तो सारी मुद्राओं का एक ही अभीष्ट था कामुकता। ये नृत्य कर रही थीं रोम की कुछ तरुणियाँ जिनके शरीर केवल दो स्थानों पर ही ढके हुए थे वक्षस्थल कोई चार-चार इंच डायमेटर की चोलियों से और जाँघों के बीच कोई तीन-तीन इंच चौड़ी पट्टियों से। शेष सारे, अंग खुले हुए थे। एथिन्स में जल-विहार करने वाली सुन्दरियों के शरीर पर भी हम वस्त्रों की कमी देख चुके थे, पर यह रात्रि-क्लब तो इस दृष्टि से एथिन्स के समुद्र-तट से कहीं आगे बढ़ा हुआ था।

जब हम लोग यहाँ पहुँचे तो यह पौने सोलह आना तक नग्न शरीरों वाला कामुक नृत्य वहाँ की छै तरुणियाँ कर रही थीं। इसके बाद हुआ एक गान और फिर एक पुरुष और स्त्री का नृत्य। यह पुरुष-स्त्री का नृत्य क्या एक बलशाली कामुक कुश्ती थी। कामलीला में बल की पराकाष्ठा तक प्रयोग का प्रदर्शन इस नृत्य का उद्देश्य था। और इस नृत्य के बाद रंगमंच दे दिया गया दर्शकों को नाचने के लिए। नृत्यों के दर्शन से दर्शकों की भावनाएँ उत्तेजित हो ही चुकी थीं, उन्हें और भी सहायता पहुँचायी होगी मदिरा ने। अब दर्शकों की एक एक जोड़ी खूब नाची। हमारे साथ के दो यात्री भी उन छै नृत्य करने वाली छोकरियों में से दो को लेकर नाचने लगे।

जब दर्शकों का यह नृत्य जी भरकर हो चुका तब फिर से पहले वाले नृत्यों की ही द्वितीय आवृत्ति हुई और सारा कार्यक्रम समाप्त हुआ कोई सवा बजे रात्रि को।

यहाँ हमारा आज रात्रि का पर्यटन समाप्त हुआ और हम लोग होटल लौटे। जब हम होटल लौट रहे थे तब मुझे याद आया सन् १६२० के पहले का वह जमाना जब हमारे यहाँ अनेक गार्डन पार्टियाँ होती थीं और उनमें में भी इस यूरोपीय ढंग का नाच नाचा करता था। यूरोपीय सभ्यता में इस प्रकार के नर-नारियों के सम्मिलित सामूहिक नृत्य का अपना एक स्थान है, पर उनमें तथा रात्रि-क्लब में कामुक नृत्यों के पश्चात् जो ऐसे नृत्य होते हैं इसमें अन्तर...महान् अन्तर है। नर-नारियों के सम्मिलित सामूहिक नृत्यों की प्रथा तो यूरोप के सिवा भी कई देशों और समुदायों में है।

भारत में भी वनवासी समुदायों में से अधिकांश में ऐसे नृत्यों का बहुत अधिक प्रचार है और मेरा तो मत है कि पुराणों में कृष्ण के जिस महारास का वर्णन है एवं जिसके सम्बन्ध में यह कहा गया है कि कृष्ण के इतने अधिक रूप हो गये थे कि दो-दो गोपियों के बीच एक-एक कृष्ण नृत्य करते थे वह महारास भी ऐसा ही सामूहिक नृत्य होगा जिसमें ऐसा समा बँधा होगा कि उस रास में नृत्य करने वाले समस्त गोप कृष्ण के समान दिखते होंगे। जो कुछ हो, स्त्री-पुरुषों के ऐसे सम्मिलित सामूहिक नृत्यों के मैं विरुद्ध नहीं हूँ, पर रात्रि-क्लब की जिस पृष्ठभूमि में ये नृत्य होते हैं वे मेरे मतानुसार सर्वथा वर्जित होने चाहिएँ। मै नहीं जानता कि भारतवर्ष में भी रात्रि-क्लब हैं या नहीं और यह सब कहीं होता है या नहीं, यदि होता हो तो सरकार को हमारे देश में तो इन रात्रि-क्लबों को तत्काल बन्द कर देना चाहिए।

दूसरे दिन प्रातःकाल ६॥ बजे हम फिर पर्यटक बस द्वारा रोम के प्रधान स्थानों को देखने चले। आज के पर्यटन में पहले तो हमें वही संगमरमर की विक्टर इमेनुअल मिमोरिअल-इमारत दिखायी गयी और इसके बाद हम गये ईसाई रोमन कैथलिक के सबसे बड़े पादरी पोप जहाँ रहते हैं उस प्रसिद्ध वैटिकन का अजायबघर तथा वैटिकन देखने। कहा जाता है कि वैटिकन का यह अजायबघर दुनियाँ का सबसे बड़ा अजायबघर है। सचमुच ही हमने इसका संग्रह जितना बड़ा देखा उतना अब तक कहीं के अजायबघरों में नहीं देखा था। कितनी मूर्त्तियाँ, कितने चित्र, कितना विविध प्रकार का सामान यहाँ संग्रहीत था। खेद की एक ही बात थी कि आज हमें जो मार्ग-प्रदर्शक मिला था, वह बहुत ही खराब था। वह इतनी जल्दी चलता तथा इतनी जल्दी संग्रहीत वस्तुओं का परिचय देता कि उसका अधिकांश कथन हमारी समझ में ही न आता। फिर अधिकांश चीजों को वह बतलाता तक नहीं, अरे बताना दूर रहा उन संग्रहों के मार्ग ही छोड़ देता। मैं यह मानता हूँ कि यह अजायबघर इतना बड़ा है और संग्रह इतना अधिक कि जितना समय हमारे पास था उस समय के भीतर उस सारे संग्रह को कोई भी मार्ग-प्रदर्शक हमें न बता सकता था, पर यदि थोड़ा समय भी वह अधिक देता, थोड़ा धीरे चलता तथा अपनी भाषण-गति भी थोड़ी मन्द रखता और उसने अपना कार्य जो १२॥ बजे समाप्त कर दिया वह पूर्व-निश्चय के अनुसार १ बजे समाप्त करता तो कम से कम हम संग्रह के सारे मार्गों में घूम लेते। फिर भीड़ भी हमारे साथ इतनी अधिक थी कि सबको इकट्ठा रखना भी एक समस्या था। हमारे समुदाय के अतिरिक्त इसी प्रकार के अन्य भी अनेक समुदाय थे। मैं समझता हूँ कि वैटिकन के उस अजायबघर में एक ही समय में कोई पाँच हजार स्त्री-पुरुष घूम रहे होंगे।

मैंने सुना है कि यह वहाँ का नित्य का हाल है। कितने लोग आते

यात्रियों के रूप में और कितना पैसा मिल जाता है यहाँ के व्यवस्थापकों को इनकी टिकटों से। इन संस्थाओं की सारी सुव्यवस्था का शायद यही प्रधान कारण है। वैटिकन का अजायबघर देखने के बाद हमने वैटिकन के शेष स्थल भी सरसरी दृष्टि से देखे, अनेक तो दूर से ही, और वैटिकन का कुछ हाल भी समझने का यत्न किया।

वैटिकन राज्य पोप की प्रभुसत्ता के अधीन एक स्वतन्त्र राज्य है। यह संसार का सबसे छोटा राज्य है। इसका क्षेत्रफल सौ एकड़ से कुछ अधिक है और जनसंख्या भी एक हजार से बहुत अधिक नहीं है। पुलिस-व्यवस्था इटली की पुलिस के पास है।

१८७० में इटली के एकता स्थापित होने के बाद ११ फरवरी, १९२९ में लाटेरान की संधि द्वारा वैटिकन नगर की स्थापना हुई।

वैटिकन के अधिकतर भाग को वैटिकन प्रासाद और सेंट पीटर गिरजाघर घेरे हुए हैं। वैटिकन प्रासाद चीन की राजधानी पीकिंग में वहाँ के सम्राट के महल के बाद संसार का सबसे बड़ा प्रासाद है। यह पचपन हजार वर्ग मीटर में बना हुआ है, इसमें बीस आँगन हैं और लगभग डेढ़ हजार आलय और कमरे आदि हैं। न केवल अपने आकार के कारण बल्कि ऐतिहासिक और कलात्मक दृष्टि से भी यह महल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। १४५० में निकोलस पंचम के बाद के सभी पोपों ने इसको अधिकाधिक समृद्ध बनाया है।

सेंट पीटर गिरजाघर के सम्मुख २६० फुट लम्बा और २१५ फुट चौड़ा एक चौक है। इसमें अण्डाकार चार-चार की कतार में स्तम्भ खड़े हुए हैं जिन पर छत है। स्तम्भों की संख्या २८४ है और ऊपर महात्माओं की १४० मूर्त्तियाँ हैं। गिरजाघर के लिए सीढ़ियों पर चढ़ने से पहले ही सेंट पीटर की मूर्त्ति के दर्शन होते हैं। कितनी भव्य है वह मूर्ति, कितना सौम्य है सारा दृश्य।

वर्तमान गिरजाघर उस स्थल पर बना हुआ है जहाँ सेंट पीटर की कब्र के पास सम्राट कान्स्टेंनटाइन का प्रासाद था।

सेंट पीटर गिरजाघर के भीतरी भाग में प्रवेश करने के लिए पाँच द्वार हैं। दाईं ओर का पहला द्वार पवित्र द्वार अथवा जयन्ती द्वार कहलाता है। यह पच्चीस वर्ष में केवल उसी समय खोला जाता है जबकि जयन्ती समारोह होते हैं।

सेंट पीटर गिरजाघर में रोमन कला की झलक स्पष्ट है (चित्र नं० ३१)। जल्दी के कारण हम सेंट पीटर गिरजाघर को उतनी अच्छी तरह न देख सके जितनी अच्छी तरह हमने बाद में इटली में दूसरे प्रसिद्ध गिरजाघर सेंट पाल को देखा।

वैटिकन से लौटकर हमने दोपहर का भोजन किया। तीसरे पहर तीन बजे इसी प्रकार की एक पर्यटक बस से हमने फिर घूमने का निश्चय किया था, परन्

आज प्रातःकाल की इस प्रकार की पर्यटक बस का कुछ ऐसा बुरा अनुभव हुआ कि हमने पर्यटक बस के अपने रिजर्वेशन को मन्सूख करा एक अलग मार्ग-प्रदर्शक के साथ एक टैक्सी में जाना तय किया। हम लोग तीन व्यक्ति थे। कैनेडा के एक तथा फ्रान्स के एक इस प्रकार दो सज्जन और हमारे साथी के रूप में मिल गये। इस प्रकार हम पाँच ने मिलकर एक मार्ग-प्रदर्शक और एक टैक्सी का प्रबन्ध किया। मार्ग-प्रदर्शक ऐसा था जो अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी दो भाषायें जानता था।

अब हम सबसे पहले रोम के प्रसिद्ध सेंट पाल गिरजाघर को देखने गये। कितना विशाल, भव्य और सुन्दर यह गिरजाघर है। बनावट तथा उसकी सामग्री में तो नहीं, परन्तु विशालता, भव्यता और सौन्दर्य में इसका पूरा मिलान काहरा की मुहम्मद अली की मस्जिद से हो सकता है। जैसा विशाल, भव्य और सुन्दर यह गिरजाघर है वैसी ही काहरा की वह मस्जिद। और दोनों हैं उस जगदाधार जगदीश्वर की वन्दना के स्थान। मुझे एकाएक दक्षिण भारत के ऐसे ही विशाल, भव्य और सुन्दर श्री रंग, रामेश्वर एवं मीनाक्षी देवी मन्दिरों का स्मरण हो आया। उन मन्दिरों के गोपुरों, मण्डपों आदि में भी ऐसी ही विशालता, भव्यता और सौन्दर्य दिखता है, चाहे बनावट सर्वथा दूसरे प्रकार की ही क्यों न हो। तो स्थापत्यकला की भिन्न-भिन्न प्रणालियों से इन वस्तुओं का मन पर जो प्रभाव पड़ता है, उस प्रभाव का कोई सम्बन्ध नहीं है। चाहे स्थापत्यकला भिन्न-भिन्न प्रकार की हो, पर यदि निर्मित वस्तु में विशालता है, भव्यता है और सौन्दर्य है तो मन पर उस वस्तु का प्रभाव एक-सा ही पड़ेगा। हाँ, इस दर्शन से आनन्द प्राप्त करने के लिए मन को उदार होने की आवश्यकता अवश्य है। यदि मन में संकीर्णता है और धर्मान्धता की इस प्रकार की भावना कि चाहे हाथी के पैर के नीचे कुचल जाओ पर जैन मन्दिर में पैर न रखो तो फिर मन को कोई आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए गान्धी जी की प्रार्थना के समय 'रघुपति राघव राजा राम' के साथ 'ईश्वर अल्लाह तेरे नाम' भी गाया जाता था। मेरे मन में काहरा की मुहम्मद अली की मस्जिद और रोम के सेंट पाल गिरजाघर के दर्शन से कुछ वैसे ही आनन्द की उत्पत्ति हुई जैसे भारत में दक्खिन के विशाल मन्दिरों के दर्शन के समय हुई थी और इस आनन्द में मुझे उस परमपिता परमात्मा की भी याद आयी जिसकी महानता के स्मरण के लिए ही इन महान् वस्तुओं का निर्माण हुआ था। हाँ, काहरा की मस्जिद और रोम के इस गिरजाघर की कब्रें मुझे जरा भी अच्छी न लगीं। नित्य के उस दर्शन की मन में अभिलाषा उत्पन्न कराने के लिए जिन ऐसी वस्तुओं का निर्माण होता है उनमें इस क्षण-भंगुर अनित्य शरीर की कब्रें क्यों बनायी जायें।

सेंट पीटर गिरजाघर के बाद सेंट पाल रोम का सबसे बड़ा गिरजाघर है। १८२३ के अग्निकांड में जल जाने के बाद लगभग समूचा गिरजाघर ही फिर से बनाया गया है। यह गिरजाघर कान्स्टेन्टाइन ने बनवाया था। इसी स्थल पर सेंट पाल का सिर उतारा गया था। पाँचवीं शताब्दी में इस गिरजाघर को बड़ा बनाया गया। समय-समय पर गिरजाघर में और भी सजावट होती रही। अन्त में इसकी गणना सर्वोत्तम गिरजाघरों में होने लगी। प्रोटेस्टेंट मतानुयायियों के सुधार-आन्दोलन से पहले यह गिरजाघर इंगलैंड के बादशाह के संरक्षण में रहता था।

यह गिरजाघर कालडेरिनी के डिजाइन के आधार पर तैयार किया गया है। इसमें १४६ स्तम्भ हैं। मध्य में सेंट पाल की मूर्त्ति है। पीछे गुलाबी ग्रेनाइट के दस स्तम्भ हैं।

इस गिरजाघर से हम गये उस स्थान पर जहाँ किसी जमाने में मानव से सिंह की कुश्ती करायी जाती थी और उसे देखने चारों ओर नर-नारी एकत्रित होते थे।

वह स्थान फ्लेवियन (Flavian) वंश के सम्राट् वैस्पेसियन ने बनवाया था। इसी स्थल पर नीरो के उद्यान की अप्राकृतिक झील थी। इस इमारत को सम्राट् वैस्पेसियन के पुत्र टीटस ने ८० ईसवी में पूरा किया। इसका उद्घाटन समारोह सौ दिन तक चलता रहा और इस बीच कोई पांच हजार वन्य-पशुओं का वध किया गया। भूचाल, मरम्मत न होने और नागरिकों के दुरुपयोग के कारण यह इमारत बहुत कुछ नष्ट हो गयी। इसे कोलोसियम कहा जाता है जो रोमन सम्राटों का क्रीड़ा-स्थल था और बर्बरता का केन्द्र भी (चित्र नं० ३२)। कोलोसियम नाम पड़ने का कारण या तो यह हो सकता है कि यह इमारत ही अत्यन्त विशाल है अथवा यह कि पास ही में नीरो की जो मूर्ति है वह अत्यन्त विशाल है। यह इमारत अण्डाकार है। इसका घेरा ५७६ गज है, लम्बाई २०५ गज है और चौड़ाई १७० गज है। इसकी ऊँचाई १५७ फुट है। इमारत चोमंजिली है। अन्दर अखाड़े के चारों ओर ५० हजार दर्शकों के बैठने लायक स्थान है। अखाड़े में मसीहियों पर किये गये अनेक अत्याचारों के स्मारक के रूप में क्रास रखा हुआ है। इमारत की चार मंजिलों में से पहली तीन में स्तम्भ हैं जो क्रमशः डौरिक, आयोनिक और कोरिंथियन किस्म के हैं। चौथे मंजिल पर दीवार है जिसमें चौकोर खिड़कियां हैं।

इसके अन्दर के अखाड़े की लम्बाई ६४ और चौड़ाई ५६ गज है। अखाड़े के मैदान के चारों ओर पांच गज ऊँचा चबूतरा-सा है। यह स्थान सम्राट् के बैठने के लिए होता था। बड़े-बड़े अधिकारी—सेनेट के सदस्य, मजिस्ट्रेट, राजदूत, पुरोहित आदि और देवदासी कुमारियों को भी यहाँ स्थान दिया जाता था।

पहली मंजिल बहादुर जवानों और सरदारों के लिए होती थी। बीच की मंजिल नागरिकों के लिए होती थी और इसके उपरान्त दीन जनों के लिए देखने का प्रबन्ध था। महिलाओं के लिए अलग गैलरी निश्चित थी।

प्राचीन काल में यह कहा जाता था कि जब तक रोम में कोलोसियम है तब तक रोम भी है, इसके पतन के साथ-साथ रोम का पतन हो जायगा और रोम के पतन के साथ-साथ संसार का पतन हो जायगा।

रोमन जब किसी देश को जीतते थे तो वहाँ के निवासी गुलाम बना दिये जाते थे। विजेता पैट्रीशियन कहे जाते और विजित प्लेबियन। गुलामों पर उनके मालिकों का वैसा ही अधिकार रहता जैसा पशुओं पर, वरन् निर्जीव सम्पत्ति पर, और मालिक गुलाम के साथ जैसा चाहे वैसा बर्ताव करने के लिए आजाद रहता, यहाँ तक कि यदि उसे अपने गुलाम को सिंह को खिला देने में आनन्द मिलता तो उसे भी वह कर सकता। मानव और सिंह की इन कुश्तियों का आम परिणाम सिंह द्वारा मानव का खाया जाना ही तो होता और इस भीषण लीला को देखने के लिए इस मकान में उस जमाने में रोम का सारा सभ्य पैट्रीशियन समाज एकत्रित होता।

रोम के प्राचीनतम इतिहास से विदित है कि जनता दो भागों में विभक्त थी। पैट्रीशियन और प्लेबियन। पैट्रीशियन लोगों के वर्ग को सब प्रकार के राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे। प्लेबियन वर्ग को नागरिकता के भी अधिकार न थे।

पर धीरे-धीरे प्लेबियनों की संख्या बढ़ने लगी। व्यापार आदि की सहायता से इनमें से बहुत से धनी भी हो गये और फिर अनेक कारणों से प्लेबियनों का पक्ष जनता के पक्ष के नाम से संगठित हो गया।

बाद में जब वे अपनी सबल स्थिति के कारण अधिकार और महत्त्वपूर्ण स्थान पाने लगे तो पैट्रीशियनों को ईर्षा होने लगी। यह ईर्षा निरंतर उग्र से उग्रतर रूप धारण करने लगी। अन्त में इन दोनों वर्गों के बीच सत्ता प्राप्त करने के लिए भयंकर संघर्ष हुआ। ईसा से ४६४ वर्ष पूर्व प्लेबियनों ने एक अलग व्यवस्था कायम की जिसके लिए प्रतिवर्ष अधिकारी चुने जाते थे। उन्होंने एक असेम्बली भी बनायी और धीरे-धीरे वे इतने शक्तिशाली हो गये कि पेट्रीशियनों के साथ उनके विवाह आदि होने लगे। इसके बाद सेनेट में भी उनके सदस्य लिये जाने लगे और राजनैतिक अधिकारों में समानता हो गयी। कुछ समय बाद तो यहाँ तक हो गया कि पेट्रीशियनों के लिए कुछ बाधायें पैदा हो गयीं। उदाहरण के लिए, प्लेबियनों की परिषद् में उन्हें सम्मिलित नहीं किया जाता था। पर इन बाधाओं के कारण किसी प्रकार का क्षोभ समाज में न रह गया और बाद में सीजर तथा आगस्टस के शासन-काल में सम्मान के लिए पैट्रीशियन पद से लोगों को उसी प्रकार विभूषित किया जाने लगा जैसा कि

२६. इमैनुअल द्वितीय का स्मारक और उसके सामने लेखक तथा घनश्यामदास
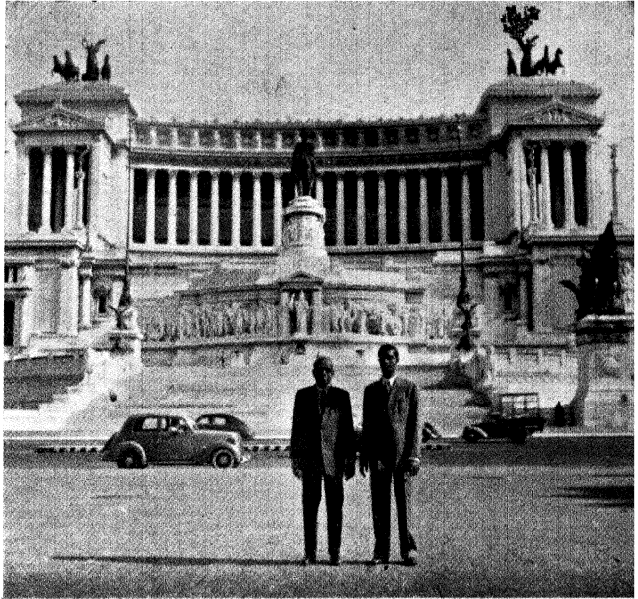
३०. सेण्ट पीटर के गिरजा की गुम्बज से जैसे रोम नगर दिखायी देता है

३१. सेण्ट पीटर गिरजाघर

३२. कोलोसियम रोम

३३. रोमन फोरम में मंगल का मन्दिर

३४. रोमन फोरम

३५. इटली के फोरम का एक दृश्य
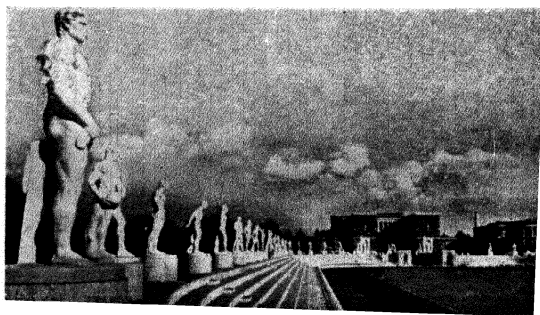
इंगलैंड के इतिहास में लोगों को बैरन अर्ल आदि पदवियों से सुशोभित किया जाता रहा है। इस तरह इस शब्द का अर्थ ही बिलकुल बदल गया और जिस रूप में पहले कभी प्रयोग किया जाता था उससे बिलकुल भिन्न रूप में प्रयोग किया जाने लगा। कान्स्टैन्टाइन शासन-काल में पैट्रीशियन शब्द का बोध स्पष्ट रूप से पद विशेष के लिए होने लगा था। छठी और सातवीं शताब्दी में इस शब्द से जिसे सम्बोधित किया जाता था उसे एक प्रकार का रक्षक माना जाता था। यह पैट्रीशियन शब्द की धार्मिक परिभाषा थी।

मानव-समाज के इस पैट्रीशियन और प्लेबियन के भेद मिटने में कितना समय लगा और कितनी कठिनाई से यह भेद मिट सका। जो लोग कहते हैं कि मनुष्य जहाँ का तहाँ है, उसकी उन्नति नहीं हो रही है वे इस पैट्रीशियन और प्लेबियन के भेद-निवारण तथा गुलामी-प्रथा की समाप्ति के इतिहास को देखें। अभी भी अधिकांश जगत में मुट्ठी भर लोगों के हाथ में ही सब कुछ है और मुट्ठी भर लोगों द्वारा अधिक संख्या के शोषण की पूरी समाप्ति नहीं हुई है, परन्तु पैट्रीशियन और प्लेबियन के जमाने, तथा जब गुलामी-प्रथा प्रचलित थी उस जमाने एवं आज के समय में थोड़ा अन्तर नहीं हुआ है। अतः यह कथन कि मनुष्य जहाँ का तहाँ है एक सर्वथा मिथ्या कथन है।

इस इमारत को देख हम प्रसिद्ध 'रोमन फोरम' नामक स्थान को गये।

रोमन फोरम के स्थल पर किसी समय एक दलदल वाली घाटी थी। रोमन और सेबाइन्स में आपसी संघर्ष होने के बाद जब वे मिलकर एक हो गये तो धीरे-धीरे फोरम ने शहर के राजनीतिक और व्यापारिक केन्द्र का रूप धारण कर लिया। रोम का महत्त्व बढ़ने के साथ-साथ इसका भी महत्त्व बढ़ा। रिपब्लिकन युग में बाजार आदि को यहाँ से हटाकर आसपास की बस्तियों में ले जाया गया और उनकी जगह सभा-भवन और न्यायालयों की स्थापना की गयी। बाद में सीजर की योजना के अनुसार, जिसे कुछ काल पश्चात् आगस्टस ने पूरा किया, फोरम के दक्षिण भाग का निर्माण किया गया। तीसरी शताब्दी के अन्तिम काल में अग्निकांड में यह बहुत कुछ नष्ट हो गया। बर्बरों के आक्रमणों से भूचाल आने से, और ठीक-ठीक देखभाल न होने से धीरे-धीरे इसको क्षति ही पहुँचती गयी (चित्र नं० ३३-३४)।

रोमन फोरम से चलकर हमने रोम की कुछ प्रधान मूर्तियों को देखा और अन्त में हम पहुँचे रोम के उस पुराने कब्रिस्तान में जहाँ ईसाई मत के आरम्भ होने के बाद सर्वप्रथम मुरदों का गाड़ना आरम्भ हुआ था। ईसाई मत के प्रारम्भ होने के पहले रोम निवासी मुरदों को जलाते थे, गाड़ते नहीं थे। जब ईसाई धर्म के अनुसार मुरदों को गाड़ना ईसाई धर्म मानने वालों ने आरम्भ किया तब जो ईसाई धर्म के अनुयायी नहीं थे उन्होंने इसका विरोध किया और यह सवाल एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न

बन गया। ईसाइयों ने एक ऐसे स्थान की खोज की जहाँ छिपे-छिपे वे अपने मुरदों को गाड़ सकें। यह स्थान वही स्थान था और सुना कि यहाँ ईसाइयों के कोई एक लाख मुरदे गड़े हैं।

हमारे साथ के मार्ग-प्रदर्शक ने इस स्थान को दिखाने के लिए वहीं के एक मार्ग-प्रदर्शक का प्रबन्ध किया और बड़े चाव से इस मार्ग-प्रदर्शक ने हमें यह स्थान दिखाना शुरू किया। पर कुछ ही देर में प्रदर्शक के भाषण से हम तो ऐसे ऊबे कि उसका वर्णन करना कठिन है। जगमोहनदास हर क्षण घूम-घुमाकर पूछते कि क्या अब बाहर जाने का रास्ता आ गया, पर वह रास्ता ही न आता। एक लाख मुरदों के कब्रिस्तान का बड़ी कठिनाई से यह पर्यटन समाप्त हुआ। बार-बार हमारे मन में उठता कि आखिर आज हम कहाँ आ गये और बार-बार हमारे मन में यह भी उठता कि मुरदों को गाड़ने की इस प्रथा से जला देने की प्रथा कितनी अच्छी है।

इसके बाद हम वहाँ के एक दूसरे कब्रिस्तान को देखने गये जो प्रोटेस्टेंट लोगों का कब्रिस्तान है। यह अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रोटेस्टेंट लोगों को दफनाने के लिए बनाया गया था। प्राचीन और नवीन इसके दो भाग हैं। प्राचीन भाग में ही अंग्रेज कवि जान कीट्स की कब्र है। समीप ही चित्रकार सेवर्न की कब्र है जिसने रोम में कीट्स की बीमारी में उसकी सहायता की थी। नया भाग १८२२ में बना। इसमें अंग्रेज, फ्रांसीसियों, जर्मनवासियों और अमेरीकिनों आदि कई विदेशियों की कब्रें हैं। इसी स्थान पर अंग्रेज कवि शैली की कब्र है जिसकी १८२२ में डूबने से मृत्यु हो गयी थी।

तीसरे दिन रोम में देखने को कुछ शेष न रहा था। जगमोहनदास कुछ खेती के फार्मों को देखने गये और घनश्यामदास कुछ व्यापारियों से मिलने। मैं आज घर ही पर रह इस पुस्तक के कुछ भाग लिखता रहा। आज के इस लेखन में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि रोम इटली की राजधानी तो है ही, वैसे भी इटली में उसका सर्वप्रथम ही स्थान है, एक तरह से वह अन्तर्राष्ट्रीय नगर है, क्योंकि अपनी तीन हजार वर्ष पुरानी कला और इतिहास से उसने सभ्य संसार को बहुत कुछ दिया है, लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि रोम संसार की आध्यात्मिक राजधानी है, पर इसे कम से कम हम भारतीय और पूर्वीय देशों के रहने वाले मानने को तैयार नहीं हैं।

चौथे दिन प्रातःकाल हमारी जिनीवा तक रेल-यात्रा आरम्भ होती थी। रोम से हमारी गाड़ी ७ बजे प्रातःकाल चल १०॥ बजे फ्लॉरेन्स पहुँचने वाली थी। ४ बजे प्रातःकाल उठ, नित्य-कर्मों से निवृत्त हो हम रोम स्टेशन पहुँचे। बड़ा भारी स्टेशन था। रोम के स्टेशन के बाहर एक स्क्वायर है जो पाँच सौ इटालियन सैनिकों की यादगार में बनाया गया है। इस स्मारक के सामने ही स्टेशन है। इस स्टेशन का

मूल डिजाइन मेजोनी ने तैयार किया था। बाद में अन्य स्थापत्य विशेषज्ञों ने इसमें परिवर्तन किये।

यूरोप में रेल से हमारी यह पहली यात्रा थी। हमें तो रोम की यह रेल कुछ बहुत अच्छी न जान पड़ी। बैठने और सोने के डब्बे इस रेल में अलग थे, यह ठीक ही था, पर बैठने और सामान रखने की व्यवस्था अच्छी न थी। भारत की रेलों के समान यहाँ की बैठने की सीटों के नीचे सामान रखने का प्रबन्ध किया जा सकता है, पर यह न कर सीटों के ऊपर लम्बे-लम्बे ब्रेकिट बनाये गये हैं। इन पर सन्दूकों का एक तो रखना ही कठिन है फिर यदि किसी तरह रख भी दिये जायें तो डर लगा रहता है कि रेल की चाल में ये सन्दूकें किसी के सिर पर न गिर पड़ें। रेल के डब्बे तीन दर्जे के थे; पहला, दूसरा और तीसरा। पहले और दूसरे दर्जे की सीटों पर गद्दी है, तीसरे दर्जे की सीटों पर नहीं। बैठने की सीटें कुछ बहुत सुविधाजनक नहीं। सोने के डब्बे अलग हैं और सोने के लिए अलग किराया देना पड़ता है। एक सिरे से दूसरे सिरे तक हर डब्बे से पूरी ट्रेन में जाने का वैसा ही रास्ता रहता है जैसा बम्बई और पूना के बीच चलने वाली भारत की ट्रेनों में रहता है। डब्बों की चौड़ाई भी भारत की ट्रेनों से कम दीख पड़ी। यात्रियों के लिए कोई खास सुविधायें भी नहीं दिखायी दीं। तीसरे दर्जे में भीड़ भी काफी होती है। अनेक यात्री खड़े-खड़े यात्रा कर रहे थे। किराया भी हमारे यहाँ से बहुत अधिक था। मुझे तो यहाँ की रेलों से भारतीय रेलें कहीं अधिक सुविधाजनक और सस्ती जान पड़ीं।

फ्लॉरैन्स हमारी ट्रेन ठीक समय पहुँची। फ्लॉरैन्स स्टेशन भी काफी बड़ा था। बनावट थी रोम स्टेशन के समान। आज हमारा कर्यक्रम दिन भर घूमकर रात की एक बजे की गाड़ी से वैनिस के लिए रवाना होने का था, अतः किसी होटल में ठहरने की आवश्यकता न थी। स्टेशन पर सामान रख उसकी रसीद देने की प्रथा है। अतः स्टेशन पर ही हमने अपना सामान रख खुद ही अपने मार्ग प्रदर्शक का काम करने का निश्चय कर फ्लॉरेन्स के सम्बन्ध में अंग्रेजी भाषा की एक पुस्तक खरीदी। जगमोहनदास ने इस पुस्तक में से पहले यहाँ के महत्त्वपूर्ण स्थानों को छाँटा और फिर एक टैक्सी ले हम लोग रवाना हुए।

फ्लॉरैन्स देखने के लिए रवाना होते ही हमें मालूम हो गया कि फ्लॉरैन्स सचमुच बड़ा ही सुन्दर स्थान है। पहाड़ियों से घिरा हुआ यह स्थान बड़ा हरा-भरा है। कुदरती हरीतिमा के सिवा हजारों दरख्त लगाये गये हैं। चीड़ और देवदारू के वृक्षों की भरमार है। सड़कों के दोनों ओर ऐसे घने और सीधे वृक्षों की पंक्तियाँ हैं कि सड़कें कुंज बन गयी हैं। स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे पार्क, उनमें रंग-बिरंगे पुष्पों ने इस हरयाली को और भी सुन्दर बना दिया है। इमारतें सर्वथा आधुनिक। सफाई

उत्कृष्ट से उत्कृष्ट। नगर और उसके आस-पास के स्थानों को देखते-देखते हमारी मोटर उस स्थान को चढ़ने लगी जहाँ से सारा नगर उसी प्रकार दिखायी देता है जैसा बालकेश्वर पहाड़ से बम्बई। इस पहाड़ी पर जो सड़क जाती है उसके दोनों ओर के वृक्ष देखते ही बन पड़ते हैं। पहाड़ी पर चढ़ने पर एक सुन्दर मैदान मिलता है और यहाँ से पहाड़ियों की गोद में बसा हुआ फ्लॉरैन्स नगर दीख पड़ता है। सारा दृश्य अत्यन्त रमणीय है। इस स्थल को माइकिल एंग्लो हिल कहते हैं (चित्र नं० ३६)। माइकिल एंग्लो रोम के विश्वविख्यात चित्रकार थे। उन्हीं के नाम पर इस पहाड़ी का निर्माण किया गया है। मैदान में माइकिल एंग्लो की एक ब्रांज की सुन्दर मूर्त्ति है और इस मूर्त्ति के चारों ओर रंग बिरंगे पुष्पों से भरा हुआ एक छोटा-सा पार्क। एक रैस्टराँ की सुन्दर छोटी-सी इमारत भी बनी हुई है। सारा स्थल इतना मनोहारी था कि हमने तय किया कि फ्लॉरैन्स के अन्य स्थानों को देखने के पश्चात् फिर हम यहीं आयेंगे और आज सन्ध्या का भोजन इसी रैस्टराँ में करेंगे।

यहाँ से हम लोग फ्लॉरैन्स के दो चित्रों के विशाल चित्र-संग्रहों को देखने गये, उनमें एक का नाम था पिट्टी गैलरी और दूसरे का उफीजी गैलरी। उफीजी गैलरी में तो कोई विशेष बात न थी, पर पिट्टी गैलरी के सदृश चित्र-संग्रह कदाचित संसार में कहीं न होगा (चित्र नं० ३७)। माइकेल एंग्लो और रैफिल रोम के दोनों विश्व-विख्यात चित्रकारों एवं अनेक प्राचीन और अर्वाचीन चित्रकारोंके मूल चित्र यहाँ संग्रहीत हैं। अनेक चित्रों की विशालता, भव्यता और सौन्दर्य देखते ही बनता है। यद्यपि चित्र एक सतह पर बने हैं पर चित्रों की चित्रकारी कुछ इस प्रकार की गयी है कि उनमें गहराई तक दृष्टिगोचर होती है।

इन चित्रों को देख हमने चित्रशालाओं के भवन के बाहरी भाग में मूर्त्तियों का अवलोकन किया (चित्र नं० ३८-३९)।

इसके बाद कुछ चित्र एवं मूर्त्तियों के फोटो खरीद हम एक पार्क को गये। हम भारतीय थे यह हमारा ड्राइवर जान गया था अतः वह हमें इस बगीचे के उस हिस्से में ले गया जहाँ कोल्हापुर महाराज की समाधि पर उनकी मूर्त्ति बनी हुई थी। कोल्हापुर के इन महाराजा का देहान्त फ्लॉरैन्स में हुआ था। फिर यहाँ से हम माइकिल एंग्लो हिल पर गये और वहाँ हमने अपना सन्ध्या का भोजन किया। इन पांच-छै दिनों में अनेक शाकाहारी खाद्य-वस्तुओं का प्रयोग करने के बाद अब हमने अपने भोजन की एक निश्चित सूची बना ली थी और हम हर जगह उन्हीं चीजों का आर्डर दे देते थे। वे चीजें शुद्धता से बन सहज में आ भी जाती थीं। ये थीं आरम्भ में किसी फल का रस, बाद में मक्खन और मुरब्बे के साथ डबल रोटी और शाकाहारी सूप, फिर कुछ उबले हुए शाक और अन्त में फल तथा क्रीम। हरा नीबू, नमक और काली

३६. माइकल एंग्लो हिल से फ्लॉरैन्स नगर

३७. 'पिट्टी गैलरी' नामक चित्रशाला का एक भाग; फ्लॉरैन्स
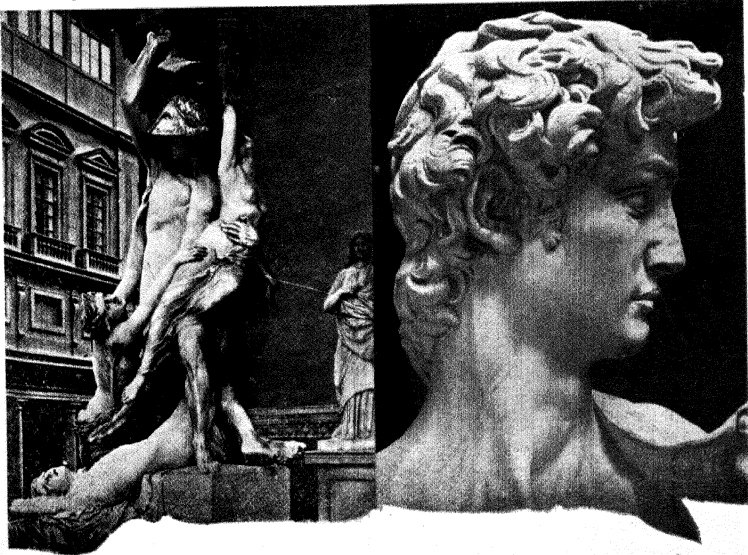
३८–३९. फ्लॉरैन्स के संग्रह की दो सर्वश्रेष्ठ मूर्तियाँ
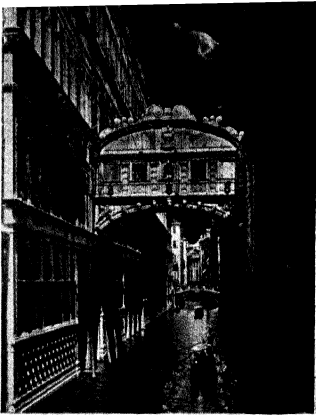
४०–४४. वैनिस के पांच दृश्य । बीच के चित्र में एक डोंगे पर लेखक

मिर्च, सूप और शाक-भाजी में मिलाने को अलग आ जाते। भोजन का यह क्रम हमारे सारे दौरे में चलता रहा। लंच (दोपहर का भोजन) तथा डिनर (रात्रि के भोजन) में हम ये चीजें खाते और प्रातःकाल मक्खन तथा मुरब्बे के साथ डबल रोटी, दूध और फल। जो लोग कहते हैं कि विदेशों में शाकाहारी भोजन नहीं चलता और शराब के बिना चल ही नहीं सकता। वे बड़ी गलत बात कहते हैं। हमने इस दौरे में और इसके पहले के किसी विदेशी दौरे में निरामिष भोजन के सिवा अन्य किसी भोजन को हाथ नहीं लगाया और न किसी तरह की शराब का ही कभी स्पर्श किया। हाँ, भोजन के मामले में विदेशों में छुआछूत नहीं चल सकती; छुआछूत को तो मैं भारत में भी नहीं मानता।

जब हम माइकिल एंग्लो हिल से स्टेशन लौटे तब रात्रि के ९ बज चुके थे। गरमी इतनी अधिक थी कि पसीना आ रहा था। कैरो, एथिन्स, रोम, फ्लॉरैन्स सभी जगह हमें अब तक गरमी ही गरमी मिली थी और गरमी का कष्ट इसलिए और अधिक हो गया था कि होटल, स्टेशन के वेटिंगरूम में कहीं भी बिजली के पंखे न थे। सुना गया कि यहाँ गरमी वर्ष भर में इतने कम दिन पड़ती है कि कहीं भी पंखे लगाने का रिवाज ही नहीं है। जो कुछ हो, हम तो ठंडे देशों में ऐसे दिनों आये जब यहाँ गरमी का प्रखर रूप था और पंखे न रहने के कारण यह गरमी गरम देश भारत की गरमी से भी हमारे लिए अधिक कष्टदात्री हो गयी। फिर हमें इस गरमी में कुछ और कष्ट इसलिए हुआ कि हम ठंडे देशों को जा रहे हैं इस विचार के कारण हम अपने सारे कपड़े ऊनी बनाकर ले गये थे, जिनका उन दिनों बर्दाश्त होना एक समस्या हो गयी थी। और आश्चर्य हमें यह देखकर हुआ कि यहाँ के निवासियों में अधिकांश ऊनी कपड़े ही पहनते हैं। शायद इसका कारण यह था कि थोड़े अरसे के लिए ठंडे कपड़े क्यों बनाये जायें। आज फ्लॉरैन्स स्टेशन के वेटिंग रूम में हमें गरमी का सबसे अधिक कष्ट हुआ।

फ्लॉरैन्स से वेनिस गाड़ी १ बजे रात के लगभग जाती थी। गाड़ी जाने तक का समय हमने स्टेशन के वेटिंग रूम में जिस कष्ट से काटा वह हम कभी न भूलेंगे।

ठीक समय पर गाड़ी फ्लॉरैन्स आयी, पर गाड़ी में इतनी अधिक भीड़ थी कि हमारे सैकिंड क्लास के टिकट हमें फर्स्ट क्लास के कराने पड़े। ६ बजे प्रातःकाल हम वेनिस पहुँच गये।

जब हम वेनिस पहुँचे तब मुझे अपने एक अंग्रेज शिक्षक मि० डिगबिट की याद आयी। मुझे यद्यपि कभी स्कूल या कालेज में पढ़ने के लिए नहीं भेजा गया, परन्तु इस बात का सदा ध्यान रखा गया कि मेरे शिक्षक बड़ी उच्चकोटि के हों। मेरे विद्यार्थी जीवन के समय अंग्रेजी भाषा का हमारे देश में बड़ा दौर-दौरा था और

ऊपर के तबके के लोग अपनी सन्तान को अंग्रेजी भाषा की ऐसी शिक्षा देने का प्रयत्न करते थे कि उनकी अंग्रेजी अंग्रेजों के समान हो। मेरा अंग्रेजी-उच्चारण भी अंग्रेजों के सदृश बनाने के लिए मुझे पढ़ाने मि० डिगविट नामक एक अंग्रेज शिक्षक रखे गये थे। मि० डिगविट वेनिस नगर के बड़े भक्त थे। उनके पास वेनिस के चित्रों का एक बहुत बड़ा संग्रह था। कुछ बड़े-बड़े चित्र मढ़वाकर उन्होंने अपने कमरे में लगाये थे और छोटे-छोटे चित्रों के कई एलबम बनाये थे। जब कभी किसी प्राकृतिक दृश्य अथवा किसी नगर के सौन्दर्य की बात निकलती तो मि० डिगविट वेनिस की बात अवश्य करते और कहते कि वेनिस पृथ्वी का स्वर्ग है।

स्टेशन के बाहर आते ही हमें वेनिस का सौन्दर्य दीख पड़ने लगा। सचमुच वेनिस एक विचित्र नगर है और उसकी सबसे बड़ी विचित्रता है उसकी पानी की सड़कें तथा गलियें। वेनिस का सारा यातायात डोंगों और मोटर बोटों द्वारा होता है।

वेनिस उन अनेक नगरों की तरह नहीं है जिन्हें प्राकृतिक वरदान प्राप्त होता है। उसको जो कुछ प्रदान किया है मानव ने ही अपने श्रम से प्रदान किया है। विपरीत परिस्थितियों का सामना करके भी मनुष्य जो कुछ कर सकता है, वेनिस इसका ज्वलंत उदाहरण है।

वेनिस नगर बड़े अनियमित ढंग से बसाया गया है। वह साढ़े इक्कीस मील लम्बा है और सवा तेरह मील चौड़ा।

हम एक डोंगे पर बैठ, उसी पर अपना सामान रख, किसी होटल की खोज में रवाना हुए। हमारा डोंगा अनेक पानी की सड़कों और गलियों को पार करता हुआ पानी के ही उस मैदान में पहुँचा जिसके चारों ओर वेनिस की प्रधान इमारतें बनी हुई हैं। जिन पानी की सड़कों और गलियों को पार करता हुआ हमारा यह डोंगा इस पानी के मैदान में पहुँचा था, उनमें से अनेक सड़कों और गलियों का पानी बहुत गंदा हो गया था और कई स्थानों पर तो बदबू भी आ रही थी। वर्षों तक पानी के एकत्रित रहने का ही यह परिणाम था। और यह नहीं कि सफाई की कोई व्यवस्था न हो, यदि सफाई की कोई व्यवस्था न होती तो मानवों का यहाँ रह सकना ही कठिन हो जाता।

वेनिस के पानी के इस मैदान की इमारतों में से अनेक में होटल भी हैं। बड़ी कठिनाई से हमें 'रैजीना' नामक होटल में जगह मिली।

नित्य कर्म से निवृत्त हो हम मार्ग-प्रदर्शक के एक समुदाय के साथ वेनिस देखने रवाना हुए। इस मार्ग-प्रदर्शक की व्यवस्था और अन्य मार्ग-प्रदर्शकों में यही अन्तर था कि अन्य मार्ग-प्रदर्शक मोटर बोट में दर्शकों को ले जाते थे और यह मार्ग-

प्रदर्शक दर्शकों को डोंगों में लेकर चला।

वेनिस में हम सेंट मार्क का गिरजाघर, डोगेज का प्रासाद, ललित कला अकादमी और सार्वजनिक बाग देखने गये। सेंट मार्क के गिरजाघर जैसी सुन्दर इमारत तो मसीही धर्म वाले क्षेत्र में इनीगिनी मिलेंगी, और जिस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में सेंट मार्क की इमारत भव्य और सुन्दर है उसी प्रकार डोगेज का प्रासाद गौरव और ऐश्वर्य का केन्द्र है (चित्र नं० ४० से ४४)।

सन्ध्या को अपने होटल के पीछे के कुछ भागों को हमने पैदल ही घूमकर देखा। जब हम होटल में रात्रि का भोजन कर रहे थे तब बिजली की बत्तियों से सजी हुई एक नाव हमारे सामने से निकली। इस नाव में एक सुरीला आरचेस्ट्रा बज रहा था और एक युवती गा रही थी। सुना कि इस पानी के मैदान में हर दिन-रात्रि को यह नाव नाना प्रकार के वाद्य-यन्त्र बजाती और गाती हुई निकलती है।

दूसरे दिन तीसरे पहर की गाड़ी से हम स्विटज़रलैंड जाने वाले थे, परन्तु रास्ते में इटली देश का एक प्रधान व्यापारी केन्द्र मिलान नामक नगर पड़ता था। घनश्याम दास और जगमोहनदास दोनों इस नगर में ठहरना चाहते थे, अतः हमने ता० १० अगस्त का दिन मिलान को देना तय कर लिया था। दोपहर को ३ बजे हमारी गाड़ी वेनिस से रवाना होकर ५ बजे के लगभग मिलान पहुँची। मिलान में हम लोग पैलिस नामक होटल में ठहरे। होटल एकदम नया बना था और हर प्रकार की नवीन सुविधायें होटल में मौजूद थीं। मिलान में कोई विशेष बात न थी, पर व्यापारी केन्द्र होने तथा एक नवीन शहर होने के कारण अब तक देखे हुए इटली के सब शहरों की अपेक्षा मिलान हमें अधिक सम्पन्न दिखाई दिया। बड़े-बड़े नये मकान और साफ-सुथरी सड़कें। रात्रि को हम एक इटैलियन सिनेमा देखने गये। फिल्म में इटैलियन भाषा के सिवा और कोई नयी बात न थी।

दूसरे दिन घनश्यामदास और जगमोहनदास शहर में घूमने गये। मैंने फिर अपना समय इस पुस्तक में लगाया।

मिलान से हमारी गाड़ी ३ बजे के लगभग रवाना होती थी और जिनीवा पहुँचती थी रात को ६ बजे के करीब। रास्ते में हम आल्प्स पर्वत श्रेणी को पार करने वाले थे और इस आशा से कि स्विटज़रलैंड के रमणीय दृश्य देखने को मिलेंगे हमारे मन अत्यन्त उत्साहित थे।

अपना सामान ले हम स्टेशन पहुँचे और ठीक समय हमने इटली देश से स्विटज़रलैंड को प्रस्थान किया।

८

इटली देश और उसकी समस्याएँ

भूमध्यसागर में इटली देश की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। समूचे भूमध्य सागर को मानों वह दो क्षेत्रों में विभक्त करता है। पश्चिम में कोई सवा तीन लाख वर्ग मील समुद्र है और पूर्व में लगभग इसका दूना। इसके अतिरिक्त इटली का दक्षिणी छोर और सिसली लगभग अफ्रीका महाद्वीप को छूते हुए हैं। इस केन्द्रीय स्थिति के कारण किसी युग में रोम का प्रभुत्व लगभग सारे यूरोप और अफ्रीका के उत्तरी भाग पर छाया हुआ था।

महान् रोमन साम्राज्य का विकास इटली की केन्द्रीय स्थिति और इस देश के उस काल के अत्यन्त कर्मठ देशवासियों के कारण ही सम्भव हुआ। पांचवीं शताब्दी तक भी रोम का प्रभुत्व भूमध्यसागर के प्रदेश यूरोप के कुछ भाग और निकटपूर्व में बना रहा। सामाजिक अध:पतन और उत्तर व पूर्व से होने वाले बर्बर आक्रमण रोमन साम्राज्य के पतन के मूल कारण बने।

इटली की शक्ल जैसा पहले भी लिखा है एक ऊँचे एड़ीदार जूते की सी है जो एक तिकोने पाषाण सिसली को मानों ठोकर लगाने वाला हो। अधिकांश इटली पार्वत्य प्रदेश है। उत्तरी भाग में पो नदी वरदान सिद्ध हुई है। उत्तर मे आलप्स् पर्वत इटली को आस्ट्रिया, स्विटजरलैंड और फ्रांस से अलग किये हुए हैं।

जिस समय यूनान देश संसार की एक महान् शक्ति माना जाता था उस समय इटली के दक्षिणी भाग में कई यूनानी उपनिवेश थे। उधर उत्तर में कुछ लैटिन जाति के लोगों ने रोम की स्थापना की। इस छोटे देश पर पहले नरेश राज्य करते थे, फिर इसने साम्राज्य का रूप धारण किया और रोम की सत्ता संसार में ज्ञात हुई। चौथी शताब्दी में रोम पूर्वी साम्राज्य और पश्चिमी साम्राज्य में बट गया। पूर्वी साम्राज्य, जिसकी राजधानी कुस्तुनतुनिया थी एक हजार वर्ष तक चलता रहा। गौथ, वांडल, हूंड और लोम्बाड़ों के आक्रमण और पराजय होने पर भी रोम की शक्ति का ह्रास न हुआ और धीरे-धीरे सीज़र का यह वैभवशाली नगर मसीही धर्म का केन्द्र तथा पोप का निवास स्थान बन गया। १४५३ में कुस्तुनतुनिया का पतन होने पर तुर्कों से भागने वाले विद्वानों

को इटली में शरण मिली और बाद में बौद्धिक जागृति का वह महान् आन्दोलन चला जिसे 'रिनासाँ' कहते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी में इटली की एकता और उसके संगठन का प्रश्न उठा। इटली की स्वतन्त्रता और एकता के निर्माता हैं मेजनी, गैरीबाल्डी और केबूर। इन तीन व्यक्तियों की चर्चा किये बिना इटली का कोई भी इतिहास पूरा नहीं कहा जा सकता। मेजनी की नैतिकता, गैरीबाल्डी के बल-प्रयोग, केबूर की राजनीतिक सूझबूझ से इटली ने वह रूप धारण किया जिसके कारण बाद मे वह संसार के शक्तिशाली राज्यों में गिना जाने लगा।

इटली के इतिहास में मेजनी का बड़ा महत्त्व है। इस बात को समझनेवाला वह पहला व्यक्ति था कि इटली की एकता प्रयत्नसाध्य है। अपने इस विश्वास को अन्य व्यक्तियों में भी फूँकने में वह सफल हुआ। परिणाम यह हुआ कि इटली का नवयुवक वर्ग देश-प्रेम में मग्न हो उठा। इस प्रकार मेजनी इटली की स्वतन्त्रता और एकता का पैगम्बर सिद्ध हुआ। मेजनी का जन्म १८०५ में हुआ और मृत्यु १८७२ में।

गैरीबाल्डी ने तलवार के जोर से इटली को एक करने का प्रयत्न किया। उसने सिसली और नेपल्स पर विजय प्राप्त की और रोम पर भी धावा बोलने की ठानी, किन्तु इससे फ्रांस के साथ युद्ध आरम्भ हो जाने का खतरा था। यहां केबूर की राजनैतिक दूरदर्शिता ने सहायता की। उसने नेपोलियन तृतीय के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित किये। उसका विश्वास प्राप्त किया और सहायता भी; और ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी कि अन्त में रोम भी इटली का अंग बन गया। रोम को स्वतन्त्र और संयुक्त इटली की राजधानी बनाया गया। और इस प्रकार मेजनी का स्वप्न साकार हुआ।

गैरीबाल्डी एक कुशल सेनापति था। मेजनी ने जो जीवनदायिनी शक्ति अपने विचारों से उत्पन्न की थी और केबूर ने जिसे अपनी राजनीतिकता से सुरक्षित बनाया, उसे गैरीबाल्डी ने बहुत हद तक मूर्त्तरूप प्रदान किया।

केबूर राजनीति-शास्त्र का प्रकांड विद्वान् था और इटली के देश-भक्तों में केवल उसी ने यह अनुमान लगाया था कि विदेशी सहायता के बिना इटली का उद्धार सम्भव नहीं।

इटली की एकता और संगठन का काम विक्टर इमैनुअल के शासन-काल में सम्पन्न हुआ। वह १८६१ ईसवी में शासनारूढ़ हुआ था।

आस्ट्रिया और जर्मनी के साथ बचाव सन्धि कर लेने पर भी इटली १९१५ में मित्रराष्ट्रों की ओर से पहले महायुद्ध में सम्मिलित हो गया। वर्साइल की सन्धि के पश्चात् इटली को काफी निराशा हुई, क्योंकि न तो उसे भूमध्यसागर में मनोवांछित

नियन्त्रण स्थल प्राप्त हुए और न उसे उपनिवेश बढ़ाने की ही सुविधा मिली। मुसोलिनी ने इटली के इस असन्तोष से लाभ उठाकर १६२२ से १६४३ तक के समय में उसे एक फासिस्ट राज्य का रूप दे दिया। पहले यह फासिस्ट राज काफी सहिष्णु रहा और उसने राष्ट्रसंघ (लीग ऑफ़ नेशन्स) के साथ काफी सहयोग भी किया, पर बाद में जर्मनी की शह पाकर इटली साम्राज्यवादी होने लगा। द्वितीय महायुद्ध में इटली ने जर्मनी के साथी के रूप में प्रवेश किया। आरम्भ में तो इटली और जर्मनी पक्ष की विजय होती रही किन्तु बाद में पाँसा पलट गया और १६४३ में इटली ने मित्रराष्ट्रों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। इटली की हार का भी मूल कारण वही था जो उसके दूसरे साथी देशों की हार का अर्थात् साधनों का प्रचुर न होना। वर्तमान युग में युद्ध का निर्णय बाहुबल अथवा सैन्यबल से नहीं होता, हाँ, कुछ काल के लिए इनका प्रभाव अत्यन्त घातक हो सकता है। जर्मनी के पास प्रथम श्रेणी की सेना थी और हथियार भी आधुनिकतम थे, किन्तु जब लड़ाई लम्बी खिंचने लगी तो धीरे-धीरे उसके साधनों ने भी जवाब दे दिया। इधर मित्रराष्ट्रों के पास साधन का बाहुल्य था। लड़ाई में भाग लेने वाले प्रमुख देश थे--रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिका। रूस अत्यन्त विशाल और साधन सम्पन्न देश है। ब्रिटेन के अपने साधन कम अवश्य हैं पर उसे राष्ट्रमंडल और अपने अधीन उपनिवेशों से सब कुछ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो जाता है। फ्रांस का ह्रास सभी को विदित है जो बहुत कुछ अपनी कमजोरी और नेताओं की अनिश्चित मनोवृत्ति के कारण अत्यन्त शीघ्र जर्मन एड़ी के नीचे आ गया था। अमरीका भी रूस की तरह बहुल साधनों वाला देश है। इस प्रकार इटली, जर्मनी और उनके हिमायती देशों के साधनों की तुलना में मित्रराष्ट्रों के साधन कहीं अधिक थे। इसलिए युद्ध के अन्त में विजय किसकी होगी इसमें तो किसी को सन्देह ही नहीं था।

यहाँ किसी भावी युद्ध की सम्भावना के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रस्तुत करना अनुचित न होगा। विद्वानों और दूरदर्शी लोगों का मत है कि यदि भविष्य में कोई युद्ध हुआ तो वह ग्लोबल युद्ध होगा अर्थात् समूची पृथ्वी को अपनी लपटों में लिये बिना न रहेगा। पूरी सम्भावना इस बात की है कि इससे पृथ्वी का विनाश ही हो जाय। इसका कारण सभ्यता और विज्ञान के प्रगति के साथ-साथ युद्ध का रूप बदलते जाना है। पहले युद्ध बाहुबल पर निर्भर होता था। जिसके शरीर में बल अधिक होता था वह कम बलशाली को दबोच डालता था। फिर शस्त्रों का युग आया; जिसके पास शस्त्र अच्छे होते थे वह निकम्मे शस्त्र वालों को परास्त कर सकता था। स्मरण रहे कि भारत पर मुगल साम्राज्य छा जाने का एक कारण यह भी था कि आने वालों के पास शस्त्र और सैनिक सामान अधिक उपयुक्त था। इसके उपरान्त यह स्थिति हो

गयी कि जिसके साधन अधिक हैं अन्त में लड़ाई वही जीत सकता है। दूसरे महायुद्ध के समय यही स्थिति थी। किन्तु अब अणु शस्त्रों का युग है। अब बात की बात में शहर के शहर समाप्त किये जा सकते हैं और कृमि कीटाणु फैलाकर दूर-दूर तक लोगों को निष्क्रिय बनाया जा सकता है।

अब हम फिर अपने मुख्य विषय पर आते हैं। इटली भूमध्यसागर के तुर्की, फ्रांस और स्पेन आदि देशों से आकार में छोटा है। दोनों महायुद्धों के पश्चात् उसकी रूपरेखा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व जर्मनी की तरह इटली भी बहुधा जगह की कमी की शिकायत करता था। मुसोलिनी हिटलर के स्वर में स्वर मिलाकर कहते थे कि हमारे पास जगह कम है और हमारी आबादी अधिक है। मेरे विचार से इटली के अन्य अभाव अधिक खटकने वाले हैं—जैसे कि साधनों की कमी, बुरी जलवायु, देश के अधिकतर भाग का पठारी होना और बंदरगाहों का अभाव। इसके अलावा सैनिक दृष्टि से भी उसकी स्थिति काफी खतरनाक है।

इटली की अर्थ-व्यवस्था पर विचार करते हुए उस भीषण विनाश को याद रखना आवश्यक है जो द्वितीय महायुद्ध के कारण हुआ। इटली युद्ध का एक प्रमुख स्थल था और घनी आबादी होने के कारण विनाश की विभीषिका द्विगुणित हो गयी थी। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय स्थिति होने के कारण इटली मित्रराष्ट्रों के आक्रमण का शिकार हुआ और शत्रु राष्ट्रों के आक्रमण का भी।

युद्ध से पूर्व इटली में उसकी आवश्यकता का ६४ प्रतिशत भाग पैदा होता था। युद्धकाल मे इस उत्पादन में काफी कमी हो गयी और अब तक भी स्थिति को पूरी तरह सुधारा नहीं जा सका है। इटली के उद्योग की स्थिति और भी चिंताजनक है। युद्धकाल में बिजली उत्पन्न करने के अनेकों केन्द्र नष्ट हो जाने से अब कारखानों के लिए काफी बिजली प्राप्त नहीं होती। उधर इटली की भूमि-समस्या भी जटिल है। खेती के तरीके भी आधुनिकतम नहीं हैं और भूमि की उपजाऊ शक्ति में भी कमी है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि इटली के उद्योग व्यापार और कृषि के विकास की भविष्य में भी सम्भावना नहीं। पर यह स्पष्ट है कि आर्थिक स्थिति में सुधार किये बिना राष्ट्र को संकटमुक्त नहीं किया जा सकता। संयुक्त राष्ट्र इटली की काफी सहायता कर सकेगा, इसमें सन्देह नहीं।

आज इटली यूरोप का शायद सबसे गरीब देश है। इसके अतिरिक्त इटली की राजनैतिक स्थिति चिंता का कारण बनी हुई है। यद्यपि एक तरह इटली फ्रांस से अधिक सौभाग्यशाली है, क्योंकि जहाँ फ्रांस में आये दिन सरकारें बदलती रहती हैं वहाँ इटली में युद्ध-काल के पश्चात् सीनोर डी गास्पेटी की ही सरकार बनी हुई है, किन्तु सामाजिक असंतोष से लाभ उठाकर विभिन्न राजनैतिक पार्टियाँ सरकार

को उलटने के प्रयत्न में रहती हैं। पिछले दिनों होने वाले चुनावों में यद्यपि सीनोर डी गास्पेटी ही विजयी रहे और उन्होंने सरकार बनायी किन्तु उनको बहुमत अधिक प्राप्त नहीं है। इटली की कम्युनिस्ट पार्टी भी अधिक प्रबल है। कहा जाता है कि इटली की कम्युनिस्ट पार्टी दुनिया में तीसरे नम्बर की पार्टी है। इसके नेता सीनोर टोगलियाटी हैं।

अन्त में हम लेते हैं इटली की अन्तर्राष्ट्रीय नीति को। संक्षेप में इटली शक्ति-सन्तुलन की नीति पर चलता रहा है। जब भी उसे अपने विकास का, अपने को आगे बढ़ाने का अवसर मिला उसने उसे हाथों से निकलने नहीं दिया। इटली का गत तीन हजार वर्ष का इतिहास पतन और उत्थान, उत्थान और पतन की ही कहानी है। कला और विज्ञान का कदाचित ही ऐसा कोई क्षेत्र होगा जिस पर इटली की प्रतिभा का चिन्ह अंकित न हो। आखिर को इटली दांते, मार्को पोलो, लियो नादो दा विंसी, गैलीलियो और मारकोनी का देश है। इटली वह देश है जो संसार के कलाकारों को सदा ही प्रिय रहा है।

६

यूरोप के उस देश में जिसे प्रकृति ने सबसे अधिक रमणीयता दी है

मिलान से चलकर जब हमारी ट्रेन स्विटजरलैंड की धरती पर आयी तब कैम्पोंकोलोंगो स्टेशन पर रेल के डब्बों में ही यात्रियों के पासपोर्टों आदि की जाँच हुई। हमारे पासपोर्टों आदि की जाँच भी हमारे डब्बे में ही हुई। इस काम में वैसी देर नहीं लगी जैसी हवाई अड्डों पर लगती है और इसके बाद ही आल्पस् की पर्वत-श्रेणियाँ आरम्भ हुईं। यद्यपि ये श्रेणियाँ कुछ पहले से ही मिलने लगी थीं पर अब इनकी उँचाई और गहनता बढ़ने लगी। हम समझते थे कि जिस प्रकार भारत में शिमला, दार्जीलिंग आदि की रेलें पहाड़ों पर घूम-घूम पर चढ़ती हैं, और कभी-कभी तो रेल की पातों के घुमावदार चार-चार रास्ते एक साथ दीख पड़ते हैं वैसा ही स्विटजरलैंड के मार्ग में होगा; पर यहाँ वैसा न हुआ। मैदानों के सदृश मार्ग सीधा था, हाँ, गुफाएँ बार-बार मिलती थीं और इनमें कई काफी लम्बी थीं। दोनों ओर पर्वत-श्रेणियाँ थीं, कहीं ऊँची, कहीं नीची, कहीं वृक्षों से ढकी हुई सघन हरी, कहीं बिना एक भी दरख्त के एकदम नंगी। बहुत ऊँची, श्रेणियों के ऊपरी शिखरों पर बरफ के भी दर्शन हुए, जो अनेक स्थलों पर सूर्य की श्वेत किरणों में हीरे के ढेरों के सदृश चमक रहा था। कभी-कभी जल-प्रपात भी दृष्टिगोचर हो जाते थे और कभी-कभी पर्वतों के चरणों में बहती हुई पहाड़ी सरिताएँ। एक स्थान पर ऐसी ही एक नदी का नीर इतना सफेद था कि जान पड़ता था कि वह नीर की नदी न होकर क्षीर की नदी है। रेल बिजली से चलने वाली होने के कारण तेजी से चली जा रही थी और रेल की उस तेज चाल के कारण जान पड़ता था कि दोनों ओर के पहाड़ हमारे पीछे की ओर जोर से भागे चले जा रहे हैं। सारा दृश्य अत्यन्त मनोरम था, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु इस दृश्य में विशाल झीलों के मिलने तक हमें कोई नयी बात न मालूम हुई। भारत में काश्मीर, शिमला, मसूरी, दार्जीलिंग आदि के पहाड़ी दृश्य भी ठीक ऐसे ही हैं, काश्मीर की उपत्यका के तो कई स्थानों पर इन दृश्यों से भी कहीं अधिक सुन्दर।

कुछ समय पहले तक इस बात पर कई बार विवाद चल पड़ता था कि काश्मीर अधिक सुन्दर है या स्विटजरलैंड, पर जिन्होंने दोनों स्थानों को देखा है उनमें से अधिकांश लोग अब यह मानने लगे हैं कि काश्मीर स्विटजरलैंड से अधिक रमणीय है। हाँ, काश्मीर में जो कुछ किया है प्रकृति ने, मानव ने प्रकृति की देन को और अधिक परिष्कृत करने का बहुत थोड़ा प्रयत्न किया है। स्विटज़रलैंड में प्रकृति से मानव को जो कुछ मिला है उसे मानव ने और अधिक सुन्दर तथा रमणीय बना दिया है। तो जिनीवा झील अथवा लोमान झील मिलने तक हमें सारे दृश्य में उसके अत्यधिक सुन्दर होने पर भी कोई नवीनता दृष्टिगोचर नहीं हुई, पर ज्यों ही जिनीवा झील के दर्शन हुए त्यों ही सारे दृश्य में एक नवीनता आगयी। यद्यपि काश्मीर की उपत्यका में भी अनेक झीलें हैं, पर इतनी बड़ी कोई नहीं। जिनीवा झील की लम्बाई ५५ मील और अधिक से अधिक चौड़ाई ६ मील है। वह चन्द्राकार है। झील के सब ओर ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ हैं, जिनमें से कई के शिखरों पर सदा बरफ जमा रहता है। अधिकांश पहाड़ियाँ हरे चीड़ और देवदारु तरुओं से आच्छादित हैं। ऊपर के शिखरों पर जमे हुए श्वेत बरफ और उसके नीचे हरी कच्छ; इन पहाड़ियों के झील के जल में प्रतिबिम्ब पड़ने से दृश्य अत्यन्त सुहावना था। सन्ध्या हो रही थी। आकाश के निर्मल न होने के कारण दृश्य को और अधिक सुषमा मिल गयी थी, क्योंकि बादलों को अस्त होते हुए अरुण की मयूखों ने कहीं अरुण और कहीं सुनहरी बना दिया था। इन रंगों का प्रतिबिम्ब बरफ से ढके हुए श्वेत पर्वतों के शिखरों, हरे तरुओं और झील के नीले नीर पर अनोखा रंग बरसा रहा था। कुछ और अँधेरा होने पर झील के उस पार बसे हुए छोटे-छोटे गांवों में बिजली का प्रकाश फैला। अब तो हवा के वेग से चलती हुई ट्रेन की चाल के कारण सारा दृश्य एक स्वप्न-भूमि-सा जान पड़ने लगा। हम तब तक इस दृश्य को निर्निमेष दृष्टि से देखते रहे जब तक अँधेरे की काली चादर ने सारे दृश्य को ढककर हमारी आँखों से ओझल न कर दिया।

हमें लूसान स्टेशन पर गाड़ी बदलनी पड़ी। यहाँ से जिनीवा पहुँचने में केवल कुछ ही मिनट लगे। जिनीवा पहुँचते ही स्टेशन पर हमें एअर इण्डिया इण्टरनेशनल के प्रतिनिधि मिले, जिन्हें हमारे जिनीवा पहुँचने की सूचना स्विटज़रलैंड के भारतीय दूतावास ने बर्न से भेजी थी और किसी अच्छे होटल में हमारे ठहरने का प्रबन्ध करने को कहा था। इन सज्जन से मालूम हुआ कि ला रेसीडेन्स होटल में हमारे ठहरने की व्यवस्था की गयी है, क्योंकि झील के किनारे के होटलों में, जो जिनीवा का सबसे अच्छा स्थान माना जाता है, कोई जगह नहीं मिल सकी।

जब हम अपना असबाब लेकर स्टेशन से बाहर निकल रहे थे उस समय श्री ओमप्रकाश अग्रवाल भी हमारे स्वागत को पहुँच गये। श्री अग्रवाल बर्न से मोटर

द्वारा लगभग १०० मील दूर यहाँ आये थे और भारतीय दूतावास का पत्र भी लाये थे, जिसके द्वारा स्विटज़रलैंड में हमारा स्वागत किया गया था। इस स्वागत में और अधिक विशेषता इसलिए आ गयी थी कि श्री अग्रवाल जगमोहनदास के मित्र थे और भारतीय दूतावास के राजदूत श्री आसफअली (जिनकी अब मृत्यु हो चुकी है) थे गत ३२ वर्षों से राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करने वाले मेरे साथियों में एक।

पहले हम लोग होटल पहुँचे। इस समय रात के १० बज रहे थे। मालूम हुआ कि होटल का रैस्टरां ९।। बजे ही बन्द हो जाता है अतः हमें किसी अन्य जगह भोजन को जाना होगा। अपना सामान होटल के कमरों में जमा कर हम श्री अग्रवाल के साथ एक अन्य रैस्टरां में भोजन को पहुँचे। भोजन करते-करते ही हम लोगों ने श्री अग्रवाल की सहायता से स्विटज़रलैंड घूमने का अपना कार्यक्रम बनाया।

श्री अग्रवाल को दूसरे दिन अपने आफिस जाना था। अतः वे हमें रात्रि को जिनीवा के कुछ भागों में घुमा, होटल में पहुँचा, रात को ही बर्न लौट गये। श्री अग्रवाल ने जगमोहनदास की मित्रता के कारण ही बर्न से जिनीवा सौ मील आने-जाने का यह कष्ट उठाया था।

दूसरे दिन से हमने स्विटज़रलैंड घूमना आरम्भ किया। देश का कुछ हिस्सा, और अत्यन्त मनोरम हिस्सों में एक, हम मार्ग में रेल से देखते हुए आये थे, शेष में का कुछ भाग हम अपने कार्यक्रम के तीन दिनों में देख सकते थे।

सबसे पहले हमने जिनीवा नगर देखा। प्राकृतिक दृष्टि से नगर अत्यन्त सुरम्य स्थान पर बसा हुआ है। चारों तरफ की पहाड़ियों के बीच एक समतल भूमि-खण्ड पर यह नगर बसाया गया है। इस भूमि-खण्ड की शोभा चारों ओर की सघन हरियाली तथा बीच की झील के कारण बहुत बढ़ गयी है। इमारतें एकदम आधुनिक ढंग की हैं। सड़कें भी काफी चौड़ी और साफ हैं। शहर में पूरी सफाई रखने का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है। नगर बहुत बड़ा नहीं, छोटा ही है।

झील में एक स्थान पर पानी का एक फव्वारा चला करता है (चित्र नं० ४५)। इस फव्वारे को देख मुझे न्यूज़ीलैंड में गन्धक की झील में से कभी-कभी पाँच-पांच सौ फुट ऊँचे उठनेवाले फव्वारे याद आ गये। जिनीवा की झील का यह फव्वारा न्यूज़ीलैंड के उन फव्वारों के समान ही था अन्तर इतना ही था कि न्यूज़ीलैंड के वे फव्वारे सदा नहीं चलते थे, बीच-बीच में चलने लगते और इस फव्वारे से कहीं ऊँचे उड़ते और फिर बन्द हो जाते। वे अपने आप चलते, किसी मानव निर्मित मशीन से नहीं। जिनीवा की झील का यह फव्वारा मानव की सृष्टि है अतः सदा चला करता है। इसीलिए इसे देखने की उतनी उत्कण्ठा भी नहीं रहती जितनी कभी-कभी उड़नेवाले न्यूज़ीलैंड के फव्वारों की।

जिनीवा की आबादी सवा लाख से भी कम है। यों तो स्विटज़रलैंड ही बहुत छोटा देश है; क्षेत्रफल है १५ हजार ६४० वर्गमील और आबादी है ३२ लाख ५२ हजार ६६४। ऐसे छोटे से देश के नगर तो और छोटे होने चाहिएँ, पर देश की आबादी को देखते हुए यहाँ के नगरों की जनसंख्या अधिक कही जा सकती है। स्विटज़रलैंड के सबसे बड़े चार नगर हैं जिनकी आबादी एक लाख से अधिक है। इनमें से राजधानी बर्न की आबादी १ लाख ३० हजार, ज़्यूरिच की आबादी ३ लाख ३६ हजार, बेसल की आबादी १ लाख ६२ हजार और जिनीवा की आबादी १ लाख २४ हजार है। जिनीवा का नम्बर स्विटज़रलैंड के बड़े नगरों में तीसरा आता है। यह न इस देश की राजधानी है और न व्यापारी केन्द्र, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से जिनीवा का बड़ा महत्त्व है। इसका कारण है यहाँ लीग ऑफ़ नेशन्स का वर्षों तक दफ़्तर रहना और अन्तर्राष्ट्रीय अनेक परिषदों का होना। फ्रांस के समीप होने के कारण यहाँ के प्रदेश में फ्रेंच-भाषी अधिक रहते हैं। बेसल जर्मनी और स्विटज़रलैंड के बीच सम्पर्क और आदान-प्रदान का मार्ग है। जिनीवा उसी प्रकार फ्रांस और स्विटज़रलैंड के बीच आदान-प्रदान का मार्ग है। दोनों ही नगर में एक-एक यूनिवर्सिटी है। ज़्यूरिच का महत्त्व व्यापार तथा रेल-केन्द्र होने के नाते है। दूसरा कारण यह है कि वहाँ स्विटज़रलैंड की अकेली टेक्निकल यूनिवर्सिटी है। सारे यूरोप में यह निराली बात स्विटज़रलैंड में ही है कि बर्न देश का सबसे बड़ा नगर न होते हुए भी वहाँ की राजधानी है।

जिनीवा में हमें कोई पुराने खण्डहर आदि नहीं मिले अतः एक घंटे के भीतर हमने सारा नगर घूम डाला। पुराना प्राकृतिक सौन्दर्य और नवीन इमारतें, सड़कें इत्यादि तथा उनकी स्वच्छता के अतिरिक्त अन्य कोई दर्शनीय स्थान देखने को न था। शहर की घुमाई समाप्त कर हम लोग ऑफ़ नेशन्स का दफ़्तर देखने पहुँचे। यह इमारत और यहाँ का सारा कार्य देखने योग्य था (चित्र नं० ४६-४७)।

सबसे पहले यहाँ पहुँचकर हमने दोपहर के भोजन से निवृत्त होने का निश्चय किया। एक बज रहा था अतः यहाँ के नियमानुसार दफ़्तर का काम १२॥ बजे से २॥ बजे तक बन्द रहता है। यह भी एक कारण हुआ हमारे भोजन से निवृत्त होने की इच्छा का। इस इमारत में ही रैस्टराँ था अतः भोजन के लिए किसी अन्य जगह जाने की भी आवश्यकता नहीं थी।

ठीक ढाई बजे एक मार्ग-प्रदर्शक के साथ, जो एक बड़े-से समुदाय को भवन दिखाने ले जा रहा था, हम लोग भी हो गये।

इस मार्ग-प्रदर्शक का काम समाप्त होने पर हम लोगों ने कुछ लोगों से मिलने और यहाँ का पुस्तकालय देखने का विचार किया। अब हम लोगों ने अपना

४५. जिनीवा की झील का प्रसिद्ध फ़व्वारा
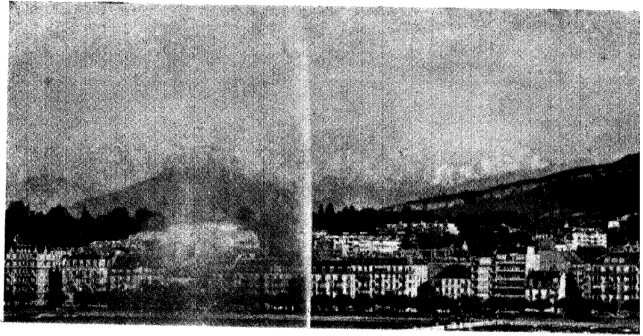
४६. लीग ऑफ़ नेशन्स की इमारत; जिनीवा
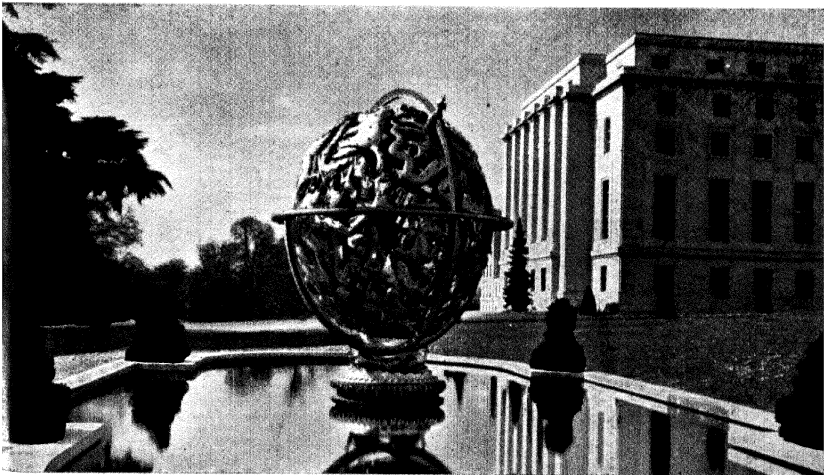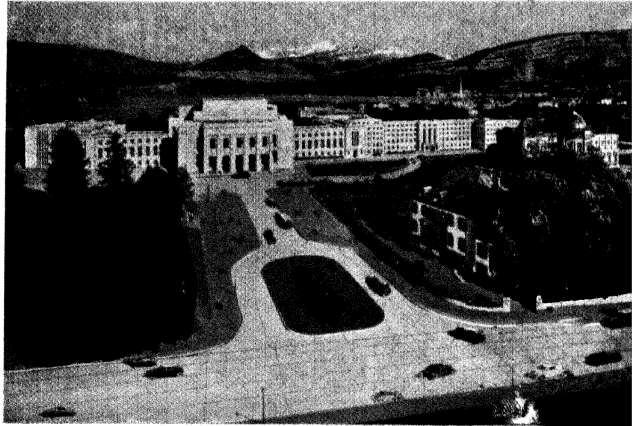
४७. जिनीवा में लीग ऑफ़ नेशन्स की इमारत के सामने का विचित्र लट्टू

४८. प्रकृति की गोद में प्रकृति के दो मनोहर प्राणी, स्विटज़रलैंड

४९. बर्न के प्रसिद्ध भालू

परिचय दे देना उचित समझा। ज्योंही वहाँ के लोगों को जगमोहनदास का और मेरा परिचय-पत्र मिला, उन्होंने तत्काल हमें बुला लिया और लीग ऑफ़ नेशन्स तथा यू. एन. ओ. के सम्बन्ध में उनकी और हमारी काफी लम्बी बातचीत हुई।

इस बातचीत के अन्त में जब हमने उनसे अपनी पुस्तकालय देखने की इच्छा प्रकट की तब उन्होंने पुस्तकालयाध्यक्ष को फोन कर ४॥ बजे उनसे हमारा एपाइण्टमेण्ट कराया। अभी करीब ४ बजे थे। इस आधे घण्टे में उन्होंने हमें लीग ऑफ़ नेशन्स की ऐतिहासिक घटनाओं के संग्रह को देखने की सलाह दी।

ठीक ४॥ बजे पुस्तकालयाध्यक्ष आये और उन्होंने हमें पुस्तकालय दिखाया। यहाँ ऐतिहासिक, राजनैतिक और आर्थिक तीन विषयों की पुस्तकों का बड़ा अच्छा संग्रह है। कितने ही प्रकार के विश्वकोश यहाँ संग्रहीत हैं और सारे संसार के कितने ही देशों के उपर्युक्त विषयों पर पत्र-पत्रिकादि आते हैं। पुस्तकालय की सारी व्यवस्था, विशेषकर पुस्तकों की सूची रखने का तरीका भी दर्शनीय है।

यूरोप के अब तक के दौरे में प्राचीन स्थानों को छोड़ हमने जो स्थान और वस्तुएँ देखी थीं उनमें इस पुस्तकालय का स्थान सर्वोपरि था।

लीग ऑफ़ नेशन्स की इस इमारत और पुस्तकालय को देखने के पश्चात् जब हम अपने होटल को लौट रहे थे उस समय हमें लीग ऑफ़ नेशन्स की स्थापना से लेकर अब तक अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के प्रयत्नों का तथा उनकी असफलताओं की एक के बाद एक घटनाओं का स्मरण आया। सन् १९१४-१८ के युद्ध के बाद अमेरिका के उस समय के प्रेसीडेंण्ट श्री वुडरोविलसन की राय का परिणाम लीग ऑफ़ नेशन्स की स्थापना थी। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का यह पहला व्यापक प्रयत्न था इसमें सन्देह नहीं। पर इसकी सबसे बड़ी प्रारम्भिक ट्रेजिडी यह हुई कि जिस देश के राष्ट्रपति की राय के अनुसार इस संस्था की स्थापना हुई वही देश इस संस्था में सम्मिलित नहीं हुआ। लीग ऑफ़ नेशन्स ने विश्व में शान्ति स्थापित रहे इसके कम प्रयत्न नहीं किये, पर इन प्रयत्नों के बावजूद सन् '३९ में सन् १९१४-१८ से भी कहीं बड़ा और भीषण संग्राम फिर हुआ और लीग ऑफ़ नैशन्स समाप्त हो गयी। इस युद्ध के बाद लीग ऑफ़ नेशन्स के सदृश ही यू. एन. ओ. की स्थापना हुई है। यदि बारीकी से देखा जाय तो लीग ऑफ़ नेशन्स और यू. एन. ओ. में नाम के सिवा अन्य अन्तर बहुत कम है। हाँ, एक अन्तर अवश्य है—लीग ऑफ़ नेशन्स में अमेरिका सम्मिलित नहीं हुआ था, पर यू. एन. ओ. में तो वही सर्वेसर्वा है। जो कुछ हो, प्रश्न यह है कि यदि लीग ऑफ़ नेशन्स सफल नहीं हुई तो क्या यू. एन. ओ. को सफलता मिलेगी? उत्तर सरल नहीं है। अब तक यू. एन. ओ. को भी सफलता नहीं मिल रही है। यू. एन. ओ. के रहते हुए ही कोरिया की लड़ाई हुई और शान्ति के उपासक यू. एन. ओ.

ने उस लड़ाई में सबसे अधिक प्रत्यक्ष भाग लिया। कहा उसने यही कि शान्ति को स्थापित रखने के लिए ही वह कोरिया का युद्ध कर रहा है, पर आज जो भी युद्ध में सम्मिलित होते हैं सब अपना यह उद्देश्य बताते हैं। वह समय अब बीत गया जब युद्ध विजय के लिए लड़ा जाता था और किसी को विजय करना एक महान् वस्तु मानी जाती थी। आज युद्ध होता है शान्ति के लिए। यू. एन. ओ. के रहते हुए दक्षिण अफ्रीका में वहाँ के अश्वेत निवासियों को मानवोचित अधिकार नहीं मिल रहे हैं और जो मानवोचित अधिकारों के लिए शान्तिमय सत्याग्रह करना चाहते हैं उन पर बेंत लगाये जाने की सजा दी जाने लगी है। इस समय सभ्य कहे जाने वाले काल में अफ्रीका के सभ्य श्वेत यह बर्बर दण्ड देने की व्यवस्था कर रहे हैं। क्या इससे अधिक कोई बर्बरता, महान् से महान् बर्बरता सम्भव है? हमारे देश के काश्मीर प्रश्न का भी यू. एन. ओ. कोई हल नहीं निकाल सका है। क्या आगामी युद्ध को यू. एन. ओ. रोक सकेगा? कौन इसका उत्तर दे सकता है? पर इसी के साथ यह बात भी माननी होगी कि यदि विश्व का पूर्ण संहार नहीं होना है तो लीग ऑफ़ नेशन्स अथवा यू. एन. ओ. किसी भी ऐसी संस्था का होना भी अनिवार्य है। संसार के विचारक सारे संसार की एक सरकार की कल्पना कर रहे हैं। विश्व-कल्याण के लिए सारे संसार की सरकार के अतिरिक्त अन्य मार्ग भी नहीं हैं। और यदि यह नहीं होता है, युद्ध नहीं रुकते हैं, तो आज नहीं तो कल और कल नहीं तो परसों हमारे इस जगत का नाश अवश्यंभावी है। जिस दिन बारूद ईजाद हुई थी, कौन जानता था कि इस छोटे से विस्फोटक पदार्थ के पश्चात् धीरे-धीरे मामला एटम और हाइड्रोजन बमों तक पहुँच जायगा। ऐसा भी कोई बम बनना कदाचित् असम्भव न हो कि जिससे हमारा भूमण्डल ही टुकड़े-टुकड़े हो जाय। कहा जाता है मानव-मन का निर्माण प्रकृति ने इस प्रकार का किया है कि युद्ध अनिवार्य है। मानव में पाशविक भावनाएँ प्रकृति की देन हैं यह मैं मानता हूँ। राग-द्वेष से रहित जीवन-मुक्त मानव ही हो सकता है यह भी मुझे स्वीकृत है। परन्तु राग-द्वेष व्यक्तियों के बीच होते हैं। व्यक्तियों के झगड़े मानव समाज में सदा रहेंगे यह मुझे मान्य है। लेकिन सामूहिक युद्धों में जो राग-द्वेष प्रकृति से मानव को मिले हैं, उसका कितना अंश रहता है, यह विचारणीय है। सेनाओं के योद्धा जब एक दूसरे से लड़ते हैं तब क्या उनकी कोई व्यक्तिगत शत्रुता रहती है? एरोप्लेन जब बम बरसाते हैं तब क्या किसी व्यक्तिगतराग-द्वेष के कारण? मैं युद्ध को स्वाभाविक न मान एक अत्यन्त अस्वाभाविक वस्तु मानता हूँ और मुझे तो आश्चर्य है कि सभ्य कहलाने वाले मानव-समाज में अब तक यह मारकाट कैसे हो रही है? कहा जाता है युद्ध सदा से होता आया है। जो बात होती रही है वह सदा होती रहेगी ऐसा तो नहीं है। एक समय था जब मानव को मानव खा

जाता था, आज तो यह नहीं होता। एक काल फिर आया जब गुलाम-प्रथा के समय मानव-शरीर बेचे और खरीदे जाते थे। आज भी चाहे शोषण हो, परन्तु आज मानव-शरीर का क्रय-विक्रय तो नहीं होता। यदि मानव की उन्नति हो रही है और यदि संसार का नाश नहीं होना है तो चाहे मानव-मन में राग-द्वेष की भावनाएँ प्रकृति ने दी हों, चाहे युद्ध अब तक होता रहा हो, एक न एक दिन ऐसा आना ही चाहिए जब जिस प्रकार मानव द्वारा मानव का खाना रुका, मानव-शरीर की खरीद-बिक्री रुकी, उसी प्रकार युद्ध की सदा के लिए समाप्ति होगी। इसके लिए लीग ऑफ़ नेशन्स, यू. एन. ओ. सदृश संस्थाएँ चाहे अब तक बार-बार असफल क्यों न होती रही हों, ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता रहेगी। और यदि अन्त में भी इस दिशा में हम सफल न हुए तो ? पर मैं तो बड़ा आशावादी व्यक्ति हूँ। मैं तो मानव उन्नति कर रहा है इसे माननेवाला हूँ। मुझे संसार का नाश न दिखकर उसका कल्याण दिखता है।

दूसरे दिन हम जिनीवा से ग्रेन्शेन होकर बर्न तक जाने वाले थे और बर्न से भी आगे कुछ पहाड़ी स्थानों को देखने। ग्रेन्शेन (Grenchen) में घड़ी के कारखाने हैं, जो उद्योग स्विटजरलैंड का मुख्य उद्योग है। मेडीरोना वाच-कम्पनी के मालिक श्री मैक्सश्नीडर से श्री अग्रवाल का व्यक्तिगत परिचय था अतः श्री अग्रवाल ने फोन द्वारा इस फैक्टरी को देखने की हमारी व्यवस्था कर दी थी। जैसा पहले कहा जा चुका है बर्न स्विटजरलैंड की राजधानी है और वहाँ है भारतीय दूतावास। चूँकि आजकल भारत के राजदूत श्री आसफअली थे, मैं स्विटजरलैंड आकर बिना भारतीय दूतावास देखे और श्री आसफअली से मिले स्विटजरलैंड कैसे छोड़ सकता था ? फिर एक ऐसा पहाड़ भी मैं देखना चाहता था जहाँ बरफ में कुछ घूमा-घामा जा सके।

ता० १३ अगस्त के प्रातःकाल ६ बजे की गाड़ी से दो दिनों के इस दौरे के लिए हम रवाना हुए।

आज श्रीकृष्ण जन्माष्टमी थी। कितना महत्त्वपूर्ण था आज का दिन हमारे देश के लिए। जिन्हें हम भगवान् का पूर्णावतार मानते हैं वे आज के दिन भारत की पुण्यभूमि पर अवतीर्ण हुए थे। हजारों वर्ष बीत जाने पर भी सारा भारत पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक आज के दिन नाना प्रकार के उत्सव मनाता है। परन्तु जहाँ आज हम थे वहाँ न तो इस दिन को ही कोई जानता था और विद्वानों को छोड़ न कोई भगवान् कृष्ण को ही। सूर्यमण्डल में सूर्य तथा अन्य ग्रहों के सामने हमारी पृथ्वी कितनी छोटी-सी चीज है और अन्य सूर्यमण्डलों के सूर्यों तथा उनके विविध ग्रहों के सामने हमारा सूर्य तथा उसके ग्रह कितने छोटे। परन्तु इतने पर भी हमारी इस छोटी-सी पृथ्वी के ये भिन्न-भिन्न छोटे-छोटे देश,

आज के अत्यन्त तीव्रगामी यातायात के साधनों के होते हुए भी एक दूसरे से कितने दूर हैं कि एक दूसरे के धर्म, संस्कृति, इतिहास किसी से भी तो परिचित नहीं। यातायात के इन साधनों के कारण हमें चाहे एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने में नगण्य समय क्यों न लगे, भौगोलिक दृष्टि से चाहे हम एक दूसरे के कितने ही सन्निकट क्यों न आ गये हों, लेकिन जब तक मानसिक क्षेत्र में भी हम एक दूसरे के निकट आने का प्रयत्न न करेंगे तब तक संसार में आपस का सच्चा प्रेम, सच्ची मैत्री, सच्ची सहानुभूति कदापि न हो सकेगी, जिसके बिना एक दूसरे के लिए सहिष्णुता और एक दूसरे के प्रति आदर की भावना न आयगी। एक दूसरे के समीप जाने के लिए हमें एक दूसरे के धर्म, संस्कृति, इतिहास सबको समझने का प्रयत्न करना होगा और इसके लिए सबसे बड़ा साधन है साहित्य। संसार के समस्त देशों के साहित्य के आदान-प्रदान का प्रयत्न संसार के लोगों को समीप से समीप लाने का सबसे बड़ा उपाय है। जिनीवा के लीग ऑफ़ नेशन्स का भवन देखने और वहाँ के कार्यों को समझने के बाद इस समय मेरे मन में संसार की समस्याएँ और वे किस प्रकार हल की जायँ ये ही प्रश्न उठ रहे थे। भारत से इतने दूर रहने पर भी हमने हर वर्ष के सदृश इस वर्ष भी जन्माष्टमी व्रत करने का निश्चय किया। मैं एक आस्तिक वैष्णव कुल में जन्मा हूँ और वैसे ही वायुमण्डल में पाला गया हूँ। वैष्णव संस्कारों का अभी भी मेरे मन पर थोड़ा नहीं पूर्ण प्रभाव है। मेरी सन्तति का भी यही हाल है। मेरे दामाद घनश्यामदास का कुटुम्ब भी वैष्णव कुटुम्ब ही है। अन्य वर्षों का जन्माष्टमी व्रत हम लोग अपने देश में ही करते थे, जहाँ आज के दिन विविध प्रकार के उत्सव हुआ करते हैं अतः व्रत के कारण कोई दिन या घटना विशेष रूप से स्मरण रहती है इसका हमें अनुभव न हुआ था। स्विटजरलैंड में जन्माष्टमी का व्रत करने से हमें मालूम हुआ कि इस प्रकार के व्रत विशिष्ट दिनों और घटनाओं की स्मृति के लिए कितना काम करते हैं।

हमारी गाड़ी ग्रेन्शेन स्टेशन कोई ११॥ बजे पहुँची। जिनीवा से ग्रेन्शेन जाने के लिए हमें रास्ते में एक स्थान पर गाड़ी बदलनी भी पड़ी थी। ग्रेन्शेन स्टेशन पहुँचते ही जिस घड़ी के कारखाने को हम यहाँ देखने आये थे उसके मालिक श्री मेक्सश्नीडर (Max Schneider) को हमने फोन किया। वे तत्काल अपनी मोटर में हमें लेने पहुँचे, जब तक हम इनकी फैक्टरी पहुँचे तब तक दोपहर के बारह बज चुके थे। स्विटजरलैंड में ही नहीं पर सारे यूरोप में १२ बजे से दो बजे तक छुट्टी का समय रहता है, अतः घड़ी की फैक्टरी बन्द हो चुकी थी। श्री मेक्सश्नीडर ने हमें लंच के लिए कहा। हमने अपने व्रत का हाल बता केवल फल खा लेना स्वीकार कर लिया। जब तक श्री श्नीडर लंच तथा हम फलाहार से निपटे तब तक २ बज चुके थे। जैसे ही

'५० स्विजरलैंड की पहाड़ी ट्रेन का रास्ता मय ट्रेन के
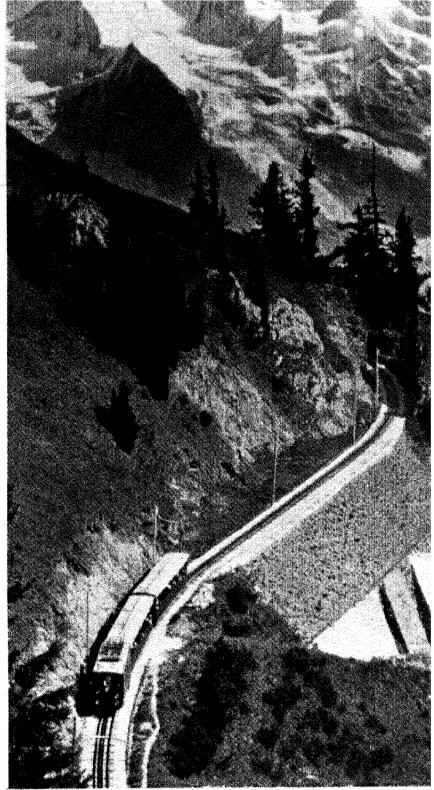
५१. स्विटजरलैंड की पहाड़ी सड़क मय बसों के
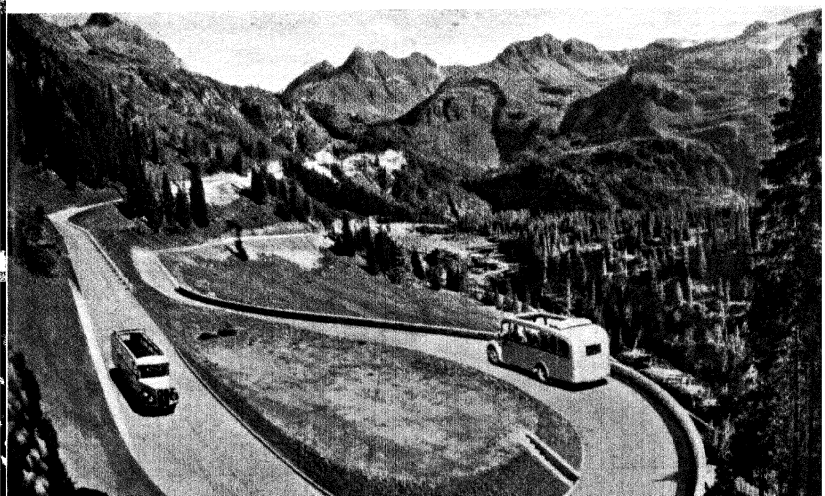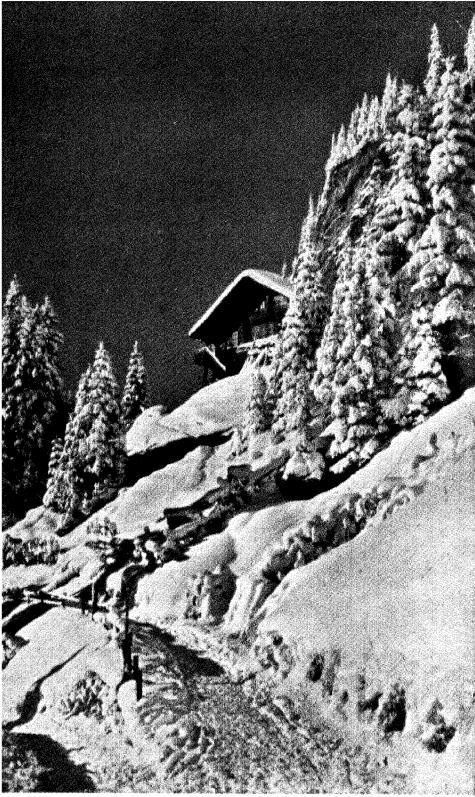
५२–५३. जाड़ों में बर्फ गिरने के बाद स्विट्ज़रलैंड के दो दृश्य

फैक्टरी खुली श्री श्नीडर ने हमें फैक्टरी दिखायी। इस कारखाने में घड़ियाँ बनती न थीं, घड़ियों के विविध भाग आते और वे इकट्ठे किये जाते थे। यथार्थ में स्विटजरलैंड का घड़ी का उद्योग गृह-उद्योग है। घड़ी के अलग-अलग हिस्से कारीगर अपने घरों में तैयार करते हैं। घड़ी के ये कारखाने उन भिन्न-भिन्न भागों को खरीदते और पूरी घड़ी बना देते हैं। कुछ कारखानों में इनमें से कुछ हिस्से भी बनते हैं, पर ऐसे कारखाने बहुत कम हैं और पूरी घड़ी के समस्त भाग किसी एक कारखाने मे बनें ऐसा तो कोई कारखाना है ही नहीं। घड़ी के भिन्न-भिन्न हिस्सों को इकट्ठा कर पूरी घड़ी बना देना भी कम हुनर का काम नहीं। हमने इस फैक्टरी में देखा कि कितने कारीगर किस बारीकी से यह काम करते हे। मैग्नीफाइंग काँचों की छोटी-छोटी दूरबीनों और छोटी-छोटी चीमटियों, स्क्रू आदि यन्त्रों की सहायता से इन विविध भागों को एक छोटी-सी हाथ-घड़ी में, और स्त्रियों को तो अत्यन्त ही छोटी हाथ-घड़ी में ठीक बिठाते हुए इन कारीगरों के काम का निरीक्षण सचमुच एक दर्शनीय दृश्य था। एक ही कारीगर इन सब भागों को न बैठाता, एक कारीगर एक प्रकार के हिस्सों को, दूसरा दूसरे प्रकार के हिस्सों को, और तीसरा तीसरी प्रकार के। इस प्रकार अनेक कारीगरों के हाथों से गुजरने के बाद घड़ी पूरी घड़ी बनती और घड़ी के पूरी घड़ी बन जाने के पश्चात् वह ठीक समय देती है या नहीं इसकी कई प्रकार से जांच होती तथा इस जांच में समय की कोई गड़बड़ी निकलती तो वह ठीक की जाती। कारखाने में अनेक प्रकार की घड़ियाँ बन रही थीं—कोई सादी केवल घंटों और सैकिण्डों का समय देने वाली, कोई घंटों और सैकिण्डों के साथ-साथ तारीख और वार बताने वाली, कोई इन सब के साथ चन्द्रमा की बढ़ती और घटती हुई कलाएँ भी दिखाती और कोई तारीख, वार, चन्द्र न बताकर केवल एलार्म देती। कोई ऐसी बनती जिसमें चाबी देने की आवश्यकता न होती; कलाई पर धारण करने के बाद कलाई के हिलने-डुलने से उसकी चाबी भरती जाती। कोई 'शॉकप्रूफ' बनायी जाती यानी गिरने से भी बन्द न होने वाली तथा पानी पड़ने पर भी चलती रहने वाली। घड़ियाँ सोने की, स्टील की तथा और भी कई धातुओं की बन रही थीं। स्त्रियों की तो कोई-कोई घड़ी इतनी छोटी थी कि उसका समय मुझे तो बिना मैग्नीफाइंग ग्लास के देख सकना ही सम्भव न था।

स्विटजरलैंड में दुनियाँ की सबसे अच्छी और सबसे अधिक घड़ियाँ बनती हैं। संसार के समस्त देशों को यह छोटा-सा देश घड़ियाँ देता है। प्रति वर्ष विविध प्रकार की अनेकों घड़ियाँ तैयार होती हैं। इनमें से स्विटजरलैंड की आवश्यकता के लिए तो थोड़ी ही घड़ियाँ वहाँ रखी जाती हैं, शेष संसार के अन्य देशों में बेच दी जाती हैं। घड़ी के उद्योग में काम करने वाले हर कारीगर को मजदूरी भारत के रुपयों में लगभग आठ सो रुपया महीना पड़ता है।

पहले स्विटजरलेंड में सूत और रेशम-उद्योग प्रमुख थे, किन्तु बीसवीं शताब्दी में मशीन उद्योग सर्वोच्च हो गया। घड़ी-उद्योग मशीन उद्योग का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके लिए कहीं अधिक कुशल और बारीक काम कर सकने वाले कारीगरों की आवश्यकता होती है। स्विटजरलेंड में घड़ी-उद्योग का सूत्रपात सोलहवीं शताब्दी में हुआ। जिनीवा और जूरिक इसके प्रमुख केन्द्र थे। धीरे-धीरे यह उद्योग बेसल प्रदेश में भी फैल गया। १६२६ में इस उद्योग में काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या ४८,५०३ थी। दस वर्ष पश्चात् यह संख्या घटकर ३३,६३६ हो गयी किन्तु द्वितीय युद्ध के पश्चात् संसार भर में स्विटजरलेंड की घड़ियों की माँग बढ़ जाने के कारण इस उद्योग में कर्मचारियों की संख्या भी बहुत बढ़ गयी। हीरा-जवाहरात उद्योग घड़ी बनाने के उद्योग से गहरा सम्बन्ध रखता है, क्योंकि घड़ी बनाने में भी उनकी आवश्यकता पड़ती है।

स्विटजरलेंड में आजकल चार उद्योग प्रधान हैं—घड़ियों का, रासायनिक पदार्थों (कैमिकल्स) का, मशीनरी का और खेती का। चारों उद्योगों में स्विटजरलैंड के निवासी करीब-करीब बराबर संख्या में बँटे हुए हैं। घड़ियों के सदृश यहाँ बने हुए रासायनिक पदार्थ और मशीनरी भी अन्य देशों को निर्यात होते हैं। यह छोटा-सा देश संसार के सम्पन्न से सम्पन्न देशों में एक देश है और इसका प्रधान कारण यहाँ के उपर्युक्त चारों उद्यम हैं। घड़ी का उद्योग इन चारों में सर्वप्रथम है।

उधर रेलगाड़ियों को बिजली से चलाने की व्यवस्था करने में स्विटजरलेंड ने सचमुच ही बहुत बड़ा काम किया है। इसके अतिरिक्त रेलगाड़ी के हलके और उम्दा ढंग के डब्बे बनाने की दिशा में भी वहाँ काफी काम हुआ। भारत में ऐसे डब्बे मँगाकर प्रदर्शित भी किये गये हैं और भारतीय रेलों के विकास में उनसे लाभ उठाने का भी विचार है।

वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में स्विटजरलेंड औद्योगिक उत्पादन का एक तिहाई भाग बाहर भेजता था, द्वितीय महायुद्ध छिड़ते न छिड़ते यह मात्रा दुगुनी होगयी।

घड़ी का कारखाना देखने के पश्चात् हमने कुछ घड़ियाँ खरीदीं जो काफ़ी सस्ती कीमत में मिलीं।

लगभग ४ बजे हमारी गाड़ी बेन स्टेशन से बर्न जाती थी। ग्रेन्शेन से बैन जाकर रेल में बैठने से बर्न जाते हुए बैन में जो गाड़ी बदलती थी वह तबालत बच जाती थी। ग्रेन्शेन से बैन करीब १० मील ही पड़ता है अतः श्री मेक्सश्नीडर अपनी मोटर में हमें बैन स्टेशन लाये और ठीक समय हम बर्न के लिए रवाना हो गये। आज भी जिनीवा से बर्न तक हम स्विटजरलेंड के रमणीय दृश्य देखते हुए आये थे। रास्ते में हमने कई नगर देखे, जो यथार्थ में नगर न होकर

कस्बे थे, पर सारी आधुनिक सुविधाओं से युक्त तथा अत्यन्त सम्पन्न।

बर्न हमारी गाड़ी बिना किसी विशिष्ट घटना के ठीक समय पहुँची। श्री ओमप्रकाश अग्रवाल हमें लेने स्टेशन पर मौजूद थे। बर्न में हम केवल रात भर रहने वाले थे अतः वहाँ के एक होटल में हमारे ठहरने का प्रबन्ध श्री अग्रवाल ने किया था। सामान होटल में भेज हम लोग श्री आसफअली से मिलने चले, क्योंकि उनसे हमारे मिलने का समय ७ बजे नियुक्त था।

श्री आसफअली के यहाँ जाते हुए श्री अग्रवाल हमें उन रीछों को दिखाने ले गये जिनके कारण इस नगर का नाम बर्न पड़ा था (चित्र नं० ४६)।

जब हम श्री आसफअली के यहाँ पहुँचे तब वे हमारा रास्ता ही देख रहे थे। आसफअली साहब जिस बँगले में रहते थे वह भारत सरकार का है। इसे श्री धीरू भाई देसाई ने खरीदा था जब वे यहाँ भारतीय राजदूत होकर आये थे। श्री धीरू भाई की याद आते ही मुझे उनके पिता श्री भूलाभाई के समय की न जाने कितनी बातें स्मरण आयीं। काल के कराल गाल से कौन बचा है ? आज न भूलाभाई थे, न धीरू भाई। खैर, भूलाभाई तो वृद्धावस्था में गये थे, पर धीरू भाई ? कौन जानता है किसे कब तक रहना और कब जाना है ?

श्री आसफअली मुझ से वैसे ही प्रेम और उत्साह से मिले जिस प्रकार कोई सगा भाई सगे भाई से मिलता है। उन्होंने जगमोहनदास और घनश्यामदास को एक पितृत्व के समान आशीर्वाद दिया। कितनी बातें किस-किस जमाने की मुझे याद आयीं श्री आसफअली से मिलकर। आसफअली साहब ने बर्न में हमारा होटल-निवास किसी तरह भी स्वीकार न किया। हमारा सामान तत्काल होटल से उनके यहाँ मंगाया गया और हम लोग वहीं ठहरे। हमारी अब तक की इस यात्रा में ऐसा सौजन्यतापूर्ण व्यवहार किसी ने न किया था। करता भी कौन ? आसफअली साहब के सदृश पुराना सम्बन्ध मेरा अब तक मिले हुए किस व्यक्ति से था ?

श्री आसफअली के यहाँ आज रात्रि के भोजन का निमंत्रण मुझे फोन से पहले दिन ही जिनीवा में मिल चुका था। मैंने जन्माष्टमी के व्रत का हवाला देकर केवल फल खाने की स्वीकृति दी थी। रात को भोजन के लिए श्री एन. सी. मेहता भी आये मय अपनी पत्नी के। श्री मेहता आजकल स्विटजरलैंड अपने पुत्र श्री अशोक मेहता और उनकी पत्नी श्री चन्द्रलेखा के साथ आये हुए थे। श्री एन. सी मेहता को मैं भारत से ही जानता था, विशेषकर उस समय से जब नेहरू-अभिनन्दन ग्रन्थ का नेहरू जी की जीवनी से सम्बन्ध रखने वाला भाग श्री मेहता ने लिखा था श्रीमती चन्द्रलेखा से भी उनकी माता श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित के कारण मेरा परिचय था, पर श्री एन. सी. मेहता की पत्नी और श्री अशोक मेहता से मैं पहले कभी न

मिला था। हां, इतना मैं जानता था कि श्री अशोक मेहता फ्रांस के भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव हैं।

रात्रि के भोजन के समय श्री एन. सी. मेहता और श्री आसफअली से साहित्यिक तथा सांस्कृतिक विषयों पर बहुत सी बातें होती रहीं। आज मुझे पहली बार श्री आसफअली का सांस्कृतिक बातों के परिचय का हाल मालूम हुआ, विशेषकर उनका भारतीय संगीत-शास्त्र का परिचय। इसी समय श्री आसफअली ने हम लोगों के दूसरे दिन घूमने का कार्यक्रम भी बना दिया। हमें यह देखकर खेद हुआ कि बर्न से हम स्विटजरलैंड के जिस प्रसिद्ध बरफ के महल को देखने जाने का विचार कर आये थे. वहां समय की कमी के कारण हम न जा सकेंगे। इटली में नेपिल्स और पांपियाई न देख सकने के कारण जैसा खेद हमें हुआ था वैसा ही यह भी था।

इसके बाद हम रात्रि को ही बर्न देखने निकले। वैसा ही सुन्दर, साफ-सुथरा, अच्छी इमारतों और सड़कों वाला बिजली की रोशनी से जगमगाता हुआ तथा रमणीय पहाड़ियों से घिरा हुआ बर्न नगर था, जैसा जिनीवा। जिस चीज ने यहां हमारा ध्यान सबसे अधिक आकर्षित किया वह थी वहाँ की एक अद्भुत घड़ी।

यह घड़ी एक प्राचीन घण्टाघर पर है। पहले यह नगर के द्वारों में से एक था। जब-जब घड़ी में घण्टा बजता है उसके सुन्दर डायल के सम्मुख कठपुतलियों का जुलूस-सा निकलता है जिसमें रीछ तो बराबर ही उपस्थित रहता है। इससे पर्यटकों और बच्चों के लिए एक प्रमोद की सामग्री मिलती है।

रात को श्री आसफअली साहब के यहां लौट, रात्रि भर विश्राम कर, दूसरे दिन प्रातःकाल हमने अपने जन्माष्टमी व्रत का पारण किया श्री आसफअली साहब के यहां की डबलरोटी आदि शाकाहारी सामग्री से, और आज दिन भर की घुमाई के लिए मोटर में बर्न नगर श्री अग्रवाल के साथ छोड़ दिया। श्री अग्रवाल को आज दिन भर की छुट्टी श्री आसफअली ने इसलिए दे दी थी कि वे हमें बर्न के चारों ओर का पार्वत्य प्रदेश भली भाँति दिखा दें।

हमारे आज के कार्यक्रम में यद्यपि कई स्थान रखे गये थे, पर हमारा सारा दिन केवल एक जगह ही बीत गया। इस जगह का नाम था इण्टरलाकन। इण्टरलाकन स्विटजरलैंड के अन्य छोटे-बड़े नगरों के सदृश एक सुन्दर पहाड़ी नगर है। नगर के चारों ओर आल्प्स की ऊँची-ऊँची श्रेणियाँ हैं, जिनमें अनेक के ऊपरी शिखरों पर बरफ जमा रहता है। नीचे के शिखर हरित तरुओं से व्याप्त हैं, जिनमें चीड़ और देवदारु के वृक्षों की बहुतायत है। थुन (Thun) और ब्रीन्ज़ (Brienz) नामक दो झीलों के बीच में बसे रहने के कारण इस नगर का नाम इण्टरलाकन है। इण्टरलाकन में अनेक सुन्दर स्थान हैं (चित्र नं० ५४-५५)। अनेक उद्यान देखते ही बन पड़ते
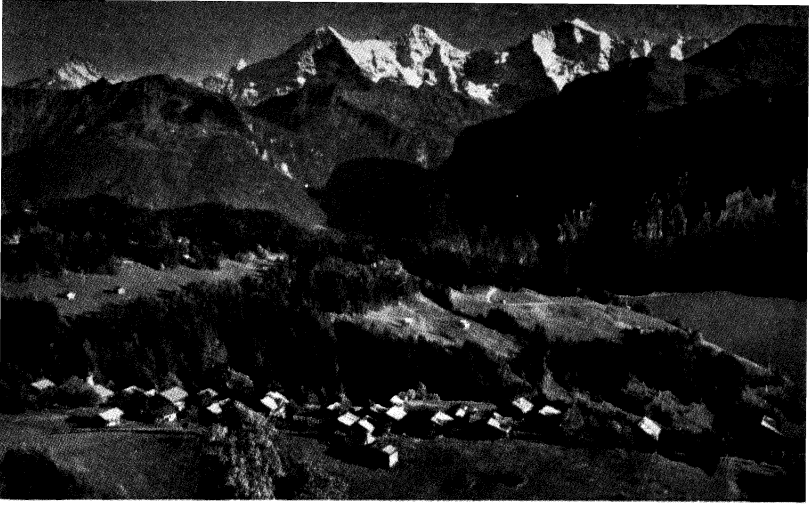
५४. इन्टरलाकन के निकट का एक छोटा-सा गाँव

५५. इन्टरलाकन की झील
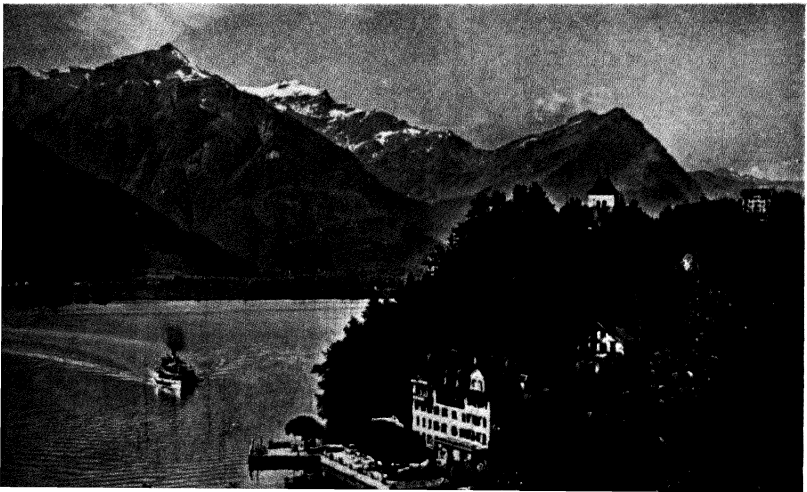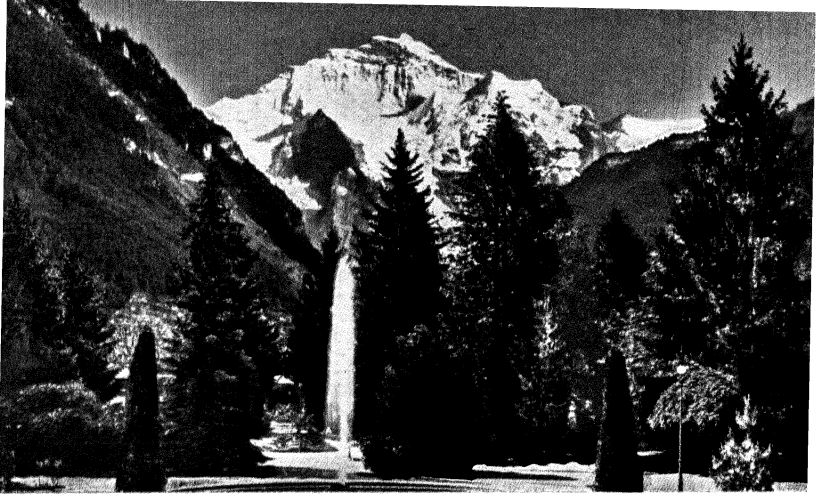
५६. इन्टरलाकन का एक बाग

५७ उपर्युक्त बाग में वनस्पतियों की बनी घड़ी जो बराबर समय देकर घंटा बजाती है

हैं। ऊँचे-ऊँचे सघन वृक्ष और उनकी गोद में रंग-बिरंगे फूलों से भरी हुई क्यारियाँ दर्शनीय हैं। एक बाग के एक ओर एक फूलों की घड़ी बनी हुई है जो चलती और बजती है (चित्र नं० ५६-५७)। इस पुष्प-घड़ी को देख मुझे न्यूजीलेंड की ठीक ऐसी ही एक घड़ी का स्मरण आया। इन दोनों घड़ियोंमें इतना अधिक साम्य था कि यह मानना ही पड़ा कि या तो इसे देख न्यूजीलेंड की घड़ी बनायी गयी है या न्यूजीलेंड की घड़ी देखकर यह घड़ी, पर चूँकि स्विटजरलैंड न्यूजीलैंड से कहीं पुराना देश है, इसलिए स्विटजरलैंड की ही यह घड़ी देखकर न्यूजीलेंड की घड़ी बनी होगी।

इण्टरलाकन पहुँचते हुए हम रास्ते में खूब घूमते तथा मार्ग के छोटे-छोटे गाँवों को देखते हुए आये थे। इण्टरलाकन में भी हम खूब घूमे। यहीं हमने लंच भी खाया और इण्टरलाकन से बर्न लौटते हुए भी हमने रास्ते में घूमने की कसर नहीं रखी। आज हमने स्विटजरलैंड के अनेक गाँव और कस्बे देखे। शहरों और कस्बों तथा गाँवों में उनकी छुटाई-बड़ाई के अतिरिक्त और कोई विशेष अन्तर नहीं है। इमारतों में शहरों की इमारतें कुछ बड़ी और गाँवों की कुछ छोटी हैं। सड़कों का भी यही हाल है। परन्तु जीवन की सारी आधुनिक सुविधाएँ बिजली, पानी का नल, फ्लश वाले पाखाने, डाकघर और तारघर आदि-आदि जैसे शहरों में है, वैसे गाँवों में भी। शहरातियों और देहातियों की वेषभूषा, रहन-सहन आदि में भी कोई अन्तर न दिखायी दिया।

लगभग ६ बजे सन्ध्या को हम इण्टरलाकन से बर्न आये। बर्न से जिनीवा हमारी गाड़ी ७ बजे के लगभग जाती थी। श्री आसफअली साहब से मिल-भेंट हम स्टेशन आये। हमारी गाड़ी ठीक समय बर्न से रवाना हो गयी।

बर्न से जिनीवा पहुँचने में ट्रेन को लगभग दो घण्टे लगे। जिनीवा स्टेशन से हम उसी होटल में गये जहाँ इसके पहले ठहरे थे।

जिनीवा से पेरिस जाने का हमारा कार्यक्रम फिर हवाई जहाज से था। हमारा विमान तारीख १५ को ३ बजे के लगभग चलना था। तारीख १५ को इधर-उधर घूमने के सिवा हमें कोई काम न था। ठीक समय हमारा प्लेन जिनीवा से रवाना हो दो घंटे में पेरिस पहुँच गया। आज बादलों के कारण बंपिंग काफी हुआ, पर बंपिंग इसलिए विशेष कष्ट न दे सका कि जगमोहनदास और घनश्यामदास से आज मेरा फिर एक संवाद हो गया स्विटजरलैंड पर।

१०

छोटे-से स्विटजरलैंड के महत्त्व के कारण

काश्मीर की तरह स्विटजरलेंड भी भूलोक का स्वर्ग है। काव्य-मय प्रवृत्ति के लोगों ने उसकी तुलना मृग-मरीचिका से की है। ऊँची-ऊँची पर्वत-श्रेणियों के हिमाच्छादित शिखर, मुस्कुराती-खिलखिलाती झीलें, पुष्पों और हरियाली से लहलहाते चरागाह, घने छायादार जंगल और नये-पुराने गाँव व शहर सचमुच ही स्विटजरलेंड को इतना सुन्दर और आकर्षक बना देते हैं कि वह एक मृग-मरीचिका बनकर पर्यटक की स्मृति में सदा ही उलझा रहता है। जिन्होंने स्विटजरलेंड देखा है उनकी तो यह दशा है पर जिन्होंने उसे नहीं देखा उसकी कल्पना में वह मृग-मरीचिका की तरह झाँकता है। कौनसा ऐसा दर्शक है जो आल्प्स के अवर्णनीय सौंदर्य को भूल सके ? शरद्-काल में बर्फ से ढकी चोटियाँ कितनी धवल, स्वच्छ और मानव-जीवन की तुच्छता का बोध कराती हुई प्रतीत होती हैं। प्रकृति के हम कितने समीप पहुँच जाते हैं। लगता है कि परमात्मा यहाँ-वहाँ, कली-फूल और जर्रे-जर्रे में निवास करता है। मानवीय नश्वरता और प्रकृति की अनादि अनन्त अजस्र अमृतधारा का कैसा तन्मय और बेसुध करनेवाला बोध होता है हमें। इसलिए कहना पड़ता है कि स्विटजरलेंड सरीखा दुनियाँ में शायद काश्मीर के सिवा अन्य कोई देश नहीं है। स्विटजरलेंड समस्त यूरोप का धड़कता हुआ कलेजा है। जैसा पहले कहा जा चुका है स्विटजरलेंड का क्षेत्रफल कुल १५,६५० वर्ग मील है, फिर भी वहाँ क्या नहीं है। इसलिए मेरा यह मत हुआ कि 'गागर में सागर' वाली जो उक्ति हम कवि बिहारी के लिए काम में लाते हैं उसे क्यों न स्विटजरलेंड के लिए भी काम में लाया जाय।

स्विटजरलेंड के प्राकृतिक दृष्टि से तीन भाग किये जा सकते हैं। दक्षिण और पूर्वी भाग में गर्वोन्नत आल्प्स पर्वत हैं। उत्तर और पश्चिम में नीची जूए श्रेणियाँ हैं। बीच में उपजाऊ मैदान हैं, जहाँ सभी बड़े बड़े नगर हैं।

प्राकृतिक सौन्दर्य के सिवा स्विटजरलेंड की जिस विशेषता ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया वह है उसका शान्ति और स्वातंत्र्य-प्रेम। यूरोप में स्विटजरलेंड के निवासियों ने सबसे पहले यह दिखला दिया कि विभिन्न जातियों, धर्मों, भाषाओं और

संस्कृतियों वाले लोग सहज सद्भाव से साथ-साथ रह सकते है।

स्विटजरलैंड की स्थापना पहली अगस्त १२९१ को हुई थी। स्विटजरलैंड के वर्तमान संविधान की दो विशेषताएँ हैं—लोकतंत्र की उपासना और विदेशी संघर्षों में तटस्थता की नीति बरतना। ये दोनों सिद्धान्त १८४८ में प्रतिपादित किये गये। इन दोनों सिद्धान्तों की रक्षा करना और उन्हें क्रियान्वित करना सरल काम नहीं रहा है; कई बार स्विटजरलैंड को बड़े-बड़े निर्णय करने पड़े हैं, कई बार उसके पाँव डगमगाये भी हैं, किन्तु इन दोनों सिद्धान्तों को स्विटजरलैंड आज भी सीने से लगाये हुए हैं। स्विटजरलैंड में मनुष्य द्वारा स्थापित स्वतन्त्रता भी मौजूद है और ईश्वर-दत्त प्राकृतिक स्वतन्त्रता भी।

स्विटजरलैंड में विभिन्न जाति के लोग निवास करते हैं और विभिन्न देशों का उस पर शासन रहा है। सोलहवीं शताब्दी से पूर्व तो उसका इतिहास शेष मध्य यूरोप के इतिहास की तरह रोमन साम्राज्य का इतिहास था। १८१५ में स्विटजरलैंड में कनफेडरेशन की स्थापना की गयी। इसके बाद १८४७-४८ में एक गृह-युद्ध होने के अतिरिक्त स्विटजरलैंड का इतिहास शान्तिपूर्ण रहा है। १८४८ में स्वीकृत उसके संविधान में थोड़ा-सा परिवर्तन १८७४ में किया गया। स्विटजरलैंड कनफेडरेशन में २२ राज्य सम्मिलित हैं। वहाँ की संसद् में दो सदन हैं—स्टेट कौंसिल अथवा राज्य-परिषद् और नेशनल कौंसिल अथवा राष्ट्रीय कौंसिल।

स्विटजरलैंड में एक लाख से अधिक आबादीवाले चार नगर हैं और दस हजार से अधिक की आबादी वाले २३।

भाषा की समस्या को स्विटजरलैंड ने आश्चर्यजनक सफलता के साथ निबटाया है। वहाँ के ७२ प्रतिशत लोग जर्मन या इससे मिलती-जुलती भाषा बोलते हैं, २० प्रतिशत फ्रेंच-भाषी हैं, ६ प्रतिशत इटालियन और एक प्रतिशत रोमांश-भाषी हैं। चारों ही भाषाएँ राज्य की स्वीकृत भाषाएँ हैं। चार भाषाओं के रहने पर भी स्विटजरलैंड एक संयुक्त और अखण्ड राष्ट्र है। भारत की भाषा सम्बन्धी अखण्ड समस्या को निबटाने में स्विटजरलैंड के उदाहरण से कुछ सहायता अवश्य मिल सकती है।

स्विटजरलैंड में सदा ही विदेशी बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित रहते हैं। कुछ लोगों का मत है कि स्विटजरलैंड में इस तरह विदेशियों के बने रहने से किसी भी समय राजनीतिक, आर्थिक अथवा किसी प्रकार का सामाजिक संकट उत्पन्न हो सकता है। परन्तु वहाँ की इस विशेषता को हमें नहीं भूलना चाहिए कि लोग बड़ी जल्दी आपस में घुलमिल जाते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में तटस्थ रहने का मूल्य स्विटजरलैंड को काफी चुकाना

पड़ा है। पिछले युद्ध के समय उसकी सीमा से मिले हुए चारों राष्ट्रों में गड़बड़ थी। तटस्थ रहने के नाते स्विटजरलैंड के लिए बड़ी चिन्ताजनक स्थिति उत्पन्न हो गयी, क्योंकि स्विटजरलैंड में खाद्यान्न का अभाव रहता है और वह अन्य भी कई साधनों से सम्पन्न नहीं है। इसलिए स्विटजरलैंड को सब तरह का अभाव सहन करना पड़ा। जर्मनी का तो उसके ऊपर बराबर विशेष दबाव रहा।

तटस्थ रहने की अपनी नीति को स्विटजरलैंड इसलिए भी निभा पाता है कि १८१५ के समझौते के अनुसार रूस, ब्रिटेन और पुर्तगाल आदि इस बात का आश्वासन दे चुके हैं कि आक्रमण होने पर वे उसकी रक्षा करेंगे।

तटस्थ देश होने की वजह से युद्ध-काल में अनेक लोग वहाँ जाकर शरण लेते रहे हैं। युद्ध-काल में सभी देशों के हजारों बच्चे वहाँ पहुँचाये गये। अन्त में कहना न होगा कि स्विटजरलैंड एक सफल तटस्थ देश रहा है और आज तो स्विटजरलैंड नाम-मात्र से तटस्थता का बोध होता है। इसीलिए जब कभी मध्यस्थता के लिए किसी तटस्थ देश को चुनने की बात चलती है तो स्विटजरलैंड का नाम अनिवार्य रूप से लिया जाता है। आज के अंधकारमय संसार में स्विटजरलैंड आशा की एक किरण है और हम सोचते हैं कि क्या सभी देश स्विटजरलैंड की तरह शांतिप्रिय नहीं बन सकते ? यदि ऐसा हो सके तो फिर मानवता को त्राण ही मिल जाय।

स्विटजरलैंड की अपने देश की राजनीति में एक और विशेष बात है। वहाँ राजनैतिक दल न हों, ऐसा नहीं, परन्तु मंत्रीमण्डल प्रायः सर्वदलीय बनते हैं और अपनी विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी होते हुए भी यदि मंत्रीमण्डल के किसी मत को विधान-सभा स्वीकार नहीं करती तो वे इस्तीफा नहीं देते वरन् उनके मत के विरुद्ध भी यदि विधान-सभा का कोई निर्णय होता है तो सिर झुकाकर स्वीकार कर उस निर्णय को कार्यरूप में परिणत करते हैं। इसीलिए स्विटजरलैंड में वर्षों से नहीं पर युगों से वे ही मंत्री चले आते हैं।

११

विलासिता के वैभव में पाँच दिन

जब हमारा हवाई जहाज पैरिस पहुँच रहा था तब बचपन और बचपन के बाद की भी पैरिस के सम्बन्ध में सुनी हुई अनेकों बातें याद आयीं। इनमें सबसे पहले एक बात का स्मरण आया, वह थी असहयोग आन्दोलन के समय की पं० मोतीलाल जी नेहरू के सम्बन्ध में एक चर्चा। पंडित मोतीलाल जी नेहरू का जीवन बड़े शाही ढंग से बीता था। उनकी शौकीनी के कई किस्से प्रचलित थे। जब वे असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हुए तब उनके त्याग का वर्णन करते हुए प्रायः यह कहा जाता था कि पंडित जी ऐसे व्यक्ति हैं, जिनके कपड़े पैरिस से धुलकर आते थे। एक बार जब मोतीलाल जी के सामने यह बात निकली तब वे ठठाकर हँस पड़े और उन्होंने इस विषय में जो कुछ कहा उसका आशय इस प्रकार था। यदि यह बात सही होती तब तो दो धोप में उनके कपड़ों पर उतनी ही कीमत और चढ़ जाती, जितने में वे बनवाये गये थे। धुलाई के लिए कपड़ों की पार्सल भारत से पैरिस भेजना, पैरिस की महँगी धुलाई देना, फिर पार्सल से कपड़े वापस भारत मँगाना, यह सब हास्यास्पद बात थी। जोश में आदमी किस-किस के लिए क्या-क्या पक्ष और विपक्ष दोनों में कह जाया करता है।

पैरिस यूरोप का सबसे अधिक सुन्दर, सबसे अधिक कलापूर्ण, सबसे अधिक सभ्य नगर माना जाता है। दो-दो भीषण युद्धों के बाद भी उसकी इस कीर्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ा। और जब मुझे पैरिस के इस यश का स्मरण आया तब मुझे फरासीसी क्रान्ति तथा फ्रांस की एक समय की वीरता और दूसरे समय की कायरता भी याद आयीं। फरासीसी क्रान्ति के पूर्व जिन महान् लेखकों ने अपने साहित्य द्वारा क्रान्ति का वायुमंडल बनाया था वे रूसो और वाल्टेयर स्मरण आये। फरासीसी क्रान्ति विश्व के आधुनिक काल की वह क्रान्ति है जिसने सबसे पहले आम जनता के हित सम्बन्धी कुछ विशिष्ट नारे लगाये थे। ये थे—"स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व"।

रूसो का यह अमर कथन लोगों की नस-नस में समा गया था—

"मनुष्य स्वतन्त्र जन्म लेता है पर सर्वत्र परतन्त्र है, इसलिए सभी के मन में परतन्त्रता की बेड़ियाँ तोड़ डालने की इच्छा प्रबल हो उठी है।"

इन नारों के अनुरूप ही वहाँ की क्रान्ति हुई थी, जिसका विश्व की क्रान्तियों में एक प्रधान स्थान है।

फरासीसी क्रान्ति और उसके बाद के फ्रांस के इतिहास से यूरोप का इतिहास एक देश का, एक घटना का, एक व्यक्ति का इतिहास बन गया। देश है, फ्रांस, घटना है फरांसीसी क्रान्ति, व्यक्ति है नैपोलियन। फरासीसी क्रान्ति से अकेले फ्रांस का ही नहीं सारे यूरोप का आसन डोल उठा था। संगीनों और तलवारों का युद्ध तो था ही विचारों का युद्ध भी कम नहीं था। फरासीसी क्रान्ति ने सरकार, समाज और व्यक्ति के अधिकारों के सम्बन्ध में नये विचारों को जन्म दिया था जिससे सारा यूरोप लहलहा उठा था और नये विचारों की शक्ति सब जानते ही हैं वह सैनिक बल से भी अधिक होती है।

फरासीसी क्रान्ति के समय यूरोप में राजसी ठाट-बाट था। निरंकुशता का नग्न नृत्य हो रहा था। जनता राजतन्त्र के अत्याचारों से ऊबने लगी थी। सामन्तवाद की जड़ हिल उठी थी। शासक न केवल मनमानी करते थे वरन् शासन-व्यवस्था में बेईमानी और भ्रष्टाचार फैले हुए थे। जर्मनी, आस्ट्रिया, प्रशा, इटली, स्पेन आदि निर्बलता के शिकार हो चुके थे इसलिए किसी विदेशी व्यक्ति ने भी फरासीसी क्रान्ति के मार्ग में कोई अड़चन नहीं डाली। बड़े-बड़े सामन्त और बड़े-बड़े पादरी समाज पर प्रभाव रखने वाले दो शक्तिशाली संगठन थे। जनता कर-भार से दबी जाती थी। लोगों से बेगार करायी जाती थी और निर्धन को पशु से भी नीचा समझकर बर्ताव किया जाता था। यह तो हाल था निम्न वर्ग की जनता का। मध्यवर्ग की जनता के पास धन था और बौद्धिक चेतना भी किन्तु उच्चवर्ग के निरादर के कारण हीन भाव मन ही मन काटता रहता था।

१७८९ में वास्तविक क्रान्ति से पहले बौद्धिक क्रान्ति हुई। यह कार्य फरासीसी दार्शनिकों मौटेस्क्यू, वॉल्टेयर और रूसो ने सम्पादित किया। उनकी लेखनियों ने उस असन्तोष और पीड़ा को मूर्त्त मुखर कर दिया जो जनता के एक वर्ग को छोड़ बाकी सभी वर्गों के मन को मथे डालती थीं। मौटेस्क्यू ने इस सिद्धान्त का खंडन किया कि शासक नरेश को विधाता ने अपना दूत बनाकर भेजा है। वह ब्रिटेन के वैधानिक राजतन्त्र का पक्का समर्थक था। वॉल्टेयर ने तर्क को अपना अस्त्र बनाया और यह प्रतिपादित किया कि तर्क असंगत किसी भी बात पर विश्वास मत करो। उसने शासक वर्ग और पादरी वर्ग के काले कारनामों और भ्रष्टाचार का भंडाफोड़ किया। इन दोनों दार्शनिकों ने फ्रांस की तत्कालीन व्यवस्था की जड़ों पर कुठाराघात किया और उसके विनाश में सहायता की। रूसो ने पुनर्निर्माण का मानचित्र

प्रस्तुत किया। रूसो का उद्देश्य सुधार मात्र नहीं, समाज की नये सिरे से रचना करना था। कवि पंत के शब्दों में उनका सिद्धान्त था :

"गूंजे जय-ध्वनि से आसमान,
सब मानव मानव हैं समान।"

रूसो का यह विश्वास लोकतन्त्र का मूल मंत्र था। इससे सिद्ध हुआ कि पलड़ा जनता का भारी है, सत्ता जनता की धरोहर है और भविष्य की रूपरेखा बनाना व उसमें कल्पना के अनुसार रंग भरना जनता का ही जन्मसिद्ध अधिकार है।

इन दार्शनिकों के विचारों से फ्रांस का वातावरण ही बदल गया फिर भी केवल उनके लेखों को फरासीसी क्रान्ति का मूल कारण समझना भूल है। उनका महत्त्व इसमें है कि एक जर्जर समाज को तेजी से ढहाने में उनसे सहायता मिली और नयी दिशा का आभास हुआ।

क्रान्ति के लिए सबसे बड़ी बात यह थी कि फ्रांस की आर्थिक दशा अत्यन्त हीनावस्था में थी, कहना चाहिए कि पुराने और बिगड़े हुए मर्ज की तरह उसमें कोई सुधार होता दिखायी न देता था। फ्रांस लुई चौदहवें द्वारा लड़े गये युद्धों के कारण ऋण-भार से दबा जा रहा था। लुई पन्द्रहवें के भ्रष्टाचार के कारण यह कर्ज और बढ़ ही गया था, घटा न था। इस दीवालियेपन का मूल्य बेचारे लुई सोलहवें को चुकाना पड़ा। अमेरिकी उपनिवेशों के विद्रोह का समर्थन करना फ्रांस के लिए घातक सिद्ध हुआ क्योंकि ऐसा करने से उसे ब्रिटेन के साथ युद्ध में पड़ना पड़ा। जनता का राजतन्त्र में विश्वास उखड़ गया और विद्रोह की लपटें फैलने लगीं। इस प्रकार क्रान्ति के कारण मूलतः आर्थिक थे।

आरम्भ में फरासीसी क्रान्ति को प्रेरणा मध्यवर्ग से मिली थी, किन्तु बाद में किसान भी विद्रोह कर उठे। और जैसा कि कहा जा चुका है फरासीसी लेखकों के नये-नये विचारों से जनशक्ति को एक नयी दिशा मिल रही थी। यद्यपि फरासीसी क्रान्ति से ब्रिटेन में भी थोड़ी-बहुत उथल-पुथल हुई किन्तु उसका स्वरूप केवल राजनैतिक था।

लुई सोलहवाँ, जो फरासीसी क्रान्ति की बलि बना, ईमानदार तथा भला आदमी था और जनता की सच्चे हृदय से सेवा करना चाहता था। अपने समय की आर्थिक कठिनाइयाँ भी वह दूर करना चाहता था, किन्तु वह कमजोर आदमी था और दूसरे के प्रभाव में बहुत जल्दी आ जाता था। अपने दरबार के ऐसे लोगों के कुचक्रों से भी वह नहीं बच पाता था जो भ्रष्टाचार फैलाते हुए भी अत्यन्त शक्तिशाली थे। आस्ट्रिया की मेरियाथेरेसा की बेटी मेरी एन्टायनेट जो उसकी पत्नी थी उस पर बड़ा प्रभाव रखती थी। वह अत्यन्त सुन्दरी और स्वेच्छाचारिणी थी, किन्तु

अपने पति की भाँति अनुभव और तीक्ष्ण दृष्टि की उसमें भी कमी थी इसलिए पति पर उसके प्रभाव ने पति की जान ले ली और फ्रांस में उथल-पुथल भी कर डाली।

बेचारे लुई ने पहले टरगोट (Targot) और बाद में नेकर (Nuker) की सहायता से आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया था पर उसे सम्हाला न जा सका। उसके पश्चात् लुई को स्टेट्स जनरल (फ्रांस की धारासभा) को बुलाना पड़ा। इसका बुलाना था कि लुई के पैरों-तले की जमीन खिसक गयी। स्टेट्स जनरल ने राष्ट्रीय असेम्बली का रूप धारण कर लिया। उधर दरबारियों के दबाव में आकर पहले तो लुई ने राष्ट्रीय असेम्बली का विरोध किया पर बाद में घुटने टेक दिये। राष्ट्रीय असेम्बली के स्वीकार किये जाने के बाद तो जनता हर्षोन्मत्त और रोषोन्मत्त हो उठी और उसने बेस्टाइल को घेर लिया। सरकारी सैनिकों के साथ मुठभेड़ के बाद १४ जुलाई, १७८९, को बेस्टाइल का पतन हो गया। बेस्टाइल फ्रांस का बन्दीगृह था और अत्याचार का केन्द्र माना जाता था इसलिए बेस्टाइल के पतन को सारे फ्रांस में जनता और स्वतन्त्रता की जीत समझा गया।

फरासीसी क्रान्ति के दो अमर व्यक्तित्व हैं मिराबो और रेबेस्पियर। मिराबो में क्रान्ति की सच्ची लगन थी। जब लुई ने राष्ट्रीय असेम्बली को भंग करने की कोशिश की तो उसने लुई का विरोध किया। यद्यपि मिराबो शासक वर्ग के विरुद्ध लड़ रहा था, फिर भी राजतन्त्र से उसका कोई वैर नहीं था। वह फ्रांस में ब्रिटेन के ढंग के वैधानिक लोकतन्त्र की स्थापना करना चाहता था। लुई को वह बता देना चाहता था कि राजसी ठाठबाट और स्वेच्छाचारिता के दिन लद गये|और उसे नये युग की दुन्दुभी को सुनना चाहिए। इससे भी अधिक वह तो यह चाहता था कि लुई स्वयं क्रान्ति का नेतृत्व करे। उसने कई बार लुई को परामर्श दिया था पर लुई ने उसकी एक न सुनी। मिराबो ने भविष्य के सम्बन्ध में इतनी सही-सही भविष्यवाणी की कि उसे देख आज आश्चर्य होता है किन्तु दुर्भाग्य से उसकी बात लोगों को रुचिकर न हुई। एक ओर तो शासकवर्ग उसे संदेह की दृष्टि से देखता था और दूसरी ओर लोकतन्त्र के समर्थक भी उस पर पूरा विश्वास न करते थे। अथक परिश्रम से और निराशा की अवस्था में १७९१ में उसकी मृत्यु हो गयी।

रेबेस्पियर वकील था। वह घमंडी और संकुचित दृष्टिकोण वाला था, किन्तु लोकतन्त्र के सिद्धान्त का वह जी-जान से प्रचार करता था। वह जीकोबियन क्लब का नेता था और बाद में तो उसका जनसमूह पर अत्यधिक प्रभाव हो गया था।

जब लुई ने अपनी स्थिति बिगड़ती ही देखी तो भागने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे गिरफ्तार कर लिया गया। मिराबो की मृत्यु के कारण राजतन्त्र का कोई समर्थक भी नहीं बचा था। अन्त में २१ जनवरी, १७९३, को लुई को फाँसी दे दी गयी।

लुई का मृत्युदंड घृणित कार्य तो था ही वह भारी भूल भी सिद्ध हुआ। फ्रांस में रक्तपात, अत्याचार और नृशंसता का ऐसा भीषण तांडव हुआ कि उसका वृत्तान्त पढ़ आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

परन्तु ऐसी फरासीसी क्रान्ति के बाद जो जनतन्त्रशासन-पद्धति आयी वह वहाँ टिक न सकी और कुछ समय बाद ही वहाँ नैपोलियन का उत्थान हुआ। फरासीसी क्रान्ति के सदृश क्रान्ति के इतने थोड़े समय के बाद उस क्रान्ति के सिद्धान्तों के ठीक विपरीत जिस जगह क्रान्ति हुई थी वहीं नैपोलियन का उदय विश्व की विचित्र घटनाओं में से एक घटना है। इस पर अनेक इतिहासकारों ने विस्तार से अपने-अपने कारण दिये हैं। मुझे तो सबसे अधिक संतोषप्रद एक ही कारण जान पड़ता है। यह क्रान्ति हिंसात्मक क्रान्ति थी। जनता के हृदय परिवर्तित नही हुए थे। मूल्यों में भी कोई रद्दोबदल नहीं हुआ था। क्रान्ति के सिद्धान्त कुछ व्यक्तियों के द्वारा समूची जनता पर लादे गये थे। ज्योंही परिस्थिति मे थोड़ा-सा परिवर्तन हुआ उसी जनता ने जिसने फरासीसी बादशाह सोलहवें लुई का सिर काटा था, नैपोलियन को फिर अपना बादशाह बनाया। रूस की क्रान्ति के बाद भी वहाँ मार्क्सवादी समाज रचना नहीं हो रही है, अनेक विद्वानों का मत है कि वहाँ व्यवस्थापकों के राज्य (मैने-जीरियल स्टेट) की रचना हुई है। तो स्थायी क्रान्ति हिंसा द्वारा कुछ लादे जाने से नहीं हो सकती। विश्व का इतिहास हमें यही बताता है। स्थायी क्रान्ति के लिए हृदय-परिवर्तन और मूल्यों के रद्दोबदल की आवश्यकता है। और हृदय-परिवर्तन तथा मूल्य-परिवर्तन की नींव पर जो क्रान्ति होगी और ऐसी क्रान्ति के पश्चात् जो सामाजिक रचना होगी उसमें हिंसा का कोई स्थान नहीं हो सकता। ऐसी ही क्रान्ति के द्वारा समाज-रचना स्थायी हो सकती है। फरासीसी क्रान्ति के बाद मुझे नैपो-लियन के समय की फरासीसी वीरता का स्मरण आया और इस वीरता के पश्चात् गत युद्ध में फरासीसी कायरता का। जिस फ्रांस ने नैपोलियन के समय यूरोप के इतिहास में अद्वितीय वीरता दिखायी थी वही गत युद्ध मे इतना कायर कैसे हो गया? अपने सौन्दर्य, अपनी कला, अपनी सभ्यता और इसके फलस्वरूप विलास और फैशन में लिप्त फ्रांस को अपनी इन सब चीजों और इनके केन्द्र पेरिस को बचाने के लिए युद्ध में हार मान लेना स्वीकृत था। स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए मर मिटने की अपेक्षा पैरिस के इस सारे वैभव की रक्षा का उसे कैसा मोह हो गया था। इस मोह में वह ऐसा लड़खड़ाया कि ग्रेट ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री श्री चर्चिल के इस प्रस्ताव तक को उसने ठुकरा दिया कि फ्रांस और इंगलिस्तान के विशाल साम्राज्य पर फ्रांस का भी वैसा ही अधिकार हो जैसा कि इंगलिस्तान का है, दोनों के नागरिक एक राज्य के नागरिक समझे जायें। श्री चर्चिल के इस प्रस्ताव के समय ब्रिटिश साम्राज्य कोई

छोटी-मोटी वस्तु नहीं थी। ऐसा प्रस्ताव मानव-इतिहास में कभी भी कदाचित् किसी देश ने किसी देश के सामने न रखा था। पर फ्रांस तो ऐसा घबड़ा गया था कि उसने दायें-बायें, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे किसी ओर भी न देख जर्मनी की शरण ली। मेरे मन में एकाएक उठा, सौन्दर्य, कला, सभ्यता आदि यदि एक सीमा के बाहर चली जायँ तो वे कायरता उत्पन्न करती हैं। पर फरासीसी क्रान्ति और नेपोलियन के समय में क्या फ्रांस इतना सुन्दर, इतना कलापूर्ण और इतना सभ्य नहीं था? जो कुछ हो गत महायुद्ध में तो इन्हीं वस्तुओं की रक्षा के मोह ने फ्रांस को कायर बनाया। और जब मैं यह सब सोच रहा था तब मैंने निर्णय किया कि इस समय के फरासीसी जीवन के सारे पहलुओं का मुझे निरीक्षण करने का प्रयत्न करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि आज फरासीसी राष्ट्र की क्या अवस्था है।

हमारा हवाई जहाज पैरिस के हवाई अड्डे पर तारीख १५ अगस्त की शाम को ५ बजे पहुँचा। जब हम हवाई जहाज से उतर रहे थे मुझे याद आया कि आज तो भारत का स्वतन्त्रता-दिवस है। सदियों की परतन्त्रता के बाद सन् '४७ के १५ अगस्त को भारत स्वतन्त्र हुआ था। आज हम लोग भारत से हजारों मील दूर थे। भारत में किस उत्साह से मनाया जा रहा होगा आज का दिन पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक हर जगह। मुझे आज के दिन भारत में न रहने का खेद-सा हुआ। अभी तक हम हवा में थे। पंद्रह अगस्त का स्वातन्त्र्य-दिवस हमें याद आया था फ्रांस की भूमि पर उतरते-उतरते। हमने फ्रांस की धरती पर ही खड़े हो पूर्व की ओर मुख कर भारत-भूमि को प्रणाम किया।

हवाई अड्डे पर हमें भारतीय दूतावास के प्रतिनिधि मिले। पासपोर्ट आदि की रस्मी कार्रवाई समाप्त होने के पश्चात् हम उस होटल में पहुँचे जहाँ हमारे ठहरने का प्रबन्ध था। सन्ध्या हो चुकी थी। अन्धकार फैल रहा था। आज इधर-उधर पैदल घूम, पैरिस देखने का कार्यक्रम बना दूसरे दिन हमने पैरिस देखने का विचार किया।

आज सन्ध्या की घुमाई में हमने पैरिस की एक 'गाइड' खरीदी और घूमकर लौटने के बाद पैरिस देखने का कार्यक्रम बनाया। श्री काका साहब कालेलकर के पुत्र श्री सतीश कालेलकर यहाँ के भारतीय दूतावास में थे, यह हमें मालूम था। उन्हें श्री काका साहब के कारण मैं भलीभाँति जानता था और वे मुझे। अतः इस कार्यक्रम को अन्तिम रूप मैंने उनकी सलाह से देना तय किया और इसके लिए उन्हें दूसरे दिन फोन पर बुलाने का।

दूसरे दिन नित्य-कर्मों से निवृत्त हो कोई ९॥ बजे मैंने श्री कालेलकर को फोन किया, बड़े उत्साह से बातें कीं उन्होंने फोन पर ही और इसके बाद वे तुरन्त ही हमारे होटल में आये। बड़ी अच्छी तरह हमारी भेंट हुई। अत्यधिक सौजन्यता

दिखायी श्री कालेलकर ने। उन्होंने हमारा कार्यक्रम कुछ और ठीक कर दिया और फिर एक दिन हमें अपने यहाँ भोजन करने का भी निमन्त्रण दिया। यह निमन्त्रण कार्य रूप में परिणत हुआ ता० १८ को जब श्रीमती कालेलकर की कृपा से १८ दिन बाद हमें भारतीय भोजन-सामग्री प्राप्त हो सकी। कितना संतोष हुआ आज हमें कई दिन के बाद हमारे ढंग का भोजन पाकर। भोजन का मामला भी बड़ा विचित्र है। जिसे जिस प्रकार के भोजन की आदत होती है उसे वही भोजन अच्छा लगता है।

ता० १६ से १६ तक ४ दिन हम पेरिस में खूब घूमे, उन बसों में जो रात के समय पेरिस की सैर कराती हैं और उन बसों में जो पेरिस की सैर दिन में कराती हैं, स्वतन्त्र रूप से टैक्सी में, और पैदल भी। इन चार दिनों में हमने पेरिस की दर्शनीय इमारतों को देखा, वहाँ के अजायबघरों को देखा, वहाँ के नाटकों और नाइट-क्लबों को देखा, वहाँ के जीवन को देखा। मैं समझता हूँ चार दिनों के थोड़े समय में हमने जितना पेरिस देखा उतना कम लोग देख पाते होंगे।

पेरिस सचमुच बड़ा सुन्दर नगर है। बड़ी ही व्यवस्था से बसाया गया है। सड़कें इस तरह निकाली गयी हैं कि जान पड़ता है भारत के जयपुर नगर के सदृश पहले शहर का पूरा नक्शा बनाकर तब शहर बसाया गया है, यद्यपि ऐसा हुआ नहीं है। सुना गया कि शहर धीरे-धीरे बढ़ा है, पर जब-जब बढ़ा तब-तब इस प्रकार बढ़ाया गया कि बसने में अव्यवस्था न होने पावे। इमारतें बहुत सुन्दर हैं, पर पुराने ढंग की, आजकल सिमेण्ट कॉन्क्रीट के जैसे मकान बनते हैं, वैसे मुझे पेरिस में नहीं दीखे। मैं समझता हूँ कि पुराने ढंग के मकान, जिनमें कहीं गुम्बजें होती हैं, कहीं विविध प्रकार के स्तम्भ, कहीं झरोखे तथा कहीं महराबें और कहीं नक्काशी, वे वर्तमान समय के सीमेन्ट कॉन्क्रीट के सफाचट्ट मकानों से कहीं अधिक सुन्दर होते हैं। एक बात वहाँ की ऐतिहासिक इमारतों, मूर्तियों आदि को देख मुझे बहुत आश्चर्यजनक मालूम हुई। इनमें से अधिकांश ऐतिहासिक इमारतें और मूर्तियाँ मैली होकर काली और चितकबरी हो गयी हैं और यह इसलिए कि वे कभी साफ ही नहीं की जातीं। इनके साफ न करने का यह कारण बताया जाता है कि इनकी प्राचीनता की रक्षा हो। प्राचीनता की रक्षा मिट्टी, धूल, कीचड़ और विविध प्रकार के मल से होती है यह माना जाना मुझे तो जरा भी युक्ति-संगत न जान पड़ा। भारत के पुराने स्तूप, ताजमहल, सिकन्दरा आदि की संगमरमर की इमारतें खूब साफ रखी जाती हैं, पर इस सफाई के कारण इनकी प्राचीनता को कोई क्षति नहीं पहुँचती। इन ऐतिहासिक इमारतों के मैल के कारण सारा पेरिस नगर मैला-सा नगर जान पड़ता है और मेरी दृष्टि से यह मैलापन पेरिस के महान् सौन्दर्य को बाधा पहुँचाता है। सड़कें

बहुत चौडी नहीं हैं, पर खूब साफ हैं। अनेक सड़कों के दोनों ओर फुटपाथ हैं। ये रास्ते काफी चौड़े हैं और इन रास्तों की सबसे बड़ी विशेषता है इन रास्तों के दोनों ओर घने विटपों की कतारें। इस प्रकार अनेक सड़कों के दोनों ओर के पैदल रास्तों के दोनों तरफ इन वृक्षों की पंक्तियाँ होने के कारण सड़कों के दोनों ओर दरख्तों की चार-चार पंक्तियाँ हो गयी हैं, जिनके कारण इन सड़कों की शोभा देखते ही बनती है। स्थान-स्थान पर छोटे-बड़े बगीचों की भरमार है। इन बगीचों में रंग-बिरंगे विविध भाँति के पुष्प इस प्रकार खिले रहते हैं कि ये बाग भिन्न-भिन्न वर्णों के कुसुम कालीन जान पड़ते है।

हमने वहाँ के जिन प्रधान-प्रधान स्थानों को देखा उनका कुछ ब्योरेवार वर्णन अनुपयुक्त न होगा।

मैंने सबसे पहले पैरिस के अन्तःपुर से भ्रमण आरम्भ किया। सीन नदी की दो बाजुओं से घिरा हुआ नाव की शकल का यह एक द्वीप-सा है। इसे नगर-द्वीप (Isle of city) कहा जाता है। पैरिस का यह अत्यन्त ही प्राचीन भाग है। यहीं पर न्याय-भवन की इमारत है। यहीं पर प्रसिद्ध नाट्रीडम गिरजाघर है। न्याय-भवन से ही रोमन कानून का पालन किया जाता था और यहीं से नेपोलियन की आज्ञाओं को पूरा किया जाता था। न्याय-भवन के एक भाग मे वह प्रसिद्ध बन्दीगृह है जहाँ रानी एटायनेट, रोबोस्पियर और फरासोसी क्रान्ति के अन्य महत्त्वपूर्ण लोगों को बन्दी रखा गया था। कोने की मीनार पर घड़ी चार्ल्स पंचम ने १३७० में लगवायी थी। कई सड़क पार करके नाट्रीडम गिरजाघर आता है। सीन के पश्चिमी तट पर यूनीवर्सिटी की इमारतें हैं। लक्सेमबर्ग क्वार्टर भी बहुत दूर नहीं है। सीन के दूसरी ओर लोवरे (Louvre) है जहाँ विश्वविख्यात कला-कृतियाँ संगृहीत हैं। सैकड़ों कमरे है। टाइटियन, राफेल, टिन टोरट्टो, वेरोनीज, गिओटा, फ्रा एंगेलिको, बोटि-चली, वान डाइक आदि के स्मरणीय चित्र है। पाँच शताब्दियों में फ्रांस के शासकों ने इसकी काफी वृद्धि की है। लोवरे की इमारत भी अत्यन्त आकर्षक है। फ्रांस के गणराज्य बनने से पहले यह स्थान फरासीसी राजाओं का महल था। नाट्रीडम गिरजाघर को छोड़ पैरिस में ऐसी और कोई इमारत नहीं है जिसकी लोवरे से तुलना भी की जा सके।

पैरिस बड़े सुन्दर ढंग से बसाया गया है। गोलाकार प्लेस डी एटोली से बारह मार्ग विभिन्न स्थानों को जाते है (चित्र नं० ५८)।

लोवरे के समीप ही बिबलियोथिक नेशनल है जहाँ लगभग चालीस लाख पुस्तकें है और जो अनुसन्धान विद्यार्थियों के लिए अमूल्य संग्रह केन्द्र है। यहाँ से नजदीक बोर्स की इमारत है जहाँ पैरिस का शेयर बाजार है। पैरिस का एक आकर्षक

५८. पैरिस नगर का एक भाग (विहंगम दृष्टि में)
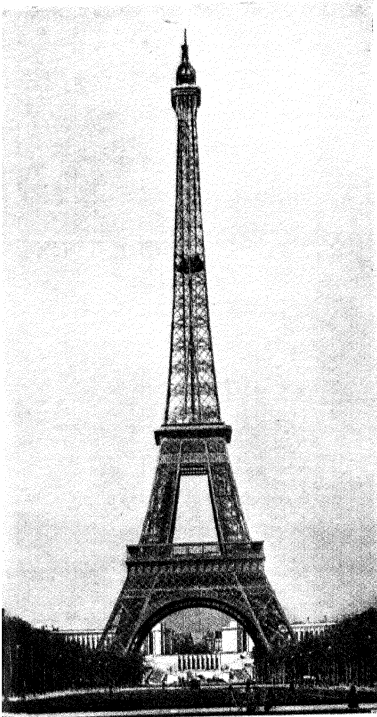
५९. पैरिस की प्रसिद्ध 'एफेल' नामक लोहे की मीनार

६०. पैरिस का प्रसिद्ध फाटक 'आर्क डी ट्रायम्फ' जिसके नीचे एक अज्ञात सैनिक की कब्र है
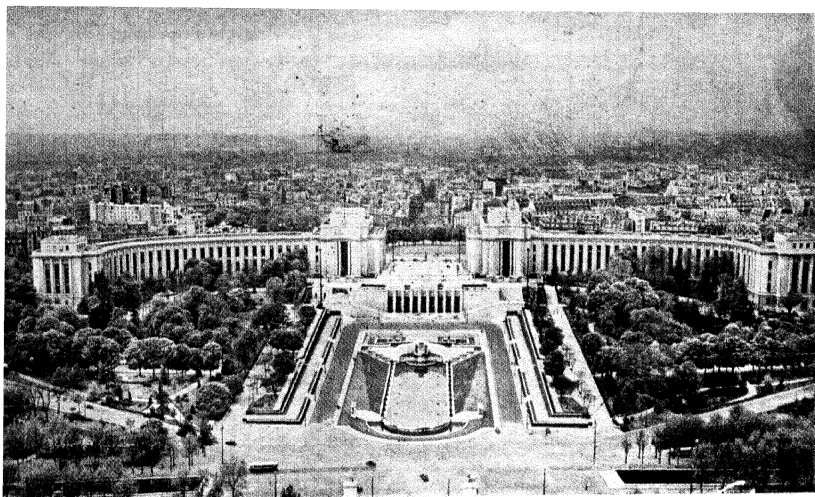
६१–६२. वर्साइल्स के राजमहल के दो दृश्य

स्थल बैस्टाइल है, जहाँ प्रसिद्ध बंदीगृह था और जिसे फरासीसी क्रान्ति के प्रारम्भ-काल में नष्ट कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त लोहे की बनी प्रसिद्ध एफल टावर है। यह मीनार १८८६ में बनायी गयी थी और ६८४ फुट ऊँची है। इसे अब प्रसारण के लिए काम में लाया जाता है। वहाँ जाने पर मुझे टाल्स्टाय और महात्मा गान्धी के विचार याद आये। दोनों ही इस टावर को मानव की मूर्खता का ज्वलन्त प्रमाण मानते थे (चित्र नं० ५६)।

'प्लेस डी ला कानकार्ड' पैरिस का ऐसा स्क्वायर है जो अत्यन्त सुन्दर और ऐतिहासिक स्मृतियों से भरपूर है। हमने पैरिस में फ्रांसीसी विजयों के विभिन्न कीर्ति-स्तम्भ भी देखे इनमें 'आर्क दी ट्रायंफ' नामक फाटक प्रमुख है (चित्र नं० ६०)।

किन्तु 'बाइस डी बोल गोन' और उसके चिड़ियाघर, घुड़दौड़ के मैदान, खुली छत का थियेटर और वर्साइल्स के महल और बाग देखे बिना पैरिस की यात्रा अधूरी ही रह जाती है इसलिए हम उन्हें भी देखने गये (चित्र न० ६१, ६२)।

जब रात हो जाती है तो पैरिस की बत्तियाँ हीरे-जवाहरात-सी चमकने लगती हैं। उस समय या तो आप कोई थियेटर देखने जा सकते हैं या ऑपेरा हाउस या नाइट-क्लब। इसके अतिरिक्त ऐसे सैकड़ों कैफे भी हैं जहाँ परिवार के परिवार जाकर संगीत सुनते हैं, कॉफी, शर्बत, शराब आदि पीते हैं। पैरिस की समूची तस्वीर का यह रुख एक ओर यदि आकर्षक है तो दूसरी ओर अश्लील भी कम नहीं।

हमने यहाँ के नाटकों और नाइट-क्लबों को भी देखा प्रधानतया 'फालीज बैरजेरि' (Folies Bergere) और 'कैसीनो' (Casino) को। जो अश्लीलता हम रोम में देख चुके थे, वह यहाँ और बढ़ गयी थी। स्त्रियों के वक्षस्थल पर रोम में जो चार इंच चौड़ी चोली थी, वह भी यहाँ गायब हो गयी थी और स्त्रियों के वक्ष सर्वथा नग्न थे। जाँघों के बीच केवल सामने की ओर तीन इंच की एक पट्टी थी, पर वह भी पीछे की ओर नहीं। इस एक छोटी-सी पट्टी को छोड़ स्त्रियाँ सर्वथा नग्न थीं। परन्तु इस नग्नावस्था के साथ नृत्य आदि के समय के हाव-भाव रोम के ऐसे ही नृत्य के सदृश कामुक नहीं थे। सरकस वाली बातें यहाँ के नृत्यों में भी थीं और नाट्य भी इस प्रकार का न था कि हृदय छू सके। हाँ, एक बात यहाँ के फालीज बैरजेरि और कैसीनो नाटकों में विशेष थी, वह थी विविध प्रकार के अत्यन्त सुन्दर और भव्य दृश्यों की व्यवस्था। कुछ दृश्य तो एकदम चकित कर देने वाले थे। फालीज बैरजेरि के एक दृश्य की पृष्ठभूमि में सुन्दर पर्वत-श्रेणी और उस पर तथा उसके आस-पास वन दिखाया गया था। सामने एक झील थी। झील में पानी का कृत्रिम दृश्य न दिखाकर सच्चा पानी भरा था जो इतना गहरा था कि उसमें मनुष्य भली-भाँति डूब सकता था। झील के किनारे एक आदमकद मूर्ति खड़ी हुई थी। पर्वत-श्रेणी की तराई में एक महिला

का नृत्य आरम्भ हुआ तथा वह महिला नृत्य करती हुई उस मूर्ति के पास पहुँची तब वह मूर्ति एक जीवित मानव में परिणत हो, उस महिला के साथ नृत्य करने लगी और नृत्य करते-करते दोनों उस झील में डूब गये। थोड़ी देर के बाद बिजली के जलते हुए झाड़ों को ले वे दोनों उसी झील में से बाहर निकल आये। यह दृश्य मनमोहक तो था ही, पर साथ ही मन को विस्मय में भी कम न डालता था। हाँ, नाटक के एक दृश्य का दूसरे से कोई सम्बन्ध न था। हर दृश्य पृथक्-पृथक् था और उसमें कोई कथा न होकर नाच-गाना ही चलता था। इन नाटकों में यदि कोई कथा रहती, साथ ही हृदय को छूने वाला नाटकीय प्रदर्शन होता तो सोने में सुगन्ध हो जाती। फिर भी मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि ऐसे कलापूर्ण और विस्मयकारी दृश्यों को मैंने रंगमंच पर इसके पहले कभी न देखा था। इन नाटकों में नंगी स्त्रियों के प्रदर्शन की भी मुझे कोई आवश्यकता न जान पड़ी। यदि इन स्त्रियों का प्रदर्शन इसलिए किया जाता हो कि यह प्रदर्शन अधिक लोगों को इन नाटकों के प्रति आकर्षित करता है, तो भी मेरे मतानुसार यह विचार असत्य है। इन नाटकों के प्रति लोगों के आकर्षण का प्रधान कारण इन नाटकों के दृश्य हैं, नंगी औरतें नहीं, वरन् मेरे मतानुसार तो ऐसे कलात्मक प्रदर्शन में इस प्रकार नंगी औरतों को लाना इन नाटकों के लिए एक लांछन की बात है। पर एक बात जरूर हुई। रोम की इस प्रकार की नग्नलीला में इससे कम नंगा प्रदर्शन होने पर भी मन में जिस प्रकार के विकार की उत्पत्ति होती थी, वह यहाँ नहीं हुई। मालूम नहीं इसका कारण यहाँ के प्रदर्शन में कामुक हाव-भावों का अभाव था, अथवा आँखों का इस तरह के दृश्यों के लिए अभ्यस्त होता जाना। नाइट-क्लब के नृत्य में नाटकों के दृश्यों की कला न थी। स्त्रियों की नग्नता नाटकों के ही समान थी। कामुकता के हावभाव भी थे। पर इस प्रदर्शन का भी मन पर ऐसा प्रभाव न पड़ा जैसा रोम के प्रदर्शन का पड़ा था।

पैरिस-निवासियों का जो जीवन हमने देखा उससे हमें गत लड़ाई में उनके जर्मनी की शरण लेने का रहस्य और अधिक समझ में आ गया। हमें इसमें जरा भी सन्देह नहीं रहा कि उनकी इस कायरता का प्रधान कारण उनकी आधिभौतिक जगत की सौंदर्योपासना और कला-प्रियता ही थी। पैरिस का जीवन देख हमें इस सौंदर्योपासना और कला-प्रियता के दो रूप हैं इसका और अधिक ज्ञान हो गया। एक सौन्दर्योपासना और कला-प्रियता सौन्दर्य और कला में सच्चितानन्द के दर्शन कराती है। आधिभौतिक वस्तुओं का सौन्दर्य, उनकी कला देखकर भी मन बरबस ऊपर उठ अध्यात्म की ओर जाता है और दूसरी सौन्दर्योपासना और कला-प्रियता सौन्दर्य और कला में इन्द्रियों को तृप्त करने की वासना उत्पन्न करती है। आधिभौतिक वस्तुओं का सौन्दर्य, उनकी कला मन को इस प्रकार फँसाती है कि मन नीचे की ओर

६३. पैरिस के अजायबघर में सिकन्दर की मूर्ति का सिर
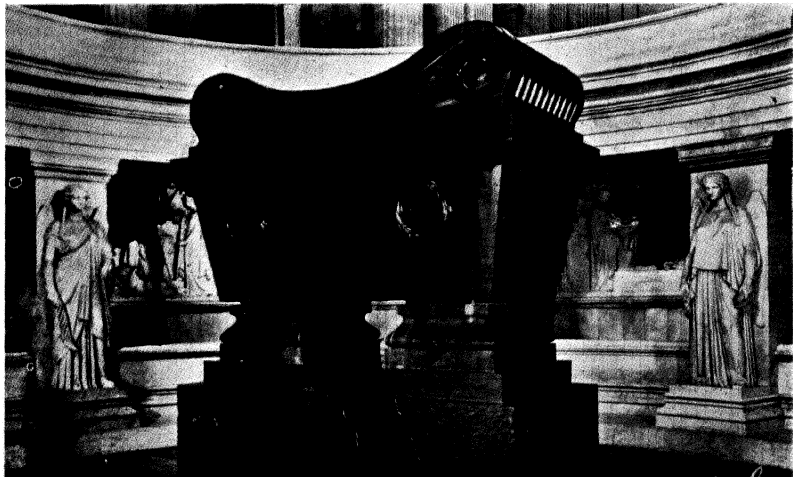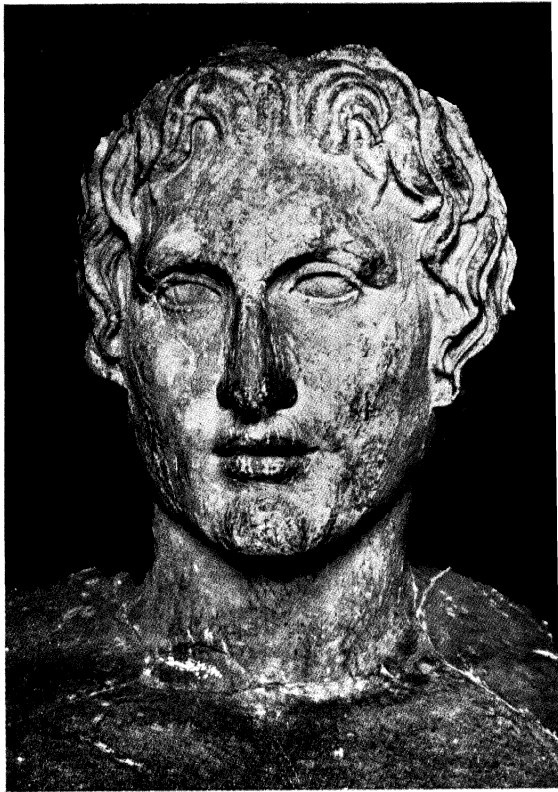
६४. पैरिस में नैपोलियन की कब्र

६५. पैरिस के अजायबघर में संसार-प्रसिद्ध वीनस की यूनानी पाषाण-मूर्ति

६६. प्रसिद्ध 'मोनालिसा'

खिसक विषयों में लिप्त हो जाता है। इस सृष्टि की समस्त रचनाओं में मानव का सर्वश्रेष्ठ स्थान उसकी ज्ञान-शक्ति के कारण है। जहाँ मानव को छोड़ अन्य प्राणियों के समस्त कर्म 'इंस्टिक्ट' से होते हैं, और इसीलिए वे रहते हैं आहार, निद्रा और मैथुन के अन्तर्गत, वहाँ मानव को जो ज्ञान-शक्ति मिली है उसके कारण उसके कर्म तो इतने उच्च तक हो सकते हैं कि वह जीवन-मुक्त भी हो सकता है। पर सृष्टि की जैसी रचना है, उसमें मानव का भी जब तक पंचभूतात्मक शरीर है तब तक वह आधिभौतिकता से अपना पिण्ड नहीं छुड़ा सकता। यह उसे करना भी नहीं चाहिए। भारतीय संस्कृत में आध्यात्मिकता, आधिदैविकता और आधिभौतिकता तीनों का उचित मिश्रण कर मानव की कर्तव्य-दिशा निश्चित की गयी थी, इसीलिए उसके जीवन के उद्देश्य बताये गये थे—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। जब तक जीवन इन उद्देश्यों के अनुरूप चलता है तब तक वह संतुलित रहता है, और जीवन में ठीक सन्तुलन रहना ही जीने की सच्ची कला है। भारत में भी एक ऐसा जमाना आया जब हमने अधिभूत से आँखें मूँद केवल अध्यात्म की ओर देखना शुरू किया। इसका बहुत बुरा परिणाम भी हुआ। इस इकंगे रास्ते पर चलने के कारण हम में अनेक दोष आये। हम कायर हुए, गुलाम हुए, और अन्त में गरीबी, रोग और नाना प्रकार के दुखों ने हमें आ बबोचा। आज यूरोप और यूरोप में विशेषकर फ्रांस को मैंने अधिभूत के एक निम्नतम स्तर पर लिप्त पाया। एक बात मैंने वहाँ और देखी। जनता को नैपोलियन की बड़ी कीर्ति गाते सुना। जान पड़ा आज भी नैपोलियन के प्रति वहाँ की जनता की बड़ी श्रद्धा, बड़ी भक्ति है। भारत के कायरों के मुख से भी मैं प्रायः अर्जुन, भीम, प्रताप, शिवाजी, तिलक, गांधी आदि की प्रशंसा सुना करता हूँ। ये हैं आध्यात्मिक कायर और फ्रांस वाले हैं आधिभौतिक कायर।

पैरिस से रवाना होने के दो दिन पहले मैं भारतीय दूतावास को गया। यहाँ के दूतावास का मकान तथा भारतीय राजदूत के रहने का मकान दोनों भारतीय सरकार के थे। यहाँ के दूतावास का काम मुझे बहुत अच्छा जान पड़ा। इसका प्रधान कारण दूतावास के कर्मचारी हैं। दूतावास में फ्रांस के भारतीय राजदूत श्री मलिक मुझे बड़े ही योग्य व्यक्ति जान पड़े। श्री मलिक पुराने आई. सी. एस. अफसर थे। पटियाला राज्य के प्रधान मन्त्री भी रह चुके थे। फ्रांस की स्थिति के सम्बन्ध में श्री मलिक से और मुझ से काफी देर तक बातें हुईं।

तारीख २० को हम हवाई जहाज से पैरिस से रवाना हो २ बजे के लगभग उसी दिन शाम को लन्दन पहुँचने वाले थे। दो दिनों से पैरिस में खूब पानी बरस रहा था। अब तक की यात्रा में जो गरमी रही थी वह स्विटजरलैंड तक में थी, पर पैरिस में नहीं। इस बरसात से मौसम और ठंडी हो गयी थी, पर आँधी, पानी के

इस समय में हवाई जहाज से जाना ठीक होगा, या रेल से, यह प्रश्न हमारे सामने आया। वहाँ लोगों से राय लेने पर मालूम हुआ कि इससे भी कहीं अधिक आँधी पानी में हवाई जहाज जाता है। अन्त में हम लोगों ने वायुयान से ही जाना तय किया। ठीक समय हमने पेरिस छोड़ दिया। जिस हवाई जहाज से हम पेरिस से रवाना हुए उसी से श्री प्रोफेसर रंगा भी। श्री रंगा कामन्वेल्थ पार्लमेण्टरी परिषद् के भारतीय प्रतिनिधिमण्डल के एक सदस्य थे और मेरे सदृश वे भी अन्य सदस्यों की अपेक्षा कुछ दिन पहले भारत से यहाँ आ गये थे।

पेरिस के इस परिच्छेद को पूर्ण करने के पहले एक मनोरंजक बात और लिख दूँ। पेरिस मे पानी बरसने के कारण हम यहाँ अंग्रेजी ढंग के टोप को भी काम में लाये। पश्मीने के हाथ के कते और बुने हुए अंग्रेजी ढंग के कपड़ों के साथ ही हम काश्मीर में बने हुए पश्मीने के टोप भी भारतवर्ष से खरीदकर लाये थे, यद्यपि वे बहुत अच्छे न थे। इन टोपों ने बरसात मे हमारी छातों के सदृश ही रक्षा की। जब इस टोप को मैंने लगाया तब मुझे सन् १९२१ की एक घटना याद आ गयी। हमारे प्रदेश के एक प्रधान कांग्रेसवादी, जो आजकल मन्त्री भी है, श्री दुर्गाशंकर मेहता अंग्रेजी ढंग के टोप के बड़े प्रेमी थे। जब वे असहयोग-आन्दोलन में सम्मिलित हुए तब उन्होंने महात्मा गांधी से पूछा कि हाथ के कते और बुने कपड़े का अंग्रेजी ढंग का टोप कांग्रेस वाले उपयोग कर सकते है या नहीं ? महात्मा जी ने अपने स्वाभाविक विनोदी स्वभाव के अनुरूप उत्तर दिया—"क्यों नहीं, अंग्रेजी ढंग के टोप को मे बिना मूठ का छाता मानता हूँ।"

१२

फ्रांस और उसकी समस्याएँ

फ्रांस यूरोप का दूसरा सबसे बड़ा देश है। क्षेत्रफल लगभग २,१०,००० वर्ग मील है। समस्त यूरोप का फ्रांस आठवां भाग समझिए। आकार में फ्रांस इंगलैंड से चौगुना है। जनसंख्या ४,१५,००,००० है। कहते हैं पेरिस ही नहीं पर समूचा फ्रांस सर्वत्र सुन्दर देश है और यह कहना कठिन है कि फ्रांस के नगर सुन्दर हैं अथवा गाँव।

सैर और पर्यटन के लिए फ्रांस की गणना संसार के सर्वोत्तम स्थानों में की जानी चाहिए। फ्रांस की विशेषता यह है कि वहाँ आप पर्यटन कार से करें, रेलगाड़ी से, बाइसिकिल से अथवा पैदल ही, लुत्फ हर तरह आता है। बाद में इंगलैंड जाने पर मुझे जैसा भीड़-भम्भड़ दिखायी दिया उसका फ्रांस में सर्वत्र अभाव था। फ्रांस की खुली खुशनुमा वायु कितनी स्वास्थ्यवर्धक और स्फूर्तिदायक है इसका अधिक अनुभव तो मुझे इंगलैंड पहुँचने पर ही हुआ।

फ्रांस की स्थिति इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि एटलांटिक समुद्र में भी उसका तट है और भूमध्यसागर में भी। दूसरी विशेषता यह है कि फ्रांस में एक गहरी एकता है। यद्यपि फ्रांस के विभिन्न विभागों में विभिन्न प्रकार के लोग बसते हैं, किन्तु आने-जाने के सुविधाजनक साधन होने के कारण समूचा फ्रांस एक इकाई है। तीन हजार वर्ष के इतिहास में फ्रांस ने अपने स्वातन्त्र्य-प्रेम से सारे संसार को प्रभावित किया है। फ्रांस का स्वातन्त्र्य-प्रेम प्राचीन काल में सचमुच ही उज्ज्वल एवं प्रखर था। उसके प्राचीन 'गाल' सरदारों ने रोम तक का सामना किया और स्वतन्त्रता के प्रेम की अमर-ज्योति जगायी।

आधुनिक युग में भी फ्रांस का यही स्वतन्त्रता-प्रेम फ्रांसीसी क्रान्ति में प्रकट हुआ और यद्यपि रक्तपात और नृशंसता का नृत्य भी उस क्रान्ति में कम नहीं हुआ फिर भी क्रान्ति का लक्ष्य तो स्वतन्त्रता और समानता प्राप्त करना ही था। १७८९ की इस क्रान्ति के बाद से फ्रांस यूरोप में स्वतन्त्रता का अगुआ माना जाता रहा है। परन्तु मेरे मतानुसार आज का फ्रांस इस पद को खो चुका है।

उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस में उद्योग-धन्धों का प्रसार हुआ और साथ ही एक बृहत् औपनिवेशिक साम्राज्य की भी स्थापना हुई।

जहां तक धर्म का सम्बन्ध है राज्य ने किसी भी धर्म को मान्यता नहीं दी है, किन्तु अधिकांश लोग कैथोलिक और कोई दस लाख लाग प्रोटेस्टेण्ट मतानुयायी हैं। भाषा फ्रांस की पहले दो शाखाओं में बँटी हुई थी। उत्तर और दक्षिण फ्रांस की भाषाओं में पारिवारिक विवाद चलता था किन्तु बाद में उत्तर फ्रांस की भाषा दक्षिण के अनेक शब्दों और मुहावरों को समेटकर समूचे फ्रांस की भाषा बन गयी। कई वर्ष फ्रेंच यूरोप के राजनीतिक क्षेत्रों की भाषा रह चुकी है। फ्रेंच भाषा का लालित्य और पद-विन्यास भला किससे छिपा है।

फ्रांस कई प्रकार की सरकारों का प्रयोग कर चुका है। जहाँ तक प्रबन्ध की इकाइयों का सम्बन्ध है नैपोलियन के समय में उनकी संख्या ८३ थी। अब उनकी सख्या ६० हो गयी। सामाजिक व्यवस्था ऐसी है कि लगभग ३७ प्रतिशत किसान है, ४० प्रतिशत दस्तकार एवं शिल्पकार आदि है और मध्य वर्ग के लोग १२ प्रतिशत है, इनमें से अधिकतर दूकानदार हैं या शहरों के रहनेवाले हैं। बाकी ८ या १० प्रतिशत लोग सरकारी नौकरियों में है। यूरोप के अन्य देशों में जैसा कम इलाके में अधिक आबादी होने के कारण दबाव बना रहता है वैसा फ्रांस में नहीं है। फ्रांस में अन्य देशों के भी बहुत से लोग रहते है।

फ्रांस को कोयले की अपनी आवश्यकताएँ जिस प्रदेश से पूरी करनी पड़ती हैं उसे फ्रांस निरन्तर अपने पास रखने का प्रयत्न करता रहता है। द्वितीय युद्ध से पहले जर्मनी ने इस इलाके पर अपना अधिकार जमाया था क्योंकि यहाँ के निवासी अधिकतर जर्मन हे। जनमत लिये जाने पर यह इलाका जर्मनी के पास चला भी गया था, किन्तु द्वितीय युद्ध के पश्चात् इसे फिर फ्रांस को दे दिया गया। फ्रांस के विदेश मंत्री श्री शूमा ने पिछले दिनों अपनी योजना रक्खी थी जिसे 'शूमा योजना' कहा जाता है और जिसका उद्देश्य उद्योग, कोयला और इस्पात के साधनों को संगठित करना है।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् फ्रांस की शक्ति काफी क्षीण हो गयी है। युद्धकाल में मार्शल पेताँ ने जर्मनी का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था और ब्रिटेन से जर्नल डी गाल इस बात का प्रचार करते रहते थे कि फ्रांस मित्रदेशों के साथ सम्बन्ध स्थापित करे। जर्मनी की हार के बाद फ्रांस फिर मुक्त हो गया किन्तु उसे जो आघात पहुँचा उससे वह अभी तक नहीं उभर पाया है। फ्रांस की एक बड़ी समस्या मंत्रिमण्डल की रचना हो गयी है। लड़ाई के बाद से अब तक के थोड़े समय में १६ सरकारें बदल चुकी हैं और कोई नहीं कह सकता कि यह स्थिति कब तक चलेगी। अनेक पार्टियाँ जोर पकड़ गयी हे और उनको समर्थन भी मिला हुआ है। परिणाम यह होता है कि

बुलाया था। भारत को अपने पड़ोसी एशियाई देश की किसी प्रकार सेवा करने का अवसर मिला यह स्वयं भारत के लिए भी कम गौरव की बात नहीं है। क्या ही अच्छा हो कि समय को देखकर और स्थिति समझकर फ्रांस इण्डोनेशिया की तरह ही ट्यूनीशिया और मुराको को स्वाधीन कर दे।

भारत की फ्रांसीसी बस्तियों के सम्बन्ध में भी फ्रांस सरकार की नीति उतनी ही निन्दनीय है। ये बस्तियाँ सब प्रकार भारत का ही अंग है इसमें तो किसी प्रकार का सन्देह ही नहीं हो सकता और अंग्रेजों का साम्राज्य उड़ जाने के पश्चात् उनके बने रहने में कोई तुक भी नहीं है। इन बस्तियों को भारत बल-प्रयोग द्वारा भी ले सकता है। बस्तियों की जनता बराबर भारत में शामिल होने की माँग करती रही है किन्तु फ्रांस सरकार बराबर इसकी अवहेलना करती रही है। हमारे प्रधान मंत्री श्री नेहरू कह चुके है कि हम इन बस्तियों का मामला शान्ति के साथ और लिखा-पढ़ी द्वारा निबटाना चाहते हैं किन्तु फ्रांस सरकार भारत की सम्मति का कोई ख्याल ही नहीं कर रही। ये बस्तियाँ भारत में चोरी-छिपे विदेशी माल पहुँचाने के केन्द्र बन गयी है और इनको अधिक समय सहन करना भारत के लिए स्वयं अपना अहित करना होगा इसलिए हमें इस सम्बन्ध में जल्दी ही कोई निर्णय करना होगा।

१३

संसार के सबसे बड़े शहर में एक सप्ताह

ता० २० अगस्त की शाम को हम लन्दन के हवाई अड्डे पर पहुँचे। ज्यों ही हमने लन्दन की धरती पर पैर रखा त्यों ही कितनी बातें एक साथ मेरे मन में उठीं। जब बहुत सी बातें एक साथ मन में उठती हैं तब उनका कोई सिलसिला नहीं रहता। 'कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा' वाली कहावत रहती है। मुझे याद आया वह समय जब भारत संस्कृति तथा सभ्यता के शिखर पर पहुँच चुका था और उस समय इंगलिस्तान के लोग जंगली तथा बर्बर थे। कालान्तर से भारत का पतन और इंगलिस्तान के उत्थान तथा भारत पर लगभग पौने दो सौ वर्षों तक अंग्रेजों के राज्य की कारुणिक कथा का मुझे स्मरण आया, किस तरह अंग्रेज भारत में जहाँगीर के समय रोजगारी के रूप में गये थे, किस तरह कहीं लड़-भिड़कर, कहीं किसी को लड़ा-भिड़ाकर, अधिकतर छल-छन्द से उन्होंने अपना आधिपत्य भारत पर जमाया था, भारतीय साम्राज्य के कारण संसार में कैसा उत्कर्ष हुआ था उनका, उनके उत्कर्ष की चरम सीमा पहुँची थी सन् १९११ के दिल्ली दरबार में, कैसे-कैसे दृश्य देखे थे मैंने स्वयं ही उस दरबार के और कैसा पतन हुआ था भारत का इस पराधीनता के काल में। फिर याद आया मुझे स्वराज्य प्राप्त करने का समय-समय पर भारतीय प्रयत्न, सन् १८५७ का स्वतन्त्रता-संग्राम और अंग्रेजों द्वारा इस संग्राम का बदला लेने की भीषण क्रियाएँ, सन् १९२०, ३०, ३२, ४० और ४२ के गांधी जी के आन्दोलन, इन आन्दोलनों को कुचलने के लिए अंग्रेजों द्वारा महान् दमन। चूँकि सन् '२० के बाद के इन समस्त आन्दोलनों में मैंने स्वयं हिस्सा लिया था, इसलिए इन आन्दोलनों के कई दृश्य मुझे स्मरण आये। फिर मुझे याद आयी भारत जिस तरह स्वतन्त्र हुआ उसकी तथा उसके बाद की कई घटनाएँ। तो जो अंग्रेजी राज्य भारत के वर्तमान सारे क्लेशों का मुख्य कारण था, जिस सत्ता ने हमारे स्वतन्त्रता के प्रयत्नों को न जाने कितने प्रकार से कुचला था उसी अंग्रेजी राज्य के सन् '४७ के कर्णधारों ने जब हमें बिना किसी झगड़े-झाँसे के स्वतन्त्रता दे दी तब पिछली सभी बातें भूल आज हम अंग्रेजी राज्य के सबसे बड़े मित्र हैं। शत्रुता हमारी किसी भी देश से नहीं, हमारी संस्कृति

की परम्परा के कारण स्वतन्त्र भारत सभी देशों और राष्ट्रों का मित्र है और मित्र रहना चाहता है, पर अंग्रेजों के हम सबसे बड़े मित्र हैं। उनके अन्तिम उदार आचरण के कारण पुरानी सभी कटु बातों को हम भूल गये। बिना किसी प्रकार के संघर्ष के इस प्रकार हमें स्वराज्य देना अंग्रेजों के स्वयं के इतिहास के प्रतिकूल बात थी। अमेरिका, आयर्लैंड, मिश्र किसी के साथ भी उन्होंने ऐसा उदार व्यवहार नहीं किया था, और अंग्रेजों ने ही क्या, कदाचित् किसी भी राष्ट्र ने अपने अधीन राष्ट्र के साथ मानव इतिहास में ऐसा व्यवहार नहीं किया। यह कारण तो उनके प्रति हमारी वर्तमान सद्‌भावना का है ही, पर इसके सिवा हमारी सांस्कृतिक परम्परा और गांधी जी का दर्शन भी इसका बहुत बड़ा कारण है। कुछ लोगों का मत है कि हमें स्वतन्त्रता अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के कारण मिली, न अंग्रेजों की उदारता के कारण और न गांधी जी तथा हमारे देशवासियों के उनके अनुसरण के कारण। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी हमारी स्वतन्त्रता का कारण है, इसे मैं अस्वीकार नहीं करता, परन्तु अंग्रेजों की उदारता और गांधी जी के प्रयत्न तथा हमारे देशवासियों का उनका अनुसरण ये बातें न होतीं तो अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भारत को स्वतन्त्र न कर सकती थी। अंग्रेज अभी बहुत समय तक हमें दबोचे रह सकते थे। गांधी जी ने पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक हमारे देशवासियों के मन में जो राष्ट्रीय भावनाएँ भरीं और उन भावनाओं के कारण हमारे देशवासियों ने उनका जो अनुसरण किया उसकी वजह से हमारे देश को परतन्त्र रखना असम्भव हो गया था। और अंग्रेजों ने अन्त में कोई झगड़ा-झाँसा न कर हमारे साथ उदार व्यवहार किया, हमें स्वराज्य दे दिया। यदि ये दोनों बातें न होतीं तब तो वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में हम और भी बुरी तरह कुचले जाते। तो जिन अंग्रेजों से गत दो शताब्दियों तक हमारे नाना प्रकार के सम्बन्ध रह चुके थे उन्हीं की राजधानी लन्दन में मैं आज खड़ा हुआ था। किसी समय अंग्रेजी साम्राज्य संसार का सबसे बड़ा राज्य रहा था। कहा जाता था कि अंग्रेजी राज्य में कभी सूर्य नहीं डूबता था। लन्दन दुनियाँ का सबसे बड़ा शहर था। आज अंग्रेजी साम्राज्य 'कामनवेल्थ' में परिणत हो गया यद्यपि सच्चे कामनवेल्थ बनने में उसमें अभी अनेक कमियाँ हैं। फिर भी इस रूप में आज भी संसार की वह सबसे बड़ी चीज है। लन्दन आज चाहे आबादी में न्यूयार्क से छोटा हो पर क्षेत्रफल में दुनियाँ का सबसे बड़ा नगर है। पर सुना जाता है कि गत युद्ध में जीतने पर भी आज इंगलिस्तान के निवासी आर्थिक दृष्टि से बड़े कष्ट में हैं, उन्हें खाने तक को पूरा नहीं मिलता। मैं यूरोप का बहुत सा भाग देखकर लन्दन पहुँचा था। इंगलिस्तान को छोड़ राशनिंग यूरोप मे कहीं भी न था। लन्दन के अभी भी दुनियाँ के सबसे बड़े शहर होने पर भी सुना था कि गत युद्ध में लन्दन पर जो बम बरसे थे और

उनसे जो नाश हुआ था उसमें से बहुत से भाग को अब तक भी नहीं सुधारा जा सका है। फिर आज अमेरिका और रूस की ताकत दुनियाँ में अंग्रेजों से कहीं आगे है। किसी भी दृष्टि से आज अंग्रेजों का संसार में वह स्थान नहीं जो कभी रह चुका था। पर संसार में क्या किसी का भी कभी एक-सा समय रहा है, मुझे याद आया तुलसीदास जी का एक छन्द—

धरा को प्रमान यही तुलसी
जो फरा सो झरा जो बरा सो बुताना।

अंग्रेजों और उनके राज्य की पूर्वावस्था न रहने पर भी अभी भी उनका, उनके राज्य का, और लन्दन का दुनियाँ में बहुत बड़ा महत्त्व है। लन्दन की भूमि पर उतर उपर्युक्त अनेक बातें सोचते हुए मैंने हर दृष्टि से लन्दन के निरीक्षण करने का निश्चय किया।

हवाई अड्डे पर मुझे लेने के लिए भारतीय दूतावास के श्री सुब्रमण्यम आये थे और एक मोटर भी लाये थे। श्री प्रोफेसर रंगा, जगमोहनदास और घनश्यामदास के साथ मैं इण्डियन सर्विसेज़ क्लब नामक होटल में आया, जहाँ भारतीय दूतावास ने हम लोगों के ठहरने की व्यवस्था की थी। यह क्लब भारतीय सरकार का है और इसे लन्दन का भारतीय दूतावास चलाता है। लन्दन में हमारी अनेक इमारतें और संस्थाएँ हैं। भारतीय दूतावास का भवन इण्डिया हाउस, भारतीय राजदूत का निवास-स्थान, इण्डियन सर्विसेज़-क्लब—ये भारत सरकार की मुख्य जायदादें हैं। भारत सरकार के अतिरिक्त यहाँ भारतीयों की कई गैर सरकारी संस्थाएँ भी चलती हैं जिनमें मुख्य हैं इण्डिया क्लब, और विद्यार्थियों की कई संस्थाएँ। इंगलिस्तान का हमारे साथ इतने लम्बे समय से सम्बन्ध रहने के कारण लन्दन में भारत की इस तरह की संस्थाएँ रहना स्वाभाविक है।

जिस इण्डियन सर्विसेज़ क्लब में हम ठहराये गये वहाँ भारत सरकार की ओर से होटल चलता है और भारत से आने वाले प्रतिष्ठित व्यक्ति, खासकर सरकारी अफसर, ठहरते हैं। श्री बैनर्जी नामक एक बड़े सुयोग्य व्यक्ति इसका प्रबन्ध करते हैं। हमें काफी अच्छे कमरे मिले। खाना यहाँ भारतीय ढंग का भी मिल सकता है, यह सुनकर हमें बड़ा हर्ष हुआ।

कामनवैल्थ पार्लियामेण्टरी एसोसियेशन की कैनेडा की राजधानी ऑटवा में होने वाली परिषद् के प्रतिनिधियों को लेकर एक विशेष प्लेन ता० २९ अगस्त को लन्दन से कैनेडा जाने वाला था। आज २० तारीख थी। २९ तारीख को ऑटवा जाने तक मैं अन्य किसी स्थान को नहीं जाना चाहता था। बीस दिन तक लगातार घूमते रहने के कारण कुछ थकावट भी हो गयी थी और लन्दन में मैं कुछ अधिक

रहना भी चाहता था। अतः अगले ८, ६ दिन में लन्दन में क्या-क्या करना है इसका कार्यक्रम बनाया गया। हमने देखा कि इस कार्यक्रम में और अब तक के हमारे पर्यटन के कार्यक्रमों में अन्तर है। इसका कारण था अन्य स्थानों को हम वहाँ के विशिष्ट स्थल और वहाँ का जीवन देखने गये थे। लन्दन में इन दो बातों के सिवा अन्य अनेक काम भी थे, जैसे मेरे आगमन की खबर सुन वहाँ के भारतीय विद्यार्थियों की दो संस्थाओं ने दो दिन तक मेरे भाषण रखे थे। रायटर के प्रतिनिधि मेरी एक मुलाकात चाहते थे, लन्दन की आकाशवाणी बी. बी. सी. वाले भी मेरे वक्तव्य के लिए उत्सुक थे, लन्दन की कामनवैल्थ पार्लियामेण्टरी एसोसियेशन की शाखा ने हमारे सम्मान में एक पार्टी रखी थी। वहाँ के कई राजनैतिक व्यक्तियों से हमारी मुलाकातें तय हुई थीं। इत्यादि इत्यादि। अतः यद्यपि हम लन्दन पैरिस से लगभग दूने समय तक ठहरे, पर हमने देखा कि जितनी घुमाई हम पैरिस में कर सके, उतनी लन्दन में नहीं।

सबसे पहले हम भारतीय राजदूत श्री खेर से इण्डिया हाउस में मिले। इण्डिया हाउस एक बहुत बड़ी सुन्दर और भव्य इमारत है। भारतीय दूतावासों में लन्दन का दूतावास सबसे बड़ा है। इण्डिया हाउस का डिजाइन सर हर्बर्ट बार्कर ने तैयार किया था। इसका भीतरी भाग भारतीय ढंग पर और भारतीय कलाकारों द्वारा सुसज्जित किया गया है। इसके प्रदर्शन-भवन में भारतीय कलाकारों की कला-कृतियों और दस्तकारियों के नमूने हैं। यह भवन प्रतिदिन साढ़े नौबजे से पाँच बजे तक जनता के लिए खुला रहता है। कोई एक हजार कर्मचारी यहाँ काम करते हैं। श्री आसफअली साहब के समान ही श्री खेर से भी मेरा सन् '२० से ही सम्बन्ध था। वे मुझे और मैं उन्हें दोनों ही एक दूसरे को यूरोपीय वेष में देखकर पहले तो खूब हँसे, पर इसके बाद बातचीत में हम दोनों ही इस बात को मान गये कि इस विषय में पंडित जवाहरलाल जी नेहरू का मत ही ठीक है। न्यूज़ीलैंड और आस्ट्रेलिया में मैंने शेरवानी और चूड़ीदार पाजामे से काम चलाया था, पर वहाँ भी उस वेष में रहने के कारण जिस प्रकार वहाँ की जनता के द्वारा हम घूरे जाते थे इसका मुझे अनुभव था। इस बार यूरोप के दौरे में यदि हमने यूरोपीय वेषभूषा का निर्णय न किया होता तो हम जिस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों के दृश्य देखने गये थे उसी प्रकार उन भिन्न-भिन्न स्थानों के लोग हमें भी एक विशिष्ट प्रकार का दृश्य समझ हमारी ओर देखते। श्री खेर कितने प्रेम और उत्साह से मुझ से मिले। कितनी सौजन्यता दिखायी उन्होंने इस मुलाकात में। उन्होंने हमारे सारे कार्यक्रम को व्यवस्थित करने तथा हमें हर प्रकार की सहायता देने का काम इन्फॉरमेशन महकमे के सुपुर्द कर दिया और मुझ से कह दिया कि जब भी मुझे उनकी किसी प्रकार की सहायता की जरूरत पड़े मैं उनसे निःसंकोच कहूँ। मेरे लन्दन में ८

दिन के दौरे में मुझे भारतीय दूतावास के इन्फ़ॉरमेशन महकमे के श्री किदवई, श्री खन्ना, श्री डाक्टर कौमुदी आदि से जितनी सहायता मिली उसके लिए मैं उन्हें किन शब्दों में धन्यवाद दूं। श्री डाक्टर कौमुदी तो मेरे सारे सार्वजनिक कार्यों में सदा ही मेरे साथ रहीं। डाक्टर कौमुदी एक भारतीय महिला हैं। वे जितनी सुन्दर हैं उतनी ही विदुषी। इतिहास में उन्हें इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट मिली है और आज कल वे लन्दन के भारतीय दूतावास में काम कर रही थीं।

लन्दन का मेरा सारा कार्यक्रम निम्नलिखित विभागों में विभक्त किया जा सकता है—

१. लन्दन के दर्शनीय स्थानों और वहाँ के जीवन का निरीक्षण।

२. सार्वजनिक भाषण, पत्र-प्रतिनिधियों से मुलाकातें आदि।

३. वहाँ के अनुदार दल, मजदूर दल के दफ्तरों को जा, उन दलों के संगठन पर इनके मन्त्रियों से, टाइम्स के लिटरेरी सप्लीमेण्ट के सम्पादकों से तथा अन्य लोगों से मुलाकातें आदि।

लन्दन यात्रा करने वालों को सिटी (नगर), लन्दन काउण्टी कौंसिल और ग्रेटर लन्दन ये तीन सम्बोधन बहुधा उलझन में डाल देते हैं। वास्तव में इनसे केवल यही प्रकट होता है कि लन्दन नगर का विकास किस प्रकार हुआ। सिटी अर्थात् नगर शब्द का प्रयोग केवल एक वर्ग मील इलाके के लिए होता है जो कहना चाहिए लन्दन का अन्तःपुर है। किसी समय बस यही लन्दन था। आज 'सिटी' शब्द का प्रयोग लन्दन के 'वाल स्ट्रीट' प्रदेश के लिए किया जाता है। यह स्थान वित्त और साहूकारों का केन्द्र है। बैंक ऑफ़ इंगलेंड, स्टाक एक्स्चेंज और लायड्स आदि इसी प्रदेश में हैं। प्रबन्ध की दृष्टि से यह सिटी कारपोरेशन के अधीन है।

सिटी के चारों ओर घनी आबादी वाला इलाका है जिसे लन्दन काउण्टी कौंसिल अथवा उसके संक्षिप्त रूप में एल. सी. सी. कहते हैं।

लन्दन काउण्टी के ओरपास ही बाहरी बस्तियाँ हैं। सिटी, एल. सी. सी. और बाहरी बस्तियों को मिलाकर ग्रेटर लन्दन अथवा बृहत्तर लन्दन कहा जाता है।

प्रारम्भ में लन्दन टेम्स नदी के किनारे-किनारे बसना शुरू हुआ था। लन्दन नगर सचमुच बहुत बड़ा नगर है, परन्तु पैरिस के सदृश सुन्दर नहीं। कलकत्ते से यह शहर बहुत मिलता है। चूंकि लन्दन कलकत्ते से पुराना है, और चूंकि कलकत्ते का निर्माण ब्रिटिश राज्य में ही हुआ, इसलिए मैं समझता हूँ कि कलकत्ते की इमारतें आदि लन्दन के सदृश्य बनें इसका ध्यान रखा गया होगा। लन्दन की इमारतें भी पुराने ढंग की हैं और वहाँ की ऐतिहासिक इमारतें भी पैरिस की ऐतिहासिक इमारतों के सदृश ही साफ नहीं की जातीं। सड़कें प्रायः चौड़ी और स्वच्छ हैं। वहाँ की

ट्राम बन्द कर उसकी पटरियाँ सड़कों पर से निकाल दी गयी हैं, जिसके कारण सड़कें और अच्छी हो गयी हैं। अब लन्दन में ट्राम नहीं चलतीं, बिजली से चलने वाली बस चलती है। किसी सड़क के दोनों ओर और कहीं एक ओर पैदल चलने के रास्ते हैं, जिनमें कुछ के दोनों ओर दरख्तों की कतारें है, पर पैरिस के सदृश नहीं। बहुत कम सड़कों की वैसी शोभा है। अनेक स्थानों पर पिछली लड़ाई की बमबारी के कारण खण्डहर बन गये हैं जो अब तक भी ठीक नहीं कराये जा सके। लन्दन के मुख्य-मुख्य स्थानों के बीच एक बहुत बड़ी खुली जगह है, जिसे हाइड पार्क कहते हैं। इस हाइड पार्क का क्षेत्रफल ३६१ एकड़ है, किन्तु किंग्स्टन गार्डन को मिलाकर ६,००० एकड़ हो जाता है। लन्दन के सदृश घने बसे हुए तथा रोजगार धन्धेवाले नगर के बीच इतनी बड़ी खुली जगह इस पार्क की सबसे बड़ी विशेषता है। फिर इसकी दूसरी विशेषता है वहाँ लन्दन-निवासियों का जमघट। नागरिकों का यह जमाव यों तो रोज ही सन्ध्या को रहता है, पर शनिवार की सन्ध्या और रविवार की दोपहर से सन्ध्या तक तो यह जमाव एक बड़े भारी मेले का रूप ले लेता है। लाखों नर-नारी, बच्चे दोनों दिन यहाँ आते, खेलते-कूदते, खाते-पीते तथा छोटी-छोटी टुकड़ियों में विविध प्रकार के भाषण, बैण्ड आदि सुनते हैं। पार्क में हजारों कुर्सियाँ पड़ी रहती हैं। एक तरफ बैण्ड बजता है, एक तरफ सरपेण्टाइन नामक झील में नौका-विहार होता है और ऊँचे-ऊँचे टिपायों पर खड़े हो-होकर भाषण तो न जाने कितने लोग दिया करते हैं। सुना यह गया कि लन्दन में बड़ी-बड़ी सार्वजनिक सभाएँ कभी भी नहीं होतीं, चुनाव आदि के अवसरों पर भी नहीं। वहाँ शायद ही कोई ऐसी सभा हुई हो जिसमें दो-तीन सौ मनुष्यों से अधिक जमा हुए हों। वहाँ के लोग इस बात पर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया करते हैं कि भारत में सार्वजनिक सभाओं में हजारों और लाखों की संख्या में लोग कैसे इकट्ठे होते हैं। शनिवार और इतवार को ऐसी सभाओं के लिए हाइड-पार्क बड़ा प्रसिद्ध है। भिन्न-भिन्न विषयों पर भिन्न-भिन्न वक्ता बोलते, लोग सुनते और उनसे नाना प्रकार के प्रश्न करते हैं। भाषण के बाद प्रश्नों की झड़ी लन्दन की एक पद्धति है। सुना कि भारत के भूतपूर्व राजदूत श्री कृष्ण मेनन वर्षों इस प्रकार की सभाओं में बोलते रहे हैं। लन्दन का और भी हर प्रकार का जीवन इस पार्क में शनिवार और रविवार को दृष्टिगोचर होता है। सौभाग्य से हम लोग लन्दन में शनिवार और रविवार को थे अतः हाइड-पार्क का मेला हमने खूब देखा। कहीं भाषण सुने, कहीं बैण्ड, सरपेण्टाइन झील का नौका-विहार देखा और लोगों का विविध प्रकार का जीवन, कहीं खाना-पीना, कहीं खेलना-कूदना और कहीं प्रेमलीला भी। हाइड-पार्क के सिवा टेम्स नदी के किनारे ट्रेफालगर स्क्वायर में जनरल नेल्सन की मूर्ति और उसके फव्वारे, जो रात्रि को बिजली के प्रकाश के कारण और सुन्दर दीखते

६६ क. वैस्टमिंस्टर एबी
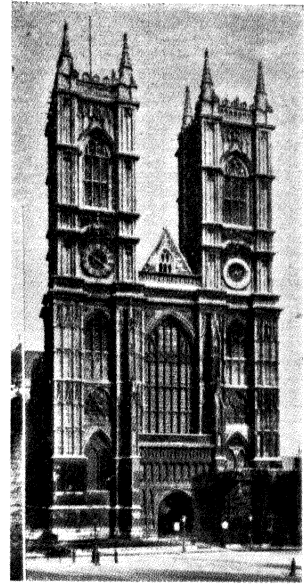
६७. पार्लियामेंट भवन
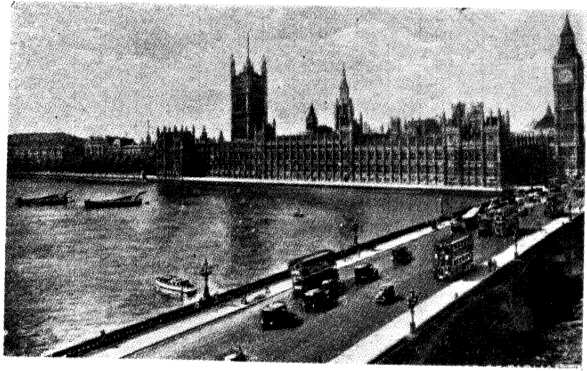
६८. बकिंघम पैलेस
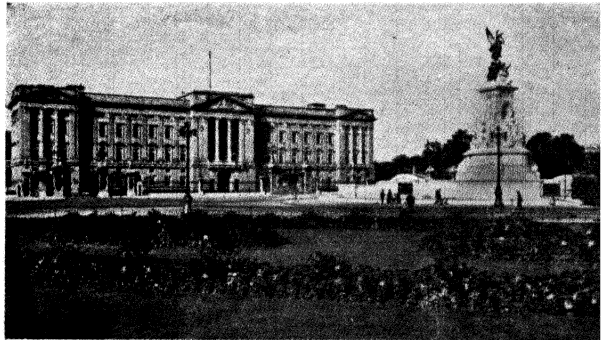
६९. सेण्टपाल गिरजाघर
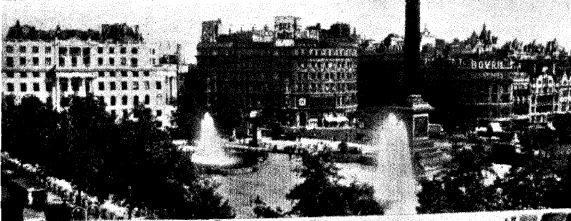
७०. ट्राफलगर एस्क्वायर

७१. पिकैडली सर्कस
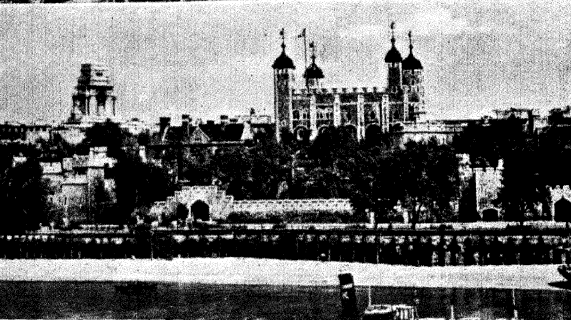
७२. टावर ऑफ़ लन्दन

हैं, पिकिडली स्ट्रीट की रात की रोशनी आदि-आदि लन्दन के अनेक दर्शनीय स्थान हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से वहाँ का वेस्ट मिन्स्टर एबी, सेण्टपाल गिरजाघर, हाउस ऑफ़ कामन्स, हाउस ऑफ़ लार्डस और वेस्ट मिन्स्टर हॉल तीन प्रधान भागोंवाला पार्लिमेण्ट हाउस, लन्दन टावर, बकिंघम पैलेस, ब्रिटिश म्यूजियम तथा इलबर्ट एण्ड विक्टोरिया म्यूजियम, नेशनल पिक्चर गैलरी तथा टेट पिक्चर गैलरी स्थान हैं। इनका यहाँ कुछ वर्णन कर देना अनुपयुक्त न होगा (चित्र नं० ६७ से ७२ तक)।

सबसे पहले हम ट्रैफाल्गर स्क्वायर देखने गये। यह स्क्वायर १८०५ के ट्रैफाल्गर युद्ध के स्मारक के रूप में बनाया गया है। राबर्ट पील कहा करते थे कि यह यूरोप भर में सर्वोत्तम स्थान है। इसके दक्षिणी छोर पर ट्रैफाल्गर-युद्ध के विजेता लार्ड नैल्सन की मूर्ति का १८५ फुट ऊँचा स्तम्भ है। ऊपर लार्ड नैल्सन की विशाल मूर्ति है। स्तम्भ के नीचे चारों ओर काँसे के चार बड़े सिंह हैं।

समीप ही नेशनल गैलरी और टेट गैलरी हैं। नेशनल गैलरी की इमारत ट्रैफाल्गर स्क्वायर के सारे उत्तरी बाजू के सहारे-सहारे अत्यन्त भव्य है। इसका मध्य भाग यूनानी ढंग का है जो १८३२-३८ में बना था। युद्ध-काल में नेशनल गैलरी को काफी क्षति पहुँची। नेशनल गैलरी की इस इमारत की चित्रावली की स्थापना १८३८ ई० में हुई थी। आपको आश्चर्य होगा कि आज यह यद्यपि इतना बड़ा संग्रहालय है किन्तु इसका आरम्भ केवल ३८ चित्रों से हुआ था। नेशनल गैलरी में चित्र बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाये गये हैं और प्रत्येक कला-शैली के चित्र अलग-अलग रखे गये हैं।

टेट गैलरी की इमारत इसके पीछे है। इसमें ३,००० व्यक्तियों के चित्र और मूर्तियाँ आदि हैं। इनका अत्यधिक ऐतिहासिक महत्त्व है। इसमें राजवंश को छोड़ अन्य किसी जीवित व्यक्ति की तस्वीर आदि नहीं रखी जा सकती।

अठारहवीं शताब्दी तक चारिंग क्रास, वर्तमान वेस्ट मिन्स्टर ब्रिज और टेम्स नदी तथा सेण्ट जेम्स पार्क के बीच का प्रदेश प्राचीन ह्वाइट हाल नामक महल से घिरा हुआ था जिसका आज केवल नाम बाकी है और जिसकी केवल एक इमारत शेष है। आज तो नैल्सन-स्तम्भ से वेस्ट मिन्स्टर के आधे मील के रास्ते पर दूर-दूर तक फैले ब्रिटिश साम्राज्य का राजनीतिक मर्मस्थल है क्योंकि यहीं पर वे सब इमारतें हैं जहां से साम्राज्य का शासन चलाया जाता है। ह्वाइट हॉल ट्रैफाल्गर से वेस्ट मिन्स्टर तक जानेवाले प्रशस्त राजमार्ग का नाम है। यहाँ सरकारी दफ्तरों की कतार की कतार बनी हुई है।

ह्वाइट हॉल पर प्रवेश करते ही दायें हाथ ह्वाइट हॉल थियेटर है। सम्मुख स्काटलैण्ड यार्ड है। यह नाम उस इमारत के नाम पर पड़ा है जहाँ लन्दन-प्रवास के समय स्काटलैण्ड के राजा और उनके राजदूत रहा करते थे १६४९-५२ तक, जिन

दिनों जॉन मिल्टन कौंसिल ऑफ़ स्टेट के लैटिन सेक्रेटरी थे। वे भी इसी स्थान पर रहते थे। पिछले दिनों में यह स्थान राजधानी की पुलिस के नाम के साथ सम्बद्ध होकर अत्यन्त विख्यात हो गया है।

वैसे तो वेस्ट मिन्स्टर नाम का प्रयोग उस सारे प्रदेश के लिए होता है, जिसे वेस्ट एण्ड कहा जाता है, किन्तु प्रतिदिन के व्यवहार में लन्दन-निवासी इस संबोधन का प्रयोग इससे काफी छोटे इलाके के लिए करते हैं, जिसमें वेस्ट मिन्स्टर एबी और संसद्-भवन आदि आते हैं। वेस्ट मिन्स्टर एबी का महत्त्व सबसे अधिक इसलिए है कि इंगलैंड के सम्राटों एवं सम्राज्ञियों का राजतिलक इसी स्थान पर होता है। इस वर्ष भी दो जून को महारानी एलिजाबेथ के तिलक-समारोह का गौरवपूर्ण स्थान यही था। वेस्ट मिन्स्टर एबी की इमारत प्रारम्भिक ब्रिटिश वास्तुकला का अद्भुत नमूना है। ब्रिटेन के अधिकांश प्रसिद्ध व्यक्ति इसी जगह दफनाये गये हैं। एक ओर को पोइट्स कार्नर है जहाँ प्रसिद्ध साहित्यिक दफनाये गये हैं।

द्वितीय महायुद्ध में वेस्ट मिन्स्टर एबी को भी शत्रुओं के आक्रमण से काफी क्षति हुई थी।

संसद्-भवन की इमारत उत्तरकाल की गौथिक कला-शैली पर बनी है। इस इमारत को वेस्ट मिन्स्टर का नया राजमहल भी कहते हैं। इस इमारत का डिजायन सर चार्ल्स बैरी ने तैयार किया था और इसका निर्माण १८४० से १८५० के बीच हुआ। यह इमारत टेम्स नदी के किनारे कुछ नीची भूमि में बनी हुई है इसलिए इसकी शान में कुछ कमी आ गयी है। यह इमारत आठ एकड़ के क्षेत्रफल में बनी है। इसमें ११ आँगन हैं और विभिन्न स्थानों पर सौ सीढ़ियाँ बनी है। इसके कमरों की संख्या १,१०० है। हाउस ऑफ़ कामन्स अर्थात् लोकसभा की स्थापना उत्तरी भाग में की गयी है। हाउस ऑफ़ लार्ड्स अथवा लार्ड सभा दक्षिणी भाग में है। इसके अतिरिक्त संसद् के उच्चाधिकारियों के निवास का भी इसमें प्रबन्ध है। ब्रिटेन की लोकसभा के अध्यक्ष यहीं रहते हैं।

इस इमारत की एक विशेषता यह है कि ब्रिटेन के शासकों की मूर्तियाँ यहाँ स्थापित हैं, जो अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती हैं। इसके अतिरिक्त इसकी तीन मीनारें हैं जो इस सुन्दरता को और बढ़ा देती हैं। सबसे ऊँची और सबसे अधिक मोहक विक्टोरिया टावर है। यह ३३६ फुट ऊँची है और इसकी एक-एक भुजा ७५ फुट की है। ऐसी चौकोर सुडौल मीनार दूसरी कदाचित् ही हो। क्लाक-टावर की उँचाई ३२० फुट है। यहाँ संसार-प्रसिद्ध घड़ी बिगबेन लगी हुई है। यह घड़ी चारों ओर दिखायी पड़ती है। घड़ी का आकार चौकोर है—तेईस फुट लम्बा और तेईस फुट चौड़ा। दो-दो फुट के अक्षर हैं और मिनट की सुई १४ फुट लम्बी है। समय का बोध

एक घण्टे के बजने से होता है जो साढ़े तेरह टन का है। दिन को विक्टोरिया टावर के झण्डे से और रात को क्लाक-टावर के प्रकाश से इस बात का संकेत मिलता रहता है कि संसद् का अधिवेशन हो रहा है अथवा नहीं।

हाउस ऑफ़ लार्ड्स गौथिक कला-शैली के अनुसार बना हुआ है और पूरी तरह सजाया गया है। इसकी लम्बाई ९० फुट, चौड़ाई ४५ फुट और उँचाई भी ४५ फुट है। १९४१ में आग से हाउस ऑफ़ कामन्स के हॉल को क्षति पहुँचने के बाद से १९५० में उसके ठीक-ठाक हो जाने तक यह हाउस ऑफ़ कामन्स अर्थात् लोकसभा के उपयोग में आता रहा।

हाउस ऑफ़ कामन्स का हॉल १० मई १९४१, को आग से जलकर नष्ट हो गया था। नया भवन सर गाइल्स स्कॉट के डिजाइन के आधार पर तैयार किया गया है। इसकी लम्बाई १३० फुट, चौड़ाई ४८ फुट और उँचाई ४३ फुट है। ब्रिटेन की लोकसभा के अध्यक्ष का आसन आस्ट्रेलिया से प्राप्त हुआ है। सदन की मेज कैनेडा से आयी है। अध्यक्ष के आसन के ऊपर प्रेस गैलरी है जिसमें १६० लोगों के लिए स्थान है। अध्यक्ष के ठीक सामने विशेष और साधारण दर्शकों के बैठने की गैलरी है। सदन के दायें-बायें डिवीजन लाबी है। मत-विभाजन के समय समर्थन करनेवाले सदस्य दायीं तरफ की लाबी में और विरोध करनेवाले सदस्य बायीं तरफ की लाबी मे चले जाते हैं।

समीप ही वेस्ट मिन्स्टर हॉल है। १३४९ में सम्राट् चार्ल्स प्रथम को मृत्यु-दण्ड यहीं पर दिया गया था। जिस समय सम्राट् चार्ल्स का मुकदमा हो रहा था उस समय वे जिस स्थल पर बैठे थे उसे आज भी पहचाना जा सकता है। उस स्थल पर पीतल की छोटी-सी चौकी रखी है।

यह सुन्दर हॉल १०९७ में विलियम द्वितीय ने तैयार कराया था। इसकी लम्बाई २९० फुट, चौड़ाई ६८ फुट और उँचाई ९२ फुट है। इसकी सुन्दर छत १३९९ में रिचार्ड द्वितीय ने तैयार करायी थी। कई अन्य ऐतिहासिक संस्मरण इस हॉल के साथ जुड़े हुए हैं। यहीं १३२७ में एडवर्ड द्वितीय ने गद्दी का त्याग किया। १६५३ में क्रामवेल को यहीं पर लार्ड प्रोटेक्टर घोषित किया गया। १५३५ में यहीं पर सर टामस मूर को मृत्यु-दण्ड मिला।

सेण्ट जेम्स पार्क और चालीस एकड़ के एक निजी बाग के मध्य ब्रिटेन के राजवंश का निवास-स्थान बकिंघम पैलेस है। जिस समय सम्राट् अथवा सम्राज्ञी इस महल में होते हैं शाही झण्डा लहराता रहता है और साढ़े दस बजे सबेरे पहरा बदल दिया जाता है। इस महल का नाम बकिंघम हाउस के नाम पर पड़ा है जो इस स्थल पर १७०३ में ड्यूक ऑफ़ बकिंघम ने बनवाया था। जार्ज तृतीय ने इसे १७६२ में

खरीद लिया और १७६७ में इसी में डाक्टर जानसन के साथ उनकी प्रसिद्ध भेंट हुई थी। १८२५ में जार्ज चतुर्थ ने इसमें परिवर्तन करा इसे नये सिरे से बनवाया, किन्तु सरकारी तौर पर सम्राट् के निवास-स्थान का दर्जा इसे सम्राज्ञी विक्टोरिया के समय से प्राप्त हुआ। १९४०-४४ में हवाई आक्रमणों से महल को कई बार क्षति पहुँची। दर्शकों को महल के भीतर जाने की इजाजत नहीं है।

पिकैडली सर्कस लन्दन का सबसे व्यस्त स्थान है। नई दिल्ली के कैनॉट सर्कस जैसा सुरुचिपूर्ण और सुन्दर तो यह स्थान नहीं है, किन्तु आमोद-प्रमोद का केन्द्र होने के नाते शाम को यहाँ की छटा बहुत बढ़ जाती है। सायंकाल के समय साफ-सुथरे और रंग-बिरंगी पोशाक वाले लोग यहाँ आते हैं और रेस्तराँ व थियेटर आदि की ओर जाते दिखायी देते हैं। तरह-तरह की दमकती हुई बत्तियों से सारा वातावरण जगमगा उठता है। कोई आधा दर्जन महत्त्वपूर्ण सड़कें यहाँ आकर मिलती हैं। दिन में कोई ऐसा क्षण ही नहीं होता जब यहाँ बहुत अधिक भीड़ न रहती हो।

चेलसिया टैम्स नदी के किनारे-किनारे डेढ़ मील लम्बी बड़ी सुन्दर बस्ती है। सोलहवीं शताब्दी के बाद यह कुछ प्रमुख लोगों के रहने का स्थान रही है। यहाँ पर सर टामस मूर और टामस कार्लाइल के निवास-स्थान सुरक्षित हैं; बल्कि स्मरण रहे कि टामस कार्लाइल तो चेलसिया के सन्त के नाम से विख्यात भी हो गये थे।

ब्रिटिश म्यूज़ियम की गणना ससार के सर्वोत्तम और सम्पन्न अजायबघरों में की जानी चाहिए। इसकी स्थापना १७५३ में हुई थी। इसमें लगभग ससार के सभी देशों की वस्तुएँ संग्रहीत हैं। इसमे पाण्डुलिपियों का एक अलग भाग है। उधर लन्दन म्यूज़ियम से ब्रिटेन के ही सामाजिक जीवन की जानकारी प्राप्त होती है।

स्वयं पत्रकारी से अनुराग होने के कारण फ्लीट स्ट्रीट ने मुझे विशेष आकर्षित किया, किन्तु वहाँ पहुँचने पर मैंने उसमे कोई विशेषता नहीं देखी। ब्रिटेन के अधिकांश समाचार-पत्र इसी स्थान पर प्रकाशित होते हैं और यद्यपि वे प्रकाशित इसी जगह होते हैं, पर उनका मुद्रण आदि पिछवाड़े की सड़कों, स्क्वायरों आदि में होता है। सायंकाल ६ बजे से रात के १२-१ बजे तक यहाँ बड़ी चहल-पहल रहती है। आधी रात को बाहर भेजे जाने वाले समाचार-पत्रों को रेलगाड़ियों तक पहुँचाने की धूम रहती है। पत्रों के लन्दन संस्करण सबेरे तीन बजे तक छपते रहते हैं। कुछ काल पश्चात् सायंकाल के संस्करणों के लिए काम-धाम आरम्भ हो जाता है।

यों तो ब्रिटेन की प्रत्येक वस्तु का कुछ-न-कुछ ऐतिहासिक महत्त्व है, पर यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि वेस्ट मिन्स्टर एबी में एक प्रकार से इंगलैंड का सारा इतिहास सुरक्षित है।

लन्दन की अन्य कोई वस्तु मुझे विशेष दर्शनीय नहीं जान पड़ी। इंगलैंड के गिरजाघर रोम के गिरजाघरों के सामने तुच्छ जान पड़ते हैं। वहाँ का पार्लियामेण्ट भवन केवल इसलिए विशेषता रखता है कि आधुनिक काल के प्रजातन्त्रों में शायद इंगलैंड की प्रजातन्त्रात्मक संस्थाएँ सबसे पुरानी हैं और वे यहाँ बैठती हैं। बकिंघम पैलेस में भी कम-से-कम बाहर से मुझे कोई विशेषता नहीं दिखी। भारत के पुराने नरेशों के कुछ महल बकिंघम पैलेस से कहीं अच्छे दिखते हैं। अजायबघर घरों के यहाँ के संग्रहों की अपेक्षा काहरा, रोम के वैटिकन और फ्रांस के लूव्र अजायबघरों के संग्रह कहीं बड़े हैं और इंगलैंड की चित्रशालाओं से रोम के वैटिकन, तथा फ्लॉरेन्स की चित्रशालाएँ कहीं महान् तथा भव्य। हाँ, ब्रिटिश म्यूजियम तथा एलबर्ट एण्ड विक्टोरिया म्यूजियम में जितना भारतीय वस्तुओं का संग्रह है उतना भारत के बाहर किसी विदेश में नहीं। इस भारतीय संग्रह में कुछ चीजें तो भारत के संग्रहों की अपेक्षा भी विशेषता रखती है। यह संग्रह हमारी पराधीनता की एक निशानी है। इस संग्रह को भारत मँगाने की भी बात चली थी, मालूम नहीं इस सम्बन्ध में फिर क्या हुआ ? मेरे मतानुसार भारत के गौरव की दृष्टि से इसका भारत आना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

लन्दन के जीवन में मुझे अश्लीलता बहुत कम नजर आयी ? साथ ही वहाँ का जीवन बड़ा व्यवस्थित और अनुशासनमय दिखायी दिया। लड़ाई में जीत होने पर भी आज इंगलैंड की संसार में जो स्थिति हो गयी है उसका असर मुझे सर्वत्र दृष्टिगोचर हुआ। इंगलिस्तान वाले अपनी पुरानी महानता को भूले नहीं हैं। यद्यपि अमेरिका के अधिकांश निवासी इंगलिस्तान से ही गये हैं और वहाँ की भाषा भी अंग्रेजी ही है तथा अमेरिका वाले इनके बड़े से बड़े मित्र हैं तथापि अधिकांश लोगों को अमेरिका का यह वैभव सुहाता न जान पड़ा और यद्यपि अमेरिका की भिन्न-भिन्न प्रकार की सहायताएँ उन्हें स्वीकार करनी पड़ रही हैं तथापि इससे वे प्रसन्न न दीख पड़े। सबसे बड़ी बात जिसका मुझ पर असर पड़ा वह यह था कि इंगलिस्तान के लोग नित्य की वस्तुओं के अभाव को बिना उफ मुँह से निकाले सह रहे हैं। जरा से कपड़े, जरा सी शक्कर आदि के अभाव में भारत में जैसी चिल्ल-पौं मचती है उसका वहाँ नाम-निशान नहीं है। इंगलैंड की जनता में आज भी मुझे जैसा चरित्र-गठन दिखायी दिया वैसा सारे यूरोप में कहीं नहीं। जिस राष्ट्र ने पिछला युद्ध एक समय तो एकाकी लड़ा था उसमें अभी भी अनेक विशेषताएँ हैं। घूसखोरी, चोरबाजार आदि वहाँ सुनने को नहीं मिले। कहीं-कहीं एकाध भिखारी अवश्य नजर पड़ा, पर भीख माँगना कानून से बन्द होने के कारण वह लुके-छिपे चल रहा था और ऐसा जान पड़ा जैसे वह सचमुच ही अत्यन्त गरीब है। राष्ट्र के चरित्र को उच्च रखने का सबसे बड़ा

सरकारी साधन जो पुलिस है वह इंगलैंड की पुलिस तो संसार की सबसे अच्छी पुलिस है। स्काटलैंड यार्ड की प्रशंसा में अनेक बार पढ़ और सुन चुका था। इस बार उसे नजर से देखा। ऐसी निष्कलंक, दृढ़ और साथ ही सौम्य तथा मृदुभाषी पुलिस शायद दुनियाँ के किसी देश में नहीं है।

लन्दन के भारतीय विद्यार्थियों की दो संस्थाओं में मेरे भाषण हुए। पहले स्थान पर मैं भारतीय संस्कृति पर बोला और दूसरे स्थान पर भारत की वर्तमान राजनीति तथा आर्थिक स्थिति पर। दोनों जगह भाषण यद्यपि मैंने हिन्दी में प्रारम्भ किये, पर मुझे अन्त में अंग्रेजी में ही बोलना पड़ा। भाषणों के पश्चात् दोनों जगह खूब प्रश्न पूछे गये। बाद में मुझे मालूम हुआ कि मेरे भाषण और प्रश्नों के उत्तर श्रोताओं को काफी रुचिकर हुए। एक बात का मेरे मन पर इन प्रश्नों ने अवश्य असर डाला। मुझे भास हुआ कि हमारे विद्यार्थियों को किसी बात पर भी विश्वास नहीं है। यह स्थिति केवल लन्दन में है यह मेरा कथन नहीं है, आजकल की पीढ़ी में हर बात पर अविश्वास दृष्टिगोचर होता है, पर लन्दन में शायद अन्य स्थानों से अधिक है। भारतीय विद्यार्थी यहाँ संसार के हर देश से अधिक हैं; उनकी संख्या है लगभग तीन हजार। यह सुनकर मुझे हर्ष हुआ कि अब लन्दन अधिकांश में वे ही विद्यार्थी भारत से आते हैं जिन्हें पोस्ट ग्रेजुएट में अध्ययन करना रहता है। मेरी तो आगे यह राय और है कि भारत से उन्हीं विषयों के विद्यार्थियों को भारत के बाहर जाना चाहिए जिन विषयों की शिक्षा भारत में नहीं दी जा सकती और यदि भारतीय विद्यार्थी विवाह करने के बाद भारत से बाहर जा सकें तो बहुत ही अच्छा है।

पत्र-प्रतिनिधियों में मुझ 'रायटर' के प्रतिनिधि श्री रामनाथन्, पूना के 'केसरी' के प्रतिनिधि श्री ताम्हणकर और 'आज' के प्रतिनिधि श्री ओमप्रकाश आर्य ने आकर मिलने की कृपा की। श्री आर्य तो हम लोगों पर इतना स्नेह-सा करने लगे कि उन्होंने तो हमारे पास कई बार आने का कष्ट उठाया। 'आज' हिन्दी का सबसे पुराना दैनिक है और 'आज' के लिए यह गौरव की बात है कि विदेशों में भी उसका प्रतिनिधि है। डाक्टर कौमुदी ने मुझे एक भोज दिया उसमें अनेक पत्र-प्रतिनिधियों से भी मेरी मुलाकात हुई।

लन्दन की आकाशवाणी के हिन्दी-संचालक श्री पुरुषोत्तम लाल पाहवा ने मेरा एक वक्तव्य रिकार्ड कराया।

इन पत्र-प्रतिनिधियों ने मुझसे जो कुछ पूछकर भारत भेजा, विशेषकर दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध में तथा बी. बी. सी. ने मेरा जो वक्तव्य ब्राडकास्ट किया, सुना, भारत में उसकी काफी चर्चा हुई।

अनुदार दल और मजदूर दल के दफ्तरों में जाकर हमने उनके संगठन को

समझने का खूब प्रयत्न किया। राजनीति में अनुराग रखने वालों को इन दलों के संगठन को अच्छी तरह समझने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। जगमोहनदास ने इस विषय में काफी मेहनत की।

ब्रिटेन की तीन प्रमुख पार्टियां हैं लिबरल पार्टी, कंजरवेटिव पार्टी और लेबर पार्टी। इन दिनों ब्रिटेन में कंजरवेटिव पार्टी की सरकार है। लिबरल पार्टी का युग एक तरह से बीत चुका है। पार्टी का उदार दृष्टिकोण कोरा राजनीतिक सिद्धान्त-वाद नहीं सजीव जीवन-दर्शन है। लिबरल नेताओं का मूल मंत्र यह था कि राज्य मनुष्य के लिए है न कि मनुष्य राज्य के लिए। पार्टी की स्थापना करने का श्रेय जान पिम को दिया जा सकता है। उन्होंने शाही सत्ता को चुनौती दी और स्टुआर्ट शासकों की बजाय संसद् की प्रभुसत्ता की आवाज उठायी। धीरे-धीरे 'व्हिग' शब्द का प्रयोग उन लोगों के लिए होने लगा जो ताज को संसद् से नीचा दर्जा देते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग 'व्हिग' शब्द का प्रयोग परिवर्तन चाहने वालों के लिए होने लगा। टोरी परिवर्तन के विरोधी माने जाते थे। मध्य उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग लिबरल शब्द का प्रयोग होने लगा, और १८६८ में ग्लेडस्टन के नेतृत्व में पहली लिबरल सरकार बनी। हर्बर्ट हेनरी एसक्विथ, डेविड लायड जार्ज, क्लीमेण्ट डेवीज, फ्रेंक बायर्स आदि पार्टी के अन्य प्रमुख व्यक्ति हुए।

लेबर पार्टी ब्रिटेन की यथार्थ में समाजवादी पार्टी है और उसका लक्ष्य ब्रिटेन में समाजवादी व्यवस्था कायम करना है। पार्टी के संविधान के अनुसार पार्टी का उद्देश्य यह है कि श्रमिक वर्ग को उद्योग से होने वाली आय का उचित भाग प्राप्त हो, समाज में वितरण न्यायपूर्ण हो, और उत्पादन के साधन राष्ट्र के पास हों। समाजवाद के जिन चार सिद्धान्तों में पार्टी को आस्था है वे इस प्रकार हैं—सभी को विकास के बराबर अवसर मिले, धन का उचित बंटवारा हो, लोकतन्त्र के द्वारा अपनी आर्थिक स्थिति पर जनता का ही नियन्त्रण हो और राष्ट्र की उत्पादन-शक्ति का जनता के हित में अधिक-से-अधिक उपयोग किया जाय। समाजवाद शब्द का अर्थ एक विशेष जीवन-व्यवस्था के सूचक के रूप में राबर्ट ओवन ने किया था। लेबर पार्टी के विचार में सच्चे लोकतन्त्र का अर्थ है कि संसद् के द्वारा जनता का देश की अर्थ-व्यवस्था पर अधिक से अधिक नियन्त्रण हो। लेबर पार्टी का प्रधान कार्यालय ट्रांस-पोर्ट हाउस लन्दन में है। इमारत की मालिक ट्रांसपोर्ट एण्ड जनरल वर्कर्स यूनियन है, जिससे पार्टी ने किराये पर जगह ले रखी है। पार्टी का प्रधान कार्यालय बहुत बड़ा नहीं है। एक सेक्रेटरी होता है जो प्रति वर्ष पार्टी के सम्मेलन में चुना जाता है। पार्टी के सदस्यों की संख्या पचास लाख से अधिक है। कम्युनिस्ट पार्टी के साथ सम्बन्ध रखने से लेबर पार्टी सदा इन्कार करती रही है। १९४६ में पार्टी के संविधान

में ऐसा संशोधन किया गया कि कम्युनिस्ट पार्टी के साथ किसी प्रकार का सहयोग असम्भव हो गया है। लेबर पार्टी से ८० ट्रेड यूनियन संस्थाएँ सम्बद्ध हैं। पार्टी के प्रत्येक सदस्य को कम से कम ६ शिलिंग वार्षिक शुल्क देना होता है।

श्रम-आन्दोलन के तीनों अंगों लेबर पार्टी, ट्रेड यूनियन कांग्रेस और कोआपरेटिव यूनियन के बीच तालमेल रखने के लिए नेशनल काउंसिल आॅफ़ लेबर की एन. सी. एल. की स्थापना की गयी। कौंसिल में लेबर पार्टी, ट्रेड यूनियन कांग्रेस और कोआपरेटिव यूनियन के आठ सदस्य रहते हैं। लेबर पार्टी का जन्म १९०० में हुआ। रेम्से मैक्डोनल्ड पार्टी के संस्थापकों में थे। लेबर पार्टी के पास धन तो कभी अधिक नहीं रहा, किन्तु आरम्भ में वह अत्यन्त निर्धन थी। पार्टी की स्थापना के बाद सात वर्ष में ही पार्टी के सदस्यों की संख्या दस लाख से ऊपर पहुँच गयी। १९०० में संसद् में लेबर पार्टी के केवल दो सदस्य थे। फिर उनकी संख्या दिनोंदिन बढ़ी—१९०६ में ३०, १९३४ में १५२, १९३५ में १५४, और १९४५ में ३९४। १९२९ में संसद् में लेबर पार्टी के सदस्यों की सबसे अधिक संख्या थी किन्तु १९४५ में लेबर पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो गया था और पहली लेबर सरकार की स्थापना हुई थी। प्रधान मन्त्री श्री क्लीमेण्ट एटली थे। अर्नेस्ट बेविन, हर्बर्ट मौरिसन, सर स्टैफर्ड क्रिप्स और श्री बेवान पार्टी के प्रमुख स्तम्भ थे। पिछले कुछ दिनों से बेवान एक अलग दिशा में सोचने लगे हैं।

कंजरवेटिव पार्टी परम्परानुसार ब्रिटेन की संसद् की दक्षिण पक्ष पार्टी है। बीसवीं शताब्दी में उसने अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों की टोरी पार्टी का स्थान ग्रहण किया है, किन्तु पार्टी को कट्टर अथवा अनुदार मानना भूल है, यद्यपि उसके नाम से इसी बात का बोध होता है और पार्टी के विरोधी भी उस पर यही आरोप लगाते हैं। कंजरवेटिव पार्टी के एक सदस्य के शब्दों में पार्टी कुछ गिने-चुने लोगों के विशेषाधिकार सुरक्षित रखने के लिए नहीं है, बल्कि राष्ट्रीय परम्परा की सर्वोत्तम निधि और गौरव को संचित रखने के लिए है। कंजरवेटिव पार्टी के नेता कई बार सामाजिक सुधारों के अग्रदूत रहे हैं। इसलिए कंजरवेटिव पार्टी का स्वरूप मुख्य रूप से राजनीतिक नहीं है, उसकी पृष्ठभूमि दार्शनिक है और उसका उद्देश्य एक विशिष्ट जीवन व्यवस्था की रक्षा करना है। मसीही धर्म और विश्वास पार्टी के प्रेरणा-स्रोत हैं और वह शासन-व्यवस्था में मानव के व्यक्तित्व को पहला स्थान देते हैं। कंजरवेटिव नेता स्टेनले बाल्डविन कहा करते थे कि मसीही राज्य में व्यक्ति ही सर्वोच्च है।

टोरीवाद का जन्मकाल एलिजाबेथ-युग है। टोरीवाद के सबसे बड़े प्रवर्तक रिचार्ड हुकर थे। चार्ल्स द्वितीय और विलियम तृतीय के शासनकाल में प्रधान मंत्री टामस आसबर्न को टोरी पार्टी का पहला नेता माना जाता है। टोरी एक आइरिश

शब्द है जिसका अर्थ होता था 'कानून तोड़नेवाला', किन्तु बाद में इसका अर्थ बदल गया और उन लोगों के लिए प्रयुक्त होने लगा जो संविधान में किसी भी प्रकार का विरोध करते थे और राजभक्त कहे जाते थे। हार्ले, बोलिंग ब्रोक और नाटिंघम के समय में टोरी पार्टी शिखर पर थी। यद्यपि विलियम पिट (बड़े) बोलिंग ब्रोक से प्रभावित हुए थे और ब्रिटेन की नौशक्ति को सर्व सबल बनाकर व कनेडा को प्राप्त कर उन्होंने भावी टोरी नेताओं का साम्राज्यवादी नीति का मार्ग दिखलाया; फिर भी उन्हें किसी पार्टी विशेष के साथ सम्बद्ध करना उचित नहीं। राजनीतिक दृष्टि से यद्यपि एडवर्ड बर्क चैथम की तरह ही मँजे हुए विग थे पर यथार्थ रूप में वे एक कंजरवेटिव सुधारक थे। लड़खड़ाती हुई टोरी पार्टी का अन्त करके कंजरवेटिव पार्टी की नींव डालना सर राबर्ट पील का काम था, यद्यपि उन्होंने यह शब्द डब्लू. एम. क्रोकर से लिया था, जो संसद् के कम बोलनेवाले सदस्यों में से थे, किन्तु प्रतिभाशाली एवं प्रभावशाली लेख लिखा करते थे। बाद में ३३ वर्ष के संधि-काल के पश्चात् डिजरायली के समय में संसद् में कंजरवेटिव पार्टी का बहुमत हुआ। डिजरायली का कथन था कि हम अपनी संस्थाओं की रक्षा करेंगे, साम्राज्य को संगठित रखेंगे और जनता का रहन-सहन सुधारेंगे। स्मरण रहे कि डिजरायली ने ही मिस्र में ब्रिटेन के प्रभाव की स्थापना की थी। डिजरायली के पश्चात् लार्ड सालिसबरी का युग आया जिसमें उन्होंने 'देश में प्रगति और विदेश मे शांति' की स्थापना की। आधुनिक कंजरवेटिव सिद्धान्तों की नींव डाली जोसेफ चैम्बर्लेन ने। वे साम्राज्य के विभिन्न अंगों को विशेष रियायतें देने के पक्षपाती थे। पहले और दूसरे महायुद्ध के बीच स्टेनले बाल्डविन ने, जो तीन बार प्रधान मंत्री रहे थे, यह नीति स्थिर की कि उद्योग मे पारस्परिक सहयोग न केवल समृद्धि के लिए अनिवार्य है बल्कि संयमित जीवन व्यवस्था के लिए भी आवश्यक है।

कंजरवेटिव पार्टी की नीति सदा ही व्यापारियों मे न्यायपूर्ण होड़ को प्रोत्साहन देने की रही है। उद्योगों के और अधिक राष्ट्रीयकरण को कंजरवेटिव नेता रोक देने का विचार कर रहे हैं। लोहा और इस्पात उद्योग के सम्बन्ध में तो उन्होंने लेबर सरकार द्वारा किये गये राष्ट्रीयकरण को ही समाप्त कर दिया है। डिजरायली की नीति पर चलते हुए सार्वजनिक स्वास्थ्य और समाज-कल्याण की सेवाओं के प्रसार को पार्टी बहुत महत्त्व देती है। इस दिशा मे बहुत अधिक काम दो महायुद्धों के संधिकाल में हुआ, जब कि ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था काफी भारग्रस्त थी।

वर्तमान समय मे पार्टी की नीति है कि साम्राज्य और कामनवैल्थ के देशों के साथ सहयोग करने से शांति और समृद्धि का अधिक से अधिक अवसर मिलेगा। कंजरवेटिव नेताओं का विचार है कि साम्राज्य मे सहयोग न होने से ब्रिटेन में रहन-सहन, सामाजिक सेवाओं और रोजगारी का ऊँचा स्तर रह ही नहीं सकता। इसलिए

अब हमेशा से अधिक निर्यात करने पर जोर दिया जाता है। राष्ट्रीय हितों की वृद्धि, अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता की रक्षा और शांति का समर्थन ये पार्टी के मूल सिद्धान्त हैं।

कई बार सुझाव दिया जाता है कि कंजरवेटिव और लेबर सरकारों की नीतियों में बहुत बड़ा अन्तर नहीं, किन्तु कंजरवेटिव नेताओं का कहना है कि यह धारणा भ्रामक है। व्यक्ति को सर्वाधिक महत्त्व देने के कारण कंजरवेटिव पार्टी के सिद्धान्त मूलतः समाजवादियों के विरुद्ध हैं। राज्य की सार्वभौमिक सत्ता से कंजरवेटिव पक्ष को दुश्मनी है। इसीलिए कंजरवेटिव पार्टी रूसी ढंग के एकाधिकारवादी राज्य और साम्यवादी सिद्धान्तों का इतना कड़ा विरोध करती है। वर्ग-युद्ध और साम्यवाद के विरुद्ध कंजरवेटिव पार्टी मसीही सिद्धान्तों की रक्षा, राजतंत्र, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, सम्पत्ति अधिकार, कामनवेल्थ और ऐसे साम्राज्य का समर्थन करती है जिसमे शांति और सहयोग हो। जीवन की विविधता को बनाये रखना और सबकी भलाई के लिए शासन-व्यवस्था को दृढ़ बनाना ही उसका लक्ष्य है।

कंजरवेटिव पार्टी ने १९५२ का वर्ष बहुमत से आरम्भ किया। मुख्य विरोधी लेबर पार्टी से उसका बहुमत २६ का था। सब पार्टियों से उसका बहुमत १७ का था। कंजरवेटिव पार्टी के चुनाव सम्बन्धी घोषणा-पत्र में कहा गया था कि यदि कंजरवेटिव सरकार बनी तो उन बातों को प्रथम स्थान दिया जायगा जिन्हें पहला स्थान मिलना चाहिए। पार्टी ने यह भी कहा था कि हम देश की आर्थिक दशा सुधारने का प्रयत्न करेंगे। कंजरवेटिव सरकार बन जाने पर घोषणा की गयी कि उसे देश बहुत बिगड़ी हुई स्थिति में मिला है इसलिए कंजरवेटिव सरकार ने आर्थिक दशा सुधारने की ओर सबसे अधिक ध्यान दिया। विदेश-नीति के सम्बन्ध में भी कंजरवेटिव सरकार ने दृढ़ नीति अपनानी आरम्भ की। ईरान में जो कुछ हो चुका था उसकी निन्दा की गयी और मिस्र के प्रति कड़ा रवैया अपनाया गया। उधर विरोधी लेबर पार्टी ने सरकार की कोरिया नीति की कड़ी आलोचना करते हुए कहा कि अमेरिका से दबकर चलने की नीति घातक है।

नाटक हमने लन्दन में तीन देखे। एक श्री एन. सी. हंटर का 'वाटर्स ऑफ़ दि मून' (Waters of the Moon), दूसरा बर्नार्ड शॉ का 'मिलियनेरैस' (Millionairess) और तीसरा शेक्सपियर का 'रोमिओ जूलियट'। नाटकों का एक्टिंग सुन्दर और स्वाभाविक था। लन्दन के इस काल के अच्छे से अच्छे कलाकारों ने इन नाटकों में भाग लिया था। पहला नाटक हमें सबसे अच्छा जान पड़ा। बर्नार्ड शॉ का नाटक हमें बहुत अच्छा न मालूम हुआ। उनके कई नाटक इससे कहीं अच्छे हैं। शेक्सपियर का रोमिओ जूलियट साहित्यिक वर्णनों के सिवा प्रदर्शन में इस समय के योग्य न जान पड़ा। भारत में पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक आज भी सफलतापूर्वक खेले जाते

हैं, फिर इस नाटक को देखकर ऐसी भावना क्यों हुई यह कहना कठिन है। जो कुछ हो, जब जगमोहनदास, घनश्यामदास और मेरा तीनों का ही यह मत हुआ तब इसमें (मत में) तथ्य नहीं है यह कहना कठिन है। एक बात और हुई। पूरा का पूरा नाटक एक ही दृश्य पर खेला गया, इससे भी इसके सौन्दर्य में कमी रही।

१४

ब्रिटेन क्या था और क्या हो गया

संसार के मानचित्र में ब्रिटेन छोटा प्रतीत होता है और सचमुच संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस और चीन आदि महान् देशों की तुलना में ब्रिटेन एक अत्यन्त छोटा देश है, किन्तु वह एक बहुत बड़े साम्राज्य का केन्द्र-बिन्दु रहा और कुछ दूर तक अभी भी है। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल और साम्राज्य में डोमीनियन, उपनिवेश, संरक्षित प्रदेश, ट्रस्टीशिप प्रदेश आदि हैं। किसी समय संसार की जनसंख्या का पाँचवां भाग ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल और साम्राज्य का निवासी था जो समूचे संसार में फैला था। इसीलिए कहावत चली आती थी कि ब्रिटिश साम्राज्य में सूर्य नहीं डूबता था।

इसमें कोई अत्युक्ति नहीं कि एक तरह से ब्रिटिश साम्राज्य का इतिहास पिछली तीन-चार शताब्दियों का इतिहास है। इन शताब्दियों में ब्रिटेन जैसे छोटे द्वीप का प्रभाव संसार के कोने-कोने में फैला और वह सारी दुनियाँ पर छा गया। जीवन का कोई क्षेत्र शेष न रहा, जिसमें किसी न किसी रूप में ब्रिटेन का प्रभाव विद्यमान न हो। दो महायुद्धों की भीषण ज्वाला का सामना करके भी आज ब्रिटेन यदि पहली श्रेणी का नहीं तो भी दूसरी श्रेणी का शक्तिशाली देश है यद्यपि प्रथम युद्ध के बाद उसकी शक्ति का उतना ह्रास नहीं हुआ था जितना कि द्वितीय युद्ध के पश्चात्। विश्व के राजनीतिक क्षेत्र में ब्रिटेन का पहले जितना महत्त्व न रहने के तीन प्रधान कारण हैं—एक तो यह कि ब्रिटेन के पास इतना बड़ा प्रदेश नहीं है जिसमें वह अपनी सैनिक शक्ति को एक स्थान पर संगठित कर सके जैसा कि अमेरिका, रूस और चीन आदि विशाल देश होने के नाते कर सकते हैं; दूसरे हवाई शक्ति का विकास हो जाने के बाद दूर-दूर फैले हुए सामरिक महत्त्व के ठिकानों का अब पहले जितना महत्त्व नहीं रहा; और तीसरे यदि यह सोचा जाय कि ब्रिटिश कामनवैल्थ और साम्राज्य एक संगठित राजनीतिक इकाई के रूप में विकसित हो सकेगा तो वह भी कम सम्भव प्रतीत होता है, क्योंकि देश-देश में राष्ट्रीयता की लहर बल पकड़ती जा रही है।

ब्रिटेन यूरोप के उत्तर-पश्चिमी सिरे पर स्थित है। बीच के समुद्र का न तो विस्तार ही अधिक है और न गहराई ही। डोवर जलडमरूमध्य में तो समुद्र का

विस्तार केवल इक्कीस मील है, इसके अतिरिक्त ब्रिटेन और शेष यूरोप के बीच किसी भी स्थान पर समुद्र ७०० फुट से अधिक गहरा नहीं है ।

भौगोलिक दृष्टि से अलग होते हुए भी जलवायु, वनस्पति और संस्कृति आदि को देखते हुए ब्रिटेन यूरोप का ही अंग है ।

इंगलैंड, वेल्स, स्काटलैंड, उत्तरी आयलैंड, आइल ऑफ़ मान और चैनल आइलैंड को मिलाकर यूनाइटेड किंगडम अथवा संक्षिप्त रूप में यू. के. कहा जाता है। इसका क्षेत्रफल ९४,२७९ वर्ग मील और जनसंख्या ५,००,३३,००० है । देश का अधिकतर भाग पठारी है, किन्तु जंगलों की बहुलता है । खनिज-साधन सम्पन्न होने के कारण उद्योगों के विकास में इस देश को बड़ी सहायता मिली है ।

इतिहास पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी तक ब्रिटेन का कोई महत्त्व नहीं था । १०६६ ईसवी तक ब्रिटेन का इतिहास तो केवल इतना ही है कि वहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग आते रहे । यूरोप में लोग मुख्य रूप में पूर्व से पश्चिम की ओर फैलते रहे । इस तरह ब्रिटेन धीरे-धीरे एंग्ल्स, सैक्सन, जूट्स, डैन्स और नार्मन का प्रवास-स्थान बना । रोम साम्राज्य ने ब्रिटेन को अपना अंग बनाना चाहा और केन्यूट ने ब्रिटेन का स्कैंडिनेविया से सम्पर्क जोड़ना चाहा, पर उत्तरी सागर का विस्तार बहुत अधिक था और यह सम्पर्क स्थायी न हो सका । ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तर काल से सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक अर्थात् १०६६ से १५५० तक के समय में ब्रिटेन का राजनीतिक सगठन हुआ । लन्दन नगर राजनीतिक हलचल का केन्द्र बन गया और इस समय में उसने जो महत्त्व प्राप्त किया वह बहुत दूर तक आज भी कायम है । देश के भीतरी विकास और संगठन का कार्य पूरा हो चुका था और उन दो महत्त्वपूर्ण कार्यों की नींव पड़ चुकी थी जिनके कारण ब्रिटेन का सितारा सारे संसार में चमकने वाला था । ये कार्य थे—उद्योगों की स्थापना और विदेशी व्यापार का सूत्रपात । समुद्र का एक टापू होने के नाते ब्रिटेन में नौ-परिवहन विकास हुआ । इसकी सहायता से ब्रिटेन विदेश-व्यापार में फ्रांस, पुर्तगाल, स्पेन आदि देशों से अच्छी प्रतियोगिता कर सका । सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक ब्रिटेन के विकास का एक चरण पूरा हो चुका था ।

१५५० से १९१४ तक अर्थात् प्रथम महायुद्ध छिड़ने तक ब्रिटेन के विकास का दूसरा चरण पूरा हो जाता है । इस बीच ब्रिटेन ने एक साम्राज्यवादी शक्ति का रूप धारण कर लिया । ब्रिटेन के इस प्रसार-काल की प्रमुख घटनाएँ हैं—अमेरिका की स्वतन्त्रता-प्राप्ति, फरासीसी क्रान्ति तथा नैपोलियन का उत्थान तथा ह्रास और ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति, कैनेडा, आस्ट्रेलिया, न्यजीलैंड, भारत और दक्षिण अफ्रीका में ब्रिटेन का आधिपत्य । इन देशों की सुरक्षा के लिए स्थान-स्थान पर ब्रिटेन ने महत्त्व-

पूर्ण केन्द्र स्थापित किये। जिबराल्टर, माल्टा, पोर्ट सईद, अदन, सिंगापुर, मलाया, हांगकांग आदि ऐसी ही रक्षा की चौकियां हैं।

१९१४ से १९५२ तक के आधुनिक युग को हम ब्रिटेन के इतिहास में तीसरा अध्याय कह सकते हैं। इस बीच दो महायुद्ध हुए, जिन्होंने ब्रिटेन ही क्या सारे संसार की दिशा बदल डाली। इसी बीच रूस, अमेरिका और चीन इन तीन महान् शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ और ब्रिटेन का महत्त्व वह नहीं रहा जो किसी समय था। व्यापक रूप में यह एक संक्रांति-युग है और ब्रिटेन आधुनिक आवश्यकताओं से मेल खाती हुई नयी दिशा की खोज में है।

ब्रिटेन के सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि इस लड़खड़ाती और प्रति-पल परिवर्तनशील दुनियां में वह अपने को सम्हाले रखे तो किस प्रकार। यह समस्या और भी जटिल इसलिए है कि ब्रिटेन को अपनी स्थिति सम्हाले रखने के लिए नया दृष्टिकोण एवं नया मार्ग ऐसे समय चुनना है जब कि आर्थिक दृष्टि से उसकी दशा शोचनीय है।

गत महायुद्ध के बाद ब्रिटेन अपनी बिगड़ी हुई आर्थिक स्थिति अभी तक नहीं सुधार पाया। व्यापार के क्षेत्र में उसे अमेरिका, कैनेडा, लेटिन अमेरिका के कुछ देशों और जापान आदि से होड़ करनी पड़ रही है। व्यापार-सन्तुलन की स्थिति ब्रिटेन के लिए घातक है और आयात में वह निरन्तर कटौती कर रहा है। आम जरूरत की चीजों के वितरण के लिए कड़ी राशन-व्यवस्था है। रहन-सहन का स्तर युद्ध-काल से कुछ अच्छा बनाने का अवसर ही नहीं मिल सका। विदेशी मंडियां ब्रिटिश माल की पहले जितनी खरीदार नहीं रहीं और व्यापार ही ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था का मेरुदण्ड है। चीन के प्रति ब्रिटेन की तुलनात्मक सहिष्णुता का कारण भी सम्भवतः यही है कि ब्रिटेन चीन में अपने व्यापारिक हितों की रक्षा चाहता है। ब्रिटेन और अमेरिका के प्रत्यक्ष थोड़े-बहुत मतभेदों का मूल कारण भी राजनीतिक न होकर आर्थिक ही है।

ब्रिटेन वैधानिक राजतन्त्र है और आधुनिक काल की संसदीय ढंग की लोकतन्त्र सरकार व्यवस्था का जन्मदाता है। शासनाधिकार—एक शासक और संसद् के पास है। ब्रिटेन का शासक अंगूठी के हीरे की तरह केवल चमक-दमक के लिए है। वास्तव में सत्ता जनता में, जनता के द्वारा संसद् में और संसद् के द्वारा मंत्रिमंडल में निहित रहती है। कर्ता-धर्ता प्रधान मन्त्री होता है। ब्रिटेन की संसद् में दो सदन हैं—लार्ड-सभा और लोक-सभा। इन दोनों में लोक-सभा का महत्त्व अधिक है यद्यपि आरम्भ में लार्डसभा ही अधिक महत्त्वपूर्ण थी। ब्रिटेन का संविधान समय के परिवर्तन के साथ-साथ जनता की इच्छाओं और उमंगों के अनुसार बदलता गया है। महिलाएँ भी लोक-सभा की

सदस्य हो सकती हैं, और १९२८ से उनको भी पुरुषों के समान मताधिकार प्राप्त हैं।

यहाँ संक्षेप में यह बताना अनुपयुक्त न होगा कि संसद् अपनी इच्छा किस प्रकार प्रकट करती है।

संसद् मतदान द्वारा अथवा बिना मतदान के सदन की सहमति द्वारा अपनी इच्छा प्रकट करती है। विरोध-पक्ष का उद्देश्य सदन को तत्कालीन सरकार के विचारों की बजाय अपने विचारों के अनुसार मतदान के लिए प्रेरित करना होता है। यदि काफी महत्त्व के प्रश्न पर विरोध-पक्ष अपने इस उद्देश्य में सफल हो जाता है तो सरकार भंग हो जाती है और विरोध-पक्ष से सरकार बनाने को कहा जाता है।

सरकार-पक्ष की हार हो जाने पर विरोध-पक्ष को सरकार बनानी पड़ती है—यह बात बड़े मार्के की है, क्योंकि इससे विरोध-पक्ष की कार्रवाइयों पर एक स्वेच्छा-पूर्ण अनुशासन रहता है। यदि विरोध-पक्ष सरकार के पक्ष के विरुद्ध मनमानी चालें अपनाता है तो उसे फिर इस बात के लिए तैयार रहना होता है कि जब सरकार बनाने की उसकी बारी आये तो ऐसी ही चालों को सहन करे। इसलिए ब्रिटेन की राजनीतिक व्यवस्था में जहाँ प्रमुख पार्टियाँ बारी-बारी से सरकार बनाती हैं, दोनों ही पक्ष ऐसे उपाय काम में नहीं लाते जिनसे बाद में उन्हीं को कठिनाई का सामना करना पड़े।

संसद् का मुख्य काम कानून पास करना होता है जो पहले बिलों के रूप में पेश किये जाते हैं। जब बिल के आरम्भिक भाग पर बहस लम्बी-चौड़ी हो जाती है तो सरकार-पक्ष बहुधा विरोध-पक्ष पर मार्ग में रोड़े अटकाने का आरोप लगाता है। ऐसी स्थिति में मुखबन्दी का उपयोग किया जाता है। इस उपाय द्वारा ऐसी सभी धाराओं पर जिन पर एक निश्चित समय तक वोट न लिये गये हों, एक साथ वोट लिये जाते हैं भले ही उन धाराओं में कुछ भी क्यों न हो। किन्तु सरकार-पक्ष को मुखबन्दी के लिए भी लोकसभा की सहमति प्राप्त करनी होती है। बहुमत होने के कारण (क्योंकि बहुमत के बिना तो सरकार बन ही नहीं सकती) सरकार को यह सहमति मिल ही जाती है। निश्चित समय तक वाद-विवाद समाप्त न होने पर मुखबन्दी लागू की जाती है और अनेक धाराओं पर बहस नहीं होती।

जब सरकार का बहुमत कम होता है तो विरोध-पक्ष सरकार को हराने के अवसर निकालता रहता है। अधिक बहुमत होने पर तो इसकी संभावना ही नहीं रहती। बहुमत कम होने पर सरकारी पार्टी के लिए नेतृत्व की परख होती है।

वैसे तो प्रत्येक मतदान विरोध-पक्ष की दृष्टि से सरकार में विश्वास होने न होने का मतदान होता है क्योंकि संसद् को प्रत्येक मतदान सरकार के प्रस्ताव उचित अथवा अनुचित ठहराने का अवसर मिलता है, किन्तु संसदीय प्रक्रिया में विशिष्ट रूप

से सरकार के प्रति अविश्वास-प्रस्ताव पास करने की व्यवस्था रहती है। इस तरह की हरेक चुनौती सरकार को स्वीकार करनी होती है यद्यपि बहुधा सरकार मिटती नहीं है। अविश्वास-प्रस्ताव की व्यवस्था का एक लाभ यह अवश्य होता है कि शासन-व्यवस्था अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने से डरती है।

अब लीजिए ब्रिटेन के वाणिज्य और उद्योग को। यद्यपि ब्रिटेन के अधिक भाग में खेती होती है, किन्तु कारखानों का उत्पादन, खनिज-पदार्थों को खोदना और व्यापार ही ब्रिटेन के मुख्य जीवन-संचार-साधन हैं। ब्रिटेन का सबसे बहुमूल्य खनिज पदार्थ कोयला है। हिन्दी की 'उल्टे बाँस बरेली को ले जाना' कहावत के वजन पर अंग्रेजी में भी कहावत है 'केरी कोल्स टु दि न्यू कासल'। इसके अतिरिक्त वहाँ सूती, ऊनी, रेशमी, लिनन और नकली रेशमी कपड़ा बड़ी मात्रा मे तैयार होता है। मशीनों और बिजली के सामान का उत्पादन भी बड़े पैमाने पर होता है। चाकू, छुरी और चम्मच आदि के लिए शेफील्ड और लोहे के सामान के लिए बरमिंघम संसार में विख्यात है। बूट और जूते नार्थेम्पटन म अच्छे बनते हैं। ब्रिटेन कोयला और तैयार माल का निर्यात करता है और कपास, ऊन, इमारती लकड़ी, पैट्रोलियम, तेल, खाद्य-पदार्थ, शराब, तम्बाकू आदि का आयात करता है।

यद्यपि धर्म के नाम पर ब्रिटेन में काफी रक्तपात हो चुका है और वहाँ स्थापित चर्च-व्यवस्था भी कायम है, किन्तु धार्मिक स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की कमी नहीं है।

जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है १९४५ के शिक्षा-कानून के अधीन शिक्षा-व्यवस्था को प्रगतिशील ढंग पर पुनर्गठित किया गया है। शिक्षा-मंत्री को शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति स्थित करने का अधिकार प्राप्त है। देश में टेक्नीकल स्कूल, अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण कालेज और कृषि कालेज, पॉलीटेक्नीकल कालेज आदि भी समुचित संख्या मे हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा स्वतन्त्र है और अनिवार्य भी। ग्यारह विश्वविद्यालय हैं जिनके नाम निम्नलिखित हैं—ऑक्सफॉर्ड, कैम्ब्रिज, डरहम, लन्दन, मैंचेस्टर, बरमिंघम, लिवरपूल, लीड्स, शेफील्ड, ब्रिस्टल और रीडिंग। ऑक्सफॉर्ड और कैम्ब्रिज विश्व-विदित हैं। जैसी ख्याति इन दो नगरों की ज्ञान के लिए है वैसी ही सौंदर्य के लिए भी है।

विगत शताब्दियों में ब्रिटेन की आश्चर्यजनक सफलता का कारण उसकी विदेशी-नीति थी। ब्रिटेन ने यह बात अच्छी तरह समझ ली थी कि यूरोप में उसके लिए कोई भविष्य नहीं है इसलिए वह यूरोपीय संघर्षों से बिलकुल अलग रहा जिसके बड़े अच्छे परिणाम निकले और दुनियाँ के कम उन्नत इलाकों में प्रभाव जमाने में ब्रिटेन यूरोप के अन्य सभी देशों से बाजी ले गया। मोटे तौर पर ब्रिटेन की विदेश-

नीति की आधारभूत बातें इस प्रकार हैं—

१. विभिन्न शक्तिशाली देशों के बीच शक्ति सन्तुलन बनाये रखना।

२. हालैंड, बेलजियम, लक्सेमबर्ग आदि यूरोप के निचले देशों की स्वतन्त्रता बनाये रखना। इसका परिणाम यह रहा कि लन्दन प्रदेश को जो कि ब्रिटेन का मर्म स्थल है कोई खतरा उत्पन्न नहीं हुआ।

३. समुद्री शक्ति में सर्वोपरि बने रहना, जिससे ब्रिटेन को व्यापार की पूरी सुविधा रही।

इन सिद्धान्तों पर आधारित ब्रिटेन की विदेश-नीति अत्यन्त सफल सिद्ध हुई। ब्रिटेन का प्रभाव अन्य किसी यूरोपीय देश से कहीं ज्यादा पहले फैल गया। उद्योग और व्यापार के बल पर धीरे-धीरे ब्रिटेन ने एक सबल साम्राज्य की स्थापना कर ली। किन्तु पिछले दो महायुद्धों के कारण दुनियां ने करवट बदली और जागृति की लहर-सी फैल गयी। धीरे-धीरे वृहत् ब्रिटिश साम्राज्य की नींवें भी हिल उठीं। ब्रिटेन के प्रभाव क्षेत्र में भी भूचाल-सा आ गया। ईरान और मिश्र में ब्रिटेन के सम्मान को सबसे बड़ा आघात पहुँचा। स्वेज और अबादान की समस्याओं में काफी समानता है। अबादान से ऐंग्लो-ईरानियन आयल कम्पनी को एक तरह से धक्का देकर निकाल दिया गया। ब्रिटेन कुछ कर भी नहीं सका। किन्तु ब्रिटेन को ५० करोड़ पौण्ड की सम्पत्ति की क्षति से बड़ा आघात पहुँचा है। मिश्र में फिर ५० करोड़ पौण्ड की क्षति के लिए ब्रिटेन तैयार नहीं जान पड़ता। ईरान का यह मत था कि जब तक दक्षिण ईरान के तेल क्षेत्र पर ब्रिटेन का नियन्त्रण रहेगा, युद्ध छिड़ने पर रूस को अपनी सेनाएँ ईरान में बढ़ाने का बहाना रहेगा। मिश्र भी सम्भवतः यही सोचता है कि जब तक मिश्र में ब्रिटेन का अड्डा रहेगा तब तक ही रूस से किसी प्रकार के आक्रमण का भय है। अब जहाँ तक ईरान का सम्बन्ध है ब्रिटेन के हाथ से बागडोर निकल चुकी है। मिश्र के बारे में सौदेबाजी चल रही है और कंजरवेटिव सरकार इस समस्या को दृढ़ता के साथ निबटाने का निश्चय कर चुकी है। सात वर्ष की लम्बी बातचीत और संघर्ष के फलस्वरूप ब्रिटेन और मिश्र का झगड़ा अब उतना बड़ा नहीं रहा। सूडान के सम्बन्ध में तो समझौता हो ही चुका है जिससे आधा झगड़ा समाप्त हो गया है, किन्तु स्वेज नहर प्रदेश की समस्या बनी हुई है। दोनों ही पक्ष यह तो स्वीकार करते हैं कि मध्य पूर्व की रक्षा के लिए पूर्ण रूप से शस्त्र-सज्जित स्वेज नहर प्रदेश का अड्डा आवश्यक है, किन्तु मिश्रियों का कहना है कि नियन्त्रण उनका ही होना चाहिए। वे केवल कुछ समय के लिए थोड़े ब्रिटिश टैक्नीशियन वहाँ रखने को तैयार हैं, जिससे बाद में मिश्री ही उसे पूरी तरह सम्हाल सकें। अंग्रेजों का कथन है कि अड्डे के सुचारु संचालन के लिए कहीं अधिक टैक्नीशियनों का स्थायी रूप से और ब्रिटिश

नियन्त्रण में रखा जाना ही उचित है।

ब्रिटेन के सैनिक दृष्टिकोण से मिश्र का रवैया भले ही अवास्तविक और अव्यवहारिक जान पड़ता हो पर वह अनुचित तो नहीं है। जब काश्मीर-समस्या के सिलसिले में विदेशी सैनिकों के भेजे जाने का प्रश्न उठा था तो प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने उसका कड़ा विरोध किया था, क्योंकि किसी भी स्वतन्त्र देश की जनता और सरकार इस प्रकार के हस्तक्षेप को सहन नहीं कर सकती। भारत की सहानुभूति मिश्र के साथ होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि सब कुछ मानते हुए सबसे बड़ा प्रश्न प्रभु-सत्ता का है और किसी भी देश कीप्रभु-सत्ता का स्थान सर्वोपरि है इसमें तो सन्देह ही नहीं।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अमेरिका और ब्रिटेन एक दूसरे के अत्यन्त निकट सहयोगी हैं। दोनों देशों का यह गठबन्धन रूस की साम्यवादी व्यवस्था और उसके बढ़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव के प्रति दोनों के तीव्र विरोध के कारण है। स्तालिन की मृत्यु के बाद से दोनों देश यह अनुभव करने लगे हैं कि रूस में अब पहले जैसी कट्टरवादिता नहीं रही और संसार की समस्याओं को अब सम्भवतः शान्ति के साथ सुलझाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण हैं। एक दृष्टिकोण यह है कि सभी समस्याओं पर बड़े देशों के सम्मेलन में विचार किया जाय। दूसरा दृष्टिकोण यह है कि समस्याओं को अलग-अलग लेकर उन पर विचार किया जाय। गत वर्षों में ये दोनों ही उपाय काम में लाये जा चुके हैं और इनमें कोई विशेष सफलता नहीं मिली है।

जहाँ ब्रिटेन कोरिया और इण्डोचाइना की स्थिति के सम्बन्ध में अमेरिका का समर्थन करता है वहाँ अमेरिका और ब्रिटेन के बीच भारी मतभेद भी है। और तो क्या यह मतभेद रूस के प्रति दोनों देशों के दृष्टिकोण में भी पाया जाता है। अमेरिका किसी तरह रूस के साथ बातचीत करने तक को तैयार नहीं है, किन्तु ब्रिटेन इस बात पर जोर देता है कि रूस के साथ वार्ता आरम्भ करने का सुअवसर नहीं खोना चाहिए। इसी वर्ष मई में ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री सर विंस्टन चर्चिल ने ब्रिटेन की संसद् में यही मत प्रकट किया था। उन्होंने कहा था कि रूस के साथ बातचीत करने का अच्छे से अच्छा परिणाम यह हो सकता है कि विश्व की समस्याओं को सुलझाने की दिशा में आशा बँध सके और नहीं तो कम से कम इतना तो होगा ही कि हमें रूस को अधिक समीपता से जानने का अवसर मिलेगा। अमेरिका और ब्रिटेन के बीच मतभेद केवल यहीं तक सीमित नहीं है। चीन के प्रति भी ब्रिटेन का रवैया उदार है। चीन की सरकार को ब्रिटेन ने स्वीकार भी कर रखा है और उसके संयुक्त राष्ट्र में शामिल किये जाने के औचित्य को भी ब्रिटेन स्वीकार करता

है। साथ ही ब्रिटेन कोरिया में दक्षिण कोरिया के प्रधान डाक्टर सिगमन री को उतनी शह देने के पक्ष में नहीं है जितनी अमेरिका ने दे रखी है। इन सब मतभेदों के पीछे ब्रिटेन के अपने हित निहित हैं। ब्रिटेन की जनता इस बात को सहन नहीं करती कि ब्रिटेन अमेरिका के पीछे आँखें मूँदकर चल पड़े और अपना स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त कर दे। यद्यपि ब्रिटेन की शक्ति काफी क्षीण हो गयी है फिर भी उसने स्वाभिमान और आत्म-गौरव की भावना को मिटा नहीं दिया है।

आज ब्रिटेन को अपने भविष्य की चिन्ता ने घेर रखा है और उसकी यह चिन्ता स्वाभाविक है। अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति-सन्तुलन में उसका पलड़ा काफी हलका बैठता है। अमेरिका और रूस के शक्तिशाली समुद्री बेड़ों के कारण ब्रिटेन की समुद्र पर एकछत्र सत्ता नहीं रही। हवाई शक्ति के विकास से समुद्री शक्ति का वैसे भी पहले जितना महत्त्व नहीं रहा है। फिर व्यापार में ब्रिटेन को अमेरिका, कैनेडा, जापान आदि देशों का कड़ा मुकाबला करना पड़ रहा है। ब्रिटेन के लिए व्यापार का महत्त्व इसलिए और भी अधिक है कि बिना व्यापार के उसका निर्वाह ही कठिन है। ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था की सबसे बड़ी कमजोरी ही यही है कि उसके जीवन का स्रोत व्यापार है—कच्चे माल और खनिज-पदार्थों के लिए उसे दूसरे देशों का मुख ताकना पड़ता है। अमेरिका, रूस और चीन (और आने वाले युग में भारत) इस कमजोरी से मुक्त है इसलिए इन देशों का मुकाबला ब्रिटेन अधिक समय तक कर सकेगा इसमें सन्देह है। राष्ट्रमण्डल अथवा कामनवैल्थ के ऊपर ब्रिटेन में गत वर्षों में इतना जोर क्यों दिया जाने लगा है उसका रहस्य ब्रिटेन की मूलभूत कमजोरी में छिपा है। ब्रिटेन अपने स्थान और साधनों के अभाव को कामनवैल्थ से पूरा करके अग्रिम देशों में अपना स्थान बनाये रखना चाहता है।

अब रही राष्ट्रमण्डल में भारत की स्थिति सो भारत कामनवैल्थ में एक पूर्ण प्रभुता सम्पन्न गणराज्य के रूप में सम्मिलित है। कामनवैल्थ के अन्य किसी देश का यह दर्जा नहीं, किन्तु ख्याल है कि पाकिस्तान भी सम्भवतः ऐसा ही करेगा और ये दोनों देश उसी हद तक ब्रिटेन के साथ सहयोग करेंगे जिनसे मूल सिद्धान्तों की अवहेलना न होती हो। आपसी हितों के क्षेत्रों में सहयोग तो स्वाभाविक ही है, किन्तु जहाँ दलित लोगों का प्रश्न उठेगा भारत शक्तिशाली के पक्ष का समर्थन न करके न्याय के पक्ष में ही अपनी आवाज उठायेगा।

ब्रिटेन के इन चार शताब्दियों के उत्कर्ष-काल में हमें ब्रिटेन की राजनीति में दो विरोधी बातें दृष्टिगोचर होती हैं—व्यक्तियों को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता और अपने अधीन देशों को अधिक से अधिक काल तक परतन्त्र रखने का यत्न। पहली

बात के दृष्टान्त हैं — (१) ब्रिटेन में इतनी अधिक आबादी रहते हुए भी वहाँ यदि कोई बसना चाहे तो उसके मार्ग में कोई रुकावट नहीं। संसार में शायद ब्रिटेन और भारत ही ऐसे देश हैं जहाँ इमीग्रेशन का कोई बन्धन नहीं है। (२) कितने ऐसे लोगों को ब्रिटेन ने आश्रय दिया जो अपने देश से निर्वासित किये गये। कार्ल मार्क्स कदाचित् इनमें सबसे प्रधान थे। (३) ब्रिटेन के निवासियों को अपने मत व्यक्त करने की भी सदा स्वाधीनता रही। दूसरी बात के दृष्टान्त हैं—अमेरिका, मिश्र, आयर्लैंड भारत आदि देशों को परतन्त्र रखने के नाना प्रकार के प्रयत्न। भारत को जिस प्रकार ब्रिटेन ने स्वाधीन किया वह तो उसकी परम्परा के विरुद्ध एक घटना हुई। जान पड़ता है कि ब्रिटेन ने अपनी इस नीति में अब परिवर्तन किया है अथवा उसे विवश हो यह परिवर्तन करना पड़ा है। जो कुछ हो अपने इस अध्याय के अन्त में मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि आधुनिक युग को ब्रिटेन ने बहुत कुछ दिया है। जिस प्रकार प्राचीन समय में भारत और चीन, मिश्र और अरब देशों एवं यूनान और रोम ने संसार की ज्ञान-वृद्धि की थी उसी तरह आधुनिक संसार को ब्रिटेन का ऋण मानना होगा। अंग्रेज जाति के चरित्र में ऐसी अनेक विशेषताएँ हैं, जिन्होंने ब्रिटेन को यह गौरव प्रदान किया है।

१५

आज का यूरोप

आज यूरोप जर्जर अवस्था में है और दो गुटों में बँटा हुआ है। एक अमेरिका का गुट और दूसरा रूस का गुट।

जो यूरोप आधुनिक युग में साहित्य, कला और विज्ञान का केन्द्र रहा है और जिसकी संस्कृति एक तरह से विश्व-संस्कृति बन गयी थी उसकी आज ऐसी दुर्दशा है जैसी कि इतिहास में कभी नहीं हुई थी। यूरोपीय आर्थिक सहयोग समिति की १९४७ की रिपोर्ट में सोलह देशों के विदेश मंत्रियों ने मत प्रकट किया है कि १९४५ में यूरोप के साधन जितनी हीन दशा में थे उतने उससे पहले कभी नहीं रहे। पहले महायुद्ध ने और बाद में हिटलर की विभीषिका ने यूरोप को तबाह कर डाला। कोयला और इस्पात—ये दो खनिज-पदार्थ पश्चिम यूरोप के कारखानों के उत्पादन का आधार है, किन्तु इनका इस समय सर्वत्र अभाव है। स्थिति का ठीक-ठीक अनुमान इन आँकड़ों से लगाया जा सकता है। १९३७ में जितना इस्पात तैयार होता था १९४६ में केवल उसका ५५ प्रतिशत भाग होता था। इसी तरह इमारती लकड़ी में बीस प्रतिशत से अधिक की कमी हो गयी। यूरोप की नौपरिवहन शक्ति भी ४० प्रतिशत घट गयी। अधिकांश देशों में औद्योगिक उत्पादन पहले से आधा रह गया। यह सब यूरोप को दो महायुद्धों से विरासत में मिला।

प्रेसीडेण्ट विलसन के शब्दों में प्रथम महायुद्ध लोकतन्त्र की रक्षा के लिए लड़ा गया था। युद्ध में लोकतन्त्र देशों की विजय भी हुई और ऐसे युद्ध की पुनरावृत्ति का निवारण करने के लिए लीग ऑफ़ नेशन्स अर्थात् राष्ट्रसंघ की स्थापना की गयी थी। आगे का हाल सभी को मालूम है। पच्चीस वर्ष पश्चात् फासिस्टवादी देशों ने युद्ध का फिर आह्वान किया। एक बार फिर लोकतन्त्र देशों का गठबन्धन हुआ और उसकी पुनः विजय हुई और एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की फिर स्थापना की गयी है जिसका नाम है यूनाइटेड नेशन्स अथवा संयुक्त राष्ट्र। प्रसव-पीड़ा के तुरन्त बाद से ही संयुक्त राष्ट्र में फूट पड़ी हुई है। एक ओर महायुद्ध की काली डरावनी

परछाईं मँडराने लगी है। तीन वर्ष से अधिक समय तक चलने के बाद कोरिया की लड़ाई अभी-अभी शान्त हुई है, परन्तु दुविधा अब भी बनी हुई है। पर इस बार एक अन्तर अवश्य है अब संघर्ष भौतिक हितों का न होकर विचारधाराओं का है। ऐसी स्थिति में क्या किया जाय ? क्या राष्ट्र संसार से विमुख हो अपने अपने तक ही सीमित हो जायँ—एक दूसरे से अलग हो जायँ ? विज्ञान ने दूरी समाप्त कर दी है। दुनियाँ के विभिन्न भाग अब एक दूसरे के इतने समीप आ गये हैं जितना अब से पहले कभी नहीं थे। किन्तु दुर्भाग्य से इस क्रांति के साथ-साथ मानव-जीवन में भ्रातृभाव की उत्पत्ति होकर जो एक नयी व्यवस्था होनी चाहिए थी, वह परिवर्तन न होने का मूल्य दुनियाँ को दो महायुद्धों के रूप में चुकाना पड़ा। लीग ऑफ़ नेशन्स के सम्बन्ध में यह ठीक ही कहा जाता है कि उसके असफल होने का कारण यह था कि वह अधूरी थी। जिस अमेरिका के राष्ट्रपति श्री विलसन ने उसके आरम्भ करने की बात कही थी वह अमेरिका ही उसमें सम्मिलित नहीं हुआ था और अन्त के कुछ वर्षों को छोड़कर रूस भी नहीं। पर संयुक्त राष्ट्र, युनाइटेड नेशन्स, के साथ ऐसा नहीं है। उसमें सभी राष्ट्र सम्मिलित हैं। यह सच है कि जर्मनी, नया चीन और जापान अभी संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नहीं हैं, किन्तु प्रयत्न किया जा रहा है कि उन्हें भी सम्मिलित किया जाय। जब भारत चीन जन राज्य को संयुक्त राष्ट्र में सम्मिलित करने का अनुरोध करता है तो उसका कारण यही है कि जनरल असेम्बली में जिन विषयों पर भी विचार किया जाय उन पर सभी राष्ट्रों के विचार प्राप्त हो सकें। अन्तर्राष्टीय महत्व के निर्णय करने में सबका योग हो और चीन के बिना एशिया की समस्याओं पर विचार हो ही नहीं सकता। आज चीन का प्रतिनिधित्व फारमोसा की सरकार के द्वारा होता है। जिसमें थोड़ी-से-थोड़ी बुद्धि का अंश भी है वह क्या इसे चीन का सच्चा प्रतिनिधित्व मान सकता है ? यूरोप का भविष्य बहुत दूर तक यूनाइटेड नेशन्स के भविष्य पर निर्भर है।

प्रथम महायुद्ध की तुलना में द्वितीय महायुद्ध से न केवल बहुत अधिक क्षति हुई वरन् यूरोप की अर्थ-व्यवस्था चौपट हो गयी। सौभाग्य से यूरोप ने द्वितीय युद्ध के बाद जिस तरह प्रगति की वह भी १६१८ की प्रगति से कहीं अधिक है। फ्रांस और यूरोप के निचले देशों में १९४६ में औद्योगिक उत्पादन युद्ध आरम्भ होने के उत्पादन से केवल दस प्रतिशत कम रह गया था और ब्रिटेन में युद्ध-पूर्व के स्तर से अधिक होने लगा था। किन्तु १९४६-४७ के शीतकाल में यूरोप को फिर एक भारी आघात पहुँचा। १९४७ के आरम्भ में कोयले की भारी कमी होने से, अनाज और आम जरूरत की चीजों के भाव बढ़ जाने से यह स्पष्ट होने लगा कि यदि यूरोप को जीवित रहना है तो उसे अपनी दुर्दशा सुधारने के लिए अवश्य ही कुछ ठोस

उपाय करना चाहिए। यूरोप की स्वर्ण और डालर की रक्षित राशि लगभग समाप्त हो गयी थी और यह भी स्पष्ट हो चला था कि विदेशी सहायता के बिना काम नहीं चलेगा।

उधर यूरोप दो भागों में विभक्त हो चुका था। दो टुकड़े अलग-अलग हो गये थे। एक भाग में सोलह देश थे और एक में आठ। पश्चिमी यूरोप में ये देश सम्मिलित हैं—(१) इंगलैंड, (२) फ्रांस, (३) इटली, (४) स्पेन, (५) पुर्तगाल, (६) स्वीडन, (७) नार्वे, (८) बेलजियम, (९) हालैंड, (१०) लक्सेमबर्ग, (११) स्विटजरलैंड, (१२) एरा, (१३) यूगोस्लाविया, (१४) यूनान, (१५) जर्मनी और (१६) आस्ट्रिया। पूर्वी यूरोप में ये देश हैं—(१) रूस, (२) पोलैंड, (३) रूमानिया, (४) बलगारिया, (५) अलबानिया, (६) हंगरी, (७) फिनलैंड और (८) चैकोस्लोवाकिया। रूस ने अपने प्रभाव-अधीन राज्यों को आपसी निज सन्धियों की सहायता से एकता की लड़ी में पिरोना आरम्भ कर दिया। अन्तिम सन्धि रूस और फिनलैंड के बीच हुई और इस प्रकार सोलह सन्धियों के द्वारा लौह आवरण वाले देश एक सूत्र में बँध गये। हाँ, बाद में रूस के अत्यधिक दबाव के कारण मार्शल टीटो ने अवश्य स्वतन्त्र नीति अपनायी।

इन सन्धियों का उद्देश्य यह था कि यदि जर्मनी या जर्मनी से सम्बद्ध अन्य देश कोई आक्रमण करेंगे तो सब मिल-जुलकर उसका सामना करेंगे और एक दूसरे को सहायता देंगे। यद्यपि ये संधियाँ प्रकट रूप में किसी जर्मन आक्रमण को रोकने के लिए की गयी थीं, किन्तु वास्तव में इनके द्वारा पूर्वी यूरोप के संगठन में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कदम उठाया गया था। श्री मोलोटोव के शब्दों में ये सन्धियाँ उस साम्राज्यवादी कैम्प के विरुद्ध की गयी थीं जहाँ से नयी लड़ाई छेड़ने की आवाज आती है।

कम्युनिस्ट प्रभाव वाले पूर्वी यूरोप के देशों और अमेरिकी प्रभाव वाले पश्चिम यूरोप के देशों के बीच जर्मनी और आस्ट्रिया स्थित हैं। जर्मनी पर चार देशों का नियंत्रण और शासन है।

आस्ट्रिया की सरकार यद्यपि उसकी अपनी है, पर व्यवहार रूप में चार देशों की अधीनता में ही कार्य करती है और अभी तक उसके साथ शान्ति-सन्धि सम्भव नहीं हुई है। जर्मनी और आस्ट्रिया के बीच से पश्चिमी और पूर्वी यूरोप विभाजित होते हैं। राजनीतिक, आर्थिक और सामरिक दृष्टि से पश्चिम यूरोप के देशों की निर्बलता का अनुभव करने के कारण यूरोपीय संघ अथवा अमेरिका संयुक्त राज्य की तरह यूरोप संयुक्त राज्य बनाने की धारणा प्रबल होती जा रही है।

अब से बहुत पहले न्यू इंगलेंड स्टेटस् की स्वतन्त्रता के अवसर पर जार्ज वाशिंगटन ने एक संदेश में कहा था—

"हमने स्वतन्त्रता और संघ का सूत्रपात किया है। यह बीज संसार में सर्वत्र फूले-फलेगा। संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रेरणा पाकर किसी समय यूरोप में भी संयुक्त राज्य की स्थापना होगी।"

जार्ज वाशिंगटन की यह भविष्यवाणी अब पूरी होती दिखायी दे रही है। परिस्थितियाँ इसके अनुकूल हैं। अमेरिका और रूस विश्व की दो महान् शक्तियाँ हैं। ब्रिटेन की स्थिति अब द्वीप की न होकर एक प्रायद्वीप की हो गयी है। यूरोप से अलग न रहकर अब वह यूरोप का ही एक अंग बन गया है। स्वयं पश्चिम यूरोप के देश संगठित होने के लिए उत्सुक हैं। ब्रिटेन की औद्योगिक स्थिति यद्यपि बहुत अधिक कमजोर नहीं है, पर किसी भी तरह डालर संकट उत्पन्न हो इससे वह भी बचना चाहता है। सयुक्त राज्य अमेरिका की एक मुद्रा है, एक राजनीतिक व्यवस्था है और वह अपनी लगभग सभी आवश्यकताएँ आप पूरी कर सकता है। इधर पश्चिम यूरोप विविध भाषाओं, जातियों और आर्थिक रुकावटों के कारण, छिन्न-भिन्न है। उसके औद्योगिक साधनों से लाभ उठाने की किसी केन्द्रीय योजना का अभाव है। फिर भी इस प्रदेश की जनसंख्या २० करोड है, जो कि अमेरिका की जनसंख्या से अधिक है। बहुत से लोगों का विचार है कि यदि पश्चिम यूरोप की एक ही मुद्रा हो, व्यापारिक बाधाएँ न हों तो अमेरिका के ही समान पश्चिम यूरोप भी समृद्ध हो सकता है।

पर इसके विपरीत दूसरा मत भी है जो यह कहता है कि थोड़ा-बहुत लाभ होने पर भी स्थिति में कोई भारी अन्तर होने की सम्भावना नहीं है। इसका कारण यह बताया जाता है कि संयुक्त यूरोप की जनसंख्या अमेरिका से अधिक होने पर भी संयुक्त यूरोप का क्षेत्रफल अमेरिका से कहीं कम होगा। फिर अमेरिका के नैस-र्गिक साधन अभी भी पर्याप्त हैं, जहाँ यूरोप में नये विकास के अब साधन नहीं रहे। यूरोपीय देश काफी समय से इसका अनुभव भी कर रहे थे और इसीलिए पिछली शताब्दी में उन्होंने उपनिवेशों से यह अभाव पूरा करना आरम्भ कर दिया था, किन्तु उपनिवेशों के नवजागरण के साथ साथ यह भी अधिक समय तक सम्भव नहीं होगा। ब्रिटेन को मलाया और कीनिया में जैसी स्थिति का सामना करना पड़ रहा है फ्रांस को वैसी ही स्थिति का सामना ट्यूनीसिया, मोरक्को और इण्डोचाइना में करना पड़ रहा है। उपनिवेशों की जनता अपने अधिकार माँगने लगी है और अपने भाग्य की निर्णायक स्वयं बनना चाहती है। ऐसी दशा में यदि यूरोप संयुक्त राष्ट्र बन भी गया तो भी इसमें सन्देह है कि यूरोप अमेरिका के समान समृद्ध हो सकेगा।

पश्चिम यूरोप की दुर्दशा का अनुमान इससे भी लगाया जा सकता है कि वहाँ सांस्कृतिक घुटन और सड़ांध पैदा हो गयी है। किसी भी सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास के पश्चात् जैसी अवस्था उत्पन्न हो जाती है वैसी ही यूरोप की भी हो गयी है। यूरोप के देश इस स्थिति को भली प्रकार समझते हैं और इसीलिए वे विशेष रूप से चिंतित भी हैं। वे जानते हैं कि संयुक्त यूरोप बनने से लाभ तो होगा, पर उतना नहीं जितने की आवश्यकता है, पर इसके बिना कोई चारा भी नहीं है। अमेरिकी सहायता के सम्बन्ध में भी यही बात लागू है। यूरोप के देश जानते हैं कि अमेरिका उतना परार्थ के लिए सहायता देने को उत्सुक नहीं है जितना स्वार्थ के लिए, क्योंकि यदि भविष्य में लड़ाई होने वाली हो है तो अमेरिका चाहता है कि वह यूरोप में ही निपट जाय और वह स्वयं बचा रहे। फिर भी यूरोपीय देश अनुभव करते हैं कि अमेरिका की सहायता स्वीकार किये बिना भी न सरेगा। यूरोपीय देश बिना अमेरिका की सहायता के इसलिए भी नहीं रह सकते कि बिना उसके वर्तमान समय में उनके लिए अपना अस्तित्व बनाये रखना सम्भव नहीं। वे जानते हैं कि यदि अब महा-युद्ध हुआ तो उसमें यूरोप की सबसे अधिक क्षति होगी; ताश के पत्तों के महल की तरह उसके ध्वस्त होने में अधिक समय नहीं लगेगा, पर वह आगे की बात है और इसलिए वे अमेरिकी सहायता के लिए यह सोचकर तैयार हैं कि हम कम-से-कम जब तक साँस ले सकें, लेते रहें।

इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर सोचें तो हम अनुमान भी नहीं लगा सकते कि आज यूरोप की कितनी दुर्दशा हो गयी है।

संयुक्त यूरोप का चित्र इसीलिए सुन्दर और आकर्षक है और यदि इससे कराहते हुए यूरोप को किसी प्रकार का त्राण मिल सके तो अवश्य ही वांछनीय भी है। इसके मार्ग में भी अवश्य ही कई कठिनाइयाँ आयेंगी, किन्तु बाधाओं को तो सभी कठिन कार्यों में पार करना पड़ता ही है। इस प्रकार पश्चिम यूरोप के बीच निकट राजनीतिक, आर्थिक और सामरिक सहयोग हो सकेगा जो उसकी सुरक्षा में भी सहायक होगा और उसके समृद्ध सुखद जीवन के लिए भी। १९४९ में स्ट्रास-वर्ग में यूरोप के देशों की जो सभा हुई उसे यूरोप की पहली संसद् कहा गया है। यह इतिहास बतायेगा कि उसे यूरोप संयुक्त राज्य की स्थापना की दिशा में पहला कदम माना जाय या नहीं।

१६

वायुयान में जब जान मुट्ठी में आ जाती है

लन्दन से कामनवेल्थ पार्लियामेन्ट कान्फ्रेन्स के प्रतिनिधि एक विशेष (चारटर्ड) प्लेन में ता० २९ अगस्त के प्रातःकाल ९।। बजे रवाना होने वाले थे। भिन्न-भिन्न देशों के प्रतिनिधि लन्दन ता० २८ तक पहुंच चुके थे। भारतीय प्रतिनिधिमंडल के पांच प्रतिनिधियों में दो सदस्य—श्री प्रोफेसर रंगा और मैं—तो लन्दन ता० २० को ही आ गये थे। श्री मावलंकर, श्री अनंतशयनम् आय्यंगार और श्रीमती अनुसूयाबाई काले ता०२८ को प्रातःकाल पहुँचे थे। कामनवेल्थ पार्लियामेन्टरी एसोसियेशन की नियमावली के अनुसार जिन देशों में प्रान्तीय विधान-सभाएँ हैं, उनमें भी पार्लियामेन्टरी एसोसियेशन बन सकते हैं और वे सीधे कामनवेल्थ पार्लियामेन्टरी एसोसियेशन में शामिल हो सकते हैं अतः भारत में बम्बई तथा पश्चिमी बंगाल में ऐसे एसोसियेशन बनकर कामनवैल्थ पार्लियामेन्टरी एसोसियेशन में सम्मिलित हो गये थे। इन दोनों प्रदेशों में बम्बई से बम्बई असेम्बली के अध्यक्ष श्री कुनटे तथा पश्चिमी बंगाल से बंगाल कौंसिल के अध्यक्ष श्री मुकरजी परिषद् के प्रतिनिधि के रूप में अन्य तीन भारतीय प्रतिनिधियों के साथ आये थे। इस प्रकार भारतीय प्रतिनिधिमंडल एक प्रकार से पांच की जगह सात प्रतिनिधियों का हो गया था। इस प्रतिनिधिमंडल के मंत्री के रूप में भारतीय लोक-सभा के मंत्री श्री एम. एन. कौल और उन्हें कार्य में सहायता देने, लोक-सभा के मंत्री-विभाग में ही काम करने वाले, श्री शेखधर आये थे। श्री मावलंकर अपनी धर्मपत्नी को भी लाये थे। इस प्रकार न्यूजीलैंड की परिषद् से दूने भारतीय कैनेडा जा रहे थे।

हमें या तो पौने आठ बजे विक्टोरिया एयर टरमिनल पर या पौने नौ बजे लन्दन के हवाई अड्डे पर पहुंचने का आदेश था। पर श्री रंगा और मैं एक दूसरे के बहुत निकट ठहरे थे अतः भारतीय दूतावास के श्री चौधरी मोटर लेकर हम दोनों को सीधे हवाई अड्डे पर ले जाने के लिए ७।। बजे आने वाले थे।

श्री चौधरी ठीक समय आये। मैं ऐसे अवसरों पर जल्दी जाने की अपनी आदत के कारण ७ बजे ही सामान बांधकर तैयार था। श्री चौधरी और मैं मेरा

सामान लेकर पौने आठ बजे श्री रंगा के यहाँ पहुँचे और हम वहाँ से रवाना होने वाले ही थे कि हमें फोन से सूचना मिली कि इंजन में कुछ खराबी होने के कारण हमारा हवाई जहाज दो घण्टे देर से अर्थात् ६॥ बजे के स्थान पर ११॥ बजे रवाना होगा और हम लोग पौने नौ बजे की जगह अब पौने ग्यारह बजे हवाई अड्डे पर पहुँच सकते हैं। परन्तु चूँकि हमें अब कोई काम न था अतः हमने पुराने समय पर ही हवाई अड्डे पर जा वहीं ठहरने का विचार किया।

हवाई अड्डे पर पहुँच पासपोर्ट, टीकों के सार्टीफिकेट, चुंगी आदि की रस्मी कारंवाइयों से निपट हम ११॥ बजे की प्रतीक्षा करने लगे। मैंने तो इसी पुस्तक को लिखना आरम्भ किया और श्री रंगा ने अखबार पढ़ना।

साढ़े ग्यारह बजे के कुछ मिनट पहले हमें सूचना मिली कि प्लेन का इंजन अभी नहीं सुधर पाया है अतः प्लेन अब १॥ बजे जायगा। अब १॥ बजने की बाट जोहना शुरू हुआ, पर कोई १२॥ बजे ही फिर सूचना मिली कि अभी भी इंजन की खराबी दूर नहीं हुई है अतः अब प्लेन ९ बजे रात को जायगा। हवाई जहाज की रवानगी में देर की जिम्मेवारी कम्पनी की थी अतः उस दिन हमारे लंच और डिनर का भार बी. ओ. ए. सी. ने उठाया और हमें हवाई अड्डे पर ही दोपहर के भोजन करने की प्रार्थना की। हमने भी यह सोचा कि लन्दन लौटकर भी कहीं तो भोजन में समय जायगा ही, वहीं भोजन करने का निश्चय किया और भोजन कर हम शहर को लौटे।

शहर में फिर से इधर-उधर घूम हम लोग भारतीय राजदूत श्री खेर के यहाँ श्री मावलंकर से मिलने गये। श्री मावलंकर यहीं ठहरे हुए थे। श्री मावलंकर, श्रीमती मावलंकर तथा श्री खेर से मिल फिर हम घूमने चले और ७॥ बजे हवाई अड्डे पर पहुँच गये। हवाई अड्डे पर मालूम हुआ कि वायुयान का इंजन दुरुस्त हो गया है और अब वायुयान ९ बजे अवश्य रवाना हो जायगा। पर चूँकि इंजन की खराबी के बाद हवाई जहाज जा रहा था, इसलिए सभी के मन में एक प्रकार की आशंका मौजूद थी। यह आशंका इसलिए और बढ़ गयी थी कि लन्दन से मांट्रियल की उड़ान ३,३७१ मील की थी, जिसमें १७ घंटे लगते थे। इस लम्बी उड़ान में सबसे अधिक उड़ान थी एटलांटिक महासागर पर की, जिसके बीच में कोई छोटा-सा टापू भी न था, जहाँ आवश्यकता ही आ पड़े तो वायुयान उतारा जा सके।

शंकित मनों वाले प्रायः हम सभी थे। कानाफूसी भी आपस में होती थी, पर स्पष्ट कुछ कहना कायरता समझी जायगी, इसलिए कोई कुछ बोलता न था। नौ बजे एरोप्लेन ने लन्दन का हवाई अड्डा छोड़ दिया, पर वायुयान को उड़े आधा घण्टा भी न हुआ होगा कि एक इंजन फिर बन्द हो गया। अब तो यात्रियों की चिन्ता की

कोई सीमा न रही । वायुयान आयरलैंड के एक छोटे-से हवाई अड्डे शैनान (Shannon) पर उतरा। उतरते ही हमें सूचना मिली कि इस एरोड्रोम पर हवाई जहाज दो घण्टे इसलिए ठहरेगा कि मशीन की मरम्मत हो जाय। दिन भर लन्दन में मरम्मत होने के बाद ही वहाँ से एरोप्लेन चला था और चलने के आधे घण्टे बाद ही फिर से पंचायत आरम्भ हो गयी थी। जब दिन भर की लन्दन की मरम्मत भी सफल न हुई थी तब दो घण्टे की आयरलैंड की मरम्मत कहाँ तक सफल होगी, सभी यह सोचने लगे। फिर यहाँ से उड़ते ही तो एटलांटिक महासागर की उड़ान आरम्भ हो जाती है, अतः रात को किसी के भी जाने की इच्छा न थी। थोड़ी ही देर में दूसरी सूचना भी मिल गयी कि प्लेन का इंजन ठीक होने में काफी समय लगेगा अतः दूसरे दिन प्रातःकाल ही जाना हो सकेगा, इसी के साथ ही यह खबर भी मिली कि फोन द्वारा लन्दन से बात कर यह प्रयत्न किया जा रहा है कि दूसरा हवाई जहाज आ जाय। हाँ, रात को सोने का कोई प्रबन्ध न हो सकता था। या तो हवाई जहाज में सोना हो सकता था, या हवाई अड्डे के लांज की कुर्सियों पर। इस हवाई जहाज में ऊपर की ओर सोने के लिये कुछ स्थान भी थे, पर वह बहुत थोड़े से और वे स्त्रियों तथा बूढ़े आदमियों को दिये जाने वाले थे। पर रात को सोने का कष्ट होगा यह जानने पर भी रात को हवाई जहाज में न चलना पड़ेगा वरन् दूसरे हवाई जहाज मँगवाने का भी प्रयत्न हो रहा है, इस खबर से सभी को संतोष हुआ।

मैंने लांज की अपेक्षा वायुयान की अपनी सीट पर ही ऊँघना तय किया और जब मैं प्लेन में अपनी सीट पर बैठा तब किस देश की भूमि पर मैं इस समय था यह स्मरण आते ही जिस ऊँघ के लिए मैं हवाई जहाज पर गया था वह ऊँघ भी भाग गयी।

आयरलैंड एक ऐसा देश है जिसने अपनी आजादी के लिए जितने लम्बे समय तक और जिस प्रकार का प्रयत्न किया, उतने लम्बे समय तक और उस प्रकार का प्रयत्न दुनियाँ के शायद किसी देश ने नहीं किया।

आयरलैंड और ग्रेट ब्रिटेन के बीच समुद्र होने पर भी बारहवीं और चौदहवीं शताब्दी के बीच आयरलैंड पूरी तरह जीत लिया गया था। बिलकुल पश्चिम वाले कुछ भाग को छोड़ बाकी समस्त आयरलैंड में अंग्रेजी भाषी उच्चवर्ग की स्थापना हो गयी थी। शतवर्षीय युद्ध और 'वार ऑफ़ रोजज' के समय में ब्रिटेन अन्य दिशाओं में इतना अधिक उलझ गया था कि आयरलैंड पर नियंत्रण बनाये रखना उसके लिए सम्भव नहीं रह गया था। उधर आइरिश लोग भी इतने अधिक संगठित न थे कि वे एक राज्य की स्थापना कर सकें और स्वाधीनता प्राप्त कर सकें।

बाद के ट्यूडर शासकों ने आयरलैंड पर विजय प्राप्त करने का दूसरा प्रयास

किया। जैसा कि सर्व विदित है बाद के ट्यूडर शासक प्रोटेस्टेंट मतानुयायी थे। उधर आयरलैंड में रिफार्मेशन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था और वे लोग प्रोटेस्टेंट न होकर अब भी कैथोलिक मत में ही श्रद्धा रखते थे। परिणाम यह हुआ कि द्वितीय विजय से वही कड़वाहट फैल गयी जो किसी भी धार्मिक युद्ध से फैल जाती है। इस बार भी अंग्रेज आयरलैंड में बसने के लिये गये। उधर उत्तरी भाग में कुछ स्काच जा बसे। उन्होंने वहाँ पर एक ऐसी सांस्कृतिक अल्प संख्या की नींव डाली जिसने आज तक भी एक समस्या का रूप धारण कर रखा है।

१९२० में आयरलैंड को स्वशासन दिया गया। उसी समय उत्तर के ६ काउंटियों को शेष आयरलैंड से अलग कर ब्रिटेन के अधिक निकट बना लिया गया। १९२२ में इन शेष ६ काउंटियों को छोड़ २६ काउंटियों में डुमीनियन सरकार की स्थापना हुई। ऐरा ग्रेट ब्रिटेन से उसी प्रकार स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है जिस प्रकार कैनेडा अथवा दक्षिण अफ्रीका। उत्तरी आयरलैंड में शासन-सत्ता स्वयं वहाँ के लोगों को प्राप्त है, ब्रिटेन द्वारा गवर्नर-जनरल नियुक्त किया जाता है, सेनेट है और लोक-सभा है। विदेशी मामलों को और कुछ अन्य विषयों को छोड़ बाकी सभी के सम्बन्ध में विधान यही विधानमंडल तैयार करता है।

ऐरा और उत्तर आयरलैंड के बीच सम्बन्ध अच्छे नहीं रहते। ब्रिटेन उत्तर आयरलैंड का समर्थन करता है कि वह अपनी वर्तमान स्थिति बनाये रखे, पर ऐरा चाहता है कि उत्तर आयरलैंड उसका अंग है इसलिए उसे मिल जाना चाहिए। द्वितीय महायुद्ध में उत्तर आयरलैंड ने ब्रिटेन को सहयोग दिया जब कि ऐरा तटस्थ बना रहा। ऐरा स्वतन्त्र गणराज्य है।

आयरलैंड के आजादी के इतिहास से,उसके त्याग से भारत को अपनी स्वतन्त्रता के युद्ध में सदा प्रेरणा मिली है। हम लोग आजादी के युद्ध के समय के अपने भाषणों, अपने लेखों आदि में आयरलैंड के कितने दृष्टान्त दिया करते थे। पं० रविशंकर जी शुक्ल ने तो आयरलैंड के इतिहास पर एक पुस्तक लिखी थी, खेद की बात है कि वह प्रकाशित नहीं हुई।

आयरलैंड एक छोटा-सा देश है, इंगलिस्तान के अत्यन्त समीप। आज वह स्वतन्त्र है, पर स्वतन्त्र आयरलैंड कामनवेल्थ में शामिल नहीं। आयरलैंड का जो भाग कामनवेल्थ में है वह तो वह भाग है जिसने आयरलैंड की स्वतन्त्रता में सदा बाधा डाली। इतना छोटा होने पर भी आयरलैंड क्यों कामनवेल्थ में नहीं है ? उत्तर बहुत ही सरल है। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए आयरलैंड को जो कुछ करना पड़ा है और उसे जिस तरह स्वतन्त्रता मिली है उसके कारण अंग्रेजों के प्रति उसकी भावनाएँ आज भी कटुता से भरी हुई हैं। गतयुद्ध में भी आयरलैंड तटस्थ

रहा, इंगलिस्तान का निकटतम पड़ोसी होने पर भी उसने लड़ाई में कोई भाग नहीं लिया। भारत को भी सन् '४७ में यदि अंग्रेजों ने इतनी उदारता-पूर्वक स्वराज्य न दिया होता, तो स्वतन्त्र होने के बाद भारत कभी कामनवेल्थ में रह सकता था ? और आज भी इस सम्बन्ध में भारतीय नेताओं की कुछ लोग कितनी आलोचना किया करते हैं। आयरलैंड के सम्बन्ध में अनेक बातें सोचते और उसके त्याग के कारण उसे बार-बार नमस्कार करते हुए ऊँघ के स्थान पर मुझे नींद आगयी और बैठे-बैठे ही मैं कोई ३ घण्टे अच्छी तरह सो लिया।

प्रातःकाल मालूम हुआ कि बम्बई से दूसरा हवाई जहाज आना सम्भव नहीं है और ८॥ बजे इसी हवाई जहाज पर चलना होगा। बी. ओ. ए. सी. पर क्रोध तो कई लोगों को बहुत आया, पर किया क्या जा सकता था। देवी-देवताओं को मनाते हुए हम लोग ८॥ बजे उसी प्लेन से रवाना हुए।

कितनी लम्बी उड़ान थी। कितना समय लगनेवाला था। और उड़ान तथा समय की लंबान ऐसे वायुयान पर जाने से कहीं अधिक हो गयी थी, पर किया क्या जाता। यात्रियों में अधिकांश की मानसिक अवस्था अत्यन्त क्षुब्ध थी। किसी तरह एटलांटिक महासागर तो पार करलें यही सब सोच रहे थे। सारा रास्ता अधिकांश यात्रियों ने एरोप्लेन के चारों इंजन देखते-देखते बिताया, कोई इंजन फिर से बंद तो नहीं हो रहा है सबके मन में यही आशंका थी। ऐसे अवसरों पर मानव-मन की क्या अवस्था होती है, इसका हमें आज अनुभव हो गया। एरोप्लेन उड़ा चला जा रहा था। ऊपर आकाश और नीचे अगाध समुद्र था। कई बार बादल मिलते। कुछ देर कुछ न दिखता। जब फिर दिखायी देता सबसे पहले दृष्टि वायुयान के इंजनों पर पड़ती। वायुयान की उड़ान के साथ ही समय भी उड़ा चला जा रहा था पर कितना धीरे वायुयान चलता जान पड़ता और कितने धीरे समय बीतता। एक केवल एक इच्छा सबके मन में थी—किसी तरह एटलांटिक तो पार हो।

एकाएक एक सज्जन बोले—"जिस पूर्व के लोगों में अधिकांश का पुनर्जन्म पर विश्वास है वे मृत्यु से जितना डरते हैं, उतना पश्चिम के लोग भी नहीं, जो मानते हैं कि इसी जन्म में सब कुछ समाप्त हो जाता है।"

क्या यह बात सच्ची थी, क्या सचमुच भारतीय मृत्यु से अन्यों की अपेक्षा अधिक डरते हैं ? बहुत सोचने पर भी मुझे यह ठीक न जान पड़ा। मैं समझता हूँ सच्चे दार्शनिकों को छोड़ मृत्यु से सभी समान रूप से डरते हैं। पुनर्जन्म पर जिनको विश्वास है वे कम इसलिए नहीं डरते कि इस जन्म से सम्बन्ध रखने वाली सब चीजों की स्मृति तो इसी जन्म में समाप्त हो जाती है, और जीवन में स्मृति का स्थान बहुत बड़ा है। कितनी भावनायें, कितने कामों की यह स्मृति प्रेरक रहती हैं। हमें किसी-

न-किसी दिन मरना है, यह हम में से कौन नहीं जानता ? बिना कष्ट की मृत्यु भी सभी चाहते हैं। मरने के समय भी कई कितने साहस से मरते हैं। पर भारतीय मरना चाहते हैं स्वाभाविक ढंग से, अपने घर में, या किसी तीर्थ-स्थल पर, अपने कुटु-म्बियों के बीच। अकाल मृत्यु हम नहीं चाहते और हवाई जहाज इत्यादि के एक्सीडेन्टों में मरना हम अकाल मृत्यु मानते हैं। फिर हवाई जहाज आदि चीजें हमने नहीं निकाली हैं। जिन्होंने यह चीजें ईजाद की हैं उन्हें अनजान में ही इन चीजों से एक प्रकार का ऐसा प्रेम है कि इनके एक्सीडेन्टों की भी उनको इतनी परवाह नहीं रहती जितनी हमें।

जब हमारे हवाई जहाज ने कैनेडा के गैन्डा हवाई अड्डे पर उतरना आरम्भ किया तब यद्यपि हमारी घड़ियों ने ६ बजा दिये थे, पर गैन्डा के अभी ५ ही बजे थे, अतः दिन बड़े होने के कारण अभी भी सन्ध्या का प्रकाश था। फिर उत्तर की ओर आ जाने के कारण दिन और बढ़ गया था। अँधेरा न होने की वजह से हमें जमीन दिखायी दी। जमीन देखकर सब के चेहरे खिल-से गये। इस हवाई अड्डे पर पेंट्रोल आदि लेने हम ४५ मिनिट ठहरने वाले थे। ठीक समय हम रवाना तो हुए पर उड़ने के पहले जमीन पर ऐरोप्लेन थोड़ी ही देर चला होगा कि एक इंजन फिर बंद हो गया और हमें सूचना मिली कि इंजन ठीक करने फिर हमें एक घण्टे और ठहरना होगा।

एटलांटिक पार कर आने के कारण अब हम चिन्तित तो उतने नहीं हुए, पर क्रोध हममें से अनेक को आया। आखिर यह सब क्या हो रहा है ? और इंजन गड़बड़ भी होता है तो जमीन पर ही क्यों ? क्रोध के कारण हम यह भूल गये कि गनीमत थी कि इंजन जमीन पर ही बिगड़ता था आसमान में नहीं। हम यही सोच कर प्लेन से उतरे कि कल के समान आज की रात भी हमें इस हवाई अड्डे पर बितानी होगी, लेकिन ऐसा न हुआ। एक घण्टे के भीतर ही इंजन ठीक हो गया,हम फिर उड़े और अबकी बार बिना किसी घटना के हम मांट्रियल पहुँचे गये। जब हम मांट्रियल पहुँचे तब वहाँ रात के ६ बजे थे, पर वहाँ का समय लन्दन से ५ घण्टे पीछे था अर्थात् भारत के समय से १० घण्टे पीछे। लन्दन से यहाँ तक हम १७ घण्टे उड़ चुके थे।

मांट्रियल पहुँचकर सबने शांति की साँस ली। मालूम हुआ प्लेनों के इंजनों में इस प्रकार की खराबियाँ कई बार हो जाया करती हैं और जब तक यह निश्चित नहीं हो जाता कि कोई भय नहीं है तब तक उड़ान रुकी रहती है। हमारे वायुयान के सम्बन्ध में भी तो यही हुआ था। चाहे हमने चिन्ता कितनी ही क्यों न की हो, पर आखिर २४ घण्टे देर से पहुँचने के सिवा और कौन सी बात हुई थी ? जो कुछ हो, बार-बार इंजन की यह खराबी चिन्ता का विषय तो था ही। हम लोगों में से कई इस निश्चय पर भी पहुंचे कि चार्टर्ड प्लेन से साधारण प्लेनों की यात्रा अधिक सुरक्षित होती है, क्योंकि वे रोज उड़ते हैं जो चार्टर्ड प्लेन नहीं।

१७

कामनवैल्थ पार्लियामेन्टरी परिषद् के पूर्व के आठ दिन
झीलों वाले देश में

उत्तरी अमेरिका के उत्तर का देश कैनेडा के नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु मैंने इसे 'झीलों का देश' नाम दिया है, क्योंकि छोटी-बड़ी जितनी झीलें इस देश में हैं उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। इन झीलों की इस बहुतायत का कारण यह बताया जाता है कि यहाँ जाड़ों में जितना बरफ गिरता है उतनी उत्तरी ध्रुव और उसके अत्यन्त समीप को छोड़कर अन्य कहीं नहीं गिरता। कभी-कभी और कहीं-कहीं तो इस बरफ की मुटाई १५-१५, २०-२०, फुट तक हो जाती है। इस बरफ के गल-कर पानी बनने तथा उसके भूमि के गढों में भरने के कारण अपने आप इतनी अधिक झीलों का निर्माण हो गया है। इन झीलों से अनेक बड़ी-बड़ी नदियाँ निकली हैं जिनमें से कुछ प्रशान्त महासागर और कुछ एटलांटिक महासागर की ओर बह इन समुद्रों में मिली हैं, जो समुद्र कैनेडा के पूर्वी और पश्चिमी भागों को स्पर्श करते हुए लहराया करते हैं। इस देश के उत्तरी भ-भाग में अनेक द्वीप हैं, कैनेडा बहुत बड़ा देश है। सारे देश का क्षेत्रफल ३८,४५,१४४ वर्ग मील है, जो कि समूचे यूरोप के क्षेत्रफल से भी अधिक है। पर्वत-श्रेणियाँ बहुत अधिक और फैली हुई नहीं हैं फिर भी ऊँचे से ऊँचे पर्वत माउन्ट लोगान की उँचाई है १९,८५० फुट। देश की धरती अधिकतर सम है। जंगलों की खूब भरमार है और जंगलों में देवदारू, चीड़, भोजपत्र आदि के वृक्षों की बहुतायत है। चीड़ के वृक्ष तो इतने अधिक हैं कि कहीं-कहीं सैकड़ों मील तक चले जाने पर भी चीड़ विटपों के सिवा अन्य किसी भाँति के दरख्त दृष्टिगोचर ही नहीं होते। वनों में सिंह, व्याघ्रादि हिंसक पशुओं का निवास नहीं है, हिंसक पशुओं में केवल भालू और भेड़िये हैं। अन्य पशु-पक्षी भी कम ही हैं। देश खूब हरा-भरा है। झीलों, नदियों, पर्वतों, वनों और समुद्रों ने सारे देश पर प्राकृतिक सौन्दर्य की वर्षा-सी कर दी है।

कैनेड़ा के इतने बड़े देश होने पर भी यहाँ की आबादी कुल एक करोड़ चालीस लाख है, अर्थात् ग्रेट ब्रिटेन, भारत, पाकिस्तान, चीन, जापान आदि देशों में जहाँ वर्गमील पीछे पाँच सौ से अधिक मनुष्य रहते हैं, वहाँ कैनेडा में केवल चार। इसी

लिए यहाँ प्राकृतिक साधनों का पूरा उपयोग नहीं हो रहा है। जमीन को ही लीजिए। समूचे देश की केवल बारह प्रतिशत जमीन में खेती होती है। यह इलाका लगभग १७,५०,००,००० एकड़ है इसमें से भी विकसित ६,२०,००,००० एकड़ है। शेष भूमि या तो जंगल है या वह पड़ती पड़ी है।

आबादी की कमी के कारण इस देश में बड़े-बड़े नगर नहीं हैं। बड़े से बड़ा शहर मांट्रियल है, जहाँ की आबादी साढ़े बारह लाख से कुछ अधिक है। एक लाख के ऊपर की जनसंख्या के १० नगर हैं। इनके नाम हैं मांट्रियल, टोरेंटो, वेंकूवर, विन्नीपेग, क्यूबेक, हेमिल्टन, ओटवा, एटमोण्टन, विंडसर और कालगरी। ओटवा कैनेडा की राजधानी है। ओटवा की आबादी एक लाख साठ हजार के लगभग है। इन शहरों को छोड़ देश में शेष छोटे-छोटे नगर और कस्बे हैं। जिस प्रकार यहाँ बहुत बड़े शहर नहीं उसी प्रकार बहुत छोटे गाँव भी नहीं। सभी नगर, कस्बे आदि में बिजली तथा सब प्रकार की आधुनिक सुविधायें मौजूद हैं। सभी खूब साफ-सुथरे और अत्यन्त सम्पन्न दिख पड़ते हैं। सारा देश दस प्रान्तों में और दो प्रदेशों में विभाजित है। ये प्रान्त इस प्रकार है—

एटलांटिक सागरवर्ती प्रांत—नोवास्कोशिया, न्यू ब्रुन्सविक, प्रिंस एडवर्ड आइलैंड और न्यू फाउण्डलैंड।

मध्यवर्ती प्रान्त—क्यूबेक और ओन्टारिओ।

प्रेयरी प्रान्त—मनी टोबा, सस्केचवान, और एलबर्टा।

प्रशांत तटवर्ती प्रान्त—ब्रिटिश कोलम्बिया।

उत्तरी प्रदेश—यूकोन और उत्तर-पश्चिमी प्रदेश।

देश प्रजातान्त्रिक शासन से शासित होता है। केन्द्र की धारा-सभा है और दसों प्रान्तों की दस धारा-सभाएँ हैं। केन्द्र और दसों प्रान्तों में मंत्रिमंडल हैं, जो धारासभाओं के प्रति जिम्मेदार हैं। परन्तु हर प्रान्त में प्रजातान्त्रिक शासन होते हुए भी हर प्रान्त का शासन-विधान एक-सा नहीं है। केन्द्र और प्रान्त में अनेक राजनैतिक दल हैं और विशेषता यह है कि सब प्रान्तों में एक-से नहीं। कैनेडा की प्रमुख राजनीतिक पार्टियाँ दो हैं—(१) लिबरल पार्टी और (२) कंजरवेटिव पार्टी जो अब अपने को प्रगतिशील कंजरवेटिव पार्टी कहती है। संयुक्त कैनेडा की स्थापना के बाद से शासन की बागडोर इन्हीं दो पार्टियों के हाथ में रहती आयी है। अब दो नयी पार्टियों की स्थापना की गयी है। इन पार्टियों के नाम है कोआपरेटिव कामनवेल्थ फेडरेशन (सी. सी. एफ.) और सोशल क्रेडिट पार्टी। गत चुनाव में लिबरल पार्टी की विजय हुई है। इस पार्टी के नेता श्री लुई सेंट लांरा प्रधान मंत्री हैं।

लोगों के व्यवसाय भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, पर अधिकतर लोग खेती और

पशु-पालन से गुजर-बसर करते हैं। यद्यपि भूमि के वितरण के सम्बन्ध में इस प्रकार का कोई कानून नहीं है कि कोई व्यक्ति इससे अधिक भूमि नहीं रख सकता, क्योंकि भूमि की कोई कमी नहीं है, पर अधिकांश फार्म सौ से डेढ़ सौ एकड़ के हैं, कोई-कोई तीन सौ से चार सौ एकड़ तक के भी हैं, परन्तु ऐसे कम। इन फार्मों में हर प्रकार की खेती होती है। अनाज, साग-भाजी आदि सब उत्पन्न होते हैं, इसके सिवा घास होता है। गायें रहती हैं। कहीं-कहीं गायों के साथ भेड़ें, सुअर, मुर्गी और स्त्रियों के फरकोट जिनके चमड़े से बनते हैं वे लोमड़ियां और 'मिंक' नामक जानवर। सुना कि आजकल एक लोमड़ी का चमड़ा करीब पन्द्रह डालर याने लगभग सत्तर रुपये और एक मिंक का चमड़ा करीब पच्चीस डालर याने लगभग १२० रुपये में बिकता है, पर करीब दो वर्ष पहले इन चमड़ों की कीमत बहुत अधिक थी। नीले रंग की मिंक का चमड़ा तो साढ़े तीन सौ डालर तक बिकता था। मिंक का यह चमड़ा कोई एक फुट लम्बा और ६ इंच चौड़ा होता है और एक कोट में इस तरह के लगभग साठ चमड़े लगते हैं। ये लोमड़ियाँ और मिंक हर फरवरी और अप्रैल के बीच बच्चे देते हैं। लोमड़ियों के तीन से चार और मिंक के दो से तीन बच्चे होते हैं। मिंक का बच्चा तीन इंच लम्बा पैदा होता है और इतनी जल्दी बढ़ता है कि दिसम्बर तक ८-९ महीनों में ही एक फुट लम्बा हो जाता है। पैदाइश के लिए अच्छे जानवरों को छोड़ शेष लोमड़ियों और मिंकों का उनके जन्म के केवल ८, ९ महीने बाद दिसम्बर में वध कर दिया जाता है, क्योंकि इनके चमड़ों के बाल उसी समय सर्वोत्तम स्थिति में रहते हैं। बच्चे देने के योग्य जानवर चार-पाँच वर्ष तक जीवित रखे जाते हैं। सुना गया कि स्त्रियों के फरकोट अधिकतर इन्हीं दो जानवरों के चमड़े के बनते हैं, पर आजकल इनका बाजार टैक्सों आदि के कारण बहुत मद्दा हो गया है और कई जगह के फार्मों में हत्याकांड का यह काम बंद किया जा रहा है। कैनेडा के सिवा नार्वे-स्वीडन आदि अन्य बहुत ठंडे देशों में भी लोमड़ियों और मिंकों के ये फार्म हैं। गायें चार जाति की हैं—हालस्टीन, जरसी, ग्वाइन्सी और एशीयर। गायों का दूध फी दिन औसत से दस से पन्द्रह सेर है, पर किसी-किसी का सवा मन तक। गायें दिन में तीन बार दुही जाती हैं। भेड़ें यहाँ से न्यूजीलैंड में कहीं अधिक हैं। गायें भी यहाँ से न्यूजीलैंड में बहुत ज्यादा हैं। साथ ही दोनों जानवर कैनेडा से न्यूजीलैंड के कहीं अच्छे हैं। इसका कारण यह है कि न्यूजीलैंड के निवासियों का प्रधान धंधा जो डेरी और भेड़ों के फार्म हैं, वह कैनेडा के लोगों का नहीं। यद्यपि यहाँ के लोगों का भी प्रधान रोजगार ये फार्म ही हैं, पर इन फार्मों में खेती भी होती है याने कैनेडा के ये फार्म मिक्सड फार्म, अर्थात् मिले-जुले फार्म कहलाते हैं, न्यूजीलैंड के मुख्यतः डेरी और भेड़ों के फार्म हैं। इसीलिए न्यूजीलैंड के
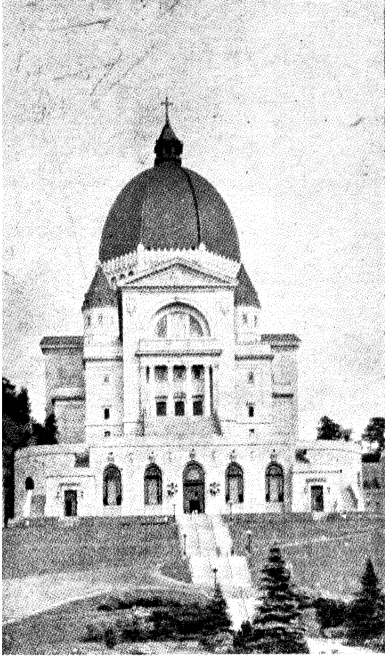
७३. सेण्ट जोसेफ, मांट्रियल
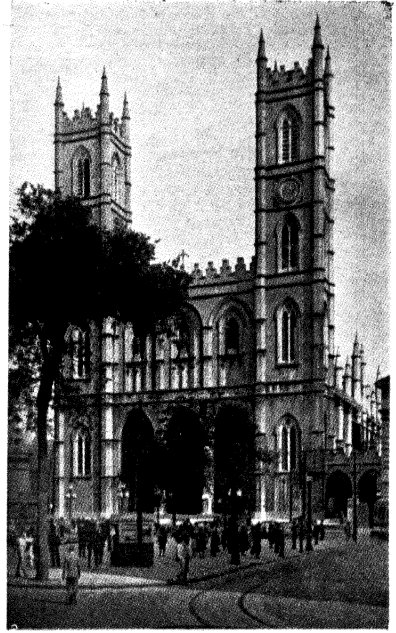
७४. नोट्रेडम गिरजाघर, मांट्रियल
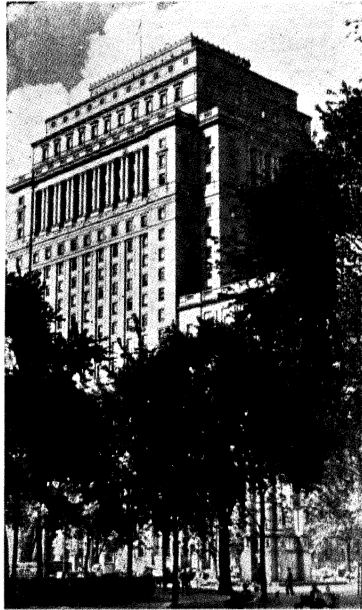
७५. सनलाइफ बिल्डिंग, मांट्रियल
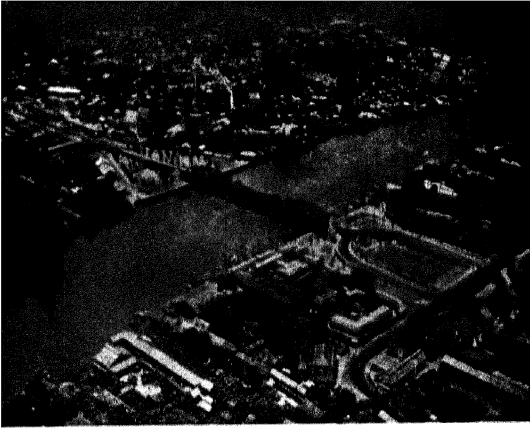
७६. मांट्रियल का विहंगम दृश्य
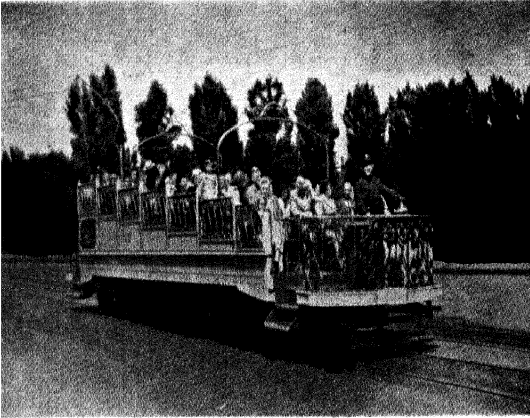
७७. वेवर झील, मांट्रियल
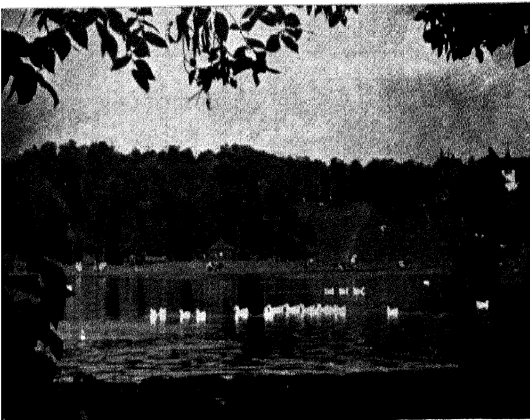
७८. आब्ज़रवेशन कार, मांट्रियल

इस प्रकार के फार्मों में जैसी घने घास की हरीतिमा की शोभा दिखायी पड़ती है, वैसी यहाँ की नहीं। और न्यूजीलैंडवाले तो खाने का अनाज तक बाहर से मँगाते हैं। कैनेडा में वहाँ के लोगों के ही खाने के योग्य अनाज पैदा नहीं होता पर बाहर भेजने के लिए भी होता है। न्यूजीलैंड के समान कैनेडा में ढोरों की औलाद कृत्रिम गर्भाधान से नहीं होती। यहाँ इसका प्रचार ही नहीं है।

इन फार्मों के सिवा कैनेडा में अन्य उद्योगों का भी काफी विकास हुआ है। कैनेडा वालों ने अपने देश में सबसे पहले बिजली पैदा की है, जो सारे उद्योगों की जड़ है। इसके बाद एल्यूमीनियम, अखबारी कागज, इस्पात इत्यादि के कारखाने हैं। सौभाग्य से कैनेडा में तेल भी मिल गया है और लोहा भी।

संसार का ८० प्रतिशत अखबारी कागज कैनेडा में तैयार होता है। संसार में सबसे अधिक निकिल, रेडियम, प्लेटिनम और एसबेस्टस कैनेडा में पाया जाता है। लकड़ी का गूदा तैयार करने और एल्यूमीनियम व सोना निकालने में उसका दूसरा नम्बर है।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व संसार के व्यापारी देशों में कैनेडा का चौथा नम्बर था। १९४५ में कैनेडा ने तीसरा स्थान प्राप्त कर लिया।

कैनेडा इस समय संसार का सबसे सम्पन्न देश है। चाहे अभी देश में और व्यक्तियों के पास अमेरिका के सदृश धन जमा न हुआ हो, पर यहाँ की डालर का मूल्य अमेरिका की डालर से भी थोड़ा अधिक है।

देश के निवासियों का जीवन-धोरण बहुत ऊँचा है। बहुत अधिक धनवान भी यहाँ नहीं हैं, गरीब तो कोई है ही नहीं। मध्यम श्रेणी के लोग ही अधिक हैं। औसत आमदनी है लगभग नौ सौ डालर याने पैंतालीस सौ रुपया माहवारी। इसीलिए यहाँ की पार्लियामेन्ट के सदस्यों का वेतन दुनियाँ के हर देश की धारासभा के सदस्यों से अधिक है। वे दस हजार डालर याने पचास हजार रुपया प्रति वर्ष पाते हैं। मंत्रियों का वेतन सदस्यों के वेतन से केवल दुगुना है। कैनेडा में सभी सम्पन्न हैं, शिक्षित हैं, सुखी हैं, सन्तुष्ट हैं, इसीलिए निरोगी और दीर्घजीवी भी हैं। नये देशों की नयी आबादी के सदृश जोशीले हैं, परन्तु न्यूजीलैंड के निवासियों के सदृश बहुत सीधे और बहुत उदार नहीं। इसीलिए जहाँ न्यूजीलैंड के श्वेतों ने वहाँ के आदिवासी माओरियों को समान अधिकार दे, उन्हें अपने में मिला लिया है, वहाँ कैनेडा के श्वेतों ने आस्ट्रेलिया के श्वेतों के समान वहाँ के मूल निवासियों का संहार किया है और इन मूल निवासियों की संख्या इतने बड़े कैनेडा देश में केवल सवा लाख रह गयी है।

कैनेडा की सरकार ने भी वहाँ की ऊँची-नीची श्रेणियों को समान स्थल पर लाने तथा जनता की सुरक्षा के कानूनों की वैसी व्यवस्था नहीं की जैसी न्यूजीलैंड में है, जैसे न्यूजीलैंड में किसी को भी पाँच कमरे से अधिक का मकान बनाने का अधिकार नहीं, वहाँ घरेलू नौकरों की संख्या ही समाप्त हो गयी है, ऐसा यहाँ नहीं है। वृद्धों की, गर्भिणी स्त्रियों की सुरक्षा आदि के जैसे कानून न्यूजीलैंड में है वैसे भी यहाँ नहीं।

कैनेडा का इतिहास एक हजार वर्ष प्राचीन है। उस समय नार्वेवासी श्री लीफएरिकसन ग्रीनलैंड जाते हुए तूफान के थपेड़ों में आकर कैनेडा-तट पर पहुँच गये थे। इसके बाद की तीन शताब्दियों में नार्वे के विभिन्न उपनिवेशों की स्थापना हुई। चौदहवीं शताब्दी में ये सभी बस्तियाँ लुप्त हो गयीं और कैनेडा की केवल गाथाएँ सुनायी पड़ने लगीं।

कोलम्बस ने जब पश्चिमी संसार का पता लगाया तो १४९७ में ब्रिस्टल से चलकर श्री जौन कैबट न्यू फाउण्डलैंड पहुँचे और उन्होंने उसे ब्रिटिश प्रदेश घोषित किया। जब उन्होंने यह सूचना दी कि वहाँ के समुद्र-तट में बहुत अधिक मछलियाँ पायी जाती है तो यूरोप के कई देशों के बेड़े कैनेडा की ओर आकृष्ट हुए। बाद में फर व्यापार पर आधिपत्य करने के लिए यूरोपी शक्तियों में होड़ चल पड़ी।

१६०४ में वहाँ फ्रांसीसियों ने पहली बस्तियाँ स्थापित करनी आरम्भ कीं। १६०८ में क्यूबेक नगर की स्थापना की गयी। फिर अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में संघर्ष होने लगा। कैनेडा में फ्रांसीसी शासन १७६० तक चला। उधर १६७० मे अंग्रेजों ने हडसन बे कम्पनी की स्थापना की थी। फर के व्यापार से वैमनस्य बढ़ता ही जाता था। अठारहवीं शताब्दी में यूरोप मे फ्रांस और ब्रिटेन के संघर्ष का प्रभाव उत्तर अमेरिका पर भी पड़ा। १७५९ मे अब्राहम के मैदान की लड़ाई के पश्चात् क्यूबेक अंग्रेजों को प्राप्त हो गया। इस युद्ध में संसार-प्रसिद्ध योद्धा मोंटकाम और वुल्फ दोनों ही बहादुरी के साथ लड़ते हुए मारे गये थे।

आज इन दोनों नायकों का एक ही स्मारक इस बात का स्मरण दिलाता है कि किस प्रकार कैनेडा में दोनों ही परम्पराओं का सम्मिश्रण हुआ है। १७५३ में लड़ाई समाप्त हो गयी। ग्यारह वर्ष पश्चात् १७७४ में क्यूबेक कानून पास किया गया जिसके अनुसार फ्रांस का न्याय-विधान लागू रहने दिया गया और इंगलैंड का दण्ड-विधान स्वीकार कर लिया गया। भूमि की फ्रांसीसी अर्ध-सामंतवादी व्यवस्था को भी मान्यता दे दी गयी।

इसके अगले वर्ष अमेरिका की स्वाधीनता-क्रान्ति आरम्भ हुई जिससे दक्षिण के तेरह ब्रिटिश उपनिवेशों में संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थापना हुई। कैनेडा को भी

इस क्रान्ति में सम्मिलित होने का आश्वासन दिया गया, लेकिन कैनेडा ब्रिटेन के अधीन ही बना रहा। उधर अमेरिका की स्वतन्त्रता के बाद लगभग चालीस हजार ऐसे व्यक्ति, जो ब्रिटेन के वफादार थे, वहाँ से आकर कैनेडा में बस गये और इस प्रकार कैनेडा में अंग्रेजों का प्रभाव अधिक दृढ़ हो गया। धीरे-धीरे कैनेडा में जन-प्रतिनिधि सरकार की स्थापना की माँग होने लगी। १७६१ के वैधानिक कानून के अधीन कैनेडा उत्तर और दक्षिण इन दो भागों में विभक्त हो गया और विधान-सभाएँ बन गयीं। १८१५ और १८५० के बीच ब्रिटेन से और बहुत से लोग आकर कैनेडा में बसे। १८३६ में 'डरहम' रिपोर्ट में यह सिफारिश की गयी थी कि उत्तर और दक्षिण कैनेडा को मिलाकर वहाँ पर पूर्ण सत्ता प्राप्त जन-प्रतिनिधि सरकार की स्थापना की जाय। १८४० के यूनियन कानून के द्वारा उत्तर और दक्षिण कैनेडा की वैधानिक एकता का प्रयत्न किया गया, किन्तु कैनेडा संघ की स्थापना की दिशा में पहला कदम १८६४ में उठाया गया। आज कैनेडा में संसदीय ढंग की संघ सरकार है।

हम ने इस झीलों वाले देश में प्रवेश किया यहाँ के सबसे बड़े नगर मांट्रियल से। मांट्रियल हम ता २९ अगस्त की रात को पहुँचने वाले थे, पर जैसे पहले कहा है हमारे प्लेन में गड़बड़ी होने के कारण हम पहुँचे ता० ३० की रात को २४ घण्टे देर से। ता० ३० को प्रातःकाल ११ बजे मांट्रियल के मेयर की ओर से हम कामनवैल्थ पार्लियामेन्टरी परिषद् के प्रतिनिधियों का स्वागत रखा गया था, पर हमारे न पहुँच सकने के कारण वह मंसूख कर दिया गया। मांट्रियल पहुँचते ही हम वहाँ के 'विण्डसर' होटल में ठहराये गये। हर प्रतिनिधि को एक-एक कमरा मिला, चाहे उसमें एक पलँग का स्थान हो अथवा दो का। होटल बड़ा शानदार और स्वच्छ था। आराम की व्यवस्था में किसी प्रकार की कमी न थी। फिर कैनेडा की कामनवैल्थ पार्लियामेन्टरी एसोसियेशन की शाखा ने हमारे स्वागत और आराम का जो प्रबन्ध किया था वह अत्यन्त सराहनीय था और यह प्रबन्ध जो मांट्रियल से आरम्भ हुआ, वह कैनेडा छोड़ने तक एक-सा चलता रहा। इसी प्रकार के सुन्दर प्रबन्ध का अनुभव मैं तथा अन्य कुछ प्रतिनिधि न्यूजीलेंड की परिषद् के समय भी कर चुके थे और यह कह सकना कठिन था कि दोनों में से किस स्थान का इन्तजाम अच्छा था, मैं तो समझता हूँ कि दोनों जगह का एक-सा ही था।

दूसरे दिन प्रातःकाल ११ बजे से हमारी घुमाई शुरू हुई जो ता० ७ सितम्बर को मध्याह्न में ऑटवा पहुँचने तक कहीं बसों में, कहीं ट्रेन में और कहीं मोटरों पर बराबर चलती रही।

ता० ३१ को हमने बसों में कोई ८० मील का चक्कर लगाया। इस प्रथम

दिन की घुमाई से ही हमें कैनेडा देश के सौन्दर्य का पता लग गया। विंडसर होटल से रवाना हो पहले तो हम कुछ देर मांट्रियल शहर में घूमे। सर्वथा आधुनिक नया शहर। विशाल मकान, चौड़ी सड़कें। यहां के जिन दर्शनीय स्थानों को हमने देखा वे निम्नलिखित थे—

स्टेट जोज़ेफ का स्मारक—यह इमारत अत्यन्त भव्य है और अभी भी पूरी नहीं बन पायी है। यहां सेंट जोजेफ की कब्र भी बनी हुई है और यह उन उद्देश्यों की भी प्रतीक है जो सेंट जोजेफ के सम्मुख थे (चित्र नं० ७३)।

नात्रे दाम—यह मांट्रियल का मुख्य गिरजाघर है। मूल गिरजाघर १६५६ में बना था उसके बाद १६७२ में बढ़ाया गया। वर्तमान गिरजाघर का पूर्ण रूप १८२५ में बना। इसमें बारह हजार व्यक्ति प्रर्थना कर सकते हैं। इसमें एक घण्टा इतना बड़ा है कि उसका वजन २४,७८० पौण्ड है। गिरजे का भीतरी भाग नक्काशीदार लकड़ी से सजा हुआ है (चित्र नं० ७४)।

सेंट जैम्स गिरजाघर—यह रोम के सेंट पीटर गिरजाघर के नमूने पर बना हुआ है पर आकार में उसका आधा है। इसका निर्माण १८७० में आरम्भ हुआ था और यह सोलह वर्ष में पूरा हुआ था।

मांट्रियल शहर का चक्कर लगा हमारी बसें कैनेडा के हरे-भरे पार्वत्य प्रदेश में घूमते हुए चैण्टस्लर होटल पहुँचीं। पर्वत-श्रेणी की तराई में सुन्दर झील के किनारे एक अत्यन्त रमणीय स्थान पर यह होटल बना है। दोपहर का भोजन यहाँ कर तीसरे पहर हम वापस मांट्रियल लौटे और कोई ६ बजे सन्ध्या को मांट्रियल के विण्डसर स्टेशन से रेल द्वारा क्यूबेक शहर को रवाना हुए। रेल पातों की चौड़ाई मुझे भारतीय रेलों से कुछ कम जान पड़ी। रेल में दिन को यात्रा करने के डब्बे थे। अच्छी ट्रेन थी। पर ट्रेन में कोई खास बात न थी। सन्ध्या का हमारा भोजन रेल में हुआ और क्यूबेक हम लगभग १० बजे रात को पहुँचे। यहां हम मांट्रियल के विण्डसर होटल के सदृश ही चैंट्यूफ्राण्टेनेक होटल में ठहराये गये।

ता० १ सितम्बर को हम बसों पर कोई ३०० मील घूमे। आज हमने क्यूबेक नगर देखा और शिमशा नदी का बिजली उत्पन्न करने का कारखाना तथा अरविदा की संसार की सबसे बड़ी एल्यूमीनियम की फैक्टरी में से एक फैक्टरी। यात्रियों के लिए कैनेडा में क्यूबेक अपना एक विशेष स्थान रखता है। नवीन संसार की बजाय यहाँ कुछ प्राचीनता की झलक दिखाती है। क्यूबेक पुल जो नगर से कुछ ही मील दूर सेंट लारेंस पर बना है संसार में अपने ढंग का सबसे बड़ा पुल है।

उत्तर-पूर्व और पश्चिम दिशा में क्यूबेक नगर लारेंटियन पर्वतमाला से घिरा हुआ है। आमोद-प्रमोद के इच्छुक और प्रकृति के उपासक निरन्तर इस पार्वत्य प्रदेश

की ओर आकर्षित होते रहते हैं।

हमारा आज दोपहर का भोजन एल्यूमीनियम कारखाने के संचालकों ने दिया था। रात को हम फिर क्यूबेक लौट आये।

ता० २ को प्रातःकाल ६ बजे क्यूबेक के प्रान्तीय पार्लियामेन्ट हाउस में हमारा वहाँ के प्रधान मन्त्री और धारा-सभा के अध्यक्ष की ओर से स्वागत था। आज हम सब भारतीय प्रतिनिधि अपनी राष्ट्रीय पोशाक में इस स्वागत में गये। कुछ भाषण हुए, कुछ खाना-पीना। ३ बजे क्यूबेक प्रान्त के गवर्नर के यहाँ हमारा स्वागत हुआ। और इसके बाद हम सब प्रतिनिधियों की दो टुकड़ियाँ बना दी गयीं, एक गयी हैली-फैक्स नामक नगर को और दूसरी चारलोटी टाउन को। भारतीयों में से श्री मावलंकर श्रीमती मावलंकर, श्री रंगा, श्री मुकरजी, श्री कौल और श्री शेखधर हैलीफैक्स की टुकड़ी में गये और श्री अनन्तशयनम् अय्यंगार, श्रीमती काले, श्री कुण्टे और मैं चारलोटी टाउन की टुकड़ी में। हम लोग रवाना हुए ५।।। बजे की ट्रेन से और हैलीफैक्स वाले इसके कुछ देर बाद।

आज हम कैनेडा की रात की ट्रेन से चले थे और इस ट्रेन में रात को सोने वाले डब्बे सचमुच दर्शनीय थे। इन डब्बों में से जिस डब्बे में मुझे जगह दी गयी थी वह जिस कारीगरी से बनाया गया था वह तो हर जगह की रेलों के लिए अनुकरणीय है। सुना है कि यह संसार की रेलों का सबसे नये ढंग का डब्बा था। डब्बे की लम्बाई थी कोई ८० फुट और इतने से डब्बे में २४ मुसाफिरों के हरेक के लिए अलग-अलग कमरे बने थे। कमरों की दो कतारें थीं और बीच में २ फुट चौड़ा रास्ता। एक-एक कमरा था सिर्फ ४ फुट ६ इंच लम्बा और ३ फुट ६ इंच चौड़ा। इतने से कमरे में बैठने और सोने दोनों का प्रबन्ध था। सोने का प्रबन्ध तो बड़े विचित्र तरीके से किया गया था। आमने-सामने के दो कमरे कुछ नीचे और उसके बाद के दो कमरे कुछ ऊँचे; इस प्रकार १२-१२ कमरों की एक-एक पंक्ति में ६-६ कमरे कुछ निचाई और ६-६ कमरे कुछ उँचाई पर थे। कमरों में सोने के लिए जो पलंग थे वे मय बिस्तर के, जिसमें गद्दा, तकिये, ओढ़ने की चादर, कंबल सब कुछ था, कमरों की निचाई तथा उँचाई के बीच की जो पोल थी उसमें रहते, सोने के समय नीचे के कमरों में वे खिच आते बैठने की सीट के ऊपर तक और उँचाई के कमरों में ऊपर से खिचते बैठने की सीट पर, तब पोल के भीतर पैर पसारने के लिए स्थान हो जाता। बहुत प्रयत्न करने पर भी इस सोने के प्रबन्ध का जो वर्णन मैंने किया है उससे भी इस प्रबन्ध का ठीक समझ सकना कठिन होगा। वह तो जैसा मैंने ऊपर लिखा है, एक विचित्र ही प्रबन्ध था। उसकी तस्वीर मिली नहीं और वह उतारी भी जाती तो भी ठीक न उतरती। ब्योरे में उसका शायद नक्शा ही बन

सकता है। सोने और बैठने के इस प्रबन्ध के सिवा नित्य की आवश्यकता की कोई ऐसी चीज न थी जो उस ४ फुट ६ इंच लम्बे और ३ फुट ६ इंच चौड़े कमरे में न हो। कमोड उसमें था। जूते रखने का बॉक्स उसमें था। हाथ-मुँह धोने का बर्तन उसमें था। पीने के ठण्डे पानी का अलग प्रबन्ध और हाथ-मुँह धोने के ठण्डे और गरम पानी का अलग। इसके सिवा बिजली के सेफ्टीरेजर का प्लग, पंखा, एअर-कंडीशन करने का स्विच, रद्दी फेंकने का खाँचा, रद्दी ब्लेड फेंकने का घर, दो आइने, कपड़े टाँगने की खूँटियाँ, तेज रोशनी, रात की मद्दी रोशनी, नौकर बुलाने की घंटी एश-ट्रे सभी कुछ तो था। कमरे की अचल सम्पत्ति के सिवा पानी पीने के सैलोलाइट के गिलास, कमोड का कागज, माचिस की डिब्बी, चार तौलिये, साबुन, स्त्री किये हुए कपड़े टाँगने के हेंगर, यह सब चल सम्पत्ति भी थी। रेल के इस नवीनतम डब्बे का नाम डूप्लेक्स रूमेट है।

इस सिलसिले में कैनेडा की रेलों का भी कुछ हाल लिखना अनुपयुक्त न होगा।

कैनेडा में दो मुख्य रेलें हैं—एक 'कैनेडियन नैशनल' और दूसरी 'कैनेडियन पैसफिक'। पहली सरकारी है और दूसरी कम्पनी की। भारत की जी. आई. पी. और बी. बी. एण्ड सी. आई. के सदृश कई जगह दोनों लाइनें भी है। कैनेडा की रेलों में दो क्लास है—एक फर्स्ट क्लास और दूसरी कोच क्लास। दोनों क्लासों में बैठने की जगह मिलती है, सोने के लिए अलग जगह लेकर उसका किराया पृथक् रूप से देना पड़ता है। कोच क्लास को टूरिस्ट क्लास भी कहते हैं। दोनों दरजों के किराये में कोई बहुत अन्तर नहीं है।

कैनेडा की रेलवे लाइनों की लम्बाई ५७,६६७ मील है। इससे अधिक लम्बी रेलवे लाइनें अमेरिका और रूस केवल इन दो ही देशों में हैं जिनकी जनसंख्या कैनेडा की जनसंख्या से कहीं अधिक है।

कैनेडा में रेलवे लाइनें बिछाने पर बहुत अधिक खर्च आया, किन्तु उनके बन जाने से अब दूर-दूर के प्रदेशों का सामान आ-जा सकता है। इन रेलों के भाड़े की दर दुनियाँ के कितने ही देशों की दरों से कम है।

ता० ३ की शाम को हम क्यूबेक से रवाना हुए थे। ता० ४ के तीसरे पहर ४ बजे हम बोरडन पहुँचे। बोरडन से चारलोटी टाउन जाने के लिए हमें समुद्र का ६ मील का मार्ग पार करना पड़ता था। यह हिस्सा एक नाव पार करती है, जिसमें इंगलिश-चैनल के सदृश पूरी ट्रेन के डब्बे लद जाते हैं। इस नाव में १६ मालगाड़ी के डब्बे, ८ सवारीगाड़ी की बोगियाँ, ६० मोटरें और ६५० मुसाफिर एक साथ समुद्र के एक पार से दूसरे पार पर उतारे जाते हैं। जाड़े के दिनों में समुद्र के इस

हिस्से में बरफ बहुत रहता है। यह नाव बरफ को तोड़ते हुए भी चलती है और कहा जाता है कि बरफ को तोड़ते हुए चलने वाली दुनियाँ की यह सबसे बड़ी नाव है। इतना बोझा ढोने और बरफ को तोड़ने वाली शक्तिशाली नाव को 'शिप' जहाज की संज्ञा न देकर 'फेअरी' नाव की संज्ञा में ही रखा गया है। इंगलिश चैनल की ट्रेन नाव द्वारा किस प्रकार उतरती है यह देखने की मेरी बड़ी इच्छा थी, पर पैरिस से लन्दन वायुयान से जाने के कारण मैं उसे न देख सका था। यहाँ उसे देख लिया। और जब उसे मैं देख रहा था तब मुझे याद आयी हिन्दी की एक कहावत—'कभी नाव गाड़ी पर और कभी गाड़ी नाव पर'। यहाँ तो पूरी रेलगाड़ी ही नाव पर लद-कर जा रही थी। रेल से उतर हम लोग इस नाव के ऊपरी डैक पर पहुँचे। बैठने का सुन्दर कमरा, रेस्टराँ, दूकानें आदि सभी उस नाव पर थीं। आज एक और दृश्य दर्शनीय था। नाव के चारों ओर समुद्री पक्षी जिन्हें अंग्रेजी में 'सी गल्स' कहते हैं उड़ रहे थे। ये झुण्ड में थे। कभी इनका झुण्ड का झुण्ड उतरकर पानी में बैठ जाता और कभी नाव पर मँडराने लगता। इनमें सफेद और भूरे दोनों रंग के पक्षी थे। जब ये नाव पर मँडराते तब कई तो अपने दोनों पंख फैलाकर बिना पंखों को हिलाये-डुलाये या फटफटाये हवा में स्थिर खड़े-से रहते जैसे कोई बड़ा अच्छा तैराक बिना हाथ-पैर हिलाये कभी-कभी पानी पर स्थिर लेटा रह जाता है। हवा में इन समुद्री पक्षियों की पंख फैलाकर स्थिर अवस्था देखने योग्य थी।

लगभग ६ बजे पूरे चौबीस घण्टे की रेल की यात्रा कर हम चारलोटी टाउन स्टेशन पर पहुँचे। यद्यपि हम २४ घण्टे यात्रा कर चुके थे, पर हमें कोई खास थकावट न मालूम हो रही थी। इसका कारण रेल में यात्रा के सारे सुभीते, भोजनों की अवस्था आदि था। रेल के डब्बे ऐसे बन्द बने हुए थे कि डब्बे के भीतर न धूल जाती थी और न कोयला। पर इस प्रकार के डब्बे का प्रबन्ध कैनेडा के सदृश ठन्डे देश में ही सम्भव है, भारत के सदृश गरम देश में नहीं। भारत में तो एअर कण्डीशन डब्बों में ही यह इन्तजाम हो सकता है।

चारलोटी टाउन स्टेशन पर उस प्रान्त के प्रधान मंत्री तथा अन्य मंत्रियों ने हम लोगों का स्वागत किया और हम लोग चारलोटी टाउन होटल में ठहराये गये।

दूसरे दिन प्रिंस एडवर्ड आइलैंड तथा वहाँ की कुछ चीजें हमें दिखायी गयीं। प्रिंस एडवर्ड आइलैंड कैनेडा का उद्यान द्वीप माना जाता है।

सबसे पहले हम यहाँ के प्रान्तीय पार्लियामेन्ट भवन को गये जहाँ यहाँ के प्रधान मंत्री ने हमारा स्वागत किया। यद्यपि पार्लियामेन्ट भवन में कोई खास बात न थी परन्तु इसका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत बड़ा था। सन् १८६४ की पहली सितम्बर को इसी भवन के एक आलय में कैनेडा के अनेक प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने जमा होकर

वर्तमान संयुक्त कैनेडा को जन्म दिया था।

१८६४ में नोवास्कोशिया, प्रिंस एडवर्ड आइलैंड और न्यू ब्रिसंविक की सरकारों ने चारलोटी टाउन में एक सभा बुलायी। उत्तर और दक्षिण कैनेडा जो यूनियन कानून के अधीन पहले ही संयुक्त हो सके थे उनसे सम्मेलन में कैनेडा-संघ की स्थापना के बारे में अपने विचार बताने को कहा गया था। इस सम्मेलन में यह निर्णय किया गया कि जो कनफेडरेशन बनाया जायगा वह ब्रिटेन के ढंग का होगा। उसकी एक लोक-सभा होगी और एक सेनिट।

अन्त में १८६७ में न्यू ब्रिसंविक, नोवास्कोशिया, ओंटारियो ने मिलकर एक संघ बना लिया। धीरे-धीरे कैनेडा का बड़ी तेजी से विस्तार होने लगा। १८७० में मन्टोओवा और १६०५ में ससकेचवान और एलवटी उसमें सम्मिलित हो गये। १६४६ में न्यूफाउंडलेंड कैनेडा का दसवाँ प्रान्त बन गया।

कैनेडा के कनफेडरेशन बन जाने के बाद उसका विकास भी तेजी से होने लगा। कैनेडा के पहले प्रधान मंत्री सर जॉन मैकडोनाल थे। विश्व-व्यापी गत दोनों युद्धों में कैनेडा ने ब्रिटेन और मित्रराष्ट्रों का साथ दिया और एक शानदार ढंग से।

पार्लियामेन्ट हाउस से हम यहाँ के प्रधान मंत्री का फार्म देखने चले। प्रधान मंत्री स्वयं हमारे साथ गये। उन्होंने सारा फार्म खुद हमें दिखाया। यह फार्म मुख्यतः डेरी-फार्म है। करीब ३५० एकड़ रकबा है और कुल जमीन में घास तथा गायों के खाने की जई, जव इत्यादि वस्तुएँ पैदा होती हैं। फार्म में ८० गायें हैं सब-की-सब हालस्टीन नस्ल की। गायें और सांड दर्शनीय हैं। बड़े-बड़े थनों वाली शरीर में भरी-पूरी गायों के मैं तो दर्शन ही करता रह गया। यहाँ की एक गाय को दुनियाँ की सर्वश्रेष्ठ गाय मानकर प्रमाण-पत्र दिया गया था। यह गाय प्रत्येक दिन ६ गैलन याने ६० पाउण्ड दूध देती है। जिस वर्ष इसे दुनियाँ की सर्वश्रेष्ठ गाय होने का प्रमाण-पत्र मिला था उस साल वर्ष भर में इसने पच्चीस हजार गैलन दूध दिया था। गायों के अतिरिक्त इस फार्म में मुर्गी, लोमड़ी और मिंक के फार्म भी हैं, पर मुख्यतः यह है डेरी फार्म। जब मैंने स्वयं प्रधान मंत्री से यह पूछा कि इस फार्म में आपकी कितनी पूंजी लगी है तब उन्होंने सकुचते-सकुचते बताया कि कैनेडा के दो लाख डालर याने करीब दस लाख रुपया और इसके बाद जब मैंने पूछा कि इस फार्म की आमदनी क्या है तब उन्होंने कहा कि आमदनी काफी अच्छी है। पर वे आमदनी लेते नहीं हैं, इसी फार्म में लगाते जाते हैं, जो बैंक में रुपया रखने से कहीं अच्छा है। फार्म की आमदनी मुख्यतः दूध, मक्खन और जानवरों की बिक्री से है। कुछ आय मुर्गियों के तथा लोमड़ियों और मिंकों के फार्मों से भी हो जाती है।

यहाँ के प्रधान मंत्री मुझे बड़े भले आदमी जान पड़े। उनका नाम है श्री

जे. वाल्टर जोन्स । अवस्था है ७४ वर्ष की, पर देखने में ६० से भी कम के जान पड़ते हैं। सन् '४५ से ये ही इस प्रान्त के प्रधान मंत्री चले आते हैं। सुना कि यह सारे प्रान्त में बड़े लोकप्रिय हैं।

इस फार्म से हमने होटल में लौट दोपहर का भोजन किया जो प्रिंस एडवर्ड द्वीप की सरकार के द्वारा दिया गया था।

दो बजे हम सरकारी फार्म देखने गये, जो अन्य फार्मों से मिलता-जुलता ही था।

सन्ध्या को यहाँ के चीफ जस्टिस श्री कैम्बिल और उनकी पत्नी ने अपने ग्रीष्म-निवास में हमें पार्टी दी थी। यह ग्रीष्म-निवास सचमुच ही बड़े सुन्दर स्थान पर और बड़ी सुन्दरता से बनाया गया है। स्थल था हरी-भरी पहाड़ियों से घिरा हुआ, जिसके सामने नदी बह रही थी। निवास बना है छोटे-छोटे अनगढ़ पत्थरों को जोड़कर तथा चीड़ की लकड़ी काम में लेकर। इस पहाड़ी बीहड़ से स्थल पर यह अनगढ़ पत्थरों और चीड़ की लकड़ी का निवास उस सारे दृश्य का प्रतिनिधित्व-सा करता जान पड़ता है। यहाँ हम में से कुछ प्रतिनिधि नदी में तैरे भी।

रात को भोजन 'स्टेन होम बीच इन' नामक होटल में प्रिंस एडवर्ड आइलैंड की धारा-सभा के सदस्यों द्वारा दिया गया, जिसके बाद हम लोग होटल लौटे।

ता० ५ को प्रातःकाल ७ बजे की रेल से हमें सेंट जान नगर को रवाना होना था। अतः ४ बजे से ही लोगों ने उठकर तैयार होना आरम्भ किया और ठीक समय हम लोग चारलोटी टाउन से रवाना हो गये। प्रिंस एडवर्ड द्वीप से लौटते हुए आज हमने फिर समुद्र को उसी प्रकार नाव में पार किया जिस प्रकार प्रिंस एडवर्ड आइलैंड जाते हुए किया था। लगभग १० बजे हम केपटार मेंटायून पहुँचे और वहाँ से बस पर बैठ सैकबिली का आकाशवाणी-केन्द्र देखा, जो कैनेडा की आकाशवाणी का सबसे बड़ा शार्टवेव केन्द्र है और जहाँ से अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका आदि देशों को १४ भाषाओं में ब्राडकास्ट किया जाता है। भारत के स्वतन्त्र होने के बाद अब हिन्दी में भी यहाँ से ब्राडकास्ट करने की बात सोची जा रही है। देखें, यह विचार कब तक कार्य रूप में परिणत होता है। इस विचार को जितना अधिक प्रोत्साहन दिया जा सकता था उतना मैंने देने का प्रयत्न किया।

दोपहर का भोजन मार्शलैंड्स इन में वहाँ के व्यापारी संघ द्वारा दिया गया, जिसमें श्री अनन्तशयनम् अय्यंगार का एक छोटा-सा विद्वत्तापूर्ण सुन्दर भाषण हुआ।

भोजन के बाद बस से ही हम माकटन स्टेशन पर पहुँचे और करीब ४॥ बजे वहाँ से रवाना हो ६॥। बजे सेंट जान नगर पहुँच गये। यहाँ ठहरे एडमिरल

बीटी होटल में। कुछ देर बाद हैलीफैक्स गयी हुई हमारी टुकड़ी भी यहाँ पहुँच गयी। रात को इसी होटल में सेंट जान नगर के मेयर द्वारा हमें भोज दिया गया।

हमारी जो टुकड़ी हैलीफैक्स गयी थी वह सेंट जॉन से ता० ५ की ही रात को, रात के भोजन के बाद, फ्रंडरिक्शन नामक नगर को चली गयी, पर हमारी टुकड़ी रात को सेंट जॉन नगर में ही ठहरी। रात को हम नगर घूमने निकले। कैनेडा के अन्य नगरों के समान ही यह नगर था। कोई नयी बात यहाँ नहीं थी। आबादी थी ४४,६०३।

दूसरे दिन प्रातःकाल हम भी सेंट जॉन से फ्रंडरिक्शन के लिए बसों में रवाना हुए। सेंट जॉन से फ्रंडरिक्शन लगभग ८० मील था। पूरे रास्ते के दोनों ओर हरा-भरा कैनेडा का भूभाग देखने को मिला, जैसा हम अब तक देखते आ रहे थे।

दोपहर को १२ बजे हम फ्रंडरिक्शन पहुँचे और वहाँ के लार्ड बेवर ब्रुक होटल में ठहरे जहाँ हमारी हैलीफैक्स वाली टुकड़ी पहले से ही ठहरी हुई थी। हमारे पहुँचते ही प्रतिनिधियों की दोनों टुकड़ियाँ मिलकर यहाँ के प्रान्तीय पार्लियामेन्टरी भवन को गयीं, जहाँ इस प्रान्त के प्रधान मंत्री और पार्लियामेन्ट अध्यक्ष ने हमारा स्वागत किया। पार्लियामेन्ट का भवन एकदम मामूली था और उसका कोई प्रभाव मन पर न पड़ता था।

पार्लियामेन्ट भवन से यहाँ का एक प्रसिद्ध गिरजाघर देख हम यहाँ का सरकारी फार्म देखने गये जहाँ हमारे दोपहर के भोजन की पिकनिक लंच के रूप में व्यवस्था थी। मांसाहारी भोजन के सम्बन्ध में तो मैं कुछ नहीं जानता, पर शाकाहारी भोजन में आज मक्के के भुट्टे एक विशेष वस्तु थी। खूब भरे हुए पीले दानों के मोटे-मोटे उबले भुट्टे, कितने मुलायम थे। उबालने के बाद मक्खन लगाकर उनकी मुलामियत और बढ़ायी गयी थी। इस प्रकार के मक्के के भुट्टे सन् १९३८ में मैंने दक्षिण अफ्रीका के एक भोज में खाये थे, इसके बाद कभी नहीं। मांसाहारी और शाकाहारी दोनों ने ये भुट्टे खूब रुचि से पेट भरकर खाये। आज का यह वनभोजन सचमुच ही अनेक दृष्टियों से अपनी एक विशेषता रखता था।

यहाँ हमें कैनेडा की खेती के सम्बन्ध में कुछ बातें मालूम हुईं। यहाँ गेहूँ का ऐसा बीज निकाला गया है जिसमें गेरुआ नहीं लगता। गेहूँ के साथ ही आलू भी यहाँ बहुत होते हैं और आलू का भी ऐसा बीज निकालने का प्रयत्न हो रहा है जिसमें कोई बीमारी न लगे। कैनेडा की आलू की उपज संसार में सबसे अधिक होती है। बरफ के कारण साल में यहाँ आलू की एक ही फसल होती है। फी एकड़ २४००० से ३६००० पाउण्ड आलू निकलता है। इस फार्म का बगीचा भी बड़ा सुन्दर है। कैनेडा

में यह ऋतु ऋतुराज थी, अतः फूले हुए फूलों की सारे उद्यान में भरमार थी। दो नये पौधे यहाँ देखने को मिले जो अब तक कहीं न देखे थे। एक की थी बागड़। इसकी पत्तियाँ चीड़ के वृक्षों की पत्तियों के समान थीं, पर खूब घनी और उन पत्तियों में बड़ी तेज सुगन्ध थी। दूसरा पौधा था एक ऊँचा पूरा वृक्ष, जिसमें छोटी-छोटी मकोह के सदृश पर एक दम सुर्ख फूलों के अगणित झुक्के लगे हुए थे। इन लाल झुक्कों की संख्या वृक्ष की हरी पत्तियों से भी अधिक थी। मुझे इस फार्म में जगमोहनदास का स्मरण आया। यदि वे साथ होते तो इस फार्म के सम्बन्ध में न जाने कितनी बातें नोट करते और अपने कैमरा के रंगीन फिल्म में यहाँ की विकसित कुसुमों से भरी क्यारियों और तरुवरों की न जाने कितनी तस्वीरें उतारते।

फार्म से हम लोगों में से कुछ तो वापस होटल चले गये और कुछ यहाँ का विश्वविद्यालय देखने गये जो कैनेडा का सबसे पुराना विश्वविद्यालय है। आजकल छुट्टियों के कारण यह विश्वविद्यालय बन्द था इसलिए हम इसकी इमारतें भर देख सके, जिनमें कोई खास बात न थी।

विश्वविद्यालय से हम यहाँ की कृषि-प्रदर्शनी देखने चले, जो आजकल यहाँ हो रही थी। इस प्रदर्शनी में प्रदर्शन की वस्तुएँ तो कम थीं पर मनोरंजन की अधिक। प्रदर्शनी क्या यह एक तरह का मेला था, जहाँ हमें नये कैनेडा की नयी मानव-जाति का उत्साह पूर्ण और अल्हड-सा जीवन देखने को मिला। प्रदर्शनी की वस्तुओं में नाना प्रकार के शाक-भाजी, फल-फूल आदि थे। सब वस्तुएँ हमारे देश के ही सदृश, कोई इनमें नयी चीज हमें न दिखी। कुछ हाथ की कारीगरी की वस्तुएं थीं, सबकी सब नितान्त साधारण। खेती की मशीनरी सबसे अधिक थी, पर यह मशीनरी भी हम अपने देश में कहीं-न-कहीं देख चुके थे। मनोरंजन की वस्तुओं में अधिकतर भाँति-भाँति के झूले थे, जैसे प्रायः कार्निवाल में होते हैं। पूरी प्रदर्शनी में हमें नयी चीज केवल एक दिखी, वह थी एक नट का तमाशा। इस खेल को देखने के लिए बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठा थी, इस प्रान्त के लैफ्टिनेंट गवर्नर भी आये हुए थे। तमाशे का आरंभ महिलाओं और पुरुषों के एक समूह द्वारा बजाते हुए वाद्यों से हुआ। चूंकि गान न था, जिसे हम न समझ सकते थे, और रागनियाँ वाद्यों द्वारा निकल रहीं थीं, इसलिए आज का यह वाद्य हमें बड़ा सुहावना लगा। इसके बाद नट का प्रदर्शन हुआ। यह नट नीले चमकदार रेशमी कपड़े पहने हुए था। उस पोशाक में उसका खुला हुआ गुलाबी चेहरा और हाथ-पैर बड़े सुन्दर दिखते थे। नट एक झूलती हुई नसेनी से कोई चालीस फुट ऊँचे एक ऐसे स्थल पर चढ़ा, जिसमें कोई दो इंच मोटे और लगभग चालीस फुट लंबे एक नल के बीचों बीच कोई पाँच-छः फुट चौड़ा तार का एक घेरा बना हुआ था। इस घेरे में सात-आठ फुट का कोई एक इंच नल का एक डंडा, तार की एक कुरसी, एक बाइसिकिल, किरमिच के

घुटने तक ऊँचे जूते और चेहरे को ढाँकने का एक कनटोपा टँगे हुए थे। यह नट पहले तो उस चालीस फुट लम्बे नल पर इधर से उधर और उधर से इधर चला, फिर उस नल के डंडे को ले कई क्रियाएँ कीं। इसके बाद उस कुरसी पर बैठ इधर से उधर और उधर से इधर बैठे-बैठे घूमा। फिर बाइसिकिल हैंडिल छोड़ आगे और पीछे कई प्रकार से चलायी। अन्त में उसने उस कनटोप से चेहरा मय आँखों के अच्छी तरह ढाँक, उन किरमिच के जूतों को पहन उस नल के डंडे को हाथ में ले कई तमाशे बताये। इस प्रदर्शन का अन्त उस नट ने किया उस नल पर सिर के बल खड़े होकर। इस सारे खेल में कई बार वह गिरते-गिरते बचा। यदि वह चालीस फुट ऊपर से गिरता तो बेचनेवाला न था, क्योंकि नीचे न तो कोई जाली ही लगी थी और न रेत अथवा पानी ही भरा था। किसी तरह का डर उसे छू न गया था। पर उसका खेल देखने वाले दर्शक भयभीत थे। जब-जब वह गिरने के निकट पहुँचता, दर्शकों के बीच चीख-चिल्लाहट होती। हम सबको हर क्षण जान पड़ता कि वह गिरा अब गिरा। तमाशे के अन्त में लैफ्टिनेंट गवर्नर ने और हम सभी ने एक स्वर से यह कहा कि नट का ऐसा प्रदर्शन इसके पहले किसी ने कहीं न देखा था।

५॥ बजे हम होटल लौटे और सन्ध्या के भोजन के बाद स्टेशन चल दिये जहाँ से हमारी स्पेशल ट्रेन ८॥ बजे रात को ऑटवा रवाना होती थी। स्टेशन पर प्रायः सभी को लन्दन से जाने वाले स्पेशल प्लेन की याद आयी। अनेक ने एक दूसरे से मुस्कराकर कहा कि स्पेशल प्लेन की लीला तो हम देख चुके हैं अब देखना है कि स्पेशल ट्रेन की तो कोई नयी लीला नहीं होती। पर धन्यवाद है भगवान् को कि बिना किसी नयी लीला के दूसरे दिन दोपहर को हम ऑटवा पहुँच गये। आज सितम्बर की ७ तारीख थी। कल से कामनवेल्थ पार्लियामेंन्टरी कान्फ्रेन्स का काम शुरू होने वाला था, जिसके लिए यथार्थ में हम यहाँ आये थे।

ता० ३० अगस्त की रात को हमने इस झीलों वाले देश में पैर रखा था। इस एक सप्ताह में हम इस देश के ओंटारियो, क्यूबेक और प्रिंस एडवर्ड आइलेंड इन तीन प्रान्तों में घूमे। इस यात्रा में हम ने इस हरे-भरे देश के कितने नगर, कितने कस्बे, कितनी चीजें, कितना जीवन देखा।

ऑटवा पहुँचते ही सबसे पहले मेरा ध्यान जिन दो वस्तुओं ने आकर्षित किया उनमें पहली थी वह होटल जिसमें ऑटवा में हमारे ठहरने की व्यवस्था की गयी थी। इस होटल का नाम था शेटू लारियट। होटल की विशालता, भव्यता, सफाई आदि चीजें तो दर्शनीय थी ही, इस दौरे में हम जितने होटलों में ठहरे उन सबसे इन सभी बातों में यह होटल शायद आगे था, पर सबसे बड़ी बात जिस पर ध्यान गया वह थी इस होटल का रेलवे स्टेशन से सम्बन्ध। ऑटवा के मुख्य स्टेशन और इस होटल के

बीच केवल एक सड़क थी और इस सड़क के नीचे से सुरंग के रूप में स्टेशन से होटल तक एक रास्ता आया था। स्टेशन से बिना किसी सड़क आदि को पार किये यात्री मय बड़े से बड़े सामान के इस होटल में आ सकते थे। मालूम हुआ कि यह होटल तथा कैनेडा के सभी मुख्य स्थानों के होटल रेलवे के हैं और रेलवे के प्रबन्ध में ही चलते हैं। दूसरी बात जिस पर ध्यान पहुँचा वह थी तारों की दर। यहाँ के तारों में जहाँ तार भेजा जाता है उस स्थान का पता चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, उस पते के शब्दों और भेजने वाले के नाम के दाम नहीं लगते।

आगे चलकर हमने अमेरिका में भी इसी प्रकार के होटल देखे।

१८

कामनवैल्थ पार्लियामेन्टरी परिषद्

कामनवेल्थ पार्लियामेन्टरी परिषद् का अधिवेशन ता० ८ सितम्बर से १३ सितम्बर तक होने वाला था।

कामनवेल्थ पार्लियामेन्टरी परिषद् का यह अधिवेशन लगभग दो वर्षों के अन्तर से होता है। न्यूजीलेंड का अधिवेशन सन् '५० के २६ नवम्बर से १ दिसम्बर तक ६ दिन चला था। यह अधिवेशन भी उतने ही दिन के लिए रखा गया था। परन्तु अन्तर यह था कि न्यूजीलेंड के अधिवेशन में पहले दिन को छोड़ शेष पांच दिनों में पाँच विषयों पर विचार हुआ था, यहाँ हुआ तीन विषयों पर। न्यूजीलेंड में जिन पाँच विषयों पर विचार किया गया था वे थे—(१) कामनवेल्थ देशों का आर्थिक सम्बन्ध और विकास, (२) पार्लियामेन्ट-प्रथा के अनुसार चलने वाली सरकारें, (३) प्रशान्त-महासागर के देशों का सम्बन्ध और सुरक्षा, (४) कामनवेल्थ देशों में एक देश से दूसरे देश में जनसंख्या का तबादला और (५) वैदेशिक नीति। कैनेडा में होनेवाली परिषद् के तीन विषय थे—(१) आबादी का तबादला, (२) आर्थिक सम्बन्ध और (३) अन्तर्राष्ट्रीय विषय तथा सुरक्षा। न्यूजीलेंड की परिषद् का प्रशान्त महासागर के देशों का सम्बन्ध और वैदेशिक नीति यहाँ के आर्थिक सम्बन्ध और अन्तर्राष्ट्रीय विषय तथा सुरक्षा के अन्तर्गत आ गये थे, परन्तु पार्लियामेन्ट प्रथा के अनुसार चलनेवाली सरकारें इस विषय पर कोई विचार-विनिमय नहीं रखा गया अर्थात् न्यूजीलेंड की परिषद् के पाँच विषयों में से चार विषयों पर ही यहाँ विचार होनेवाला था। एक बात यहाँ और होनेवाली थी। न्यूजीलेंड की परिषद् की तीसरे दिन और पाँचवें दिन की कार्रवाई अखबार वालों के लिए खोल दी गयी थी। यहाँ की सारी कार्रवाई गोपनीय रहनेवाली थी। इसका कारण यह सुना गया कि न्यूजीलेंड की परिषद् में मेरे भाषण पर जो दक्षिण अफ्रीका के एक प्रतिनिधि के उठकर जाने का सारे संसार के अखबारों में प्रचार हुआ वैसी इस बार यदि कोई घटना हो जावे तो उसका प्रचार न होने पावे।

न्यूजीलेंड की परिषद् में भाग लेने ब्रिटेन, कैनेडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका यूनियन, भारत, पाकिस्तान, लंका, दक्षिण रोडेशिया, जमायका, बरमूडा, बारबेदोस,

बाइमन्स, गोल्डकोस्ट, ब्रिटिश गायना, उत्तर रोडेशिया, मारीशस, सिंगापुर, ब्रिटिश हौंडुरास, बिंडवार्ड आइलैंड, नाइजीरिया, मलाया फैडरेशन और न्यूजीलैंड—इन २२ देशों के प्रतिनिधि आये थे। इनकी संख्या इस बार बढ़ गयी थी। इस परिषद् में भाग लेने ब्रिटेन, कैनेडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका यूनियन, भारत, पाकिस्तान, लंका, दक्षिण रोडेशिया, माल्टा, जमायका, बरमूडा, बारबेदौस, बाइमन्स, ट्रिनीडाड और टोबागो, गोल्डकोस्ट, नाइजीरिया, ब्रिटिश गायना, मारीशस, कीनिया, उत्तरी रोडेशिया, सिंगापुर, ब्रिटिश हौंडुरास, बिंडवार्ड आइलैण्ड, मलाया फेडरेशन, और गैम्बिया इन २६ देशों के प्रतिनिधि आये। एक बात और हुई। इस परिषद् में हिस्सा लेने अमेरिका और आयर्लैंड ने भी प्रतिनिधि भेजे यद्यपि ये दोनों देश कामन-वैल्थ में सम्मिलित नहीं हुए थे तथापि इन्होंने अपने-अपने देशों में कामनवैल्थ एसोसियेशन को सहयोग देने के लिए ग्रूप बनवाये थे और इन ग्रूपों के प्रतिनिधि कैनेडा आये थे।

भारतीय प्रतिनिधिमंडल समेत इस परिषद् में १०८ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए।

परिषद् के इस अधिवेशन की कार्रवाई ता० ८ सितम्बर को कैनेडा के पार्लिया-मेन्ट हाउस के सीनेट चैम्बर में आरम्भ हुई। एसोसियेशन के सभापति आजकल आस्ट्रेलिया के मंत्री श्री हैरोल्ड होल्ट थे। उन्होंने सभापति का आसन ग्रहण कर अपने भाषण में गत दो वर्षों के कार्य का सिंहावलोकन कराया। उन्होंने जो कुछ कहा उसके सारांश की वही बातें यहाँ दी जा सकती हैं जो एसोसियेशन के मंत्री सर हावर्ड डैगविल पत्रों में प्रकाशनार्थ दे चुके हैं, क्योंकि परिषद् की कार्रवाई गोपनीय थी।

सबसे पहले माननीय श्री होल्ट ने उपस्थित प्रतिनिधियों का अभिवादन किया और कहा कि सम्मेलन के आयोजन के लिए कैनेडा सरकार ने जो सहयोग दिया है उसके लिए मैं उसे धन्यवाद देता हूँ। इसके पश्चात् उन्होंने संस्था के इतिहास और उद्देश्य बताये। श्री होल्ट ने कहा—यद्यपि इस संस्था का सूत्रपात १६११ में सम्राट् पंचम जार्ज के राजतिलक समारोह के अवसर से मानना चाहिए फिर भी चूँकि मेरा जन्म १६०८ का है और मैं इस तिथि को बराबर स्मरण रखता हूँ, मैं निवेदन करता हूँ कि उस वर्ष ब्रिटिश साम्राज्य की कुल जनसंख्या का केवल दस प्रतिशत भाग खुद-मुख्तार अथवा स्वाधीन था। उस समय ब्रिटिश साम्राज्य की जनसंख्या ४५ करोड़ थी जिसमें अपने आप अपना शासन करनेवालों की कुल संख्या साढ़े चार करोड़। १६४८ में यह अनुपात ६० प्रतिशत हो गया। इस वर्ष ब्रिटिश कामनवैल्थ की जनसंख्या ५५ करोड़ थी जिसमें से खुदमुख्तार लोगों की संख्या ४६ करोड़ हो गयी। कहना न होगा कि १६०८ से १६४८ तक चालीस वर्ष में अनेक क्रांतिकारी वैधानिक कदम उठाये

गये, जिनके कारण ही यह सफलता प्राप्त हो सकी।

१९४८ के बाद की प्रगति बताते हुए श्री होल्ट ने कहा कि उस समय सम्मेलन में भाग लेनेवाली विभिन्न देशों की संसद् संख्या ३६ थी और अब इस सम्मेलन में ४८ है।

श्री होल्ट ने आगे चलकर कहा कि कामनवेल्थ की परिभाषा करना सरल कार्य नहीं है, किन्तु एक बात तो स्पष्ट रूप से कही जा सकती है और वह यह कि कामनवेल्थ एक परिवार के समान है जिसके समान आदर्श, समान उद्देश्य और समान हित हैं। कामनवेल्थ के सदस्य देश सामाजिक न्याय और व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं में विश्वास करते हैं और मानते हैं कि इन आदर्शों को उस संसदीय लोकतन्त्र-परम्परा की सहायता से प्राप्त कर सकते हैं जो संसार ने संसदों की जननी ब्रिटेन की संसद् से पायी है। कामनवेल्थ का दूसरा आधार मूल सिद्धान्त यह है कि विश्व-भ्रातृत्व की भावना कोरी कल्पना नहीं है। उन्होंने कहा कि इस सम्मेलन में भी विभिन्न जातियों के, विभिन्न परम्पराओं के, विभिन्न धर्मों के लोग उपस्थित हैं।

जो कुछ अब तक हो चुका है उस पर सन्तोष प्रकट करते हुए श्री होल्ट ने मत प्रकट किया कि अभी बहुत कुछ काम होना बाकी है। उन्होंने कहा कि हम सबके सामने निरन्तर जटिलताएँ रहती हैं। आर्थिक और व्यापारिक समस्याएँ तथा शांति-सुरक्षा का सवाल भी सदा हमारे सामने रहता है।

श्री होल्ट ने कहा कि इंगलैंड और भारत जैसे कुछ देश तो ऐसे हैं जिनकी जनसंख्या उनके साधनों की अपेक्षा अधिक है और कैनेडा, आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैंड आदि देश ऐसे हैं जिनके साधनों की तुलना में उनके पास मनुष्य-शक्ति का अभाव है। उन्होंने कहा कि इस व्यवस्था को एक समुचित योजना के आधार पर सुधारना सम्भव है।

श्री होल्ट ने कहा कि हम इस सम्मेलन में कामनवेल्थ के प्रति और गहरी आस्था लेकर जायँ और दृढ़ निश्चय करें कि उसे और अधिक सफल बनायेंगे।

अपने भाषण के अन्त में श्री होल्ट ने कैनेडा के हाउस ऑफ़ कॉमन्स के अध्यक्ष श्री एली ब्योरेंगार्ड को सभापति का आसन ग्रहण करने की प्रार्थना की।

न्यूजीलैंड की परिषद् के सदृश ही यहाँ भी हर दिन के अधिवेशन के भिन्न-भिन्न अध्यक्ष होनेवाले थे और बहस की भी वैसी ही व्यवस्था रहनेवाली थी अर्थात् हर दिन की बहस का प्रातःकाल एक महाशय और भोजन के बाद तीसरे पहर एक अन्य महाशय उद्घाटन करें। वे आधा घण्टा बोलें। इन दो वक्ताओं के अतिरिक्त यथा-सम्भव हर प्रतिनिधिमंडल की ओर से एक-एक वक्ता बोले। इन्हें पन्द्रह मिनट का समय मिले। अन्त में जिन सज्जन ने प्रातःकाल का उद्घाटन-भाषण दिया हो उनके

संक्षिप्त भाषण के पश्चात् उस दिन की कार्रवाई समाप्त हो। इन परिषदों में केवल विचार-विनिमय होता है कोई प्रस्ताव आदि नहीं।

पहले दिन आबादी के तबादले पर बहस निश्चित की गयी थी। प्रातःकाल का उद्घाटन-भाषण न्यूजीलैंड के प्रतिनिधिमंडल के नेता श्री विलफ्रेड हेनरी फौरचून देनेवाले थे और तीसरे पहर का उद्घाटन-भाषण भारत के श्री मावलंकर जी। आबादी के तबादले पर ही न्यूजीलैंड में मैं बोला था। वर्षों से मेरा यह विषय रहा था अतः आज ही भारतीय प्रतिनिधिमंडल की ओर से मैं भी बोलनेवाला था।

यहाँ भी आज के अधिवेशन की वही कार्यवाही लिखी जा सकती है जो सर हावर्ड पत्रों को दे चुके हैं।

आज के सभापति जी ने एक अत्यन्त संक्षिप्त भाषण दे आज की कार्रवाई का उद्घाटन करने वाले श्री विलफ्रेड हेनरी फौरचून को उद्घाटन-भाषण देने के लिए बुलाया।

श्री फौरचून का भाषण आधा घण्टे चला और उन्होंने अपने भाषण में कहा—

न्यूजीलैंड के पास एक लाख वर्गमील भूमि है और वहाँ की आबादी कुल बीस लाख है। हमें न्यूजीलैंड के विकास के लिए बाहर से 'उचित किस्म' के व्यक्ति चाहिए।

श्री फौरचून ने कहा कि ब्रिटेन का पुर्ननिर्माण होना चाहिए। उन्होंने अपने सारे भाषण में न्यूजीलैंड की सफलताओं के ही पुल बाँधे। उन्होंने कहा कि लड़ाई के बाद से ४० हजार लोग न्यूजीलैंड में आ बसे हैं और इस वर्ष हम बीस हजार और बुलाना चाहते हैं।

इसके बाद दोपहर के भोजन के लिए उठने तक छः भाषण और हुए और भोजनोपरान्त श्री मावलंकर का उद्घाटन-भाषण हुआ। श्री मावलंकर ने कहा—

मैं अध्यक्ष के शुभ संकल्पों और उनके विचारों की सराहना करता हूँ और उनसे बहुत हद तक सहमत हूँ। पर व्यवहार रूप में वैसा ही नहीं होता जैसा हमने आदर्श अपने सामने रखा है। जहाँ तक आबादी के तबादले की बात है मैं मानता हूँ कि कुछ हद तक उसे सीमित करना अनिवार्य है, किन्तु यह भी आवश्यक है कि जाति, रंग अथवा धर्म के आधार पर भेदभाव न बरता जाय। हमारा उद्देश्य राष्ट्रों को एक सूत्र में पिरोना है और इसके लिए हमें समान स्तर का लक्ष्य सामने रखना होगा। उन्होंने कहा कि आबादी के तबादले के सम्बन्ध में मैं यह बता देना चाहता हूँ कि आरम्भ से ही सद्व्यवहार होना आवश्यक है।

दूसरी बात श्री मावलंकर ने यह कही कि विश्व-शांति के नारे के साथ विश्व-प्रगति का नारा भी जड़ा हुआ है। दोनों एक दूसरे से सम्बद्ध हैं पृथक् नहीं। विश्व-

शांति के लिए परमावश्यक है कि दुनियां के सभी देशों की प्रगति भी हो। जब तक विषमता रहेगी संघर्ष का कारण भी बना रहेगा।

उन्होंने कहा कि पश्चिमी देशों के विकास और उनके रहन-सहन के उच्च स्तर की हम बड़ी सराहना करते हैं, किन्तु एशिया के तथा संसार के अनेक अन्य भागों के देश दलित हैं और पिछड़े हुए हैं। इसलिए स्थायी हल ढूंढ़ने के लिए हमें इस विषमता को भी दूर करना होगा और एक समान स्तर की नींव डालनी होगी। उन्होंने कहा कि साम्यवाद की रोकथाम के लिए इतनी चिंता करने की आवश्यकता नहीं। ऐसा करने से साम्यवाद स्वयं निष्क्रिय हो जायगा।

अन्त में श्री मावलंकर ने कहा कि कामनवैल्थ का आधार न्याय होना चाहिए और रंग, धर्म व जाति का कोई सवाल नहीं उठना चाहिए। उन्होंने कहा—अध्यक्ष ने जो आदर्श अपने भाषण में रखे थे उनसे मुझे जितना हर्ष हुआ था उतनी ही मुझे कुछ सदस्यों के भाषणों से निराशा हुई। आशा है कि कई चुभती हुई बातें कहने के लिए आप मुझे क्षमा करेंगे और यह मानेंगे कि अपनी स्थिति को स्पष्ट कर देना मेरा भी कर्तव्य था।

श्री मावलंकर का भाषण बड़े ऊँचे स्तर पर भारतीय परम्परा के सर्वथा अनुरूप हुआ।

श्री मावलंकर के पश्चात् श्री होल्ट बोले। श्री होल्ट ने न्यूजीलेंड परिषद् की इस विषय की कार्यवाही का उद्घाटन किया था। परन्तु उनके वहाँ के और यहाँ के भाषण में काफी अन्तर था। न्यूजीलेंड में श्री होल्ट के भाषण के पश्चात् तीसरे पहर का उद्घाटन-भाषण भारतीय प्रतिनिधिमंडल के नेता की हैसियत से मैंने दिया था और मेरे उस भाषण का श्री होल्ट तथा अन्यों पर ऐसा प्रभाव-सा पड़ा था कि कार्यवाही के अन्त में श्री होल्ट ने जो कुछ कहा था उस सिलसिले में वे निम्नलिखित बातें भी कह गये थे—

"सब से पहले मैं भारत के सेठ गोविन्ददास के भाषण की चर्चा करूंगा, जिन्होंने अपना मत अत्यधिक स्पष्ट, बलशाली और प्रभावोत्पादक ढंग से रखा है। मैं यह कहना चाहता हूँ और मेरे कथन से चाहे आश्चर्य ही क्यों न हो कि यह जरूरी है कि सेठ गोविन्ददास ने जो विषय इतनी योग्यता के साथ उठाया है उस पर मुझे विस्तार के साथ विचार करना चाहिए। यदि मुझे ज्ञान होता कि सेठ गोविन्ददास द्वारा उठाये गये विषय पर लोगों की इतनी अधिक दिलचस्पी होगी तो मैं इस विषय पर आस्ट्रेलिया के दृष्टिकोण के सम्बन्ध में आज अधिक समय लेता, फिर चाहे मुझे इस सम्मेलन के सामने कुछ अन्य बहुमूल्य सामग्री प्रस्तुत करने का समय भले ही न मिलता, पर मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं गुमराह हो गया।"

आज भी मैं मौजूद था और श्री होल्ट के बाद ही मैं बोलने वाला था अतः आज वे न्यूजीलेंड की अपेक्षा बहुत अधिक सतर्क थे, साथ ही बहुत ही मुलायम।

श्री होल्ट के बाद मेरा भाषण हुआ। मेरे भाषण के भी मैं उसी भाग के सम्बन्ध में कुछ कह सकता हूँ जो प्रकाशित हो चुका है। न्यूजीलेंड में तो जिस दिन आबादी के तबादले पर विचार-विनिमय हुआ था वह दिन अखबार वालों के लिए खुला हुआ था अतः न्यूजीलेंड के मेरे भाषण की चर्चा भी बहुत हुई थी और उस विषय पर मैं अपनी सुदूर दक्षिण-पूर्व की पुस्तक में काफी लिख भी सका था। कैनेडा की कार्यवाही अखबार वालों के लिए खुली न रहने के कारण यह सम्भव नहीं है।

मैंने अपने भाषण में आबादी के तबादले के सवाल को अत्यन्त विवाद-ग्रस्त बता यह कहा कि सच्चा कामनवैल्थ तो तभी हो सकता है जब कामनवैल्थ में रहने वाले देशों के निवासियों को एक देश से जाकर दूसरे देश में बसने का समान रूप से अधिकार हो और इस सम्बन्ध में जाति-भेद और रंग-भेद की नीति की समाप्ति हो। मैंने भारत, पाकिस्तान, ग्रेट ब्रिटेन आदि देशों का एक ओर तथा कैनेडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलेंड आदि देशों का दूसरी ओर उदाहरण दे यह बताया कि जहाँ प्रथम प्रकार के देशों में वर्ग मील पीछे तीन सौ से पाँच सौ आदमी रहते हैं वहाँ दूसरे प्रकार के देशों में चार से आठ। यदि अधिक आबादी वाले देशों को अपनी आबादी अन्य देशों में भेजने की आवश्यकता है तो कम आबादी वाले देशों को अधिक आबादी की, क्योंकि बिना अधिक आबादी के न तो इन देशों के नैसर्गिक धन का उपयोग हो सकता है और न इन देशों की सुरक्षा। और अन्त में मैंने यह कहा कि जब तक जाति-भेद और रंग-भेद का अन्त न होगा तब तक यह प्रश्न हल नहीं हो सकता, जो प्रश्न मैं संसार के इस काल के सब प्रश्नों से अधिक महत्त्व का मानता हूँ। जाति-भेद और रंग-भेद का कितना कुत्सित रूप हो गया है इसके लिए मैंने दक्षिण अफ्रीका का दृष्टान्त दिया और कहा कि वहाँ के जो लोग इस भेद को मिटाने के लिए शांतिपूर्ण सत्याग्रह कर रहे हैं उन्हें बेंत और कोड़ों की सजा दी जा रही है। इस बर्बर सजा की व्यवस्था की है अपने को सभ्य और सुसंस्कृत कहने वाले श्वेतों ने। बर्बर शब्द मेरे मुँह से निकलते ही दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधियों के क्रोध का कोई पार ही न रहा। न्यूजीलेंड के समान इस बार यद्यपि किसी ने 'वाक आउट' का प्रदर्शन नहीं किया, पर इसके बाद जो भाषण दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधि का हुआ उसमें ऐसी कोई बात बाकी नहीं रही जो उसने भारत के विरुद्ध न कही हो। अन्त में यहाँ तक कह डाला कि अस्पृश्यता मानने वाले भारतीयों को अन्य लोगों के लिए 'बर्बर' शब्द का उपयोग न करना चाहिए। मैंने तत्काल बीच में बोलकर कहा कि 'अस्पृश्यता' को हम अपने संविधान में जुर्म बना चुके हैं। आज की बहस का अन्त हुआ भारतीय प्रतिनिधिमंडल की एक सदस्या

श्रीमती अनसूया बाई काले के भाषण से। सुन्दर भाषण था उनका भी।

मुझे आज एक नयी बात जान पड़ी। पश्चिमी सभ्यता के अनुयायी अपने को सबसे अधिक सभ्य और सुसंस्कृत मानते हैं। पश्चिमी सभ्यता का जितना फैलाव हुआ है उतना शायद किसी भी सभ्यता का मानव-इतिहास में न हुआ था। पश्चिमी सभ्यता के अनुयायियों को यदि कोई बात सबसे अधिक चोट पहुँचाती है तो उनकी किसी प्रकार की भी बर्बरता का पर्दाफाश। दक्षिण अफ्रीका की बेंत और कोड़े की दण्ड-व्यवस्था निश्चयपूर्वक बर्बर है। पश्चिमी श्वेतों में नहीं, पर दक्षिण अफ्रीका के श्वेतों में भी अनेक दक्षिण अफ्रीका की इस समय की मलान सरकार द्वारा बरती जानेवाली नीति का विरोध कर रहे हैं और आज जब संसार के २६ देशों के १०८ प्रतिनिधियों के सामने उनकी इस बर्बर नीति का पर्दाफाश हुआ तब वे अपना सन्तुलन खो बैठे। जिस प्रकार न्यूजीलेंड परिषद् में दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधि ने वाकआउट कर मेरे भाषण को उस अधिवेशन का सबसे महत्त्वपूर्ण भाषण बना दिया था, मेरे 'बर्बर' शब्द के विरोध में उन्होंने जो अपना सन्तुलन खोया उसके कारण यहाँ भी वही हुआ। पर एक बात मैंने और देखी। दक्षिण अफ्रीका की वर्तमान नीति की इतनी भर्त्सना हो चुकी है कि अन्य देशों के श्वेतों का भी साहस न हुआ कि वे दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधियों का समर्थन करें।

दूसरे दिन परिषद् की दो वर्षों के कार्य की रिपोर्ट और आय-व्यय के लेखे पर विचार हुआ। आज के अध्यक्ष भी श्री होल्ट ही रहे। आज भारतीय प्रतिनिधिमंडल के सदस्य श्री प्रो० रंगा ने आगे के काम के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। इन सुझावों में सबसे मुख्य था साम्यवादी प्रचार के उत्तर में प्रजातन्त्रवादी प्रचार की योजनापूर्ण व्यवस्था। श्री रंगा के सिवा भारत के बंगाल धारा-सभा के अध्यक्ष श्री मुकरजी का भी भाषण हुआ और उन्होंने कल दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधि द्वारा उठाये गये अस्पृश्यता के सवाल का खूब ही करारा उत्तर दिया। हम इस सम्बन्ध में श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती और गांधीजी को जितना भी धन्यवाद दें थोड़ा है। यदि अस्पृश्यता के निवारण का इन लोगों ने इतना प्रयत्न न किया होता तो हम सभ्य संसार में बैठने योग्य न रहते। फिर भी हमें यह मानना ही होगा कि हम इस कालिमा को अभी भी पूर्ण रीति से नहीं धो पाये हैं। इस कलंक से हमें पूरा पिंड छुड़ाना है और वह शीघ्र से शीघ्र।

आज की चर्चा में पाकिस्तान के एक प्रतिनिधि ने भारत पर काश्मीर और नदियों के पानी के सम्बन्ध में अनर्गल आक्षेप किये। यह सर्वथा विषयान्तर था और इस पर श्री प्रोफेसर रंगा एवं श्री मावलंकर जी ने भारत की स्थिति का स्पष्टीकरण भी कर देने का प्रयत्न किया।

तीसरे दिन आर्थिक सम्बन्ध विषय पर चर्चा हुई। आज के अध्यक्ष थे लंका के श्री एलबर्ट एफ़ पिरे। प्रातःकाल इस विषय की चर्चा का उद्घाटन किया ब्रिटेन के कर्नल डेरिक हीथकोट एमोरी ने और तीसरे पहर लंका के श्री जी. जी. पोनाम्बलम ने। इस विषय पर इक्कीस भाषण हुए। भारतीय प्रतिनिधिमंडल के श्री अनंतशयनम् अय्यंगार का आज बहुत ही सारगर्भित भाषण हुआ।

चौथे और पाँचवें दिन अन्तर्राष्ट्रीय विषयों तथा सुरक्षा पर विचार-विनिमय हुआ। चौथे दिन सभापति का आसन ग्रहण किया लार्ड लैलविन ने और पाँचवें दिन श्री पी. वी. पीकौक ने। दोनों दिन जिन चार सज्जनों ने प्रातःकाल और तीसरे पहर चर्चा का उद्घाटन किया वे थे श्री ब्रुक कंम्सटन, श्री थियोडोर एफ़. ग्रीन, श्री लैवरेट साल्टोनस्टाल और श्री जे. एस. लबुशचान। इन दो दिनों में भारतीय प्रतिनिधि-मंडल के श्री प्रो० रंगा, श्री कुनटे और श्री मुकरजी के बड़े अच्छे भाषण हुए। इन दो दिनों की कार्यवाही में अमेरिका और आयरलैंड के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया। अमेरिका का इस समय पश्चिमी प्रजातन्त्रात्मक राज्यों में कितना बड़ा स्थान है, सभी पश्चिमी राज्य अमेरिका की कितनी चाटुकारिता करते हैं, उसे प्रसन्न करने के लिए कितनी भक्तिपूर्ण स्तुतियाँ और चेष्टाएँ, यह मैंने न्यूजीलेंड से लौटते हुए आस्ट्रेलिया के कैनबरा की परिषद् में भी देखा था और कैनेडा में भी इसी की और बड़े भारी रूप में पुनरावृत्ति देखी। आयरलेंड के प्रतिनिधि अभी भी इंगलिस्तान के प्रति कितने कटु हैं, खासकर उनके आयरलेंड के विभाजन कर देने के कारण, इसका भा पता लगा।

न्यूजीलेंड में जिस प्रकार एक दिन परिषद् की अध्यक्षता पाकिस्तान के प्रतिनिधि-मंडल के नेता श्री तज़ीमुद्दीन खाँ ने और एक दिन भारतीय प्रतिनिधिमंडल के नेता होने के कारण मैंने की थी वैसी कोई बात इस बार कैनेडा में नहीं हुई। सब मिलाकर मेरा मत है कि पूर्वी देशों की जैसी प्रतिष्ठा न्यूजीलेंड में देखने को मिली थी वैसी यहाँ न थी। यहाँ अमेरिका, यूरोपीय देशों और उन्हीं के उपनिवेशों को महत्त्व था। फिर भी मैं इतना कहे बिना न रहूँगा कि भारतीय प्रतिनिधिमंडल का काम हर दृष्टि से सन्तोषजनक और प्रभावोत्पादक रहा। प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों का आपसी सम्बन्ध भी बहुत प्रेमपूर्ण था। श्री काल और श्री शेखधर के साथ आ जाने से सोने में सुगन्ध आ गयी थी और श्री मावलंकर जी के साथ श्रीमती मावलंकर के पधारने से हमारे प्रतिनिधिमंडल की शोभा और शिष्टता में कहीं अधिक वृद्धि हो गयी थी।

कैनेडा के निवासियों की आवभगत में भी कोई त्रुटि न थी। न्यूजीलेंड के सदृश्य कैनेडा भी एक नया राष्ट्र है और नये राष्ट्र का जोश यहाँ के लोगों में भी

मौजूद है। फिर कैनेडा तो बहुत बड़ा देश है। भविष्य में अपनी उन्नति के लिए उनकी अगणित योजनाएँ हैं। इनके कारण यह जोश और बढ़ गया है। भिन्न-भिन्न देशों के जो प्रतिनिधि परिषद् में आये थे उनका आपसी सम्पर्क भी हुआ, जो इस प्रकार की परिषदों का मुख्य उद्देश्य है। परन्तु इस सम्पर्क में जैसा सौष्ठव न्यूजीलैंड में देखने को मिला था वैसा यहाँ नहीं। इसका कारण यह भी हो सकता है कि परिषद् के पश्चात् प्रतिनिधियों का जो कैनेडा देश का दौरा हुआ उसमें मैं सम्मिलित नहीं रह सका।

परिषद् के इन दिनों में न्यूजीलैंड के सदृश यहाँ भी प्रतिनिधियों के स्वागतार्थ, भोजों, प्रीतिभोजों आदि की भरमार रही।

१६

परिषद् के पश्चात् कुछ और समय झीलों के देश में

कामनवैल्थ पार्लियामेन्टरी परिषद् का अधिवेशन ता० १३ सितम्बर को ऑटवा में समाप्त हो गया था। इसके पश्चात् ता० १४ सितम्बर से ता० ५ अक्तूबर तक कामनवैल्थ पार्लियामेन्टरी एसोसियेशन की कैनेडा शाखा ने प्रतिनिधियों को कैनेडा देश दिखाने का कार्यक्रम रखा था। ता० ५ अक्तूबर को मांट्रियल से एक विशेष वायुयान द्वारा ये प्रतिनिधि उसी प्रकार लन्दन जाने वाले थे, जिस प्रकार लन्दन से मांट्रियल आये थे। अनेक प्रतिनिधियों की इच्छा कैनेडा से अमेरिका जाने और इस विशेष वायुयान से न जाकर स्वतन्त्र रूप से यूरोप अथवा प्रशान्त महासागर के रास्ते आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, भारत आदि लौटने की थी। ऐसे प्रतिनिधियों ने एसोसियेशन की कैनेडा शाखा से प्रार्थना की कि वे उनके लौटने की यात्रा का खर्च उन्हें दे दें तथा इस विशिष्ट वायुयान से ही लौटने के बन्धन से उन्हें मुक्त कर दें, परन्तु कैनेडा की यह शाखा इसे स्वीकृत न कर सकी, क्योंकि वह इस विशिष्ट वायुयान का प्रबन्ध कर चुकी थी। इसका प्रधान कारण यह था कि एक विशेष वायुयान द्वारा प्रतिनिधियों को ले जाने में खर्च बहुत कम पड़ता था। इस परिस्थिति में कुछ प्रतिनिधियों ने ता० १४ सितम्बर से ५ अक्तूबर तक होनें वाली कैनेडा की यात्रा में से कुछ समय अमेरिका जाने के लिए निकाल ता० ५ अक्तूबर को मांट्रियल पहुँच इस विशेष वायु-यान द्वारा लन्दन लौटने का निश्चय किया और कुछ ने अपने निज के खर्च पर प्रशान्त महासागर के रास्ते लौटने का।

मैं पहले से ही प्रशान्त महासागर के रास्ते भारत वापस पहुँचने का निर्णय कर चुका था। अतः मैंने ता० १४ सितम्बर से ता० ५ अक्तूबर तक होने वाली कैनेडा की इस यात्रा में न रह सकने के लिए कैनेडा की पार्लियामेन्टरी एसोसियेशन की शाखा से क्षमा माँगी और अमेरिका के रास्ते में कैनेडा के जो मुख्य स्थान पड़ते थे उन्हें अपने खर्चे पर देखते हुए न्यूयार्क पहुँचने का निश्चय किया। जगमोहनदास तथा घनश्यामदास जर्मनी, हालैंड और बेल्जियम होकर ता० ११ सितम्बर को ऑटवा

पहुँच गये थे। हम लोगों ने न्यूयार्क पहुँचने तक अपना कार्यक्रम नीचे लिखे अनुसार बनाया—

ता० १६ सितम्बर तक ऑटवा ही और रहना।

ता० १७ को टुरेंटो।

ता० १८ और १९ को मांट्रियल।

ता० २० को न्यूयार्क पहुँचना।

ता० १४ से १९ तक कैनेडा के इस कार्यक्रम में दर्शनीय स्थानों को देखने के सिवा हमारा अन्य कोई काम न था। इन दिनों में हम कैनेडा के ऑटवा, टुरेंटो और मांट्रियल खूब घूमे। अब तक हम कैनेडा में जो कुछ देख चुके थे उसके सिवा इन ६ दिनों में टुरेंटो के अजायबघर को छोड़ और कोई ऐसी वस्तु हम ने नहीं देखी जिसका उल्लेख किया जाय। सब-कुछ वैसा ही था जैसा अब तक हमने देखा था। खूब हरा-भरा नीर से परिपूर्ण सुन्दर देश। मीलों तक आबादी और खेती अथवा कल-कारखानों का नामोनिशान नहीं। कहीं की भी बस्ती घनी नहीं। साफ-सुथरे, सुन्दर और भव्य नगर। अच्छी इमारतें, चौड़ी सड़कें। जनता खूब सम्पन्न, पढ़ी-लिखी, सुखी और सन्तुष्ट; गरीबी का पता नहीं।

टुरेंटो का अजायबघर हमारे अब तक के देखे हुए बड़े-से-बड़े अजायबघरों में एक था और उसके कुछ संग्रह तो ऐसे थे जैसे हम ने अब तक कहीं के अजायबघर में न देखे थे। टुरेंटो का यह रायल ओंटारियो म्यूजियम यूनीवर्सिटी एवेन्यू पर बना हुआ है। इस एक अजायबघर में वास्तव में चार अजायबघर हैं। लन्दन को छोड़ यह अजायबघर ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में सबसे बड़ा है और अपने चीनी संग्रहालय के लिए अत्यन्त विख्यात है। अजायबघर के चार भाग इस प्रकार हैं—

पुरातत्व, खनिज शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र और प्राणि शास्त्र।

अजायबघर का समारंभ १८५३ में हुआ था। इस अजायबघर से जीवन की वृहद्ता का आभास मिलता है।

जगमोहनदास और घनश्यामदास की यात्रा के टिकट सारे संसार घूमने वाले टिकट थे पर मुझे अब अपने टिकट का प्रबन्ध करना था। सामान हम लोगों के साथ काफी हो गया था अतः हमने तय किया कि जगमोहनदास और घनश्याम दास मांट्रियल से न्यूयार्क हवाई जहाज से पहुँचें और मैं सामान लेकर ट्रेन से न्यूयार्क जाऊँ।

निश्चित कार्यक्रम के अनुसार मैं ट्रेन से ता० २० सितम्बर के प्रातःकाल न्यूयार्क पहुँच गया और ये लोग वायुयान से २० सितम्बर के तीसरे पहर।

२०

कैनेडा पर एक दृष्टि

किसी भी राष्ट्र के निर्माण में सबसे अधिक महत्त्व तीन बातों का होता है—भूमि, जल-वायु और लोग। देश की भूमि और साधनों का वहाँ के लोग कहाँ तक उपयोग करते हैं और जलवायु से उन्हें कहाँ तक सहायता मिलती है इसके आधार पर ही वहाँ का आर्थिक इतिहास बनता है। देश के लोग अपनी संगठित शक्ति का देश की स्वतन्त्रता के लिए और उसकी सुरक्षा के लिए जो कुछ करते हैं उससे उस देश का राजनीतिक इतिहास बनता है। किसी भी देश की सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति का अनुमान इस बात से लगाया जाता है कि उनके वातावरण पर उन्होंने कहाँ तक स्वामित्व प्राप्त किया है और अपने पूर्वजों से प्राप्त होने वाली परम्पराओं को उन्होंने कहाँ तक आगे बढ़ाया है।

कैनेडा के विकास में कुछ अधिक कठिनाई इसलिए हुई कि वहाँ के लोगों, भूमि और जलवायु में असामान्य विविधता और विभिन्नता पायी जाती है। फिर भी गत तीस-चालीस वर्ष में कैनेडा ने आश्चर्यजनक प्रगति की है और वह एक निर्बल एवं शिशु राष्ट्र से एक सबल एवं प्रौढ़ राष्ट्र बन गया है।

कैनेडा संयुक्त राष्ट्र का सदस्य और कामनवैल्थ का एक अंग है। कैनेडा कामनवैल्थ के तीन सबसे बड़े डुमीनियनों में से एक है। इन तीन बड़े डुमीनियनों के नाम हैं—कैनेडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका। यद्यपि न्यूजीलैंड भी महत्त्वपूर्ण है, किन्तु वह इतना बड़ा और साधन-सम्पन्न नहीं है। कामनवैल्थ में इन तीनों डुमीनियनों का एक विशेष स्थान है, आर्थिक दृष्टि से और राजनीतिक दृष्टि से भी। कैनेडा का क्षेत्रफल समस्त ब्रिटिश साम्राज्य के एक चौथाई भाग से अधिक है।

यद्यपि दक्षिण-पूर्व के शहरों में औद्योगिक माल तैयार होता है, पर कैनेडा अधिकांश रूप में कृषि-प्रधान ही है। कुछ खनिज-पदार्थ कैनेडा में बहुतायत से पाये जाते हैं जैसे कोयला, निकिल, सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा, जिंक, यूरेनियम आदि। जल से विद्युत-शक्ति उत्पन्न करने की भी कैनेडा में विशेष सुविधाएँ हैं।

कैनेडा ने एक राष्ट्र का रूप कई बातों में अमेरिका की भाँति और कई बातों

में अमेरिका के विरुद्ध प्राप्त किया है। अमेरिका महाद्वीप के राष्ट्रों में भी उसकी विशेष स्थिति है। जहाँ एक ओर कैनेडा में बाहर से लोग आये और उसका विकास अमेरिका के अन्य राष्ट्रों की तरह हुआ वहाँ दूसरी ओर राजनीतिक क्षेत्र में कैनेडा का विकास अन्य अमेरिकी राष्ट्रों की भाँति नहीं हुआ।

अमेरिका की स्वतन्त्रता की घोषणा के बाद वाले ५० वर्षों में ऐसी अनेक क्रान्तियाँ हुईं जिनसे बहुत से स्वतन्त्र राष्ट्रों की स्थापना हुई, किन्तु कैनेडा में ऐसा कुछ नहीं हुआ। १९वीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्य में परिवर्तन होने के साथ-साथ कैनेडा की राष्ट्रवादी भावना को मूर्तरूप मिला और उसे स्वतन्त्र डुमीनियन का दर्जा मिला। 'कनफेडरेशन' का समझौता, जिसके अनुसार १८६७ में कैनेडा के ४ प्रान्त एकत्रित हुए, एक शाही कानून के द्वारा ही हुआ था। इस प्रकार कैनेडा ने अपने शासनाधिकार एक साम्राज्य से प्राप्त किये। दूसरे शब्दों में कैनेडा ब्रिटिश साम्राज्य में ही एक उपनिवेश से एक राष्ट्र बन गया।

कैनेडा के लोगों के लिए भी शायद इस बात का अनुमान लगाना कठिन है कि ब्रिटिश साम्राज्य के रूपान्तर में कैनेडा का कितना महत्त्वपूर्ण योग रहा है। १९वीं शताब्दी में और २०वीं शताब्दी में ब्रिटेन के ऐसे कितने ही उपनिवेश जहाँ पहले वह व्यापार करने गये थे कामनवैल्थ के स्वतन्त्र सदस्य हो गये हैं।

१९४० में कैनेडा को खुदमुख्तार बनाने का जो निर्णय किया गया वैसा ही निर्णय अन्यत्र भी दूसरे उपनिवेशों के लिए करना एक तरह परमावश्यक हो गया। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, भारत और पाकिस्तान इसी तरह क्रमशः सत्ता सम्हालते गये। २०वीं शताब्दी के आरम्भ में ही ब्रिटिश साम्राज्य एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का जन्मदाता बन चुका था। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध ने इस दशा में प्रगति को और भी तीव्र कर दिया।

कैनेडा के भीतरी विकास में फ्रांसीसी और ब्रिटिश दोनों संस्कृतियों का सम्मिश्रण हो गया है। क्यूबेक प्रान्त पर फ्रांसीसी संस्कृति की विशेष छाप है। कैनेडा के समस्त जीवन पर इन दोनों संस्कृतियों की गहरी छाप पायी जाती है। वहाँ के जीवन और चरित्र दोनों को ही इसने बहुत प्रभावित किया है।

दो संस्कृतियों के सम्मिश्रण का कैनेडा का अनुभव आज के संसार में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, जहाँ विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय की आवश्यकता निरन्तर बढ़ती ही जा रही है।

कैनेडा की शासन-व्यवस्था संघात्मक है। केन्द्रीय सरकार ऑटवा में है। दस प्रान्तीय सरकारें हैं और बहुत से म्युनिसिपल कारपोरेशन। संघ सरकार और प्रान्तीय सरकारों के अधिकार-क्षेत्र ब्रिटिश नार्थ अमेरिकन एक्ट १८६७ में दिये हुए हैं।

राष्ट्रीय महत्त्व के सभी मामले फेडरल सरकार के क्षेत्राधिकार में आते हैं। कैनेडा का संविधान कुछ लिखित है और कुछ अलिखित। संघ सरकार में गवर्नर जनरल, सेनिट और लोक-सभा सम्मिलित हैं। गवर्नर जनरल पाँच वर्ष के लिए ब्रिटेन के सम्राट् द्वारा नियुक्त किया जाता है। इस समय गवर्नर चार्ल्स विनसेंट थे।

आज कैनेडा दुनियाँ के बड़े राष्ट्रों में है। किसी समय वह दुनियाँ के एक छोर पर था। आज जब कैनेडा के चारों ओर शक्तिशाली राज्य हैं तो उसकी महत्त्व-पूर्ण स्थिति का पता चलता है। कैनेडा के दक्षिण में संयुक्त राज्य अमेरिका है, उत्तर में सोवियत रूस है, पूर्व में ब्रिटेन और पश्चिम में जापान। साधन और समृद्धि की दृष्टि से भी कैनेडा उन्नत राष्ट्रों की पहली पंक्ति में है।

२१

गगनचुम्बी प्रासादों के प्रांगण में

अमेरिका आज सारे संसार के देशों में अग्रगण्य है। जहाँ कहीं भी संसार के देशों, संसार की जनता, संसार की समस्याओं पर विचार होता है, मनन होता है, चर्चा होती है, वहाँ संसार के दो देश सबसे पहले और प्रधान रूप से आगे आ जाते हैं—अमेरिका और रूस। दोनों देशों का सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक संगठन एक-दूसरे से ठीक विपरीत है। अमेरिका है पूँजीवादी देश और रूस अपने को साम्यवादी कहता है, चाहे अभी कार्ल मार्क्स के आदर्शों के अनुसार साम्यवादी हुआ न हो और चाहे कुछ विचारकों के मतानुसार साम्यवाद के मार्ग पर चल भी न रहा हो। जो भी हो रूस और अमेरिका एक-दूसरे से ठीक विरुद्ध दिशा के अनुगामी हैं इसमें सन्देह नहीं हो सकता। क्षेत्रफल, आधिभौतिक नैसर्गिक साधनों और आबादी में दोनों देश समान रूप से महान् हैं। इस दृष्टि से संसार के केवल दो देश और इन देशों की समता कर सकते हैं चीन और भारत। परन्तु चीन तथा भारत दोनों में आधिभौतिक विकास के कार्य अभी आरम्भ ही हुए हैं जहाँ ये दोनों देश इस दिशा में कहीं आगे बढ़ चुके हैं। और संसार के आधुनिक काल के अमेरिका तथा रूस इन दो सबसे प्रधान देशों में भी अमेरिका का स्थान रूस से आगे है। इसका प्रधान कारण यह है कि आधिभौतिक जगत् में जो-कुछ अब तक जाना जा चुका है उसके हर क्षेत्र का अमेरिका में पूर्ण विकास हो चुका है, रूस में अभी यह हो रहा है, पूर्णता को नहीं पहुँच पाया है।

ऐसे अमेरिका देश के प्रधान नगर न्यूयार्क में मैं ता० २० सितम्बर के प्रातःकाल रेल से पहुँचा। हमारी रेल जिस प्लेटफार्म पर पहुँची वह भूमि को खोदकर तल-घर के रूप में बनाया गया था। और यह प्लेटफार्म ही क्या न्यूयार्क का यह सबसे बड़ा स्टेशन जो 'ग्रेन्ड सेन्ट्रल' के नाम से प्रसिद्ध है, सारा-का-सारा एक महान् तल-घर के रूप में बना हुआ है। स्टेशन पर भारतीय दूतावास के श्री प्रेमधर जी मुझे लेने के लिए मौजूद थे। हमारे ठहरने का प्रबन्ध भारतीय दूतावास वालों ने किया था न्यूयार्क के सबसे बड़े होटलों में से एक 'कामेडार' नामक होटल में। स्टेशन से हम लोग

होटल आये। सचमुच बड़ा सुन्दर और भव्य होटल था। इसकी सबसे बड़ी विशेषता थी इसका ऐसे स्थान पर होना जो हर दृष्टि से न्यूयार्क का केन्द्र समझा जा सकता है और जहाँ से न्यूयार्क के रोजगार-धन्धे वाले वाल स्ट्रीट को छोड़ शेष सभी स्थान समीप पड़ते हैं।

इस होटल में भारतीय दूतावास वालों ने हम लोगों के लिए दो कमरों का प्रबन्ध किया था; एक दो व्यक्तियों के ठहरने का और दूसरा एक व्यक्ति के। दो व्यक्तियों के ठहरने वाले कमरे में अपना सामान जमा तथा नित्य-कर्मों से निवृत्त हो इंडिया हाउस में मैं भारत के कौंसलर जनरल श्री आर्थर लाल से मिलने गया, क्योंकि मैं चाहता था कि न्यूयार्क का अपना सारा कार्यक्रम जल्दी-से-जल्दी तय कर डालूँ। इंडिया हाउस न्यूयार्क में भारतीय सरकार का एक सुन्दर मकान है, जहाँ भारतीय दूतावास के कौंसलर जनरल का दफ्तर है और जहाँ कौंसलर जनरल रहते भी हैं। भारतीय दूतावास का प्रधान दफ्तर अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन में है। भारतीय राजदूत वाशिंगटन में रहते हैं। इस दफ्तर के मातहत न्यूयार्क और सैन्फ्रान्सिस्को दो स्थानों पर भारतीय कौंसलर जनरल के दफ्तर हैं, जो अमेरिका के इतने बड़े देश होने तथा न्यूयार्क के अमेरिका के सबसे प्रधान नगर एवं सैन्फ्रान्सिस्को के अमेरिका के पूर्वी छोर के सबसे प्रधान बन्दरगाह होने के कारण सर्वथा उचित है।

श्री लाल से मैं दिल्ली में मिल चुका था, अतः हम दोनों एक-दूसरे को भली-भाँति जानते थे। श्री लाल बड़े उत्साह से अत्यन्त सम्मानपूर्वक मुझ से मिले। उन्होंने श्रीमती लाल से भी मुझे मिलाया। इसके बाद उन्होंने भारतीय वाइस कौंसलर श्री भंडारी को बुलाया और हम तीनों में बातचीत हो मेरा न्यूयार्क का सारा कार्यक्रम निश्चित हो गया। यह कार्यक्रम मुख्यतः तीन विभागों में विभक्त किया गया—(१)न्यूयार्क के प्रधान-प्रधान स्थानों को देखना, (२)न्यूयार्क के मुख्य-मुख्य लोगों से मिलना, (३) सार्वजनिक भाषण आदि। कार्यक्रम की विविधता तथा न्यूयार्क की महानता के कारण तय हुआ कि हम लोगों को कम-से-कम दो सप्ताह वहाँ ठहरना होगा, समय पर दो दिन इधर-उधर भी हो सकते हैं। पर ता० ३ के प्रातःकाल के पहले मेरा न्यूयार्क छोड़ना नहीं हो सकता था क्योंकि ता० २ अक्तूबर की रात को गांधी जी के जन्म-दिवस की जो सार्वजनिक सभा अमेरिका की इंडिया लीग ने रखी थी उस सभा का प्रथम वक्ता मैं नियुक्त किया गया था।

न्यूयार्क में श्री लाल और भंडारी से आज की मुलाकात में ही मुझे मालूम हो गया कि दोनों कितने सज्जन पुरुष हैं और मेरे कार्यक्रम में दोनों को कितना अनुराग है। इसके पश्चात् श्री भंडारी से तो मेरी नित्य ही भेंट अथवा फोन पर बातचीत

होती रही और वे मेरे कार्यक्रम की छोटी-से-छोटी बातें भी बड़े ध्यान से और बड़ी लगन से तय करते रहे।

इंडिया हाउस से मैं भारतीय ढंग के भोजन वाले 'राजा' नामक रैस्टरां को भोजन करने गया। अच्छा भारतीय ढंग का भोजन था और यह अधिक अच्छा इसलिए लगा कि लन्दन छोड़ने के पश्चात् कई दिन बाद इस प्रकार का भोजन मिला था। राजा रैस्टरां में अचानक श्री योगी विट्ठलदास से मेरी भेंट हो गयी। विट्ठलदास जी हमारे प्रदेश के खण्डवा नगर के हैं। कई वर्ष पहले मैं इनसे खण्डवा में मिला था और वहां मैंने इनकी कई योग सम्बन्धी क्रियाएँ देखी थीं। मुझे यह देखकर कुछ आश्चर्य हुआ कि विट्ठलदास जी सफेद कुरता और धोती पहने हुए थे। उन्होंने मुझे बताया कि वे इसी पोशाक में प्रायः सारे विश्व का भ्रमण कर चुके हैं और यह सारा भ्रमण उन्होंने उस द्रव्य से किया है जो अन्यों को योग-क्रियाएँ सिखाने के उपलक्ष्य में दक्षिणा के रूप में उन्हें मिलता है। विट्ठलदास जी न्यूयार्क में भी करीब डेढ़ वर्ष से रहकर यही कार्य कर रहे थे। अपने प्रदेश के एक ऐसे सज्जन से इतने वर्ष के पश्चात् इतने सुदूर स्थान पर मिलकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। श्री विट्ठलदास जी ने आज ही रात को उनके निवास-स्थान पर मुझे भोजन के लिए निमंत्रण दिया जो मैंने यह कहकर सहर्ष स्वीकार कर लिया कि मैं अकेला न आकर हम लोग तीन व्यक्ति आयेंगे, जगमोहन-दास, घनश्यामदास और मैं। विट्ठलदास जी को जब मालूम हुआ कि मेरे पुत्र और दामाद भी मेरे साथ यात्रा कर रहे हैं और वे भी उनके यहां भोजन के लिए पहुँचेंगे तो उन्हें और भी अधिक हर्ष हुआ।

राजा रैस्टरां से मैं कामेडार होटल को ही गया, क्योंकि कल के पहले मेरा यहां का कार्यक्रम आरम्भ न हो रहा था। होटल में मैं जगमोहनदास और घनश्यामदास का रास्ता देखने लगा। इनका हवाई जहाज न्यूयार्क के हवाई अड्डे पर ३ बजे आने वाला था और वहां से ये लोग ४ बजे के लगभग एअर टरमीनल (हवाई जहाज की सवारियों का स्टेशन) पहुँचने वाले थे. जो कामेडार होटल से २-३ मकानों के बाद ही था। कोई पौने चार बजे मैं एअर टरमीनल पर पहुंच गया। ठीक समय जगमोहनदास और घनश्यामदास आ पहुँचे तथा अपने-अपने स्थान पर ठहर गये। न्यूयार्क का जो कार्यक्रम तय हुआ था उसे इन लोगों ने भी देखकर पसन्द कर लिया।

आज रात को श्री विट्ठलदास के यहां जाने के अतिरिक्त हमारा कोई कार्य-क्रम न था। रात को हम लोग विट्ठलदास जी के यहां पहुँचे जहां उन्होंने हमें अपने हाथ से बनाया हुआ भारतीय प्रणाली का बड़ा स्वादिष्ट भोजन कराया। इस भोजन में विट्ठलदास जी की एक अमेरिकन शिष्या श्रीमती डेनिटा डार्लिंगटन भी सम्मिलित हुईं।

दूसरे दिन प्रातःकाल से हमारा न्यूयार्क का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ और इस कार्यक्रम के प्रारम्भ होने के पश्चात् न्यूयार्क छोड़ने तक हम सभी कितने व्यस्त रहे। कार्यक्रम की इस व्यस्तता के कारण ही हमें न्यूयार्क ता० ७ अक्तूबर तक ठहरना पड़ा। इन १८ दिनों में हमने न्यूयार्क में क्या-क्या देखा, क्या-क्या किया, किस-किस से मिले। मेरे जीवन में सदा व्यस्तता रहते हुए भी इन १८ दिनों में जितनी व्यस्तता रही उतनी कम बार ही रही थी।

बम्बई के सदृश न्यूयार्क एक द्वीप पर बसा है। इस द्वीप का नाम है मनहटन। यह द्वीप बहुत बड़ा नहीं है। इसकी लम्बाई है साढ़े बारह मील और चौड़ाई है ढाई मील। बम्बई में जिस प्रकार भूमि की कमी है उसी प्रकार न्यूयार्क में भी है। इसीलिए यहाँ की इमारतें बहुत अधिक ऊँची हैं। फैलाव का काम यहाँ उंचाई करती है। ये इमारतें ही न्यूयार्क में सबसे अधिक ध्यान को आकर्षित करती हैं। इमारतों का न्यूयार्क वाला ढंग हम कैनेडा के मांट्रियल और टुरेंटो में भी देख चुके थे, पर मांट्रियल और टुरेंटो की इमारतों से यहाँ की इमारतें कहीं अधिक ऊँची थीं। इनकी उँचाई के कारण इन्हें अंग्रेजी भाषा में एक नया नाम दिया गया है—स्काई स्क्रेपर्स। पर इससे यह न समझा जाय कि न्यूयार्क में नीचे मकान हैं ही नहीं, वरन् सब मिलाकर तो शायद नीचे मकान ही अधिक हैं, कम-से-कम बहुत अधिक ऊँचे तो गिनती के ही हैं। बहुत ऊँची इमारतें उनके अनुपात से बहुत अधिक नीची इमारतों से घिरे रहने के कारण मीनारों के सदृश दिखती हैं, इसके कारण चाहे बहुत ऊँची इमारतों की भव्यता बढ़ गयी हो, पर बहुत ऊँची और बहुत नीची इमारतों के इस सम्मिश्रण से नगर की शोभा मेरे मतानुसार कम हो गयी है। यद्यपि कहीं-कहीं इस प्रकार का मिश्रण सुषमा लाता है, वस्तु विशेष में विशिष्ट रूप से, पर कई जगह, कम-से-कम जहाँ वस्तुएँ सामूहिक रूप से दृष्टिगोचर होती हैं वहाँ, यह मिश्रण सुषमा में समता न रह सकने के कारण दृष्टि में किरकिरापन पैदा कर देता है। मेरे मत से न्यूयार्क में इस मिश्रण की वजह से ऊँची इमारतों को जो मीनार-का-सा रूप मिला है उसके कारण सौन्दर्य की कमी हुई है। फिर भी इतनी ऊँची इमारतें दुनियाँ के किसी अन्य स्थान में नहीं और ये इमारतें ही न्यूयार्क की सबसे बड़ी विशेषता हैं।

मारतों के बाद जो दूसरी चीज इस नगर में ध्यान को आकर्षित करती है वह हैं यहाँ की सड़कें। चौड़ी और लम्बी सड़कों को यहाँ एवेन्यू कहते हैं और इन एवेन्युओं को इन एवेन्युओं से कम लम्बी और कम चौड़ी सड़कें जो समानान्तर से इन एवेन्युओं को काटती हुई चलती हैं उन्हें कहते हैं स्ट्रीट। सारा न्यूयार्क नगर इन एवेन्युओं और स्ट्रीटों का समानान्तर की चौकड़ी वाला जाल-सा है। चौकड़ियों के जाल के बीच में इमारतें हैं और चौकड़ियों के जाल की डोरियाँ हैं ये एवेन्यू तथा स्ट्रीट।

कैसा व्यवस्थित ताना-बाना-सा बुना हुआ है। सुना यह गया कि पहले यह नगर ऐसे व्यवस्थित रूप से बसा हुआ नहीं था। नगर के कुछ पुराने विभागों में अभी भी यह व्यवस्था नहीं है, पर धीरे-धीरे शहर को व्यवस्थित बसाने की योजना बनी और अब तो नगर के कुछ थोड़े से विभागों को छोड़ सारा का सारा नगर एक योजना बनाकर बसाया हुआ नगर जान पड़ता है। स्काई स्क्रेपर्स के बाद इस प्रकार की सड़कें इस नगर की सबसे बड़ी विशेषता हैं और पैरिस, जयपुर तथा अमेरिका के ही कुछ अन्य नगरों को छोड़, जो न्यूयार्क के पश्चात् न्यूयार्क के समान ही बसाये गये हैं, संसार के किसी अन्य देश के नगरों की बसावट में ऐसी व्यवस्था नहीं है।

तीसरी आकर्षक वस्तु यहाँ के यातायात के साधन हैं। मोटरें जितनी यहाँ हैं उतनी संसार के किसी देश के किसी नगर में नहीं। मोटरों के सिवा हैं ट्राम, बसें और सबवे। ट्राम और बसें तो सभी जगह हैं, पर सबवे लन्दन की ट्यूब रेलों के समान ही बिजली की रेल हैं, जो न्यूयार्क और लन्दन को छोड़ बहुत कम स्थानों में हैं। लन्दन में ट्यूब रेलें जमीन के अन्दर तलघरों में चलती हैं, न्यूयार्क की सबवे जमीन के भीतर और ऊपर दोनों जगह, जहाँ जैसी सुविधा हो। लन्दन की ट्यूब रेलें न्यूयार्क की सबवे से अच्छी हैं, पर किराया सबवे का जितना कम है उतना संसार की किसी सवारी का नहीं। दस सेंट अर्थात् लगभग आठ आने पैसे में आप न्यूयार्क के सुदूर-से-सुदूर स्थान की यात्रा कर सकते हैं। इन सबवे रेलों के प्लेटफार्म पर इस प्रकार के फाटक लगे हुए हैं कि उनके एक छेद में आपके दस सेंट का सिक्का डालते ही वह फाटक खुल जाता है। फाटक के भीतर जाकर आप सुदूर-से-सुदूर स्थान को रेलें बदलते हुए चले जाइये। हाँ, एक बार जहाँ आप फाटक से निकले वहाँ फिर से घुसने के लिए आपको पुनः वह सिक्का डालना होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि कोई सबवे से कहीं जाना चाहे तो चाहे वह स्थान निकट हो या दूर उसे दस सेंट लगेंगे। अर्थात् एक देश में चिट्ठी या तार भेजने में, चाहे वह किसी निकटवर्ती स्थान को भेजा गया हो चाहे दूरस्थ स्थान को, जिस प्रकार एक ही निरख की टिकट लगती है उसी प्रकार सबवे की मुसाफिरी में भी।

न्यूयार्क की चौथी विशेषता यहाँ की रात्रि की बिजली की रोशनी है। हमारे देश में अनेक दिवालियाँ इकट्ठी कर दी जायँ तो भी कहीं भी बम्बई तक में इतनी रोशनी नहीं होती जितनी न्यूयार्क में नित्य रात्रि को रहती है। यह रोशनी भिन्न-भिन्न प्रकार के विज्ञापनों के कारण कई गुनी बढ़ गयी है तथा कई प्रकार की हो गयी है। रोजगार-धन्धे वालों ने अपनी-अपनी दुकानों को किस-किस प्रकार से द्युतिवन्त किया है। एक दूकान के विज्ञापन में तो सचमुच का जल-प्रपात है जो बिजली की रोशनी में खूब चमकता रहता है। विज्ञापनों की यह बिजली दिन को भी नहीं बुझती,

पर शोभा तो इसकी रात को ही दिखती है।

ऐसा न्यूयार्क नगर कोई बहुत बड़ा नगर नहीं है। फैलकर बसने के लिए स्थान न होने के कारण मनहटन द्वीप पर बसा हुआ यह नगर बम्बई के सदृश ही एक छोटा-सा नगर है। ऐसे छोटे-से नगर की जनसंख्या है कोई साठ लाख। फिर बम्बई के समान न्यूयार्क शहर के बाहर मनहटन द्वीप से लगी हुई दूर-दूर तक बस्तियाँ चली गयी हैं। मनहटनद्वीपके बाहर की बस्तियों को भी यदि शामिल कर लिया जाय तो कहते हैं न्यूयार्क संसार का आज सबसे बड़ा नगर है, क्षेत्रफल में चाहे लन्दन से कम हो, पर आबादी में लन्दनसे भी अधिक। अपने चारों ओर की बस्तियों के साथ न्यूयार्ककी जनसंख्या कोई एक करोड़ है।

और न्यूयार्क की यह जनसंख्या एक प्रकार के सारे महान् अमेरिका देश का प्रतिनिधित्व करती है। अमेरिका देश में तीन जातियों के लोग रहते हैं—रैड इंडियन, हब्शी और श्वेतांग। पहले यहाँ रैड इंडियन रहते थे। उन्हीं का यह देश था। ये कहाँ से आये थे, कब आये थे, इन सब बातों पर विद्वानों में एक नहीं अनेक मत हैं, पर श्वेतांगों के यहाँ आने के पूर्व ये ही यहाँ के प्रधान निवासी थे। अभी भी अमेरिका में ये हैं, पर इनकी संख्या अब बहुत घट गयी है, साथ ही ये पृथक् बस्तियों में बसाये गये हैं, जहाँ से न ये कहीं जा सकते और न बिना सरकारी इजाजत के कोई दूसरा इन बस्तियों में प्रवेश कर सकता, अतः रैड इंडियन तो न्यूयार्क में भी नहीं दिखते। इनके खून से मिश्रित सन्तान चाहे श्वेतांगों में कोई-कोई हो। रैड इंडियनों की रहन-सहन और रीति-रिवाज अन्य पुरानी जातियों के सदृश नाना प्रकार की विशेषताओं से भरी थी। उनकी रहन-सहन की सबसे बड़ी विशेषता थी बहुत अधिक मनुष्यों का एक मकान में रहना। किसी-किसी एक मकान में ये सात-सात सौ तक इकट्ठे रहते थे। हब्शियों की अभी भी अमेरिका में काफी संख्या है। न्यूयार्क में भी हब्शी काफी दृष्टिगोचर होते हैं। कुछ हब्शियों और श्वेतांगों की मिश्रित सन्तानें हैं। ऐसे लोगों में अनेक श्वेतांगों के सदृश श्वेत हैं। इन दो जातियों के सिवा अमेरिका में रहते हैं श्वेतांग। सारे अमेरिका देश में अधिकतर यही हैं और न्यूयार्क में भी। भारतीय, चीनी, जापानी आदि की संख्या तो इस देश में नहीं के बराबर है। यहाँ के समस्त नागरिकों को नागरिकता के पूरे अधिकार हैं। संविधान में वर्णभेद का कोई स्थान नहीं, पर व्यवहार में वर्णभेद का अभी भी पूर्ण अन्त नहीं हो पाया है।

अमेरिका देश के ये श्वेतांग यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों से यहाँ आये हैं। इंगलैंड, आयलैंड, फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम, हालैंड, रूस, स्पेन, पोर्चुगाल आदि यूरोप का कोई देश ऐसा नहीं जहाँ के निवासी यहाँ आकर न बसे हों। एक ऐसा समय था

जब कहीं की भी आबादी आने के लिए यहाँ किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न था, इमीग्रेशन का कोई कानून नहीं। यूरोप के देशों ने इसका पूर्ण लाभ उठाया और सभी जगह से लोग आकर यहाँ बसे। भिन्न-भिन्न देशों के ये निवासी किसी समय भिन्न-भिन्न भाषाएँ भी बोलते थे, पर अब न ये भिन्न-भिन्न देशों के निवासी रह गये हैं और न इनकी भिन्न-भिन्न भाषाएँ ही हैं। इनमें से अनेक अभी भी जानते हैं कि इनके पूर्वज किस देश से आये थे, पर अब ये हो गये हैं सब के सब अमेरिकन और इन सबकी भाषा भा एक भाषा हो गयी है—अंग्रेजी। किन्तु अमेरिका देश के किसी समय अंग्रेजी राज्य के उपनिवेश होने अथवा यहाँ के श्वेतांगों में अधिकतर इंगलिस्तान के लोग रहने या यहाँ अंग्रेजी भाषा होने के कारण यदि यह समझ लिया जाय कि अमेरिकन यथार्थ में अंग्रेज हैं तो यह भूल होगी। श्वेतांग तथा अंग्रेजी भाषा बोलनेवाली अंग्रेज जाति और श्वेतांग तथा अंग्रेजी बोलनेवाली अमेरिकन जाति में बहुत बड़ा अन्तर है। यों तो मैं मानव मानव में कोई अन्तर नहीं मानता और अमेरिका में भी यूरोपीय संस्कृति ही है, परन्तु जो अन्तर यूरोपीय संस्कृति वाले इंगलिस्तान, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों के मानवों में है वही इंगलैंड और अमेरिका के मानवों में भी। अन्तर इतना ही है कि इंगलिस्तान, फ्रांस, जर्मनी आदि के निवासियों की भाषा पृथक्-पृथक् है, इंगलैंड और अमेरिका के निवासियों की भाषा एक है, पर भाषा एक होने पर भी इंगलिस्तान की अंग्रेजी और अमेरिका की अंग्रेजी में भी अन्तर है।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि जब इंगलैंड में रहनेवाले और अमेरिका में रहने वाले दोनों ही श्वेतांग हैं, दोनों की संस्कृति यूरोपीय संस्कृति है, दोनों की भाषा एक है, तब आखिर अंग्रेज जाति और अमेरिकन जाति में अन्तर क्या है? यह अन्तर ऊपर-ऊपर देखने से दिखायी भी नहीं पड़ता, पर यदि थोड़ा-सा भी गहराई में प्रवेश किया जाय तो यह अन्तर दिख जाता है। अन्तर मुख्यतः है दोनों जातियों के स्वभाव का अन्तर और उस स्वभाव के फर्क की वजह से ही भाषा का भी फर्क हो गया है।

अंग्रेज जाति एक पुरानी जाति है। उसमें एक विशेष प्रकार का ठोसपन, गाम्भीर्य, आत्मसम्मान की भावनाएँ, गौरव, औपचारिकता आदि हैं। उनके सारे समाज में कुछ विशिष्ट रीति-रिवाज (कन्वेंन्शन) हो गये हैं। किसी भी अंग्रेज को आप बारीकी से देखें तो ये सारी बातें न्यूनाधिक रूप में आपको उसमें दिख पड़ेंगी। अमेरिकन जाति एक नयी जाति है। उसमें न अंग्रेज जाति का ठोसपन है, न उसका गाम्भीर्य, न आत्मसम्मान की वैसी भावनाएँ, न वह गौरव और न वैसी औपचारिकता आदि। उनके समाज में कोई विशेष रीति-रिवाज भी नहीं दिख पड़ते। पर अंग्रेज जाति की ये सारी बातें उसके सद्गुण हैं और अमेरिकन जाति में इन बातों का अभाव उसके दुर्गुण, यह नहीं कहा जा सकता। अपनी इन बातों के कारण अंग्रेज जाति में

एक प्रकार का दकियानूसी-पन भी आ गया है। उत्साह और झपटकर काम करने की प्रवृत्ति नष्ट हो गयी है। आपसी सम्बन्धों में भावनाओं की कमी हो गयी है। अरे ! यहाँ तक होता है कि एक दूसरे के आमने-सामने वर्षों तक रहते हुए भी बिना किसी परिचय करानेवाले के दो अंग्रेज एक दूसरे से बात तक नहीं करते। अमेरिकन जाति में चाहे ठोसपन की जगह तरलता हो, चाहे गाम्भीर्य की जगह कुछ उथलापन, उसमें चाहे आत्मसम्मान, गौरव और औपचारिकता की भी वैसी मात्रा न हो जैसी अंग्रेज जाति में है, पर उसमें अंग्रेजों का दकियानूसीपन और बाबा आदम के जमाने के रीति-रिवाजों पर चलने की अनुदार वृत्ति भी नहीं है। अमेरिकनों के व्यवहार में मैंने भावनाओं का भी अधिक श्रोत पाया और कैसा उत्साह तथा झपट-झपटकर छोटे-से-छोटे काम को भी करने की वृत्ति। हाँ, उत्साह के अतिरेक के कारण झपटकर काम करने की इस वृत्ति ने अमेरिकन जाति में एक बहुत बड़े दुर्गुण की भी उत्पत्ति कर दी है। यह दुर्गुण है हर काम में इतनी शीघ्रता कि प्रायः यह शीघ्रता सीमा का उल्लंघन कर देती है। न्यूयार्क नगर में आपको साधारण चाल से चलनेवाले व्यक्ति ही इने-गिने दिखेंगे। पुरुष, स्त्रियाँ, बाल, वृद्ध, तरुण सब इस प्रकार चलते जान पड़ेंगे जैसे सारे नगर में आग लग गयी हो और सब इधर से उधर और उधर से इधर भाग रहे हों। ऐसी दौड़भाग, ऐसा उथल-पुथल कि क्या कहा जाय। लन्दन भी बहुत बड़ा नगर है, पर न्यूयार्क जैसी दौड़भाग लन्दन में दृष्टिगोचर नहीं होती। लन्दन का जीवन शान्त सरिता का प्रवाह-सा जान पड़ता है और न्यूयार्क का तूफानी पहाड़ी नदी-का-सा।

यह अन्तर है एक वर्ण, एक संस्कृति तथा एक भाषा-भाषी अंग्रेज और अमेरिकन जाति में। और यह अन्तर उनकी एक भाषा रहते हुए भी उस भाषा में भी आ गया है। अंग्रेज कभी अतिशयोक्तियों का उपयोग नहीं करता और अमेरिकन बिना अतिशयोक्तियों के बोल ही नहीं सकता। और भाषा के साथ ही उनकी वेष-भूषा भी इंगलैंड ही नहीं, पुराने यूरोपीय देशों से भी भिन्न है। यूरोपीय ढंग के कपड़े पहनते हुए भी उनकी टाई प्रायः बड़ी चमकदार रहती है। रंग-बिरंगा बुश शर्ट एक नयी वस्तु निकली है। अरे, कोट तक कभी-कभी दो रंग का होता है, आस्तीनें एक रंग की और आमना-सामना दूसरे रंग का।

न्यूयार्क, वहाँ की इमारतें, वहाँ की सड़कें, वहाँ की सवारियाँ, वहाँ की रोशनी, वहाँ के मानव, उनकी चहल-पहल, उनका धन, उनका वैभव, सारा दृश्य देखकर आदमी दंग-सा रह जाता है, उसकी दृष्टि चकाचौंध-सी हो जाती है, और यदि वह इस चित्र के एक पहलू की ओर ही दृष्टिपात करे तो उसे यह नगर पृथ्वी का स्वर्ग दिखायी देता है, जैसा मेरे कुछ मित्रों ने मुझे कहा था। पर किसी भी चित्र

का एक रुख ही नहीं होता, उसके अन्य रुख भी होते हैं और कोई भी अवलोकन तब तक पूर्ण नहीं होता, जब तक सब रुखों को देखने का यत्न न किया जाय। न्यूयार्क में अपनी अद्भुत विशेषताएँ हैं इसमें सन्देह नहीं, पर इन विशेषताओं के साथ ही उसकी कुछ भयानक कमियाँ भी हैं। न्यूयार्क के जीवन को जो वस्तुएँ चलाती हैं वे एक दूसरे पर इतनी अधिक दूर तक अवलंबित है कि यदि किसी एक छोटी-सी बात में व्यतिक्रम हो जाय तो वहाँ के जीवन का सारा प्रवाह एक क्षण में स्थगित हो जाता है। वहाँ इस प्रकार की कुछ घटनाएँ हुई भी है। एक बार वहाँ के पानी का एक बड़ा नल फट गया। इसके कारण जिस एअर कंडीशन प्लाण्ट से नगर के मकान ठंडे रहते थे उसका काम रुक गया। गरमी का मौसम था, अतः नतीजा यह निकला कि दफ्तरों में काम होना कठिन हो गया, क्योंकि मकान इस तरह के बनाये गये कि गर्मियों में बिना एअर कंडीशनिंग मशीनरी चले उनमें बैठकर काम करना असम्भव है। जब सब लोग दफ्तर और घर छोड़-छोड़कर सड़क पर बाहर निकले तब ऐसी भीड़ हुई कि मोटर, ट्राम, बसें चलना ही बन्द न हो गया अपितु लोगों का पैदल चलना भी कठिन हो गया और घरों में ही नहीं पर बाहर भी लोगों का दम घुटने लगा। एक बार बिजली के लिफ्ट चलाने वालों ने हड़ताल कर दी। बीसों-पचासों और सैकड़ों मंजिल की इमारतों पर चढ़ना और उन पर से उतरना कठिन ही नहीं असम्भव हो गया। ये दो घटनाएँ तो न्यूयार्क में हो चुकी हैं। इसी प्रकार की अन्य कोई भी घटना वहाँ हो सकती है और वह घटना वहाँ के सारे जीवन को स्थगित कर सकती है। यद्यपि आधुनिक सभ्यता वाले सभी नगरों के सम्बन्ध में थोड़ी-बहुत दूरी तक यह बात कही जा सकती है, पर न्यूयार्क के सम्बन्ध में जितनी दूर तक उतनी दूर तक अन्य नगरों के विषय में नहीं।

वस्तुओं के परस्पर निर्भर रहने की इस पराकाष्ठा पर इन दिनों विशेष रूप से ध्यान जाता है, क्योंकि चारों ओर लड़ाई की तैयारी हो रही है जिसे बचाव की तैयारी कहा जाता है। न्यूयार्क नगर में तो बीच-बीच में हवाई हमले की कल्पना कर उससे बचने के उपायों को जन-साधारण को सिखाने के आयोजन होते हैं। हम लोगों के सामने भी एक इसी प्रकार का आयोजन किया गया। लड़ाई की दृष्टि से देखने पर तो न्यूयार्क नगर बहुत कमजोर मालूम होता है। चारों ओर अत्यधिक ऊँची इमारतें, जिनमें अधिकतर काँच के बड़े-बड़े वातायन हैं। अत्यन्त आधुनिक इमारतों में तो काँच का अत्यधिक उपयोग किया जाने लगा है। दीवालें भी काँच की और कमरों को एक-दूसरे से अलग करने के लिए बीच मे भी काँच का प्रयोग होने लगा है। फिर मकानों के अन्दर जितनी भी सुविधाएँ है वे बाहर की दो वस्तुओं पर निर्भर है— पानी का नल और बिजली का तार। कहीं-कहीं गैस का नल और भाप का नल

एवं सभी में सैप्टिक नाली। यदि पानी का नल बन्द हुआ तो जैसा कहा जा चुका है एअर कंडीशनिंग प्लाण्ट और पीने तथा हाथ धोने का पानी बन्द। एअर कंडीशनिंग प्लाण्ट बन्द होते ही मकान में रहना असम्भव है, क्योंकि आधुनिक इमारतें इस तरह बनायी जाती हैं और उनमें वातायन इस तरह रखे जाते हैं जिससे एअर कंडीशनिंग प्लाण्ट के चलते रहने पर ही उनमें सुविधापूर्वक रहा जा सकता है। यदि बिजली का तार कट गया तो लिफ्ट चलना असम्भव, खाना बनाना असम्भव, अन्धकार। अब यदि लड़ाई के समय कहीं कुछ बम न्यूयार्क नगर में भूले-भटके भी गिर जायँ तो वहाँ का साधारण कार्य बिलकुल बन्द हो जाने का भय है। आधुनिक सभ्यता के आधुनिकतम नगर के निवासी कितनी दूर तक कुछ चीजों पर निर्भर हो गये हैं। प्रत्येक वस्तु का अधिक-से-अधिक उपयोग करने के कारण ही यह निर्भरता इतनी अधिक बढ़ी है और दूसरी ओर इसी उपयोग के कारण उन्हें अत्यधिक लाभ भी हुआ है। सबसे कम खर्च में उनका सारा कार्य हो जाता है। और न्यूयार्क के चित्र के इस रुख पर जब मैं विचार करने लगा तब मुझे महात्मा गांधी के उन उपदेशों का स्मरण आया जिनमें उन्होंने हर बात में स्वावलम्बन की शिक्षा दी थी। आधुनिक सभ्यता में यद्यपि पूर्ण स्वावलम्बन सम्भव नहीं है तथापि न्यूयार्क-की-सी परावलम्बता भी इष्ट नहीं।

फिर न्यूयार्क में जो कुछ पराकाष्ठा को पहुँचा है वह भौतिक भव्यता, भौतिक वैभव, सब-कुछ भौतिक। मानव का भौतिक शरीर होने के कारण उसे भौतिक वस्तुओं की आवश्यकता नहीं यह मेरा कहना नहीं है। हमें भौतिक विकास से आँखें नहीं मूँदना है। हमने भौतिक विकास से आँखें बन्द कर अपने देश की बहुत बड़ी हानि की है। हमें तो इस ओर बहुत सजग रहना चाहिए। भौतिक विकास मनुष्य की उन्नति के लिए नितान्त आवश्यक है इसमें जरा भी सन्देह नहीं। जब तक मनुष्य का पार्थिव शरीर है तब तक इसकी भौतिक आवश्यकताएँ हैं, यहाँ तक कि जीवन ही कुछ भौतिक आवश्यकताओं पर निर्भर है। आप कितना भी आध्यात्मिक विकास कर लें जब तक आपको उचित पौष्टिक भोजन नहीं मिलेगा तब तक आपका काम नहीं चल सकता। इसी तरह दूसरी भौतिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में कहा जा सकता है। यदि आपके वस्त्र ठीक नहीं हैं, यदि आपका रहने का मकान ठीक नहीं है तो आप ठीक तरह से अपना कार्य नहीं कर सकते। इन सारे भौतिक साधनों को कम-से-कम परिश्रम में अधिक-से-अधिक जुटाने के लिए आपको यन्त्रों का उपयोग भी करना पड़ेगा। सभ्यता के उदय से ही मनुष्य ने सदैव इस बात का प्रयत्न किया कि इन साधनों को जुटाने के लिए उसे कम-से-कम श्रम करना पड़े। यथार्थ में इसी प्रयत्न से सभ्यता का निर्माण हुआ। भारत में ऐसा न हुआ सो बात नहीं। प्रत्येक क्षेत्र में श्रम बचानेवाली वस्तुओं का प्रयोग हुआ है। हाँ, यन्त्रीकरण के युग में भारत पराधीन था और इस

समय जो भी यन्त्रीकरण हुआ वह भारत की स्वेच्छा से पूरी तौर पर नहीं हुआ। यदि भारत स्वाधीन होता तो कहाँ तक और कितनी शीघ्रता से यन्त्रीकरण होता यह कहा नहीं जा सकता। यदि हमें सभ्यता का विकास करना है तो यन्त्रीकरण अवश्य करना होगा इसमें सन्देह नहीं। हाँ, हमें उसे अपनी परिस्थितियाँ देखकर करना है, नये ढंग से करना है, उन गलतियों को न करते हुए करना है जिन्हें अधिकांश पाश्चात्य देशों ने किया है। विद्युत-शक्ति ने ऐसा अवसर प्रदान किया है जिससे गाँवों में अच्छे, स्वस्थ और साफ वातावरण में यन्त्रीकरण हो सकता है। फिर हमें अपनी जनसंख्या की ओर दृष्टि रख उसका पूरा-पूरा उपयोग करते हुए यन्त्रीकरण करना है और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हमें मानव के विकास के लिए यन्त्रों का उपयोग करना है, यन्त्रों के विकास के लिए मानव का नहीं। फिर केवल भौतिक विकास ही पर्याप्त नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या केवल भौतिक वस्तुओं से मनुष्य को पूर्ण सन्तोष हो सकता है। मेरे मतानुसार कभी नहीं। न्यूयार्क में मैंने सुना कि वहाँ के अनेक व्यक्ति जिन्हें सब प्रकार के भौतिक सुख उत्कृष्ट से उत्कृष्ट रूप में प्राप्त हैं वे भी सुखी नहीं। जब मैं न्यूयार्क के सार्वजनिक पुस्तकालय को देखने गया तब मुझे मालूम हुआ कि भारत के वेदान्त दर्शन का वहाँ न जाने कितने लोग बड़े चाव से अध्ययन करते हैं। और जब मैंने यह सुना तब मुझे मालूम हुआ कि स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ का अमेरिका में इतना आदर क्यों हुआ था, आज भी अमेरिका वाले विविध प्रकार के भाषणों को, विशेषकर दार्शनिक भाषणों को, सुनने के लिए क्यों इतने आतुर रहते हैं और जिस न्यूयार्क में आधिभौतिकता चरम सीमा को पहुँच चुकी है वहाँ आध्यात्मिकता को भी कितनी अधिक आवश्यकता है।

न्यूयार्क ऐसा वैभवशाली नगर रहते हुए भी अभी वहाँ मजदूरों की चाल (स्लम्प्स) मौजूद हैं। हमने इन्हें भी देखा। यद्यपि इन चालों का हमारे देशों की चालों से मुकाबला नहीं हो सकता, परन्तु चाल तो चाल ही हैं। सुना गया इन चालों में ऐसे लोग रहते हैं जो बड़े आलसी हैं और जो अपनी कमाई का अधिकांश भाग शराबखोरी तथा अन्य शरारत-भरे कुकर्मों में खर्च कर देते हैं। हमने इन चालों में रहनेवालों को भी देखा और उन्हें न्यूयार्क की अन्य आबादी से कुछ पृथक् रूप का अवश्य पाया—बढ़ी हुई हजामतें, मैले-कुचैले कपड़े, नशे में चूर सूरतें और सारी चेष्टाओं में आलस्य के लक्षण। इन चालों के सम्बन्ध में हम लोगों ने और भी कुछ जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा की, क्योंकि हमें ये स्थल अमेरिकन सभ्यता के लिए एक कलंकस्वरूप प्रतीत हुए। जिस देश में न्यूनतम वेतन निश्चित हो और वह इतना काफी हो कि लोग साधारणतया सम्मानपूर्वक और बहुत आराम से रह सकें, जहाँ बेकारी कम-से-कम इन दिनों में कोई बहुत बड़ी समस्या न हो, वहाँ

इन चालों और इन विचित्र तरह से रहनेवालों की क्या आवश्यकता है और वे क्यों हैं ? अमेरिका की जीवन-व्यवस्था स्वतन्त्र रूप से बिना किसी रोकथाम के कार्य होने देने और उद्योगों पर कम-से-कम नियंत्रण पर आधारित है। यद्यपि समय-समय पर कई कानून ऐसे बनाये गये हैं जिनसे थोड़ा बहुत नियंत्रण रहता है जैसे 'एण्टीट्रस्ट' कानून।

सब मिलकर भौतिक दृष्टि से न्यूयार्क का जीवन अत्यन्त सुखी जीवन कहा जा सकता है। गरीबी, अशिक्षा, बीमारी आदि का वहाँ समूल नाश हो गया है यह तो नहीं कहा जा सकता, पर ये सब भौतिक दुख वहाँ न्यून से न्यून हैं। कुछ लोग बहुत अमीर हैं, इतने जितने संसार में कहीं नहीं, शेष में गरीबी बहुत कम है। अधिकांश की आमदनी अच्छी आमदनी है। फिर भी यह कहा जाता है कि अमेरिका की सम्पत्ति का ८३ प्रतिशत १ प्रतिशत आदमियों के हाथ में है, बाकी ९९ प्रतिशत जनता के हाथ में केवल १७ प्रतिशत सम्पत्ति है। सप्ताह में लोग पाँच दिन काम करते हैं, फी दिन ८ घण्टे। शनिवार और रविवार दो दिन पूरी छुट्टी रहती है और सभी तबके के लोग इन दो दिन की छुट्टियों को खूब मनाते हैं। शनिवार और रविवार को दर्शनीय स्थानों पर मेले-से लगे रहते हैं। खूब गोठें और गोष्ठियाँ होती हैं। खेती, उद्योग-धन्धे सभी उन्नति के शिखर पर पहुँचे हुए हैं। प्रति घण्टे की कम-से-कम मजदूरी ७५ सेंट याने करीब चार रुपये कानून द्वारा नियुक्त है। जीवन-धोरण काफी ऊँचा है। लोग महँगे-से-महँगे और सस्ते ढंग से भी रह सकते हैं। 'आटोमेट' नामक खाने के ऐसे रैसटराँ हैं जहाँ अनेक प्रकार की चीजें सजी रहती हैं और इनमें से जो आपको पसन्द हो आप स्वयं उठा लें और उसके पैसे देकर उसे खा लें। जहाँ न्यूयार्क में महँगे-से-महँगे होटल हैं वहाँ इन आटोमेट में पेट भरनेवालों को उतना ही खर्च पड़ता है जितना हमारे बम्बई-कलकत्ते के साधारण रैस्टराँ में खानेवालों को। जो लोग शाका-हारी भोजन करना चाहते हैं उनके लिए तो आटोमेट बड़े ही उपयोगी हैं। न्यूयार्क का सारा सामाजिक संगठन पूँजीवादी है और जिस प्रकार आज पूंजीवाद हर जगह कुछ हेय दृष्टि से देखा जाता है वैसा न्यूयार्क और अमेरिका में नहीं। समाजवादी या साम्यवादी अथवा समाजवाद या साम्यवाद से सहानुभूति रखनेवाले वहाँ हैं ही नहीं यह तो नहीं कहा जा सकता, पर इनकी संख्या जितनी कम वहाँ है उतनी संसार में कदाचित् कहीं नहीं। फिर ऐसे व्यक्ति लुके-छिपे ढंग से रहते हैं, अपने मत के प्रचार का भी उनमें साहस नहीं। बड़े-बड़े कारखानों और दस-दस हजार एकड़ के फार्मों का यह देश है। पूंजीवाद के यहाँ तीन मुख्य संगठन हैं जो यहाँ के सारे आर्थिक ढाँचे का नियन्त्रण-सा करते हैं। ये संगठन हैं–(१) अमेरिकन एसोसियेशन ऑफ़ मैन्यूफैक्चरर्स, (२) यूनाइटेड स्टेट्स चेम्बर ऑफ़ कामर्स, (३) अमेरिकन बैंक एसोसियेशन। ये तीनों यहाँ के निम्न-लिखित मुख्य उद्योगों के सम्मिलित संगठनों को हाथ लिये हुए हैं। ये संगठन हैं—स्टील

कंबाइन, (२) ऑयल कंबाइन, (३) कोलमाइन्स कंबाइन, (४) लैक्ट्रिकसिटी, (५) आटोमोबाइल्स । पूंजीवादी आर्थिक संगठन में हड़ताल नहीं हो यह सम्भव नहीं । यहाँ भी हड़तालें हुई हैं, पर बहुत कम । मजदूरों के यहाँ निम्नलिखित मुख्य संगठन है—(१) अमेरिकन फेडरेशन ऑफ़ लेबर, (२) कांग्रेस ऑफ़ इंडस्ट्रियल आरगनाइजेशन, और (३) यूनाइटेड माइन वर्क्स ऑफ़ अमेरिका ।

न्यूयार्क में हमने विशिष्ट रूप से जो कुछ देखा अब उसका भी कुछ विवरण उपयुक्त होगा । सबसे पहले हमने यहाँ की स्वतंत्रता की मूर्ति देखी (चित्र नं० ७६) ।

संयुक्त राष्ट्र का भवन

संयुक्त राष्ट्र के भवन के निर्माण में अनेक देशों के आर्कीटेक्टों ने सम्मिलित प्रयत्न किया । जिस लगन और उत्साह से इस इमारत का निर्माण हुआ वह संयुक्त राष्ट्र की सफलता का द्योतक भी है । यह इमारत ५४४ फुट ऊँची और २८७ फुट चौड़ी है । अमेरिका के सबसे बड़े नगर की अन्य इमारतों से इसकी वास्तु-कला कहीं भिन्न है । इस भवन के निर्माण में विभिन्न देशों के बारह आर्कीटेक्ट एक-दूसरे के सहयोग से काम करते रहे थे ।

ठीक ही कहा गया है कि यह भवन वह कारखाना है जहाँ संसार के भावी-रूप की रचना होती है (चित्र नं० ८०-८१) ।

एम्पायर स्टेट बिल्डिंग

ससार की सबसे ऊँची एक सौ दो मंजिल की एम्पायर स्टेट इमारत है । इस इमारत की उँचाई १,४७२ फुट है । इसकी ८६वीं और १०२वीं मंजिलों में वेध-शालाएँ बनी हुई हैं । सड़क से इस इमारत को देखने पर दर्शक को एक तरह का रोमांच हो आता है, लेकिन वेधशालाओं से नगर को देखने का अनुभव ऐसा अभूतपूर्व होता है कि संसार में अन्यत्र कहीं भी ऐसा अनुभव होने की सम्भावना नहीं । यह इमारत १९३१ में बनकर तैयार हुई । बीसवीं शताब्दी का यह एक आश्चर्य है और मनुष्य की इंजीनियरी-कुशलता का द्योतक है ।

इस इमारत में दर्शकों को ऊपर ले जाने वाला एक ऐसा यन्त्र लगा हुआ है जो ६० सैकिण्ड के भीतर मनुष्य को १,००० फुट की उँचाई पर पहुँचा देता है । ८६वीं मंजिल में वेधशाला पर पहुँचने के बाद, जो कि सड़क से १,०५० फुट की उँचाई पर बनी हुई है, दर्शक को चारों ओर तीस-तीस चालीस-चालीस मील तक ऐसे प्रदेश का दर्शन होता है जिसमें लगभग डेढ़ करोड़ व्यक्ति बसे हुए हैं । ८६वीं मंजिल से दर्शकों को एक और यन्त्र १०२वीं मंजिल पर पहुँचा देता है जहाँ पर दर्शक संसार में सबसे अधिक ऊँचे भवन पर पहुँच जाता है । एम्पायर स्टेट की इमारत ऐसी है जिसे एक बार देख लेने पर कोई भी व्यक्ति उसे जीवन-पर्यन्त नहीं

७९. स्वतन्त्रता की मूर्ति, न्यूयार्क

८०–८१. संयुक्त राष्ट्र भवन दिन में श्रौर रात में न्यूयार्क
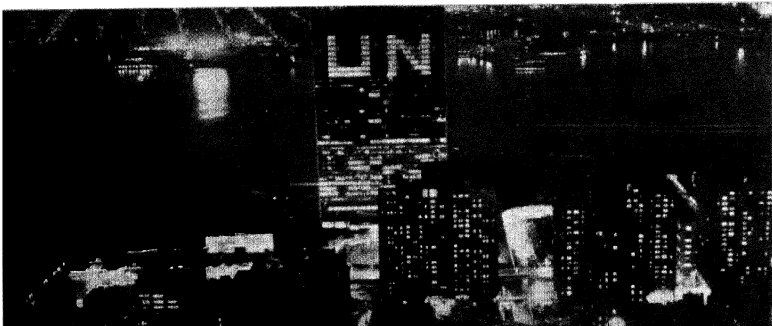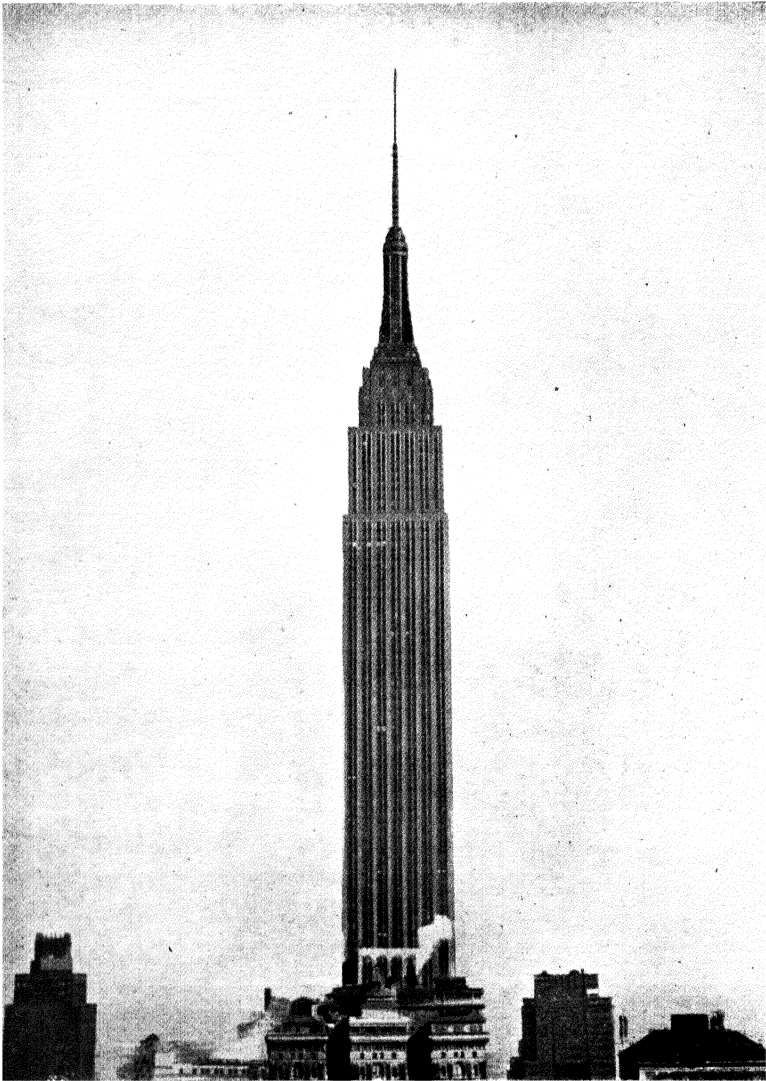
८२. एम्पायर स्टेट बिल्डिंग न्यूयार्क। यह मीनार नहीं, पर १०२ मंजिल की अनेक विशाल कमरों वाली संसार की सबसे ऊँची इमारत है । अपनी पड़ोसी इमारतों से यह कितनी ऊँची है, इसका पता इस चित्र से लग जाता है

भुला सकता (चित्र नं० ८२)।

लीवर ब्रदर्स की इमारत

न्यूयार्क नगर की नवीनतम और अत्यन्त आकर्षक कार्यालय-इमारत लीवर ब्रदर्स की है। यह इमारत काँच और धवल इस्पात की बनी हुई है। लीवर ब्रदर्स की शाखाएँ दुनियाँ के सभी भागों में पायी जाती हैं। इस कम्पनी के बने साबुन आदि संसार के सभी देशों में काम में आते हैं। लक्स और लाइफबॉय साबुन इसी कम्पनी के हैं।

इस इमारत को तीन अमेरिकी आर्कीटेक्टों ने वर्तमान रूप दिया। वास्तु-कला के विशेषज्ञों ने इस इमारत की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इमारत का निर्माण इस प्रकार किया गया है कि कार्य-क्षमता बढ़े, कर्मचारियों को आराम मिले और उन्हें सब प्रकार की सुविधा प्राप्त हो। इस कारखाने में १,२०० कर्मचारी काम करते हैं।

न्यूयार्क के अन्य गगन-चुम्बी प्रासादों की तुलना में लीवर ब्रदर्स की इमारत काफी नीची है, किन्तु सुन्दरता में यह अपूर्व है। इमारत में यन्त्रों की सहायता से डाक पहुँचाने की व्यवस्था है। हर मंजिल की डाक मशीनें यथास्थान पहुँचा देती हैं। सुविधा के अतिरिक्त इस व्यवस्था से दो-तिहाई समय की बचत हो जाती है। इस इमारत का निर्माण कर्मचारियों के लिए स्थान का प्रबन्ध करने के लिए तो हुआ ही है, विज्ञापन के लिए भी किया गया है। इमारत की सफाई बहुत-कुछ यन्त्रों की सहायता से आप से आप होती रहती है। समूची इमारत को दो व्यक्ति दो दिन के अन्दर साफ कर सकते हैं। नीले काँच की दीवालें जिनसे सूर्य की ३५ प्रतिशत गर्मी कम हो जाती है अन्दर से रंगहीन जान पड़ती हैं। सारी इमारत एअर कण्डीशन्ड है (चित्र नं० ८३)।

सार्वजनिक पुस्तकालय

इस महान् पुस्तकालय में सबसे बड़ी बात यह है कि यहाँ १२ लाख से अधिक सूचना प्राप्त करने की (रेफ्रेंस बुक्स) पुस्तकें और ३६,४३३ प्रकाशनों की सूचियाँ हैं जिससे सही सूचना पाने के इच्छुक व्यक्ति लाभ उठा सकते हैं। इस पुस्तकालय की स्थापना १८६५ में बड़े-बड़े निजी पुस्तकालय के विलय के परिणाम-स्वरूप हुई थी। इसकी तीन मंजिली इमारत १६११ में ६० लाख डालर के मूल्य पर बनी थी। सब मिलाकर पुस्तकालय के कर्मचारियों की संख्या २,६०० है। कुल पुस्तक-संख्या ४७ लाख है। इसके वाचनालय में ८०० व्यक्तियों के बैठने का स्थान है।

बृहत्तर न्यूयार्क का कोई भी निवासी सार्वजनिक पुस्तकालय से पुस्तकें ले सकता है। पुस्तकें लेने के लिए एक कार्ड होता है। इस कार्ड को लायब्रेरी की ६१ शाखाओं और उपशाखाओं में कहीं भी इस्तेमाल किया जा सकता है। इस

पुस्तकालय का उपयोग करने के लिए किसी तरह का शुल्क नहीं लिया जाता। पूछ-ताछ के लिए एक अलग दफ्तर है जहाँ लोगों के सैकड़ों प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है। पुस्तकालय की दूसरी इमारत पाँचवीं एवेन्यू की बयालीसवीं स्ट्रीट पर बनी हुई है। कई विदेशी भाषाओं की पुस्तकें भी इसमें मौजूद हैं। इसमें संगीत पुस्तकालय भी है और एक अंधे लोगों का पुस्तकालय भी है।

कोलम्बिया-विश्वविद्यालय

कोलम्बिया-विश्वविद्यालय विश्व-विख्यात् है। विदेशी विद्यार्थी अमेरिका में सबसे अधिक इसी विद्यालय में अध्ययन करते हैं। इनकी संख्या १८०० से अधिक ही रहती है। अनुमान है कि ५६ विभिन्न देशों के विद्यार्थी यहाँ आकर विद्याध्ययन करते हैं।

इस विश्वविद्यालय का इतिहास २०० वर्ष प्राचीन है। पहले यह एक कालिज के रूप में था। १८९७ के बाद यह लगभग ७० इमारतों में फैल गया। इस समय कोलम्बिया-विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की संख्या २५,००० से अधिक है। अमेरिकी जीवन पर इस विद्यालय का गहरा प्रभाव है। हजारों डाक्टर, इंजीनियर, पत्रकार, अध्यापक, राजनीतिज्ञ और वैज्ञानिक प्रतिवर्ष इस विद्यालय से निकलकर अमेरिका की सेवा तो करते ही हैं विदेशों में जाकर वहाँ के जीवन पर भी अपना प्रभाव डालते हैं। भारत के डाक्टर अम्बेडकर, जिन्होंने भारतीय संविधान की रचना में इतना योग दिया, इसी विद्यालय से दीक्षा लेकर आये हैं। यह अमेरिका का शायद सबसे बड़ा विश्वविद्यालय है (चित्र नं० ८४)।

राक फैलर सैंटर

राक फैलर सेंटर के १२ गगनचुम्बी प्रासादों से एक पूरा नगर बन गया है। यह नगर इस प्रकार विभक्त है—कार्यालय खंड, बाजार खंड, प्रदर्शिनी खंड और रेडियो एवं मनोरंजन खंड। राक फैलर सेंटर के पश्चिमी भाग में रेडियो-व्यवस्था का केन्द्रीकरण है। वहाँ आर. के. ओ. की इमारत है, रेडियो-सिटी का संगीत-भवन है, थियेटर-मंच है और नेशनल ब्राडकास्टिंग कम्पनी की इमारत आर. सी. ए. इमारत का विस्तार खंड है। बहुधा रेडियो-सिटी शब्द का प्रयोग समूचे राक फैलर सेंटर के लिए किया जाता है पर यह भूल है। रेडियो-सिटी राक फैलर सैंटर के पश्चिमी खंड को ही कहते हैं।

राक फैलर सेंटर की वास्तु-कला अत्यन्त सराहनीय है। उसमें भित्ति चित्र, मूर्ति-कला और धातु-कला आदि का मिश्रण है। आर. सी. ए. अर्थात् रेडियो कॉर्पोरेशन ऑफ़ अमेरिका की इमारत भी बड़ी आकर्षक है।

यहाँ पर राक फैलर फाउण्डेशन की भी कुछ चर्चा करना अनुपयुक्त न

८३. लीवर ब्रदर्स की इमारत
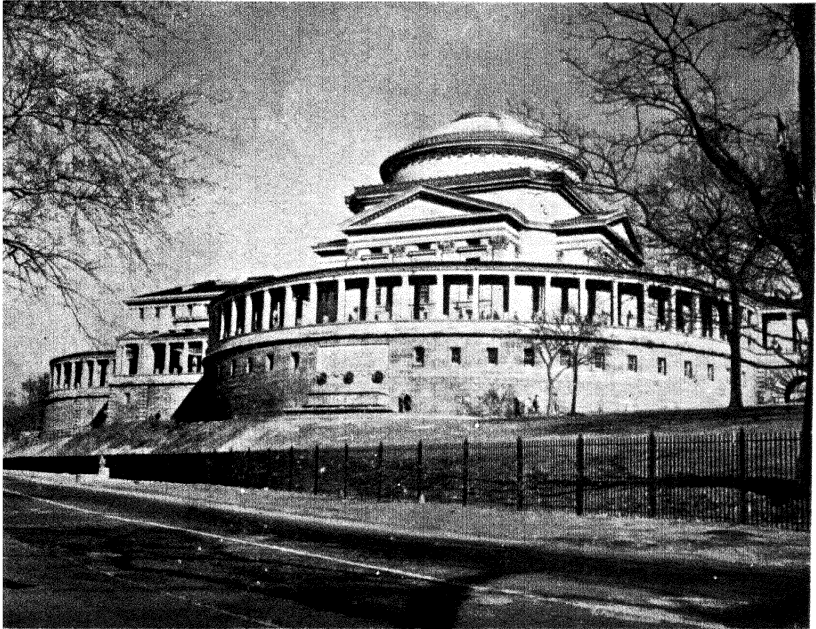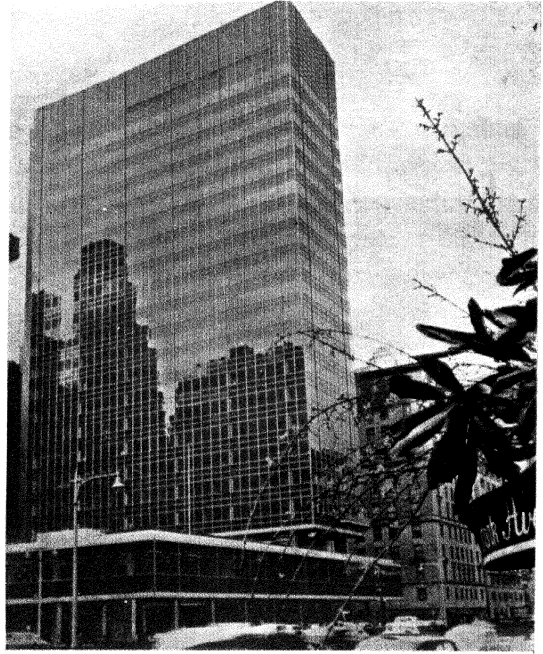
८४. कोलम्बिया विश्वविद्यालय के हॉल का बाहरी भाग
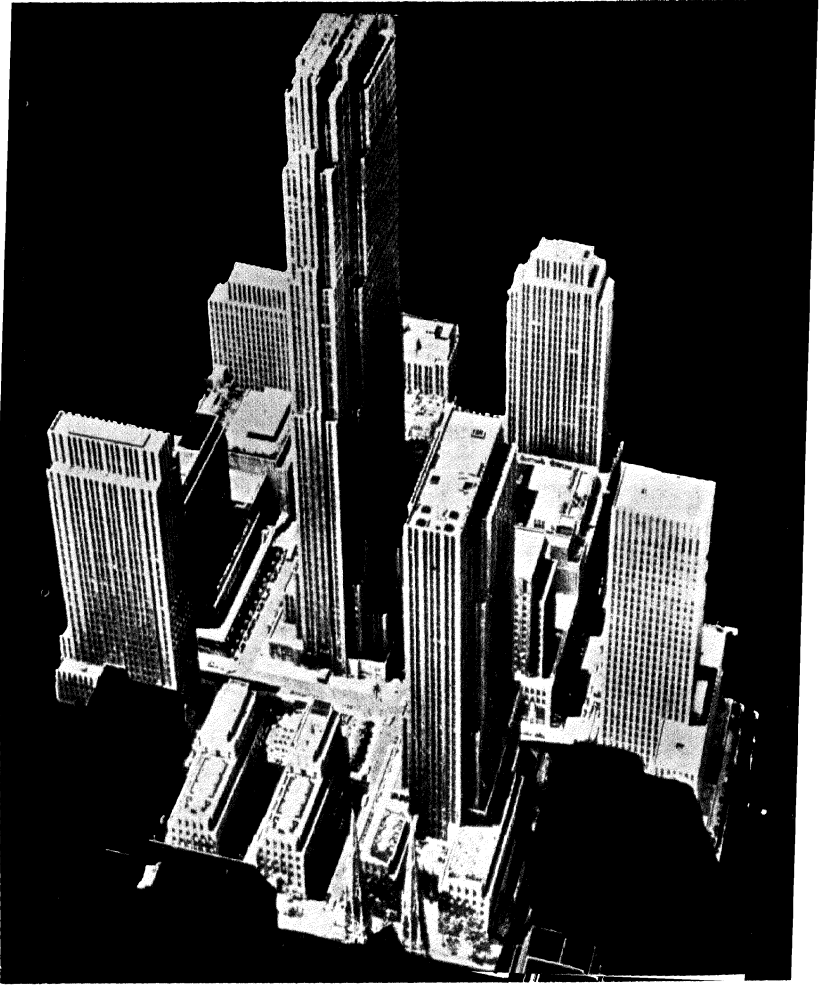
८५. ये खिलौने नहीं हैं, ये है राक फैलर सेंटर की १५ इमारतों का समूह। बीच की ऊँची इमारत ६० मंजिल की है

होगा। राक फैलर फाउण्डेशन की स्थापना १९१३ में हुई थी। इसका उद्देश्य संसार में मानव-कल्याण को प्रोत्साहन देना है। पिछले ४० वर्ष के समय में इस संस्था ने ४७½ करोड़ डालर के लगभग की सहायताएँ और अनुदान दिये हैं। यह संस्था भौतिक, बौद्धिक, कलात्मक, आध्यात्मिक और आरोग्य सम्बन्धी कार्यों के लिए सहायता देती है। इस फाउण्डेशन की स्थापना से पहले इसके संस्थापक जॉन राक फैलर ने तीन लोक-कार्य आरम्भ किये थे। इनके अनुभव से उनको यह आश्वासन हो गया कि समाज-कल्याण के लिए धार्मिक संस्थाओं की स्थापना आवश्यक है जो सत्कार्य के लिए अनुदान दे सके। आरम्भ में राक फैलर फाउण्डेशन की स्थापना २४ करोड़ १० लाख डालर से हुई थी। दूसरे महायुद्ध का इस संस्था पर विशेष प्रभाव हुआ। परिणाम यह हुआ कि १९५१-५२ में संस्था के कार्यक्रम में समयानुकूल परिवर्तन कर दिये गये (चित्र नं० ८५)।

कार्नेगी निधि

अमेरिका की एक और महत्त्वपूर्ण धर्मार्थ संस्था है कार्नेगी निधि। कार्नेगी अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिनिधि की स्थापना १९१० में अमेरिका के एक प्रसिद्ध इस्पात उद्योगपति एंड्यो कार्नेगी की १ करोड़ डालर की भेंट के फलस्वरूप की गयी थी। संस्था का उद्देश्य कार्नेगी की इच्छानुसार शान्ति-कार्य को प्रोत्साहन देना है। कार्नेगी का सिद्धान्त यह था कि युद्ध का शीघ्रातिशीघ्र उन्मूलन किया जाय जो कि हमारी सभ्यता पर सबसे बड़ा धब्बा है। १९४८ तक इसके तीन विभाग थे—शिक्षा-विभाग, अर्थशास्त्र और इतिहास-विभाग तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि-विभाग। पहले दो न्यूयार्क में थे और विधि-विभाग वाशिंगटन में था। १९४८ में विभाग-व्यवस्था समाप्त करके न्यूयार्क में केन्द्रीय व्यवस्था कायम की गयी। कुछ ही समय पहले यह संस्था न्यूयार्क शहर की एक नवीनतम ढंग की १२ मंजिली इमारत में चली गयी है। अब कार्नेगी फाउण्डेशन संयुक्त राष्ट्र की विभिन्न संस्थाओं के सहयोग से कार्य करता है। संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक और सामाजिक परिषद् की यह परामर्शदात्री संस्था है। अमेरिका के प्रेसीडेण्ट आइजनहावर और विदेश मंत्री श्री डलेस दोनों ही इसके ट्रस्टी बोर्ड के सदस्य रह चुके हैं।

वहाँ के अजायबघर

न्यूयार्क में चवालीस अजायबघर हैं। इतने अधिक अजायबघर कदाचित् ही संसार के किसी अन्य नगर में होंगे। इन ४४ अजायबघरों के अतिरिक्त गैर सरकारी संस्थाओं और कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के अजायबघर अलग हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण अजायबघरों के नाम इस प्रकार हैं—अमेरिकन एकेडेमी ऑफ़ आर्टस् एण्ड लैटर्स, अमेरिकन ज्याग्रेफिक सोसायटी, अमेरिकन म्यूजियम ऑफ़ नेचुरल हिस्ट्री, ब्रुकलिन म्यूजियम, ब्रुकलिन चिलरेन्स म्यूजियम, ग्रीन संट्रल आर्ट गैलरीज़, म्यूजियम

ऑफ़ माडर्न आर्ट, म्यूज़ियम ऑफ़ नोन ओबजेक्टिव पेंटिंग, मेट्रोपोलिटन म्यूज़ियम ऑफ़ आर्टस्।

इस अजायबघर में मिश्री, यूनानी, रोमन, सुदूरवर्ती, निकटवर्ती, यूरोपीय और प्राच्य-कला के अनेक नमूने हैं। अजायबघर की लाइब्रेरी में एक लाख से अधिक पुस्तकें और दो लाख से अधिक फोटोग्राफ हैं।

प्लेनेटेरियम

अमेरिका के हर प्रधान नगर में अब प्लेनेटेरियम अर्थात् ग्रह-दर्शन भवन की इमारत बन गयी है। यहाँ अन्धकार में बिजली के प्रकाश द्वारा भिन्न-भिन्न ग्रहों और नक्षत्रों की स्थिति और चाल का बड़े मनोरंजक ढंग से प्रदर्शन किया जाता है।

न्यूयार्क के नाटक

न्यूयार्क में हमने तीन नाटक देखे। इनके नाम थे—मून इज़ ब्ल्यू, पॉइण्ट ऑफ़ नो रिटर्न और साउथ पेसेफिक। पहला नाटक अमेरिका के वर्तमान जीवन का एक चलता-सा सुखान्त नाटक था और दूसरा भी वहीं के जीवन का एक कुछ गम्भीर-सा सुखान्त नाटक। इन दोनों नाटकों में मुझे कोई विशेषता न जान पड़ी। हाल ही में मैं लन्दन के भी कुछ नाटक देखकर आया था और उनमें भी मुझे कोई विशेषता न दिखी थी। अंग्रेजी नाटक मैंने शिमले में भी देखे थे और उनमें से कई मुझे बहुत पसन्द आये थे। मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे अंग्रेजी भाषा के रंगमंच का पतन हो गया है, पर जब मैंने तीसरा नाटक साउथ पेसेफिक देखा तब मैंने अपनी यह राय बदल दी। साउथ पेसेफिक नाटक के सदृश नाटक मैंने इसके पहले कभी न देखा था। यह नाटक एक सर्वांग सुन्दर नाटक था; एक नहीं अनेक विशेषताओं से भरा हुआ। इसके दृश्यों की महानता और भव्यता का मिलान केवल पेरिस के नाटकों से हो सकता था। फिर यदि पेरिस के उन नाटकों के दृश्य इससे भी अच्छे थे तो उनमें जो नाटकीय कथा का अभाव था उस अभाव की इसमें पूर्ति हो गयी थी। सुन्दर नाटकीय कथा थी, बड़ा अच्छा चरित्र-चित्रण, साथ ही उत्कृष्ट अभिनय, ऊँचे दर्जे के गान और एक गान गाने वाली महिला के साथ एक बालिका के मूक अभिनय ने तो कला के इस रुख को पराकाष्ठा को पहुँचा दिया था। सारे नाटक में किसी प्रकार की अश्लीलता का नामो-निशान न था। रस का भी नाटक में अच्छा परिपाक हुआ था। पर नाटक की कथा जिस प्रकार चली थी उसे देखते हुए नाटक को दुखान्त होना चाहिए था। ऐसे नाटक को सुखान्त करने के प्रयत्न को मैं तो आधुनिक अमेरिकनिज्म कहूँगा। इस प्रयत्न ने नाटक का स्वाभाविक अन्त नहीं होने दिया। पर जो कुछ हो, मैंने साउथ पेसेफिक एक ऐसा नाटक देखा जिसके दृश्यों, उनके परिवर्तन के ढंग और उन दृश्यों के प्रकाश की व्यवस्था अनुकरणीय थी। इतने पर भी जहाँ तक अभिनय और रस परिपाक का

सम्बन्ध है मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि भारत में श्री पृथ्वीराज कपूर का 'कलाकार' नाटक इस नाटक से भी आगे है। पृथ्वीराज के नाटकों में दृश्यों और प्रकाश की यदि ऐसी व्यवस्था जोड़ी जा सके और उन नाटकों में ऐसे सुन्दर संगीत का समावेश हो सके तो सोने में सुगन्ध हो जाय।

न्यूयार्क में हम लोगों ने व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने का भी प्रयत्न किया, जिसका लन्दन तक के दौरे में एक प्रकार से अभाव-सा रहा था। यहाँ हम सभी प्रकार के लोगों से मिले-भेंटे—कुछ भारतीयों से जो न्यूयार्क में रहते हैं तथा न्यूयार्क में इस समय आये हुए थे, कुछ अमेरिकनों से और कुछ अन्यों से भी।

सार्वजनिक भाषण न्यूयार्क में मेरे दो हुए—एक कोलम्बिया यूनिवर्सिटी के इंटर नेशनल हाउस में भारतीय संस्कृति पर और दूसरा गांधी-जयन्ती के दिन गांधी जी पर कम्युनिटी चर्च में। लन्दन के सदृश यहाँ भी भाषण के अन्त में प्रश्न पूछने की प्रथा है। पहले भाषण के पश्चात् प्रश्न भी पूछे गये। दोनों भाषण और पहले भाषण के पश्चात् के प्रश्नोत्तर सब अंग्रेजी भाषा में ही हुए। मैंने सुना कि ये भाषण और प्रश्नों के उत्तर लोगों को पसन्द आये।

न्यूयार्क का अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व

न्यूयार्क नगर कदाचित् दुनियाँ का सबसे बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र है। यहाँ प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति के लोग रहते हैं और अनेक आते-जाते रहते हैं। युनाइटेड नेशन्स का केन्द्र यहीं स्थापित होने से इस नगर का अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व और भी बढ़ गया है।

युनाइटेड नेशन्स की उत्पत्ति, उसका रूप और कार्य-प्रणाली

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के विषय में सबसे पहले डम्बार्टन ओक्स वाशिंगटन में ३१ अगस्त से ७ अक्तूबर १६४४ तक चर्चा की गयी। फिर पचास मित्रराष्ट्रों ने २५ अप्रैल से २६ जून १६४५ तक सेनफ्रान्सिस्को में संयुक्त राष्ट्र को मूर्त्त रूप दिया। पचास देशों ने संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्य-पत्र पर हस्ताक्षर किये।

संयुक्त राष्ट्र के चार उद्देश्य हैं—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बनाये रखना।

(२) समान अधिकारों और राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का सम्मान करते हुए विभिन्न देशों के बीच मित्र सम्बन्धों को प्रोत्साहन देना।

(३) आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानव-जाति सम्बन्धी सभी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सहयोग द्वारा निबटाना और मानव-अधिकारों के लिए और सबकी मूल स्वतन्त्रताओं के लिए सम्मान बढ़ाना।

(४) समान उद्देश्यों के लिए राष्ट्रों की कार्यवाहियों को संगठित करना।

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना २४ अक्तूबर १९४५ को हुई। तब से यह दिन प्रति-वर्ष संयुक्त राष्ट्र दिवस के रूप में मनाया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(१) संस्था के सभी सदस्य समान हैं।

(२) संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्य-पत्र के अधीन राष्ट्र अपने कर्तव्य ईमानदारी से पूरे करें।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े शान्ति के साथ निपटाये जायँ।

(४) संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों के विरुद्ध न तो किसी तरह के बल-प्रयोग की धमकी दी जाय और न बल-प्रयोग किया ही जाय।

(५) उद्देश्य-पत्र के अधीन संयुक्त राष्ट्र जो कार्यवाही करे सदस्य देश उसमें भरसक सहायता दें।

(६) संयुक्त राष्ट्र किसी भी राज्य के घरेलू मामले में दखल न दे, किन्तु जहाँ शान्ति को खतरा हो वहाँ यह व्यवस्था स्वीकार नहीं की जायगी।

संयुक्त राष्ट्र के लिए पूंजी सभी राष्ट्र जुटाते हैं। इस सम्बन्ध में निर्णय जनरल असेम्बली प्रति वर्ष करती है।

संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों के नाम इस प्रकार हैं—

अफगानिस्तान, अर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, बोलिविया, ब्राजील, बाइलोरुस्स, बर्मा, कैनेडा, चाइल, चाइना, कोलम्बिया, कोस्टा राइका, क्यूबा, चैकोस्लोवाकिया, डैनमार्क, डोमीनिकन रिपब्लिक, इक्वैडोर, मिश्र, इथिओपिया, फ्रांस, यूनान गाटमाला, हैटी, हौंडुरास, आइसलैंड, इसरायल, लैबनान, भारत, इंडोनीसिया, ईरान, ईराक, लाइबीरिया, लक्सेमबर्ग, मैक्सिको, नीदरलैंड्स, न्यूजीलैंड, नाइकरगुआ, नार्वे, पाकिस्तान, पनामा, परगुए.पेस्ट, फिलीपीन्स, पोलैंड, सैलवेडोर, साउदी अरब, स्वीडन, सीरिया, थाईलैंड, टर्की, यूक्रेन, दक्षिण अफ्रीका, यूनियन, रूस, ब्रिटेन, अफ्रीका, अरगूए, वेनेजुला, यूनान और यूगोस्लाविया।

संयुक्त राष्ट्र का झंडा नीला है, जिस पर सफेद ग्लोब का चित्र अंकित रहता है। इस चित्र में उत्तर ध्रुव दिखायी देता है और ग्लोब के दोनों ओर पत्तियों की दो बाहें-सी घिरी रहती हैं।

संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख अंग इस प्रकार हैं—

(१) जनरल असेम्बली अर्थात् महासभा;

(२) सिक्योरिटी कौंसिल अर्थात् सुरक्षा परिषद्,

(३) इकोनोमिक एण्ड सोशल कौंसिल अर्थात् आर्थिक और सामाजिक परिषद्;

(४) ट्रस्टीशिप कौंसिल अर्थात् संरक्षा परिषद्;

(५) इंटरनेशनल कोर्ट ऑफ़ जस्टिस अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय; और

(६) संयुक्त राष्ट्र का प्रधान कार्यालय जो न्यूयार्क में है।

संयुक्त राष्ट्र की महासभा संयुक्त राष्ट्र की प्रमुख संस्था है। इसमें सभी सदस्य देशों के प्रतिनिधि भाग लेते हैं, किसी भी देश के अधिक से-अधिक प्रतिनिधियों की संख्या ५ हो सकती है, लेकिन प्रत्येक देश को एक ही वोट प्राप्त है। महासभा की वर्ष में एक बार यानी सितम्बर में बैठक होती है। इसके अतिरिक्त उसका विशेष अधिवेशन भी बुलाया जा सकता है। महत्त्वपूर्ण मामलों पर निर्णय दो-तिहाई बहुमत से होते हैं। साधारण महत्त्व के मामलों पर केवल सामान्य बहुमत ही यथेष्ट होता है।

सुरक्षा परिषद् के ग्यारह सदस्य हैं, जिनमें से ५ स्थायी हैं और शेष ६ महासभा द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। इसका काम शान्ति और सुरक्षा बनाये रखना है। परिषद् ऐसे सभी मामलों की जाँच करती है, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष होने की आशंका हो।

सुरक्षा परिषद् का अधिवेशन सारे वर्ष रहता है और दो सप्ताह में इसकी एक बैठक हो जाती है। सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य देशों के नाम इस प्रकार हैं—चीन, फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका और रूस।

आर्थिक और सामाजिक परिषद् मे अठारह सदस्य हैं। इसका उद्देश्य है अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को सुलझाना।

सुरक्षा परिषद् ने उन प्रदेशों के विकास का काम अपने ऊपर ले रखा है जो पहले राष्ट्रसंघ अर्थात् लीग ऑफ़ नेशंस के संरक्षण में थे अथवा जो द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त शत्रु देशों से प्राप्त किये गये।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय हेग में है। इसमें पन्द्रह जज होते हैं, जिन्हें महासभा और सुरक्षा परिषद् में स्वतन्त्र मतदान द्वारा चुना जाता है।

संयुक्त राष्ट्र की विशिष्ट संस्थाएँ इस प्रकार हैं—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संस्था;

(२) खाद्य और कृषि संस्था;

(३) शिक्षा, विधान और संस्कृति संस्था;

(४) अन्तर्राष्ट्रीय विमान संचालन संस्था;

(५) विश्व बैंक;

(६) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष;

(७) विश्व स्वास्थ्य संस्था;

(८) अन्तर्राष्ट्रीय डाक संघ;
(९) अन्तर्राष्ट्रीय सुदूर संचार संघ;
(१०) अन्तर्राष्ट्रीय शरणार्थी संस्था;
(११) विश्व वेधशाला;
(१२) अन्तर राज्य नौ-परिवहन परामर्श संस्था;
(१३) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संस्था।

न्यूयार्क अमेरिकन पूंजी का सबसे बड़ा केन्द्र है। अमेरिका के सबसे प्रसिद्ध बेंक, उद्योग और व्यापार के अधिकांश कार्यालय न्यूयार्क के वाल स्ट्रीट और उसके आसपास के हिस्से में स्थित हैं। न्यूयार्क में जिन लोगों से भेंट हुई उनमें कई तरह के लोग थे, जिनका जीवन भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से सम्बद्ध था। अमेरिकन पूंजी के प्रतिनिधियों से भेंट करने का मेरा कोई इरादा नहीं था, किन्तु जगमोहनदास को अमेरिकन पूंजी के भारत में उपयोग से कुछ दिलचस्पी थी और इसीलिए उन्होंने प्रसिद्ध अमेरिकन बेंकों के कुछ प्रतिनिधियों से मुलाकात की। वाल स्ट्रीट पर ही अधिकांश बेंकों के कार्यालय हैं। अत्यधिक ऊँची और भव्य इमारतों में ये स्थित हैं। कुछ इमारतें तो पचास से भी अधिक मंजिलों की हैं। प्रत्येक इमारत एक छोटा-मोटा मुहल्ला मालूम होती है। उसमें नीचे की मंजिलमें कुछ दूकानें भी रहती हैं, जिनमें आवश्यकता का सारा सामान मिलता है। अनेकों लिफ्ट रहते हैं। कुछ विश्राम करने की जगह, सार्वजनिक टेलीफोन, टायलेट-रूम इत्यादि सभी की व्यवस्था रहती है। इन इमारतों से अमेरिका के व्यापारिक और औद्योगिक जीवन का सूत्र संचालन होता है। इन इमारतों के एअर कंडीशण्ड भव्य और सजे हुए कमरों में अमेरिकन जीवन के अधिकांश उत्पादन और व्यापारिक कार्यों की योजना बनती है और उसे कार्य रूप में परिणत करने के प्रयत्न का निरीक्षण होता है। यहाँ जो लोग कार्य करते हैं अधिकांशतः उनमें भावनाओं का अभाव रहता है; यदि अभाव न भी रहता हो तो कम-से-कम भावनाएँ उनके कार्यों को प्रभावित नहीं करतीं। आज यदि पूंजी लगाने का प्रश्न आयगा तो उसे यहाँ केवल उसकी लाभ-हानि की दृष्टि से देखा जायगा। सर्वप्रथम तो उसे संयुक्त राष्ट्र में लगाने का प्रयत्न होगा फिर यदि किन्हीं कारणों से संयुक्त राष्ट्र में लगाना सम्भव न हो तो फिर दुनियां के किसी ऐसे देश में वह लगायी जायगी जहां से वह अधिक-से-अधिक कमाई कर सके। केवल इसी दृष्टिकोण से पूँजी लगायी जाती है और किसी भी दृष्टिकोण से नहीं। यहाँ के लोगों का यह विश्वास है संसार की आर्थिक उन्नति निजी उद्योग के द्वारा ही हो सकती है। निजी उद्योगों पर किसी तरह का कोई नियंत्रण नहीं होना चाहिए। नियंत्रण से उद्योगों की कुशलता में अन्तर पड़ जाता है। किसी भी उद्योग की ठीक सफलता और जनसाधारण के लिए उसका

८६. न्यूयार्क की वाशिंगटन यादगार। मूर्ति के पास लेखक और घनश्यामदास खड़े हैं
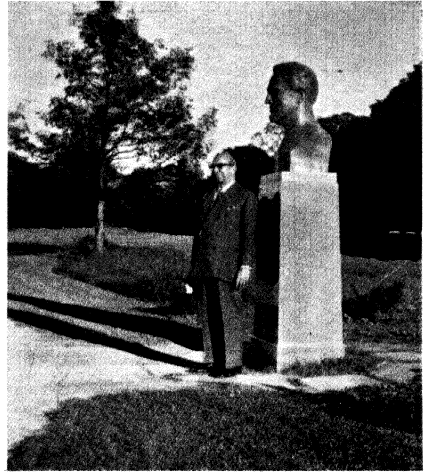
८७. न्यूयार्क में रूज़वैल्ट यादगार में रुज़वैल्ट की मूर्ति के सामने लेखक
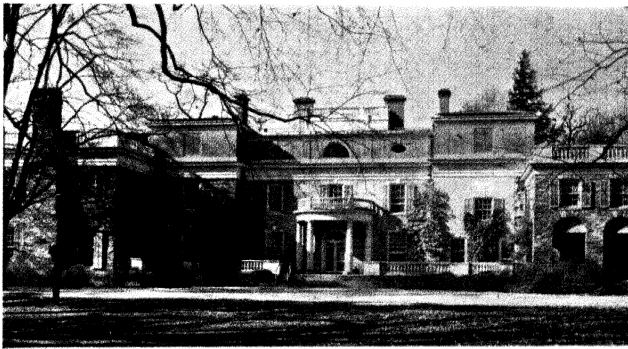
८८. रूज़वैल्ट यादगार का बाहरी दृश्य
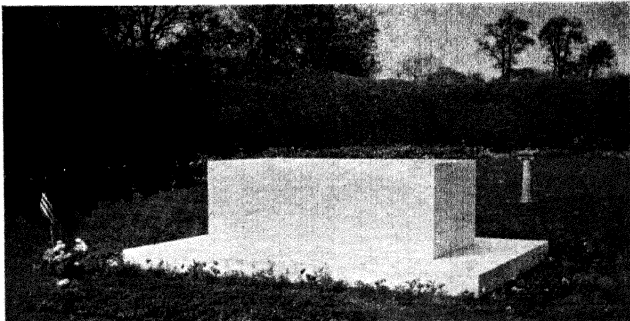
८९. रुज़वैल्ट की कब्र

९०. न्यूयार्क में सार्वजनिक पुस्तकालय का रीडिंग रूम

९१. वाशिंगटन के काँग्रेस-पुस्तकालय का रीडिंग रूम

सच्चा उपयोग तभी हो सकता है जब अनेक उद्योगों की एक ही दिशा में होड़ हो। बिना होड़ के उद्योगों में कुशलता नहीं आती और बिना कुशलता के जनसाधारण की अच्छी सेवा नहीं हो सकती। अमेरिका का औद्योगिक जीवन इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन के प्रारम्भिक सिद्धान्तों को अब तक प्रधान महत्त्व देता है और उन्हीं की भित्ति पर आधारित है। आडमस्मिथ ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन 'वेल्थ ऑफ़ नेशन्स' में किया था। अमेरिका के उच्चकोटि के उद्योगपति उन सिद्धान्तों को अब तक मानते हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों मे वेलफेअर स्टेट के सिद्धान्तों को अमेरिकन व्यवस्था में कुछ थोड़ी-बहुत मान्यता मिली है, किन्तु यह मान्यता आधारभूत सिद्धान्तों के रूप में न होकर केवल जनसाधारण को कुछ सहूलियतें देने के दृष्टिकोण से मिली हैं।

न्यूयार्क से रवाना होने के पहले हमने न्यूयार्क की वाशिंगटन की और रूजवैल्ट की यादगार में जाकर उन दोनों महापुरुषों को नमन किया (चित्र नं० ८५ से ८६)।

२२

अमेरिका-उद्धारक के नगर में

हम लोग ७ अक्टूबर को हवाई जहाज से वाशिंगटन पहुँचे। वाशिंगटन में हमारे ठहरने का प्रबन्ध भारतीय दूतावास ने एक मध्यम श्रेणी के परन्तु सम्माननीय चेसलटन नामक होटल में किया था। यद्यपि यह होटल बहुत शानदार नहीं था, परन्तु हर प्रकार से सुविधाजनक था और भारत से आनेवाले यात्री प्रायः यहीं ठहरा करते हैं।

होटल में सामान आदि जमा भारतीय दूतावास के श्री प्रेम कपूर की सलाह से हमने वाशिंगटन का कार्यक्रम तैयार किया। वाशिंगटन के दर्शनीय स्थानों को देखने के तथा यहाँ के कुछ प्रतिष्ठित सज्जनों से मिलने के अतिरिक्त मुझे यहाँ एक तो यहाँ के हावर्ड विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति पर भाषण देना था, दूसरे दो आकाशवाणी की संस्थाओं में से एक में अमेरिका में मैंने क्या देखा इस पर तथा दूसरी में महात्मा गांधी के ऊपर इस प्रकार दो मुलाकातें देनी थीं। कार्यक्रम को पूरा निश्चित रूप देने के लिए दूसरे दिन प्रातःकाल भारतीय दूतावास में जा वहाँ कुछ अन्य पदाधिकारियों से मिलने का निर्णय हुआ।

वाशिंगटन में भारतीय दूतावास की दो इमारतें हैं—एक जहाँ दूतावास का दफ्तर है और दूसरी जहाँ भारत के राजदूत रहते हैं। अमेरिका के नये भारतीय राजदूत श्री गगनबिहारी मेहता हाल ही में अमेरिका आये थे, पर मैक्सिको गये हुए थे। दूसरे दिन प्रातःकाल भारतीय दूतावास के दफ्तर में मै श्री मेहता के मातहत श्री बहादुरसिंह जी तथा दफ्तर के कुछ अन्य पदाधिकारी श्री पृथ्वीसिंह, श्री रसगोत्रा, प्रो० सुन्दरम् आदि से मिला। मुझे तो वाशिंगटन के भारतीय दूतावास के अधिकारी बड़े ही अच्छे और अपने-अपने विषयों को भली भाँति समझनेवाले व्यक्ति जान पड़े। श्री बहादुरसिंह जी के सदृश भले आदमी तो भारतीय सरकार के पास इने-गिने ही होंगे। यहाँ मेरे वाशिंगटन के कार्यक्रम को निश्चित रूप दिया गया। इस कार्यक्रम में श्री बहादुरसिंह द्वारा दिया जानेवाला एक भोज, यहाँ की सरकार के वैदेशिक विभाग

द्वारा दिया जानेवाला एक भोज और श्री गगनबिहारी मेहता द्वारा दी जानेवाली एक चाय-पार्टी भी सम्मिलित की गयी। श्री मेहता यहाँ ता० १० को लौटने वाले थे और इस पार्टी का प्रबन्ध पहले से ही कर गये थे। इसका कारण कदाचित् यह भी था कि मेहता के पिता श्री लल्लूभाई सांवलदास से मेरे ताऊ बल्लभदास जी का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था और श्री मेहता की और मेरी भी घनिष्ठता बहुत कम न थी। जब हमारे कार्यक्रम को निश्चित रूप दिया गया तब हमें मालूम हो गया कि हमारा जो विचार वाशिंगटन में चार दिन ठहरने का था वह समय यहाँ के लिए पर्याप्त नहीं है और हमें यहाँ कम-से-कम एक सप्ताह ठहरना होगा, अतः हमने वाशिंगटन से १४ अक्तूबर को चलना निश्चित किया।

ता० ८ के तीसरे पहर से ही हमारा वाशिंगटन का कार्यक्रम आरम्भ हो गया।

वाशिंगटन और न्यूयार्क में उतना ही अन्तर है जितना कलकत्ता, बम्बई और नयी दिल्ली में। चूँकि हम अभी १८ दिन न्यूयार्क के महान् हो-हल्ले में रहकर आये थे इसलिए हमें वाशिंगटन और न्यूयार्क का यह अन्तर बहुत अधिक जान पड़ा; न्यूयार्क की अपेक्षा वाशिंगटन कितना अधिक शान्त था। फिर न्यूयार्क के गगन-चुम्बी प्रासादों। सदृश ऊँचे-ऊँचे न यहाँ मकान थे और न वैसी सड़कें। कुछ सुन्दर और भव्य सरकारी इमारतें, अमेरिका के राष्ट्र-कर्मी नेताओं की यादगार आदि ही यहाँ की सब से आकर्षक वस्तुएँ हैं। वाशिंगटन का रूप और वहाँ का वायुमंडल नयी दिल्ली से बहुत-कुछ मिलता है।

हमने वहाँ क्या-क्या देखा ?

(१) अमेरिका की धारा-सभा के भवन;
(२) कुछ सरकारी दफ्तर;
(३) काँग्रेस लायब्रेरी;
(४) व्हाइट हाउस जहाँ अमेरिका के राष्ट्रपति रहते हैं;
(५) वाशिंगटन का स्मारक;
(६) इब्राहीम लिंकन का स्मारक;
(७) जैफरसन का स्मारक; और
(८) एक अनजाने सैनिक की समाधि।

इनमें से कुछ का विवरण इस प्रकार है—

(१) अमेरिका के संसद्-भवन का नाम कैपीटल है। इस भवन के निर्माण के सम्बन्ध में सर्वोत्तम नमूना तैयार करने वाले के लिए अमेरिकन संसद् अर्थात् कांग्रेस ने प्रतियोगिता की थी। यह प्रतियोगिता डाक्टर विलियम थोर्नटन ने जीती। १७६३

में यह इमारत बननी प्रारम्भ हो गयी थी। नवम्बर १८०० को इस इमारत के उत्तरी भाग में अमेरिका की संसद् की पहली सभा हुई (चित्र नं० ६२)।

यह इमारत ७५० फुट लम्बी और ३७५ फुट चौड़ी है। इमारत साढ़े तीन एकड़ जमीन पर बनी हुई है। इमारत और मैदानों का इलाका ५८'८ एकड़ है।

संसद्-भवन की गुम्बद लोहे व इस्पात की बनी हुई है और ऊपर से सफेद पोत दी गयी है। गुम्बद की उँचाई २८५ फुट है। इसके ऊपर १६ फुट ऊँची स्वतन्त्रता-देवी की मूर्ति बनी हुई है।

संसद्-भवन अत्यन्त भव्य है।

अमेरिका की धारा-सभा का हॉल संसार में सबसे बड़ा है। इसकी लम्बाई १३६ फुट, चौड़ाई ६३ फुट और उँचाई ३० फुट है। इसकी नींव ४ जुलाई १८५१ को प्रेसीडेंट फिलमोर ने रक्खी थी और १६ दिसम्बर १८६७ को यह तैयार हो गयी थी। अध्यक्ष के बैठने का आसन संगमरमर का बना है। इसके एक ओर वाशिंगटन का चित्र टँगा हुआ है और दूसरी ओर लफायत का। अध्यक्ष के आसन के सामने प्रतिनिधियों की कुर्सियाँ है जिन के सामने डैस्क नहीं हे।

सैनेट का नया हॉल १८५६ मे बना। सैनेट का अध्यक्ष उपराष्ट्रपति होता है। यह हॉल ११३ फुट लम्बा, ५० फुट चौडा और ३६ फुट ऊँचा है।

(२) सुप्रीम कोर्ट का दफ्तर—रोम के न्याय-मन्दिर की तरह ही अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट की इमारत है। यह इमारत कैपीटल के मैदान के सामने ही बनी हुई है। इसे १६३५ मे पूरा किया गया है। इसकी लम्बाई ३८५ फुट और चौड़ाई ३०४ फुट है। इमारत यूनानी ढंग की कला पर बनी हुई है। अमेरिका के राष्ट्रपति सीनेट की सलाह और अनुमति से सुप्रीम कोर्ट के नौ न्यायाधीश, एक मुख्य न्यायाधीश और आठ संयुक्त न्यायाधीश नियुक्त करते हे। ये आजीवन इन पदों पर काम करते रहते हे।

अमेरिका के न्याय-विभाग की इमारत को जिसे हमने देखा फैडरल ब्यूरो ऑफ़ इन्वेस्टिगेशन कहा जाता है। यहां पर लोगों को अँगुलियों के निशान आदि पहचानने की और अपराधियों को ढूँढ़ने के लिए अन्य कुशल उपायों की शिक्षा दी जाती है। यहाँ पर एक प्रयोगशाला भी है।

विदेशी विभाग की इमारत इक्कीसवीं स्ट्रीट और वर्जीनिया एवेन्यू पर बनी हुई है। इसके निर्माण पर २३ करोड़ डालर खर्च हुआ था। पहले इसे युद्ध विभाग के अधिकारियों का निवास-स्थान बनाने के उद्देश्य से बनाया गया था। यह इमारत अमेरिका की राजनैतिक हलचल का केन्द्र है। संसार में होनेवाली अनेक घटनाओं को अमेरिका के विदेश मन्त्री और उनके कर्मचारी यहाँ बैठे हुए प्रभावित करते है।

अमेरिका के वित्त विभाग की इमारत चार मंजिली है। इसमें यूनानी ढंग के स्तम्भ हैं। इमारत के उत्तरी ओर एलवर्ट गैलाटिन की मूर्ति बनी हुई है। कैपीटल और व्हाइट हाउस को छोड़ वाशिंगटन की यह सबसे प्राचीन इमारत है।

(३) अमेरिकी संसद् की लाइब्रेरी संसार के सर्वोत्तम पुस्तकालयों मे से है। वहाँ ८५ लाख से अधिक पुस्तकें संगृहीत है और एक करोड़ दस लाख से अधिक हस्त-लेख है। अमेरिकी इसे अपनी राष्ट्रीय लाइब्रेरी मानते हैं।

संसद् लाइब्रेरी की स्थापना १८०० में हुई थी। १८१२ के अग्निकांड में लाइब्रेरी लगभग स्वाहा हो गयी थी। १८५१ में फिर आग लगने से उस समय की कुल ५५,००० पुस्तकों में से दो-तिहाई जलकर राख हो गयीं।

नयी संसद् लाइब्रेरी की इमारत १८८६ में बननी आरम्भ हुई और १८९७ में तैयार हुई। इसके निर्माण-कार्य पर एक करोड़ अस्सी लाख डालर से अधिक खर्च हुआ।

(४) अमेरिका के राष्ट्रपति का निवास-स्थान व्हाइट हाउस अमेरिका की संसद् की इमारत के उत्तर-पश्चिम में कोई डेढ़ मील दूर है। वहाँ का प्राकृतिक दृश्य बड़ा मनोहर है और लगभग अस्सी प्रकार के वृक्षों से सुशोभित है। व्हाइट हाउस का डिजाइन अमेरिका के राष्ट्रपति क्लार्ड फलमोट ने तैयार करवाया था।

राष्ट्रपति-भवन की लम्बाई १७० फुट है और चौड़ाई ८५ फुट है। यह एक दो मंजिली इमारत है। कहा जाता है कि इस इमारत के निर्माण का पत्थर राष्ट्रपति वाशिंगटन ने रखा था, किन्तु इतिहास के अनुसार वाशिंगटन उस समय अन्य कार्यों में व्यस्त थे। १८०० में इस भवन में निवास करनेवाले सबसे पहले राष्ट्रपति श्री जॉन एडम्स थे। उसके बाद से तो यह भवन बराबर ही अमेरिका के राष्ट्रपतियों का निवास-स्थान रहता चला आया है।

अनुमान है कि इस इमारत को देखने के लिए प्रतिवर्ष लगभग दस लाख दर्शक पहुँचते हैं।

इस भवन में ईस्ट रूम नामक हॉल सबसे बड़ा है। उसकी लम्बाई ८७॥ फुट और चौड़ाई ४५ फुट है। छत पर पलस्तर हो रहा था। उसकी उँचाई २२ फुट है।

जलपान-गृह राष्ट्रपति-भवन का दूसरे नम्बर का सबसे बड़ा कमरा है।

राष्ट्रपति के भेंट करने का नीला कमरा सारे व्हाइट हाउस में सबसे अधिक सुन्दर है। यह अण्डाकार बना हुआ है। यहाँ पर अधिकांश नीले रंग के कपड़े और पर्दे आदि का प्रयोग हुआ है।

इसके अतिरिक्त वहाँ के हरे और लाल कमरे भी दर्शनीय है।

(५) वाशिंगटन स्मारक का उच्च स्तम्भ मीलों दूर से संसद्-भवन के शिखर और लिंकन स्मारक के बीच आकाश में उठा हुआ दिखायी देता है। इसकी उँचाई ५५५ फुट ५$\frac{1}{8}$ इंच है। यह स्मारक सफेद पत्थर का शहतीर जैसा है, जिसके ऊपरी छोर पर एल्यूमीनियम की नोक बनी है। भूमि पर इसकी दोनों भुजाएँ ५५ फुट की हैं और इसका आकार चौकोर है। दीवारों की मोटाई १५-१५ फुट है। ऊपर जाकर भुजाएँ ३४ फुट ५$\frac{1}{8}$ इंच की रह गयी हैं और दीवार की मोटाई १$\frac{1}{2}$ फुट रह गयी है। यद्यपि इस स्मारक को बनाने का सुझाव वाशिंगटन के जीवन-काल में ही रखा गया था, किन्तु उन्होंने कहा कि मेरे जीवन-काल में ऐसा कुछ नहीं होना चाहिए। यद्यपि इस स्मारक का निर्माण-कार्य जुलाई १८४८ में आरम्भ हुआ, किन्तु १८८४ से पहले इसे पूर्ण न किया जा सका। वाशिंगटन की मृत्यु १७९९ में हुई थी और अब तक उसे ८५ वर्ष हो चुके थे (चित्र नं० ९३)।

(६) लिंकन के स्मारक के साथ दुनियाँ के किसी भी स्मारक की तुलना नहीं की जा सकती। यह अत्यन्त सुन्दर इमारत है। इसे देखकर दर्शक आश्चर्यचकित रह जाता है। रात्रि के समय जब विद्युत से प्रकाशित इस स्मारक की परछाईं उस लम्बे ताल में दिखलायी देती है जो इस स्मारक और वाशिंगटन स्मारक के बीच बना हुआ है तो हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। इस स्मारक में मुक्ति-दूत लिंकन की एक विशालकाय मूर्ति है। रात्रि के समय जब गहरा विद्युत-प्रकाश इस मूर्ति पर पड़ता है तो वह सजीव-सी हो उठती है। लिंकन की यह मूर्ति कुर्सी पर बैठी हुई दिखायी गयी है (चित्र नं० ९४ से ९५)।

(७) जैफरसन का स्मारक ३० लाख डालर की लागत पर बनकर तैयार हुआ है। जैफरसन अमेरिका के तीसरे राष्ट्रपति थे। यह स्मारक जैफरसन के प्रति अमेरिकी जनता की कृतज्ञता का प्रतीक है। जैफरसन का स्मारक एक वृत्ताकार कमरे के रूप में बना हुआ है। इसकी चौड़ाई ८२ फुट है और उँचाई ९१ फुट। मध्य भाग जैफरसन की कांसे की एक मूर्ति है। काँसे की १८ फुट ऊँची यह मूर्त्ति ७ फुट ऊँचे एक चबूतरे पर खड़ी की गयी है (चित्र नं० ९६)।

हमने यहाँ एक ऐसा नाटक देखा जिसके मंच के चारों ओर दर्शकों के बैठने का स्थान था और रंगमंच ऐसा था जिसमें न नेपथ्य था और न किसी प्रकार के पर्दे थे। रंगमंच पर एक किसान के घर का दृश्य दिखाया गया था, पर पर्दे पर नहीं। अमेरिका के किसान के घर का एक कोठा, दालान, उसके दरवाजे और खिड़कियाँ लकड़ी के सांकेतिक टुकड़ों से दर्शाये गये थे। फर्श पर सोने का पलँग, उस पर बिस्तर, कुछ भद्दी-सी कुर्सियाँ, मोढे, टेबिल, आदि रखी थीं। रसोई बनाने और खाने के कुछ बर्तन तथा गृहस्थी का अन्य कुछ सामान भी था। सारा नाटक इसी मंच पर हुआ। जब

९२. राष्ट्रीय राजधानी भवन; वाशिंगटन

९३. वाशिंगटन की यादगार; वाशिंगटन। प्रफुल्लित चैरी के वृक्षों के बीच रात्रि का दृश्य
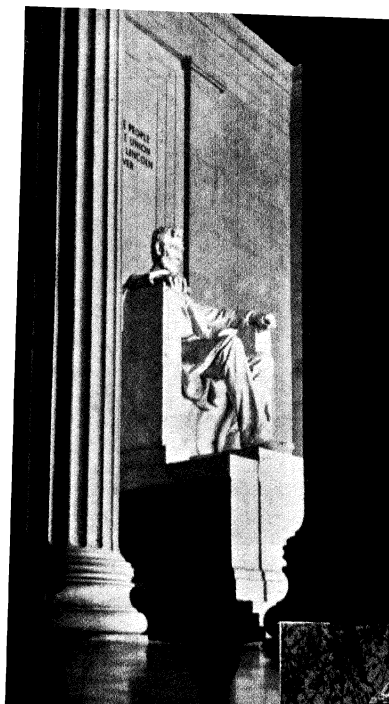
९४. इब्राहीम लिंकन की यादगार में इब्राहीम लिंकन की पाषाण-मूर्ति; वाशिंगटन

९५. इब्राहीम लिंकन की यादगार का बाहरी भाग; वाशिंगटन
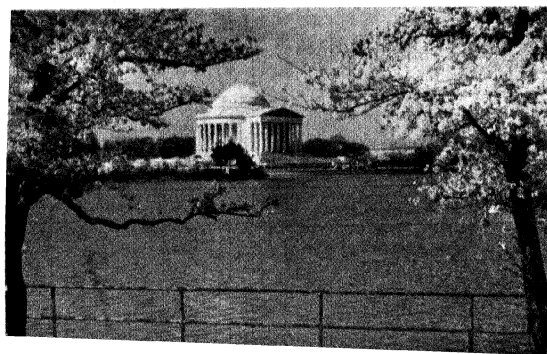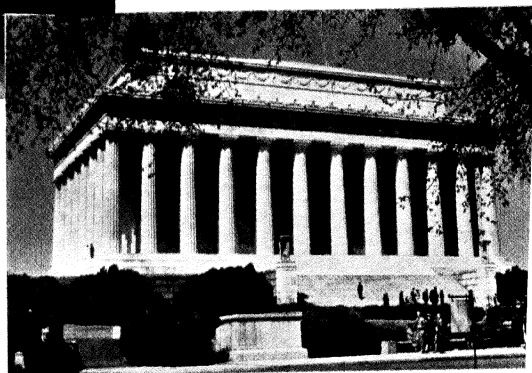
९६. जैफरसन यादगार; वाशिंगटन। चैरी फूली है

दृश्य बदलता पूरे नाटकघर में अँधेरा हो जाता और जब फिर प्रकाश होता तब उस दृश्य में काम करनेवाले नट मंच पर अपना काम करते दिखायी पड़ते। ऐसे रंगमंच पर अमेरिका के प्रसिद्ध नाटककार श्री यू. जी. श्रो. नील का एक नाटक खेला गया। श्री नील को नोबल प्राइज भी मिल चुकी थी और मैं उनका यह नाटक पहले पढ़ चुका था। नाटक अच्छी तरह खेला गया। अभिनय अच्छा और स्वाभाविक था। पर सबसे बड़ी विशेषता थी रंगमंच की। यदि अपने देश में हमें नाट्य-कला को गाँवों में पहुँचाना है तो इस प्रकार के रंगमंच हमारे देश के लिए बड़े उपयोगी सिद्ध होंगे।

हावर्ड विश्वविद्यालय, जहाँ मेरा भारतीय संस्कृति पर भाषण होने वाला था, हब्शियों का विश्वविद्यालय है। इसके सभापति हब्शी है, इसके कार्यकर्त्ता भी अधिकांश हब्शी हैं और विद्यार्थियों में भी हब्शियों की ही अधिक संख्या है।

हावर्ड विश्वविद्यालय अमेरिका में हब्शियों का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय है। इसके विद्यार्थियों की संख्या दो हजार है। यह विश्वविद्यालय मंत्रियों के प्रशिक्षण स्कूल के लिए प्रसिद्ध है। विश्वविद्यालय ज्योर्जिया एवेन्यू के पूर्व में बना हुआ है।

यहाँ मेरा भाषण हुआ। उपस्थिति काफी थी, फिर जो लोग श्रोताओं के रूप में आये थे उन्हें भारत और भारतीय संस्कृति से बड़ा अनुराग जान पड़ा। भाषण के पश्चात् यहाँ की प्रथा के अनुसार प्रश्न पूछे गये। बाद में जो सूचनाएँ मुझे मिलीं उनसे मालूम हुआ कि भाषण और प्रश्नों के उत्तर वहाँ के लोगों को पसन्द आये। मेरा भाषण, प्रश्नों के उत्तर और यहाँ की सारी कार्यवाही अंग्रेजी भाषा में हुई।

आकाशवाणी की मेरी दोनों मुलाकातें तो वाशिंगटन की चर्चा का बहुत समय तक एक विषय बना रहा। इन मुलाकातों के सम्बन्ध में तो मेरे पास भारत में भी कई पत्र आये और अभी भी आते हैं।

२३

इस सर्वश्रेष्ठ देश में हम और जहाँ गये

अमेरिका हम सैन्फ्रान्सिस्को से छोड़ने वाले थे और सैन्फ्रान्सिस्को छोड़ने के पहले रास्ते में जितने अधिक-से-अधिक स्थान और महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ देख सकते थे, उन्हें देख लेना चाहते थे। कैनेडा में होने वाली कामनवेल्थ पार्लियामेन्टरी कान्फ्रेन्स की तारीखें निश्चित होने के कारण यूरोप में तो हम एक महीने से अधिक न ठहर सकते थे, पर यहाँ के लिए कोई ऐसा बन्धन न था। अत: वाशिंगटन से रवाना होकर हमने नीचे लिखे स्थानों को जाना और निम्नलिखित वस्तुओं को देखना तय किया तथा इसी के अनुसार अपना कार्यक्रम बना हवाई जहाज से यात्रा के टिकिट बनवाये—

(१) बफलो जाकर नाइग्रा के जल-प्रपात।

(२) डिट्रायट जाकर फोर्ड का प्रसिद्ध मोटर कारखाना।

(३) शिकागो जाकर शिकागो नगर और वहाँ के दो प्रसिद्ध अजायबघर—म्यूजियम ऑफ साइन्स एण्ड इण्डस्ट्री तथा म्यूजियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री।

(४) डेनवर जाकर वहाँ के चारों ओर का प्राकृतिक सौन्दर्य।

(५) लासेंजल्स जाकर वहाँ के हालीवुड की स्टूडियो।

(६) सैन्फ्रान्सिस्को जाकर वहाँ के कुछ खेती के फार्म और जहाँ दो-दो तीन-तीन हजार वर्ष पुराने रेडवुड के दरख्त हैं वह जंगल।

वाशिंगटन हमने ता० १४ अक्तूबर को छोड़ा और हम सैन्फ्रान्सिस्को से ता० २ नवम्बर को रवाना हुए। इस बीच हमने समस्त उपर्युक्त स्थानों को देखा। हवाई यात्रा होने के कारण यात्रा में हमारा बहुत कम समय लगा। इसी कारण इतने थोड़े समय का भी बहुत सा भाग हम इन चीजों को देखने के लिए दे सके।

नाइग्रा जल-प्रपात

नाइग्रा जल-प्रपात संसार की सात सबसे अधिक अद्भुत वस्तुओं में एक माना जाता है। इस जल-प्रपात में जितनी उँचाई से पानी गिरता है उसकी अपेक्षा अनेक जल-प्रपातों का पानी कहीं अधिक उँचाई से गिरता है, परन्तु जल की जितनी राशि

इस प्रपात में गिरती है उतनी कदाचित् संसार के किसी प्रपात में नहीं। नाइग्रा जल-प्रपात के दो भाग हैं, एक कैनेडा देश में और दूसरा अमेरिका देश में, परन्तु ये दोनों विभाग एक दूसरे के इतने निकट हैं कि दोनों को अलग-अलग केवल दोनों देशों की राजनैतिक सीमाओं के कारण ही माना जा सकता है। कैनेडा देश का जल-प्रपात अमेरिका देश के जल-प्रपात से बड़ा है और वह घोड़े की नाल के स्वरूप का है। इसीलिए अंग्रेजी में उसे हार्स शू फॉल कहते हैं। अमेरिका देश का यह प्रपात सीधा है और हार्स शू फॉल से छोटा।

हम लोग बफलो से जब नाइग्रा जल-प्रपात पहुँचे तब सन्ध्या हो रही थी। सूर्य अस्ताचल के समीप था और आकाश प्रायः निर्मल-सा होने के कारण अस्त होते हुए अरुण की अरुण-रश्मियों ने इस जल-प्रपात को एक नहीं अनेक रंग दे दिये थे। कहीं-कहीं तो जल-प्रपात में इन्द्र-धनुष के अनेक रूप दीख पड़ते थे। पानी के नीचे गिरने के कारण नीचे से पानी के जो कण फैल रहे थे उनके कारण धुआँ-सा दृष्टि-गोचर होता था, ठीक जबलपुर भेड़ाघाट के नर्मदा के जल-प्रपात धुआँधार के सदृश, पर इस प्रपात की जल-राशि के बहुत अधिक होने के कारण यह धुआँ उस धुआँधार से कहीं अधिक था।

हमने पहले हार्स शू फॉल देखा और फिर अमेरिका वाला जल-प्रपात। इन दोनों जल-प्रपातों को देख हम वहाँ के क्लिफटनइन नामक होटल में ठहर गये और सन्ध्या के भोजनोपरान्त फिर से इन प्रपातों को इसलिए देखने गये कि रात्रि को इन प्रपातों पर रंग-बिरंगी बिजली की रोशनी डाली जाती है। रंग-बिरंगे बिजली के प्रकाश में तो ये प्रपात एक स्वप्न भूमि के सदृश जान पड़े। सुनहरी रोशनी में सोने की धाराएँ, रूपहरी रोशनी में चाँदी की धाराएँ, भिन्न-भिन्न लाल, हरे, बैंगनी न जाने कितने रंगों में यह कितने रंगों की धाराएँ दिखतीं। कैनेडा के जल-प्रपात की अपेक्षा अमेरिका के जल-प्रपात की रोशनी की व्यवस्था अच्छी थी। न जाने कितनी देर तक हम इस मनहारी दृश्य को देख होटल को लौट आये।

दूसरे दिन प्रातःकाल हम फिर से प्रपात देखने चले। आज़ दुर्भाग्य से बादल हो गये थे, अतः दृश्य उतना सुन्दर न था। आज हम पहले तो अमेरिकन जल-प्रपात के निकट के एक बिजली के लिफ्ट द्वारा, जहाँ भूमि पर पानी गिरता था, उस स्थान पर गये और फिर एक छोटी-सी स्टीमर द्वारा अमेरिकन और कैनेडा के दोनों जल-प्रपातों के उस विभाग में घूमे जहाँ प्रपात से गिरता हुआ पानी एक झील के रूप में भर गया है। इस झील के इधर-उधर जल बड़े वेग से गिर रहा था, तथा उसके कण उड़ रहे थे। लिफ्ट से नीचे उतरकर वहाँ से प्रपात का दृश्य और स्टीमर द्वारा झील में घूमते हुए प्रपात का दृश्य दोनों ही बड़े सुन्दर थे। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि

स्टीमर में हमें बरसातियाँ पहननी पड़ीं और बरसाती कनटोपों से सिर ढाँकना पड़ा अन्यथा उड़ते हुए नीर-कणों के कारण हम लोग भींग जाते। हम तीनों के अतिरिक्त इन दृश्यों को देखने के लिए और भी अनेक पुरुष और महिलाएँ वहाँ जमा हुई थीं (चित्र नं० ९७ से १००)।

इसके बाद हम लोग अमेरिकन जल-प्रपात आरम्भ होने से पहले नाइग्रा नदी के कुछ दृश्यों को देखने पहुँचे। इन दृश्यों के आसपास उद्यान लगाये गये हैं, जिनसे ये दृश्य परम रमणीय हो गये हैं।

नाइग्रा के ये जल-प्रपात इन देशों को प्रकृति की देन हैं, पर प्रकृति से जो कुछ इन्हें मिला है उसे यहाँ के लोगों ने और कितना अधिक सुन्दर कर दिया है। फिर इस सौन्दर्य के अतिरिक्त इन्होंने इसका पार्थिव उपयोग भी कम नहीं किया है। इस प्रपात से इसके चारों ओर के लाखों घरों को प्रकाश मिलता है, पश्चिमी न्यूयार्क राज्य के उद्योग-धन्धे चलते हैं और कैनेडा को भी प्रचुर परिमाण में बिजली मिलती है। कई वर्षों से अमेरिका और कैनेडा मिलकर एक संयुक्त नियंत्रणबोर्ड की सहायता से इस प्रपात के द्वारा उत्पन्न बिजली की शक्ति का उपयोग कर रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के द्वारा प्रकृतिदत्त साधनों के उपयोग का यह बड़ा अच्छा उदाहरण है।

डिट्रायट

जब हम डिट्रायट पहुँचे तब हमें लेने हवाई अड्डे पर फोर्ड मोटर कंपनी के श्री जेक मरफ़ी फोर्ड मोटर कम्पनी की सर्वोत्तम मोटर लिंकन लिये हुए मौजूद थे। यहाँ हम ठहरे ट्युलर नामक होटल में। यहाँ भी हम संध्या के हवाई जहाज से ही पहुँचे थे। अतः जिस दिन हम पहुँचे उस दिन दूर से केसर तथा फ्रेजर, कैडलक और डी. सोढो तीन मोटर कारखाने देखने के अतिरिक्त और कुछ न कर सके। अमेरिका के समस्त प्रसिद्ध मोटर के कारखाने डिट्रायट एवं उसके ही आसपास हैं और मोटर-उद्योग जितना बड़ा अमेरिका में है संसार में कहीं नहीं। परन्तु हमारे पास जितना समय था उसे देखते हुए कुछ कारखानों को बाहर से ही तथा फोर्ड कारखाने को भीतर से देख हमने सन्तोष करने का निश्चय कर लिया था। फिर मोटर बनाने के सभी कारखाने प्रायः एक-से हैं, अतः एक कारखाने को अच्छी तरह देख लेना एक प्रकार से सब को देख लेना था।

दूसरे दिन ९॥ बजे प्रातःकाल श्री जेक मरफ़ी फिर अपनी लिंकन मोटर से हमें लेने आ पहुँचे। फोर्ड मोटर का कारखाना सचमुच ही एक महान् उद्योग है। यह कारखाना दुनियाँ के सबसे बड़े कारखानों में एक माना जाता है। मोटरों के बाहरी ढाँचे (बॉडी) उन ढाँचों के भिन्न-भिन्न विभाग, मोटरों के इंजन, उनके कल-पुर्जे अधिकांश चीजें इसी कारखाने में बनती हैं। परन्तु कुछ वस्तुएँ बाहर से खरीद करके

१०१. शिकागो नगर का एक दृश्य

१०२. हवाई जहाज से शिकागो प्लेनेटेरियम एक शिवलिंग के सदृश दिखता है

१०३. शिकागो का अजायबघर आदि (हवाई जहाज से)
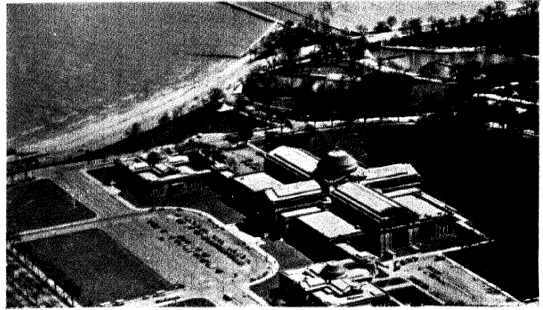
१०४. विज्ञान और उद्योग का अजायबघर; शिकागो (हवाई जहाज से)
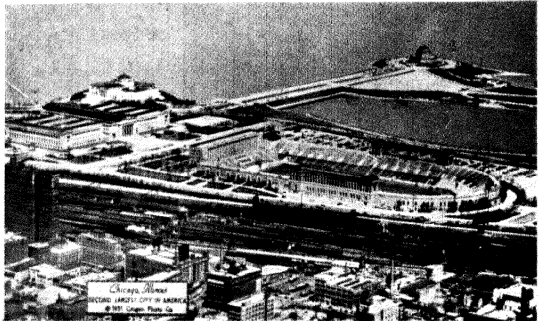
भी इन मोटरों में लगायी जाती हैं। इसका कारण यह बताया गया कि जो वस्तुएँ बाहर से खरीदकर मोटरों में लगायी जाती हैं उन वस्तुओं को बनाने में अन्य लोग इतने निपुण हो गये हैं कि यदि ऐसी वस्तुएँ इस कारखाने में बनायी जायँ तो एक तो वैसी अच्छी न बनेंगी और उनसे महँगी भी पड़ेंगी।

फोर्ड मोटर कम्पनी की स्थापना १६ जून, १६०३, को हुई। श्री फोर्ड ने पहले केवल पच्चीस हजार डालर की पूंजी से अपना काम आरम्भ किया था। ये पच्चीस हजार डालर भी उनके न थे; उनके कुछ मित्रों ने उन्हें कम्पनी के शेअर के रूप में दिये थे। धीरे-धीरे श्री फोर्ड ने ये शेअर खरीदकर कारखाना अपना कर लिया। अब तो ब्रिटेन, कैनेडा, जर्मनी, जापान आदि सभी जगह फोर्ड के कारखाने खुले हुए हैं और उसे फोर्ड साम्राज्य तक कहा जाता है। अनुमान है कि १६४५ में कारखाने की सारी पूंजी लगभग १,०२,१३,२५, १६६ डालर थी, लेकिन यह अनुमान भी कुछ कम ही समझा जाता है।

दोपहर के भोजन के पूर्व कारखाने के मुख्य-मुख्य विभागों को दिखा श्री जैक मरफ़ी ने हमें कारखाने के रैस्टराँ में ही भोजन कराया और भोजनोपरान्त हमें फोर्ड साहब का अजायबघर दिखाया। यह अजायबघर अपनी कुछ विशेषताएँ रखता है, इसमें सन्देह नहीं। किसी एक व्यक्ति विशेष के लिए इतना बड़ा संग्रह करना एक प्रशंसनीय बात है।

हेनरी फोर्ड का अजायबघर १४ एकड़ भूमि में बना हुआ है। इससे विभिन्न क्षेत्रों में अमेरिका की आज तक की प्रगति का अनुमान लगाया जा सकता है। यह अजायबघर तीन भागों में बँटा हुआ है—(१) ललित कला सग्रह, (२) अमेरिका की प्रारम्भिक दूकानों का भाग और (३) मशीनी हॉल।

श्री फोर्ड का ८० वर्ष की अवस्था के ऊपर कुछ वर्ष पहले ही देहान्त हुआ है। उनके इकलौते पुत्र का देहावसान उनके सामने ही हो गया था। अब उनके तीन पौत्र हैं जो इस कम्पनी के मालिक हैं। फोर्ड-कुटुम्ब संसार के सबसे धनवान कुटुम्बों में एक है। इनका धर्मार्थ फाउण्डेशन ही संसार-विख्यात् है।

फोर्ड फाउण्डेशन अमेरिका की बृहत् लोक सेवी ट्रस्ट संस्था है। अमेरिका की संसार प्रसिद्ध फोर्ड मोटर कम्पनी की ६० प्रतिशत राशि इस संस्था में लगी हुई है। संस्था का कार्यक्षेत्र ५ दिशाओं में है—अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापना, लोकतन्त्र की स्थापना, शिक्षा का प्रसार, आर्थिक समृद्धि में योग और मानवाचार के सम्बन्ध में मानव-ज्ञान की अभिवृद्धि। संस्था की स्थापना १६३६ में की गयी थी। १६४० में उसकी सम्पत्ति कम्पनी के संस्थापक हेनरी फोर्ड और उनके एक मात्र पुत्र एडसल फोर्ड की सम्पत्ति प्राप्त हो जाने से बहुत अधिक बढ़ गयी। अनुमान है कि उसकी धनराशि ५०

करोड़ डालर होगी। इस प्रकार वह अन्य सभी धर्मार्थ संस्थाओं यहां तक कि राक फैलर फाउण्डेशन से भी बड़ी है। इसके कार्यक्रम का संचालन पाल हौफ मैन करते हैं।

इस संस्था से भारत को भी बहुत-कुछ सहायता प्राप्त होती है। भारत की सामुदायिक योजनाओं के लिए इस संस्था का योग प्राप्त किया जा रहा है।

शिकागो

शिकागो नगर का नम्बर अमेरिका में न्यूयार्क के बाद ही आता है, पर शहर न्यूयार्क से अधिक फैलकर बसा है। न्यूयार्क के सदृश कुछ ऊँचे-ऊँचे मकान भी हैं। एवेन्यू और स्ट्रीट याने सड़कें न्यूयार्क के सदृश हैं, पर वह शहर उतने व्यवस्थित तरीके से नहीं बसा है।

कहा जाता है कि शिकागो शहर में बराबर वायु चलती रहती है। मिशीगन झील से आते हुए वायु के झोंके कभी नहीं रुकते; इसलिए शिकागो को वायु का नगर भी कहते हैं। संसार में इस नगर का चौथा नम्बर है। दूर-दूर तक फैली हुई इमारतें हैं, जो उद्योग और व्यापार का केन्द्र बनी हुई हैं। आकाश के वक्षस्थल में अजगरों की भाँति वक्राकार धुआँ छोड़ती हुई अनगिनत चिमनियाँ हैं, धरती के हृदय को रौंदती हुई झक-झककर चलती हुई रेलगाड़ियाँ हैं और अगणित किश्तियाँ व जहाज हैं।

१८३३ में यह विशाल औद्योगिक नगर एक छोटा-मोटा व्यापारिक नगर था किन्तु १८७१ के अग्निकांड के पश्चात् नगर का तीव्र गति से विकास आरम्भ हुआ। आज शिकागो कई उद्योगों में संसार के अन्य सभी नगरों से आगे है। शिकागो की गोश्त की मंडी, अनाज की मंडी, माल की मंडी और मिडवेस्ट स्टाक एक्स्चेंज संसार भर में प्रसिद्ध है। शिकागो के आस-पास के प्रदेश में कोयला, तेल, इमारती लकड़ी और लोहा बहुतायत से पाया जाता है।

अमेरिका में अन्य कोई नगर इतनी अच्छी जगह स्थित नहीं है। इस नगर की भौगोलिक स्थिति बड़ी अच्छी है। यहाँ पर प्राकृतिक साधन प्राप्य हैं और औद्योगिक सुविधाएँ भी। अमेरिका के हृदय की धड़कन का जितना आभास इस नगर से मिलता है उतना और किसी से नहीं।

शिकागो नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम की स्थापना मार्शल फील्ड ने १८९३ में की थी। यहां पर अफ्रीका, मिश्र, यूनान, रोम आदि के प्रागैतिहासिक काल के संग्रह देखे जा सकते हैं (चित्र नं० १०१ से १०४)।

शिकागो में हमने बर्फ की चट्टान पर विविध प्रकार के नृत्यों का एक सुन्दर प्रदर्शन और देखा। बर्फ की चट्टान का यह मच लगभग १५० फुट लम्बा और ५० फुट चौड़ा था। एक ओर छोटे-से मकान का दृश्य था। इसी में से नर्तक और नर्तकियाँ

निकलते और अपना कार्य बर्फ के रंगमंच पर कर वापस लौट जाते। जब वे निकलते तब रंगमंच पर अँधेरा हो जाता और उनके रंगमंच पर आने पर विविध प्रकार एवं रंगों के बिजली के प्रकाश में उनके नृत्य होते। नाचने वालों के पैरों में एक विशेष प्रकार के जूते रहते और उन जूतों के तलों में एक विशेष प्रकार के स्केटिंग चके, जिनसे ये नृत्य बर्फ के रंगमंच पर किये जाते। नर्तक और नर्तकियों के रूप, पोशाकें और सारा कार्य अत्यधिक कलापूर्ण एवं आकर्षक था। किसी प्रकार की अश्लीलता भी न थी। नृत्य आरम्भ हुआ 'दिल्ली दरबार' शीर्षक नृत्य से। दिल्ली के पुराने सुल्तानों की पोशाक में कुछ नर्तक आये और नर्तकियाँ पुराने राजपूती-कला के वस्त्र धारण कर। यद्यपि पोशाक और नृत्य दोनों सर्वथा भारतीय न थे, पर पोशाक पुरानी राजपूती-कला से मिलती-जुलती अवश्य थी। इसके बाद न जाने कितने प्रकार के नृत्य हुए। इनमें हमें तो सबसे अच्छा तितलियों का नृत्य जान पड़ा। तितलियों की पोशाकें और उस नृत्य में जैसे प्रकाश की व्यवस्था की गयी थी, उससे यही जान पड़ता था कि जैसे सचमुच ही आदमकद की तितलियाँ रंगमंच पर उड़ती हुई विविध प्रकार के नृत्य कर रही हैं! बर्फ के रंगमंच का यह प्रदर्शन सचमुच ही अपने ढंग का अनोखा प्रदर्शन था और इसकी सबसे बड़ी विशेषताएँ थीं नृत्य करने वालों की पोशाकें, बिजली का प्रकाश और नृत्य में महान् गति।

हम जिस दिन प्रातःकाल शिकागो से रवाना हो रहे थे उस दिन बर्फ गिरना आरम्भ हुआ। सुना कि अक्तूबर में यहाँ बर्फ कभी नहीं गिरता। हम लोगों ने इसके पहले पहाड़ों पर जमे हुए बर्फ को तो देखा था लेकिन बर्फ गिरता हुआ नहीं। अतः हमने तो यह माना कि हमारी इस यात्रा में कोई दर्शनीय वस्तु देखने को रह न जाय, इसीलिए प्रकृति देवी ने कृपा कर अक्तूबर में ही बर्फ गिरा दिया। कैसा सुन्दर दृश्य था वह हिम-प्रपात का। नीला व्योम श्वेत बादलों से ढका हुआ था, और उनसे गिर रहा था रुई के पहल के समान सफेद बर्फ। ये हिम-खंड वृक्षों, गृहों के छप्परों और भूमि पर गिर सारी वस्तुओं को शुभ्र रंग प्रदान कर रहा था। श्वेत वर्ण में सातों रंगों का सम्मिश्रण होता है, पर ये सप्त वर्ण मिलकर एक श्वेत रंग का निर्माण कर देते हैं। आज हिम-वृष्टि ने भिन्न-भिन्न रंगों को श्वेत रंग का रूप दे दिया था। अरे! रंग-बिरंगी दौड़ती हुई मोटरों की छतें और मडगार्ड भी सफेद हो गये थे। इस तुहिन-वृष्टि में ही हम हवाई अड्डे पहुँचे। हवाई अड्डे के चारों ओर दूर-दूर तक के मैदान सफेद हो गये थे। वर्षा-ऋतु में भारत में दूर-दूर तक फैले हुए हरे रंग के कालीनों के सदृश मैदान तो सदा ही देखते थे, परन्तु श्वेत रंग का यह कालीन।

डेनवर और उसके आस-पास

डेनवर के चारों ओर के प्राकृतिक दृश्य बड़े सुन्दर हैं। हम लोग वहाँ तीन

बिन ठहरे और दो दिनों तक प्राकृतिक दृश्य बताने वाली मोटरों पर कोई तीन सौ मील की यात्रा की। पहले दिन कोई चौदह हजार फुट ऊँचे माऊण्ट ईवैन्स गये और दूसरे दिन इससे कुछ ही कम ऊँचे पाइक्स पीक। हम तीनों के साथ पहले दिन चार अमेरिकन महिलाएँ और दूसरे दिन इन्हीं में की तीन महिलाएँ और एक पुरुष थे। मोटर का रास्ता बड़ी बीहड़ पहाड़ियों में से गया था। कहीं-कहीं तो वह बहुत ही सकरा और भयावह था। इस मार्ग को देखकर लक्ष्मणझूले से बदरीनाथ जाने वाले देव-प्रयाग आदि का रास्ता याद आता था। दोनों दिनों के ये प्राकृतिक दृश्य बड़े सुन्दर थे। शिकागो में जो बर्फ गिरा था वह यहाँ भी गिर चुका था। इस हिम-वृष्टि के कारण दृश्य और सुन्दर हो गया था और चूँकि इन दोनों दिन आकाश प्रायः निर्मल था इसलिए ये बर्फ कोटि-कोटि हीरों के ढेरों के सदृश चमक रहा था। परन्तु दृश्यों के अत्यन्त मनोरम रहते हुए भी हमें यहाँ कोई ऐसी वस्तु न दिखायी दी जो हमने भारत में न देखी हो (चित्र नं० १०५ से १०७)।

जब हम डेनवर से लासेंजल्स जा रहे थे उस समय हमारे हवाई जहाज पर से हमने जैसे दृश्य देखे वैसे इसके पहले सचमुच ही नहीं देखे थे। पहले तो हमारे वायु-यान ने बर्फ से ढके हुए पाइक्सपीक को उलाँघा और उसके कुछ देर बाद वह उड़ा ग्रैण्ड कैनियन नामक स्थान पर से। ग्रैण्ड कैनियन प्राकृतिक दृष्टि से अमेरिका के सुन्दरतम साथ ही अद्भुत स्थानों में से एक माना जाता है। हमारा कार्यक्रम ग्रैण्ड कैनियन जाने का था भी परन्तु इन दिनों वहाँ वायुयान न जाता था और रेल से जाने में जितना समय लगता था उतना हमारे पास था नहीं, अतः हमने वहाँ न जाने का निर्णय कर ही सन्तोष कर लिया था। परन्तु सौभाग्य से वायुयान द्वारा हमने ग्रैण्ड कैनियन देख लिया। जब हमारा हवाई जहाज ग्रैण्ड कैनियन पर से उड़ा उस समय सन्ध्या हो रही थी। आकाश निर्मल था, न बादल थे और न कोहरा। ऐसी सन्ध्या में कैसा दिखता था वह ग्रैण्ड केनियन। केनियन का अर्थ है खाई। अमुक-अमुक जगह तो पाताल फूट गया है, हम किसी बहुत अधिक गहरे स्थान को देखकर कह दिया करते हैं। ग्रैण्ड कैनियन में इस प्रकार के पाताल न जाने कितने स्थान पर फूटे थे और इन खाइयों के चारों ओर के पहाड़ के प्रत्येक शिला-खण्ड कितने रंगों के थे। ये रंग उद्भिज सृष्टि के नहीं पत्थर के स्वयं के थे। लाल, पीले, नीले, बैंगनी, हरे, कितने-कितने रंग इन शिलाओं में थे। फिर पृथक्-पृथक् शिला पृथक्-पृथक् रंग की हो, यह नहीं, एक ही शिला में अनेक रंग।

लासेंजल्स

लासेंजल्स उस कैलीफोर्निया प्रदेश का सबसे बड़ा नगर है जो कैलीफोर्निया सारे संसार में अपनी जलवायु तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण प्रसिद्ध है। लासेंजल्स
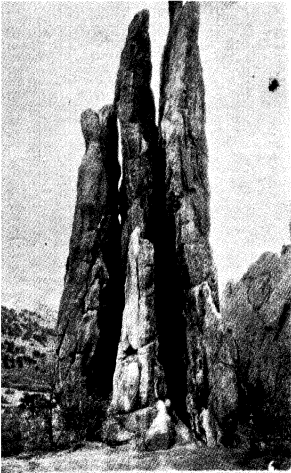
१०५. डेनवर (कोलोरोडो) की एक विचित्र आकार की शिला

१०६. डेनवर की एक दूसरी वैसी ही शिला
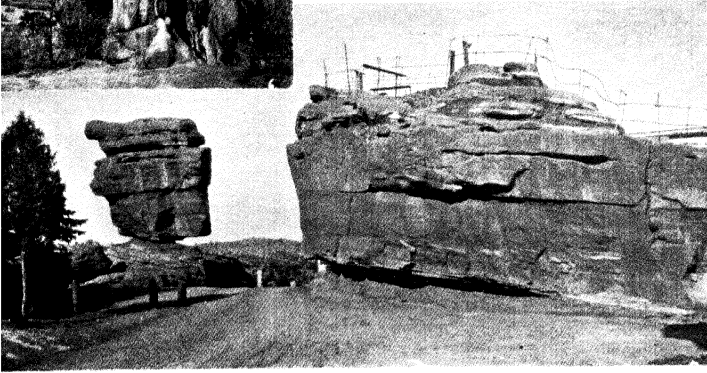
१०७. उसी के निकट बरफ गिरे हुए स्थान की पृष्ठभूमि में लेखक और जगमोहनदास

१०८. लासजल्स में प्रसिद्ध हालीवुड
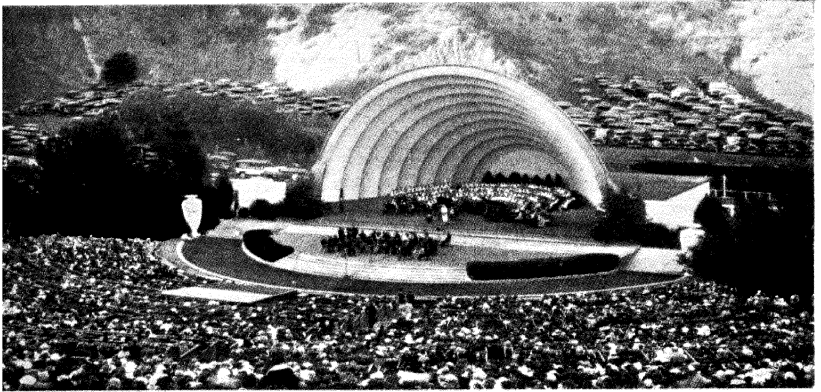
१०९. हालीवुड का स्टेडियम

नगर यद्यपि अमेरिका के अन्य नगरों के सदृश ही है तथापि उसके अनेक मार्गों के दोनों ओर के अत्यन्त सुन्दर वृक्षों ने और छोटे-छोटे हरे-भरे नजरबागों से युक्त तरह-तरह के गृहों ने इस नगर को एक विशेष प्रकार की सुखमा दे दी है।

हमारे लासेंजल्स में ठहरने और वहाँ के दर्शनीय स्थानों को हमें दिखाने के सारे कार्यक्रम का प्रबन्ध सेन्फ्रान्सिस्को के भारतीय दूतावास के कौंसलर श्री हुसैन ने किया था। उन्होंने लासेंजल्स के सबसे बड़े होटलों से एक क्लार्क नामक होटल में हमारे ठहरने का इन्तजाम कराया था और लासेंजल्स के दो भारतीय श्री राममोहन बगाय और उनके सौतेले पिता श्री महेशचन्द्र को हमें लासेंजल्स को दिखाने का कार्य सौंप दिया था। श्री हुसेन ने ही लासेंजल्स के मूवी पिक्चर एसोसियेशन के मार्फत वहाँ के सबसे बड़े स्टूडियो में से एक पैरामाउण्ट पिक्चर के स्टूडियो दिखाने का भी इन्तजाम किया था। आजकल हालीवुड के स्टूडियो बिना किसी विशिष्ट प्रबन्ध के नहीं देखे जा सकते, अतः श्री हुसेन यदि यह प्रबन्ध न करते तो हालीवुड का स्टूडियो तो हम न देख पाते।

लासेंजल्स की भूमि पर जब हमारा हवाई जहाज पहुँचा तब रात हो गयी थी। ठहरने का प्रबन्ध हमारा क्लार्क होटल में था ही, अतः हवाई अड्डे से हम सीधे होटल जाकर वहाँ ठहर गये। रात को ही हमने श्री राम बगाय को फोन किया और उनसे बातें कर तय पाया कि दूसरे दिन प्रातःकाल १० बजे श्री राम बगाय और श्री महेशचन्द्र मुझ से आकर मिलेंगे तथा हमारा कार्यक्रम तय कर देंगे।

दूसरे दिन ठीक समय दोनों पहुँच गये। दोनों ही बड़े सज्जन व्यक्ति हैं। श्री राम बगाय की माता ने श्री राम बगाय के पिता की मृत्यु के पश्चात् श्री महेशचन्द्र से विवाह कर लिया है और राम बगाय श्री महेशचन्द्र का अपने पिता के सदृश ही आदर करते हैं।

हम लोग लासेंजल्स चार दिन ठहरने वाले थे। इन चार दिनों का कार्यक्रम इस प्रकार बना—पहले दिन जगमोहनदास खेती के फार्मों की मशीनों आदि के सम्बन्ध में जिन लोगों से मिलना चाहते हैं मिलेंगे। दूसरे दिन श्री राम बगाय हमें लासेंजल्स की दर्शनीय चीजें दिखा देंगे और उस दिन हमारा भोजन श्री महेशचन्द्र के यहाँ होगा। तीसरे दिन हम स्टूडियो देखेंगे और चौथे दिन रवाना हो जायेंगे।

निश्चित कार्यक्रम के अनुसार ही सारी बातें चलीं।

दर्शनीय स्थानों में जिस स्थान ने हमारा ध्यान सबसे अधिक आकर्षित किया वह था एक कब्रिस्तान। यह कब्रिस्तान कब्रिस्तान तो है ही जहां सैकड़ों नहीं हजारों शव गड़े हैं पर कब्रिस्तान के साथ ही यह एक सुन्दर और रमणीय बाग भी है, जहाँ की कब्रों पर कैलीफोर्निया के भिन्न-भिन्न रंगों के सुन्दर पुष्प खिले रहते हैं। मुझे

मुरदों की यादगारें कभी भी पसन्द नहीं आतीं, पर कब्रों में इस प्रकार कुसुम लगाना कदाचित् मुरदों की यादगार की सबसे अच्छी प्रथा कही जा सकती है।

इस कब्रिस्तान में एक भव्य भवन भी बना हुआ है और इस भवन में ईसा के सारे जीवन का महान् विशाल चित्र बनाया गया है। भवन तो सुन्दर है ही, पर भवन से भी सुन्दर है वह आलय जिसमें चित्र है, उस आलय से भी सुन्दर चित्र है और चित्र से भी कहीं सुन्दर है उसका प्रदर्शन।

चित्र पर सुन्दर परदा गिरा रहता है। ठीक समय चित्र का प्रदर्शन होता है। आरम्भ में अत्यधिक मधुर वाद्य बजता है। उसके पश्चात् गान होता है। फिर धीरे-धीरे चित्र का परदा खुल चित्र में क्या बताया गया है इस पर भाषण होता है। भाषण के साथ एक बाण चित्र के उन स्थानों पर घूमता जाता है जिन्हें भाषण के द्वारा समझाया जाता है। अन्त में फिर से गान हो और वाद्य बजकर परदे से चित्र ढक जाता है। इस सारे प्रदर्शन में कोई आधा घण्टा लगता है।

इस सारे दौरे में मैंने ईसा के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले अनेक चित्र देखे थे, इस चित्र से भी अच्छे, पर ऐसा सुन्दर प्रदर्शन कहीं नहीं। ईसा की कथा कौन नहीं जानता, पर इस प्रदर्शन के समय उसका मन पर महान् और अद्भुत प्रभाव पड़ता है। मेरे मन में एकाएक उठा कि हम भी कहीं राम, कृष्ण, बुद्ध, गांधी की जीवनियों के चित्रों का कहीं ऐसा प्रदर्शन कर सकें।

स्टूडियो भी दर्शनीय था। यद्यपि किसी जमाने में सिनेमा जगत से मेरा सम्बन्ध रह चुका है और यद्यपि स्टूडियो में मुझे कोई सर्वथा ऐसी नयी चीज नहीं दिखी जो मैंने बम्बई-कलकत्ते के स्टूडियो में न देखी हो, पर उन सबसे यह स्टूडियो कहीं बड़ा था। बाजार इत्यादि के सेटिंग इतने बड़े और विशाल थे कि जान पड़ता था जैसे अमेरिका के बड़े-बड़े बाजार स्टूडियो में ही बने हैं। स्टूडियो में एक बहुत बड़ा तालाब था, जो आवश्यकता के अनुसार बढ़ाया-घटाया जा सकता था। इस तालाब में बिजली के सहारे बड़े-बड़े समुद्री तूफान दिखाये जा सकते हैं।

लासेंजल्स में हम कई भारतीयों से भी मिले (चित्र नं० १०८ से ११२)।

सैन्फ्रान्सिस्को और उसके आस-पास

जब हमने सैन्फ्रान्सिस्को की भूमि पर पैर रखा उस समय सब से पहले मुझे लाला हरदयाल का स्मरण आया। श्री हरदयाल हमारे देश के उन क्रान्तिकारियों में प्रधान स्थान रखते थे जिन्होंने हमारे देश को स्वतन्त्र कराने का बीड़ा सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-युद्ध के पश्चात् सर्वप्रथम उठाया था। फिर श्री हरदयाल की बुद्धिमत्ता और विद्वत्ता की तुलना भी इने-गिने भारतीयों से ही की जा सकती है।

भारत आज स्वतन्त्र है और स्वतन्त्र भारत के हम नागरिक आज स्वतन्त्रता-

FOREST LAWN
MEMORIAL PARK

THE MYSTERY OF LIFE
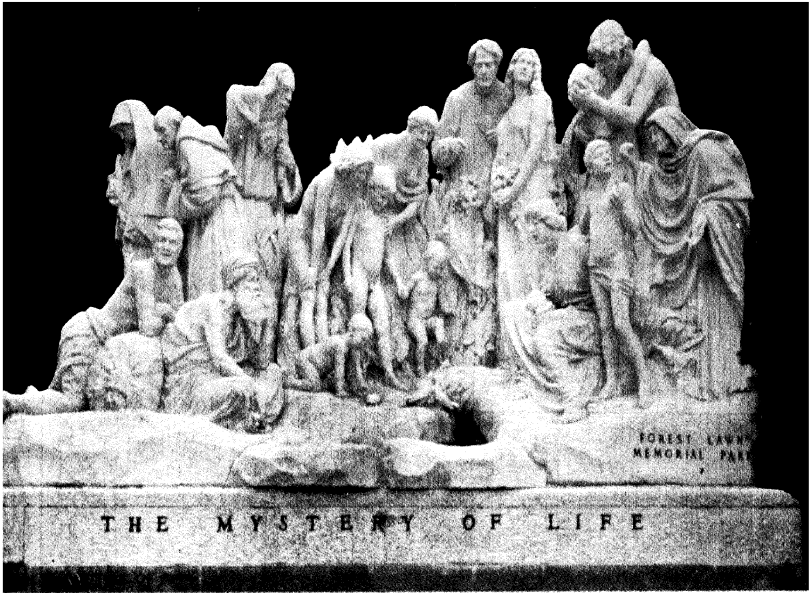
१११. लासेंजल्स के कब्रिस्तान की एक मूर्ति

११२. लासेंजल्स का एक रैस्टरां जिसके भीतर न जाने कितना बड़ा वनस्पति-जगत् और एक जल-प्रपात है

११३. सैन्फ्रान्सिस्को के सात पहाड़ियों पर बसने के कारण उसके रास्ते बड़े उतार-चढ़ाव के हैं
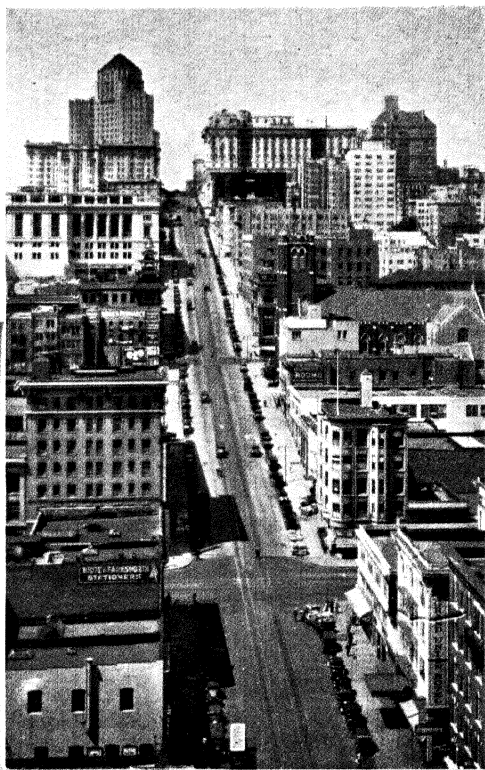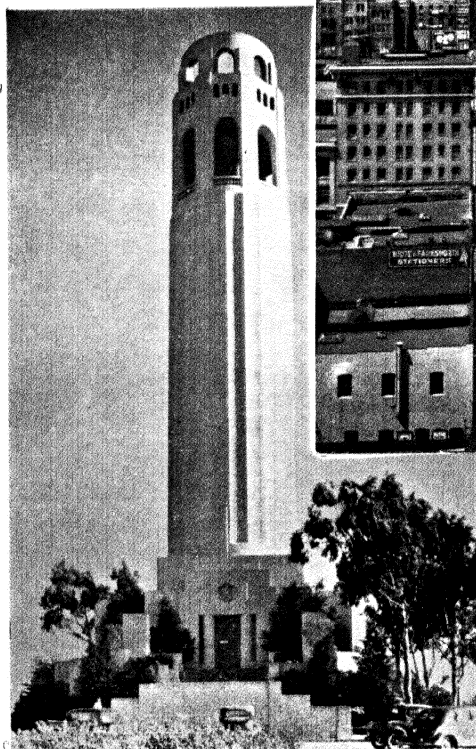
११४. 'क्रिट' मीनार; सैन्फ्रान्सिस्को

पूर्वक सारे संसार का चक्कर लगा रहे थे। मुझे इस बात से बड़ा खेद-सा हुआ कि जिन भारतीयों ने भारत की स्वतन्त्रता का शंख भारत के बाहर भी फूंका और जिस के कारण भारत की स्वतन्त्रता के पक्ष में संसार का लोकमत बना तथा इस लोकमत ने भारत को स्वतन्त्र होने में कम सहायता नहीं पहुँचायी, उनमें श्री हरदयाल, लाला लाजपतराय तथा अन्य अनेक भारतीय आज नहीं है, वे भारत को स्वतन्त्र देख भी न पाये। पर इस खेद के बाद ही मेरे मन में यह आये बिना भी न रहा कि शरीर का धर्म ही क्षणभंगुरता है। सदा कौन रहा है और इस जगत में कितनों ने अपना अभीष्ट पूरा होते देखा है ? इस नश्वर संसार में महत्त्व जीने को बहुत ही कम है। महत्त्व है जीवन-यापन किस प्रकार किया जाता है इसको। हरदयाल, लाला लाजपतराय और उनके अनेक साथी चाहे आज न हों, उन्होंने चाहे अपने अभीष्ट की सिद्धि स्वयं न देखी हो, परन्तु उस अभीष्ट-सिद्धि के इतिहास में उनके नश्वर होते हुए भी उनके द्वारा किये हुए कामों के कारण उनके नाम अजर-अमर रहेंगे और यदि उनकी आत्मा कहीं होगी तो वह उनकी जन्म-भूमि की स्वतन्त्रता के कारण असीम सुख पा रही होगी।

हम सैन्फ्रान्सिस्को भी सन्ध्या को पहुँचे। हवाई अड्डे पर हमें लेने के लिए भारतीय दूतावास के श्री कपूर मोटर के साथ मौजूद थे। सैन्फ्रान्सिस्को में हमारे ठह-रने का प्रबन्ध भारतीय कौंसलर श्री हुसैनने एक अच्छे होटल में किया था। हम एरोड्रोम से सीधे होटल आये। आज रात के भोजन का निमंत्रण हमें श्री हुसैन के यहाँ का था। कोई ७॥ बजे श्री हुसैन स्वयं हमें लेने होटल पहुँचे और मुझे यह जानकर विशेष हर्ष हुआ कि श्री हुसैन पंजाब के प्रसिद्ध मुस्लिम नेता श्री फजले हुसैन के पुत्र हैं। यद्यपि श्री हुसैन से भी मैं दिल्ली में मिल चुका था, पर उनसे मेरा जितना परिचय था, उसकी अपेक्षा उनके पिता से कहीं अधिक, क्योंकि उनके पिता जब भारत सरकार की एक्जीक्यूटिव कौंसिल के सदस्य थे, उस समय मैं भी केन्द्रीय असेम्बली का सदस्य था, जहाँ रोज ही उनसे मेरा मिलना हुआ करता था। श्री फजले हुसैन पंजाब की प्रसिद्ध यूनियन पार्टी के सबसे बड़े नेता थे। एक समय इस पार्टी का पंजाब के राजनैतिक जीवन में बड़ा भारी स्थान था। श्री फजले हुसैन की मृत्यु के पश्चात् श्री सिकन्दर-हयात खाँ और उनके बाद श्री खिज्रहयात खाँ इस दल के नेता हुए। यद्यपि यह पार्टी भी सांप्रदायिकता की गंध से सर्वथा रहित न थी, परन्तु बाद में श्री जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने सांप्रदायिकता का जो जहर उगलकर भारत का विभाजन तक करा डाला वैसा जहर उस दल में न था। यदि श्री फजले हुसैन और श्री सिकन्दर-हयात खाँ के सदृश पंजाब के मुस्लिम नेता जीवित रहते तो भारत विभाजन तक मामला पहुँचता या नहीं, यह सन्देह की बात है।

श्री फजले हुसैन के सदृश बड़े बाप के अनेक सद्गुण श्री हुसैन में मौजूद थे। श्री हुसैन मुझे बड़े विनम्र और भले आदमी जान पड़े। आई. सी. एस. वालों में श्री हुसैन के सदृश व्यक्ति मुझे बहुत कम मिले थे। श्री महाराज नागेन्द्र सिंह जी और एक-दो ऐसे ही व्यक्तियों का हुसैन से मिलान किया जा सकता है। श्री हुसैन के बंगले पहुँच हम लोग श्रीमती हुसैन से भी मिले। जैसे श्री हुसैन थे वैसी ही उनकी श्रीमती जी भी। उनसे मिलकर तो मुझे और अधिक प्रसन्नता हुई। श्री हुसैन को पहले से ही बता दिया गया था कि हम लोग मांस-मच्छी-अण्डा तो दूर की बात है, प्याज और लहसुन भी नहीं खाते, अतः हमारे लिए सर्वथा निरामिष, बिना किसी प्याज और लहसुन की गंध का शुद्ध भारतीय ढंग का दिल्लीसाही भोजन तैयार था। बहुत दिनों के बाद हमें ऐसा अच्छा भोजन करने को मिला। रात को ही श्री हुसैन साहब की राय के अनुसार हमारा सैन्फ्रान्सिस्को का कार्यक्रम तैयार हो गया। इस कार्यक्रम में सैन्फ्रान्सिस्को के दर्शनीय स्थानों को देखने के सिवा एक प्रेस कान्फ्रेन्स और वर्ल्ड एफेयर्स संस्था में वर्तमान भारत पर मेरा एक सार्वजनिक भाषण भी निश्चित हुआ।

हम लोग सैन्फ्रान्सिस्को चार दिन रहे। सैन्फ्रान्सिस्को अमेरिका का सबसे बड़ा पूर्वीय बन्दरगाह है। यह नगर रोम के सदृश सात पहाड़ियों पर बसा है, परन्तु रोम की पहाड़ियों से इन पहाड़ियों की उँचाई-निचाई कहीं अधिक है। समुद्र तथा इन पहाड़ियों के कारण नगर के बसने का स्थल बहुत सुन्दर हो गया है। फिर नगर बसाया भी बड़ी सुन्दरता से गया है। सैन्फ्रान्सिस्को बहुत बड़ा नगर न होते हुए भी मेरे मतानुसार अमेरिका का सबसे सुन्दर नगर है (चित्र नं० ११३ से ११७)। हम लोगों ने यहाँ जो चीजें देखीं वे एक चीज को छोड़ प्रायः वैसी ही थीं जैसी हम अमेरिका के अन्य नगरों में देखते आ रहे थे—अजायबघर, चित्रशाला, जू, मच्छी भवन, प्लैनेटेरियम आदि। जो चीजें हमने अब तक अन्य किसी स्थान पर न देखी थी वह था यहाँ का लाल वृक्षों का जंगल; यह जंगल अत्यन्त आश्चर्यजनक है। यहाँ बड़े ऊँचे-ऊँचे वृक्ष पाये जाते हैं। सबसे ऊँचे वृक्ष की उँचाई ३६४ फुट से भी अधिक है। एक वृक्ष का घेरा ४३ फुट है। यहाँ एक खास किस्म के वृक्ष हैं। जिनकी आयु लगभग तीन हजार वर्ष बतायी जाती है। इस समय जो वृक्ष वहाँ अभी भी हरे-भरे हैं वे लगभग दो हजार वर्ष प्राचीन हैं (चित्र नं० ११३ से १२१ तक)।

रैडवुड फारेस्ट के सिवा हमने जो अन्य चीजें देखीं उनमें अमेरिका के कुछ खेती के फार्म थे। इन फार्मों के साथ मैंने अमेरिका का देहाती जीवन भी देख लिया और वहाँ के कुछ किसानों से भी मिल लिया। जगमोहनदास ने यद्यपि इसके पहले भी कुछ फार्म देखे थे, पर फार्म देखने का मेरा यह पहला ही अवसर था।

प्रेस कान्फ्रेन्स थी ता० ३० अक्टूबर को और उसी दिन मेरा भाषण भी

११५. सैन्फ्रान्सिस्को का जगत्-प्रसिद्ध 'ओकलैंड-बे' पुल

११६. 'ओकलैंड-बे' पुल के सामने की सैन्फ्रान्सिस्को की बस्ती का एक दृश्य

११७. सैन्फ्रान्सिस्को के समुद्र-तट की बस्ती
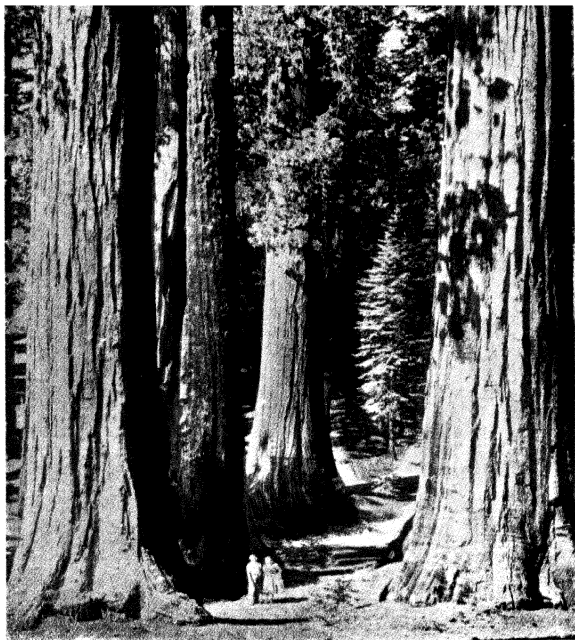
११८-क. रेडवुड के
कुछ विशाल वृक्ष

११८-ख. रेडवुड के एक वृक्ष
का तना जो ३६४ फुट ऊँचा है
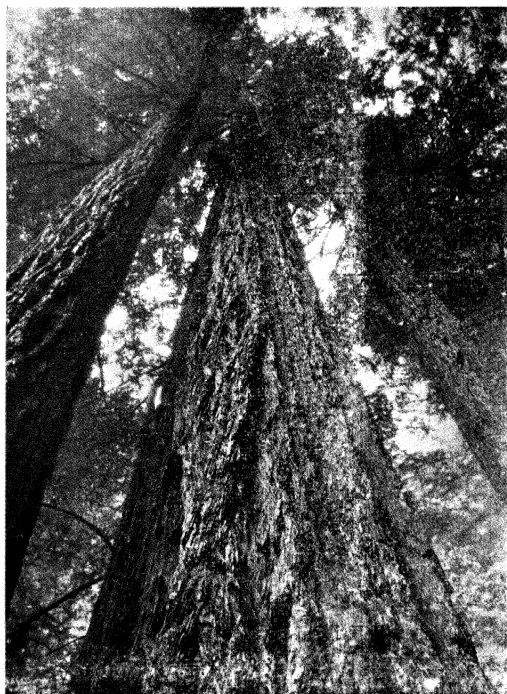
था। ये दोनों सार्वजनिक कार्य भी भली भाँति निपट गये। प्रेस कान्फ्रेन्स का वृत्त वहाँ के सभी अखबारों में बड़े-बड़े शीर्षकों और चित्रों के साथ छपा। सभा में अब तक की अमेरिका की सब सभाओं से अधिक उपस्थिति थी और मेरा यहाँ का भाषण भी शायद अमेरिका के मेरे समस्त भाषणों से अधिक अच्छा हुआ। भाषण के पश्चात् प्रश्नोत्तर यहाँ भी हुए। यहाँ के भाषण और प्रश्नों के उत्तरों पर श्री हुसैन तथा अन्य अनेक अमेरिकन पुरुषों और महिलाओं ने मुझे अनेक बधाइयाँ दीं।

अमेरिकन राष्ट्रपति का चुनाव-अभियान

हमारे अमेरिका के इस दौरे के अवसर पर अमेरिका में एक बहुत बड़ा काम चल रहा था। यह था अमेरिका के राष्ट्रपति का चुनाव। अमेरिका के राष्ट्रपति का चुनाव हर चौथे वर्ष होता है। अमेरिका के राष्ट्रपति का चुनाव ४ नवम्बर १६५२ को होना था। हर चार वर्ष बाद ४ नवम्बर को ही यह चुनाव हुआ करता है। अमेरिका की संसद् को कांग्रेस कहते हैं। हमारे देश में कांग्रेस एक संस्था मात्र है। इस वर्ष चूँकि अमेरिकी कांग्रेस की लोक-सभा की (हाउस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव्ज़) सभी जगहों के और उच्च सभा अथवा सेनेट की एक-तिहाई जगहों के चुनाव होने थे इसलिए प्रचार का बड़ा जोरशोर था। इसके अतिरिक्त राज्यों के गवर्नर से लेकर साधारण म्युनिस्पल अधिकारी तक निर्वाचित किये जाने थे। इसलिए यह चुनाव और भी महत्त्वपूर्ण था।

अमेरिका में केवल अपराधियों को छोड़ सभी वयस्क नागरिकों को मताधिकार प्राप्त है; जाति, रंग, धर्म, लिंग अथवा मूल निवासियों सबको।

अमेरिका में कई राजनीतिक पार्टियाँ हैं, जो राष्ट्रपति-पद के लिए अपना-अपना प्रतिनिधि नियुक्त करती हैं। अमेरिका की दो प्रमुख पार्टियाँ हैं—डेमोक्रैटिक पार्टी और रिपब्लिकन पार्टी। यदि किसी मतदाता को नामजदगी के सम्बन्ध में कुछ भी कहना होता है तो उसके लिए पार्टी की सदस्यता आवश्यक होती है। बहुत से अमेरिकी किसी भी पार्टी के सदस्य नहीं हैं और किसी भी पार्टी के सदस्य के लिए यह भी अनिवार्य नहीं है कि वह अपनी पार्टी के उम्मीदवार के पक्ष में ही अपना वोट दे।

राष्ट्रपति पद के लिए उम्मीदवार पार्टी के राष्ट्रीय सम्मेलन में चुने जाते हैं। सम्मेलन के लिए प्रतिनिधि चुनने का हरेक राज्य का अपना अलग तरीका है। सोलह राज्यों में प्रारम्भिक चुनाव होते हैं, शेष बत्तीस राज्यों में प्रतिनिधियोंके चुनाव के लिए राज्य सम्मेलन होते हैं। प्रारम्भिक चुनावों में अथवा राज्य सम्मेलनों में केवल पार्टी के सदस्यों को ही मतदान का अधिकार होता है। प्रमुख पार्टियों में से प्रत्येक के राष्ट्रीय सम्मेलन में लगभग १,२०० प्रतिनिधि उपस्थित रहते हैं। इनके अतिरिक्त

हरेक पार्टी के ऐसे सदस्य भी इन सम्मेलनों में उपस्थित रहते हैं जो पार्टी के औपचारिक प्रतिनिधि नहीं होते और जिनकी उपस्थिति से सम्मेलन में बड़ी रौनक रहती है। इन सम्मेलनों का लक्ष्य पार्टी के सिद्धान्त और नीति आदि स्थिर करना रहता है।

इसके बाद आरम्भ होता है मतदान। सामान्यतः किसी भी राज्य के सभी प्रतिनिधि एक ही उम्मीदवार के पक्ष में वोट देते हैं। यदि उम्मीदवारों के बीच ज्यादा जोर का मुकाबला होता है तो एक से अधिक बार मतदान होता है। हर बार लोगों की उत्सुकता और कौतूहल बढ़ता ही जाता है। प्रतिनिधि परेड करते हैं और बैण्ड आदि बजाते हैं। जब राष्ट्रपति पद के लिए उम्मीदवार चुन लिया जाता है तो वह सम्मेलन में अपना भाषण देता है जो वास्तव में चुनाव आन्दोलन का उसका पहला भाषण होता है।

इस प्रकार उम्मीदवारों के नामजद हो चुकने के पश्चात् प्रत्येक पार्टी का चुनाव कार्यक्रम आरम्भ हो जाता है। उम्मीदवार देश भर का पर्यटन करते हैं। समाचारपत्रों, रेडियो और टैलीविजनों आदि की सहायता से उनके विचार जनता तक पहुँचते रहते हैं, पर लोग स्वयं भी उन्हें देख लें यह आवश्यक होता है। किसी विदेशी को तो ऐसा प्रतीत होता है मानो समस्त अमेरिका बौखला उठा है। ऐसा भी जान पड़ता है कि इस अवसर पर जो कड़वाहट, गाली-गलौज होती है और वैमनस्य की भावना पैदा हो जाती है वह समाज का स्थायी अंग हो जायगी और उसे सदा के लिए दूषित कर देगी, किन्तु ज्यों ही राष्ट्रपति का चुनाव सम्पन्न हो जाता है समस्त जनता उसके सम्मान के लिए आदर से अपना शीष नवा देती है और सारी कालिमा धुल जाती है।

जैसा ऊपर कहा गया है अमेरिका में दो प्रधान राजनैतिक दल हैं—डैमोक्रैटिक और रिपब्लिकन। राष्ट्रपति रूजवैल्ट के समय से डैमोक्रैटिक दल के हाथ मे ही अमेरिका की राज्यसत्ता रही थी अर्थात् लगभग २० वर्ष से डैमोक्रैटिक दल ही अधिकार में था। इस बार राष्ट्रपति के चुनाव में बड़ा संघर्ष था। डैमोक्रैटिक दलकी ओर से श्री स्टीवनसन खड़े हुए थे और रिपब्लिकन दल की तरफ से श्री आइसन हावर। दोनों ओर से खूब प्रचार चल रहा था।

हमें यह देखकर कुछ खेद हुआ कि दोनों ही ओर के प्रचार में संयम और शालीनता की अत्यधिक कमी थी। बहुत नीचे स्तर पर उतरकर बातें कही और छापी जाती थीं, यहाँ तक कि कई बार तो गाली-गलौज तक की नौबत आ जाती थी। स्वयं राष्ट्रपति श्री ट्रूमैन के डैमोक्रैटिक पार्टी के समर्थन के भाषणों में न संयम था और न शालीनता।

११८-ग. रेडवुड का एक विशाल वृक्ष। इसकी विशालता का अन्दाज इसके भीतर से मोटर निकल सकती है इससे हो जाता है
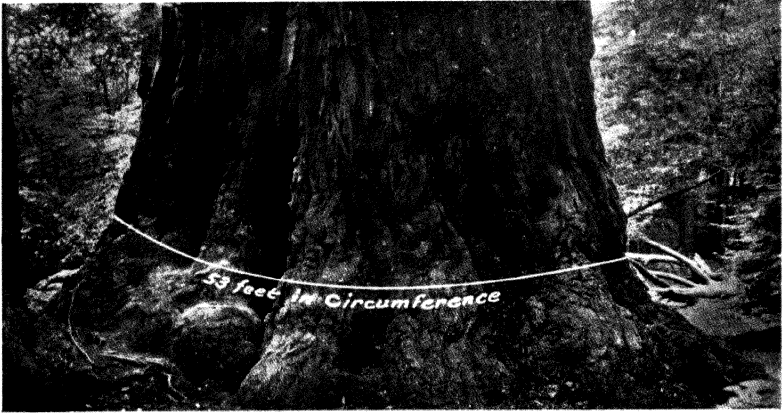
११६. रेडवुड का सबसे पुराना और मोटा वृक्ष जिसका घेरा ५३ फुट है। ये वृक्ष संसार का सबसे प्राचीन जीवित वृक्ष है। किसी-किसी की आयु तीन हजार वर्ष से अधिक है
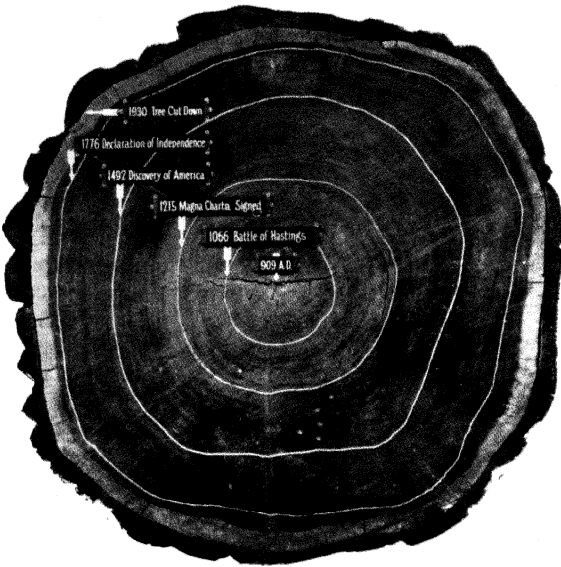
१२०. रेडवुड के एक वृक्ष की सूखी हुई पैंदी

१२१. रेडवुड के एक वृक्ष की पृष्ठभूमि में लेखक

हमने अमेरिका के दौरे मे इस चुनाव के प्रचार को देखा। चुनाव का क्या नतीजा निकलेगा इस पर लोगों से बातें कीं। सभी संदिग्ध थे और सभी कहते थे कि करारी मुठभेड़ है, जो भी जीतेगा थोड़े वोटों से।

मतदान ता० ४ नवम्बर को होने वाला था। परन्तु ४ नवम्बर को जो अपने स्थान से अनुपस्थित रहनेवाले थे उनका मतदान ता० १ नवम्बर को ही था। इस मतदान की भी समस्त व्यवस्था वैसी ही की गयी थी जैसी ता० ४ के मतदान की।

सैन्फ्रान्सिस्को में ता० १ का यह मतदान वहां के सिटी हॉल में था। हम लोग इसे देखने को भी गये।

यह अन्तिम दृश्य था जो हमने अमेरिका में देखा।

ता० २ नवम्बर को ११ बजे दिन को हमने पैन अमेरिकन लाइन के वायुयान से अमेरिका देश छोड़ दिया।

२४

संसार का सिर-मौर अमेरिका

आगामी कई वर्षों तक संसार के भविष्य पर अमेरिका का सा राजनैतिक और आर्थिक प्रभाव अन्य किसी देश का नहीं होगा। इसका कारण अमेरिका का अन्य राष्ट्रों से कहीं अधिक शक्तिशाली होना है। अमेरिका की शक्ति के अनेक कारण हैं—उसकी भौगोलिक स्थिति, उसके अपार साधन, उसका विशाल औद्योगिक साम्राज्य और वहाँ की कुशल व शिक्षित जनता। अमेरिका की स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद से अनेक महान् एवं योग्य कर्णधारों ने देश की बागडोर सम्हाली और उसे उन्नति के पथ पर अग्रसर किया।

अमेरिका आज एक विश्व-शक्ति है। विश्व-शक्ति का तात्पर्य यह है कि अमेरिका अन्तर्राष्ट्रीय फैसलों को इस या उस दिशा में मोड़ सकता है। विश्व-राजनीति में अमेरिका की आवाज सुनी जाती है, इतना ही नहीं वरन् भविष्य के बनाने अथवा बिगाड़ने में उसका काफी हाथ होता है। ऐसी ही विश्व-शक्ति किसी समय में जर्मनी और जापान बन गये थे। उधर यूरोप में पिछले द्वितीय महायुद्ध के समय ब्रिटेन और फ्रांस इन दो विश्व-शक्तियों को खतरा पैदा हो गया था। महायुद्ध में यूरोप की शक्तियों का इतना अधिक ह्रास हुआ कि अमेरिका की समता करने योग्य उनमें कोई भी नहीं रह गया। स्वयं रूस भी, जो अमेरिका के समान ही एक अत्यन्त महान् शक्ति है, युद्ध के घावों से काफी समय तक कराहता रहा।

युद्ध-स्थल से दूर रहने के नाते अमेरिका को यह बड़ा लाभ रहा कि उसको उन घावों का पता तक न चला जिनके कारण अन्य राष्टों का रक्त-संचार मंदा पड़ गया था।

अमेरिका में लोगों का यूरोप से बसना १६०७ में पूर्वी तट पर आरम्भ हुआ था। इसके बाद के सौ वर्षों में उनकी कई विभिन्न बस्तियाँ बस गयीं। संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थापना १७८३ में हुई और उस समय उसका क्षेत्रफल ८,३०,००० वर्ग-मील था। उसके बहुत कम भाग में ये लोग बसे थे। १८०३ में लूशियाना प्रदेश के मिल जाने से संयुक्त राज्य अमेरिका का क्षेत्रफल दूना हो गया। १८१९ में स्पेन से

फ्लोरिडा प्राप्त हो जाने के पश्चात् एटलांटिक तट की ओर का सारा प्रदेश संयुक्त राज्य अमेरिका का अंग हो गया। १८४५ से १८५३ तक के आठ वर्षों में अमेरिका का और भी विस्तार हुआ। १८४५ में ओरेगन और १८४८ में मैक्सिकम प्रदेश सम्मिलित हो गये। इसी बीच टेक्सास प्रदेश भी हस्तगत कर लिया गया। १८५३ में अमेरिका का क्षेत्रफल २९,७७,००० वर्गमील पहुँच गया था जो कि रूस को छोड़ बाकी यूरोप के क्षेत्रफल से अधिक था। राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से देश फिर भी पीछे था और यह अभाव पहले महायुद्ध तक बना रहा। इस युद्ध के पश्चात् अमेरिका सर्वशक्तिमान देशों की पंक्ति में आ गया। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अमेरिका की स्थिति और भी सुदृढ़ पड़ने लगी, किन्तु इस बार रूस भी एक अत्यन्त शक्तिशाली देश के रूप में प्रकट हुआ और ऐसा ज्ञात होने लगा कि संसार के सर्वोच्च देश का स्थान प्राप्त करने के लिए शायद वह अमेरिका का प्रतिस्पर्धी सिद्ध हो।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक संयुक्त राज्य अमेरिका का क्षेत्र विस्तार लगभग पूरा हो चुका था। किन्तु १८६७ में अमेरिका ने अलास्का इसलिए प्राप्त किया कि उसे रूस से सुरक्षा का आश्वासन हो जाय। १८९८ में स्पेन के साथ संघर्ष के फलस्वरूप अमेरिका ने फिलीपीन, हवाई द्वीपों और प्यूरटो राइको को प्राप्त किया। इस प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका को ७,००,००० वर्गमील इलाका और प्राप्त हो गया। द्वितीय युद्ध के फलस्वरूप अमेरिका को अन्य कई महत्त्वपूर्ण स्थान और सैनिक अड्डे प्राप्त हुए। युद्ध के बाद अमेरिका ने साम्यवाद निरोधक नीति पर चलते हुए जापान और आसपास के द्वीपों में और ट्यूनीसिया आदि अन्य स्थानों पर सामरिक महत्त्व के अड्डे बनाने आरम्भ किये।

अमेरिका की भौगोलिक स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसके पूर्व में यूरोप है जहाँ संसार की एक-चौथाई आबादी है और पश्चिम में दक्षिण-पूर्वी एशिया के जापान, चीन और भारत आदि देश हैं जहाँ दुनियाँ की आधी आबादी बसी हुई है यद्यपि आज अमेरिका के लिए यूरोप महत्त्वपूर्ण है, किन्तु सम्भव है कि कल अमेरिका का भविष्य एशिया में हो।

वृहदाकार होने पर भी अमेरिका आकार में सबसे बड़ा राष्ट्र नहीं है। रूस का क्षेत्रफल अमेरिका से लगभग तीन गुना है। चीन, कैनेडा और ब्राजील ये तीनों ही संयुक्त राज्य अमेरिका से क्षेत्रफल में कुछ बड़े हैं। आस्ट्रेलिया का क्षेत्रफल लगभग अमेरिका के बराबर है। अपने अधीन सभी प्रदेशों समेत अमेरिका ब्रिटिश कामनवैल्थ अथवा फ्रांसीसी साम्राज्य से छोटा है। हाँ, रूस को छोड़ यूरोप के सभी देशों को संयुक्त करके भी अमेरिका बड़ा है।

अमेरिका की नदियों की अपेक्षा वहाँ के पर्वतों ने अमेरिका के राष्ट्रीय जीवन

के विकास को अधिक प्रभावित किया है। यह सर्वविदित है कि एपीलोचियन पर्वतों ने प्रारम्भिक बसनेवालों को पश्चिम की ओर फैलने से रोका—जिसका अप्रत्यक्ष रूप से यह लाभ हुआ कि लोगों में राजनैतिक एकता और संगठन बढ़ना सम्भव हो सका। उधर यद्यपि अमेरिका में मिसिसिपी, मिसौरी, ओहियो, कोलम्बिया, कोलराडो और हडसन जैसी बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं, किन्तु उन्होंने अमेरिकी जीवन को उतना प्रभावित नहीं किया जितना कि नदियों ने अन्य देशों में किया है।

अमेरिका की जलवायु अमेरिका के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई है। यह जलवायु समशीतोष्ण तथा नम है और पैदावार के लिए अत्यावश्यक है।

अमेरिका के प्राकृतिक साधन और उनका उपयोग करने की अमेरिका की बहुल औद्योगिक शक्ति राष्ट्र की समुन्नत अवस्था और उसकी धनसम्पन्नता के द्योतक हैं। प्रथम महायुद्ध के बाद से अमेरिका उन राष्ट्रों को अत्यधिक खाद्य-पदार्थ, धन और हथियार आदि देता रहा है जिनको उनकी आवश्यकता तो थी, किन्तु जिनके पास अपने आप ये वस्तुएँ उपलब्ध करने के साधन नहीं थे। अमेरिका की अत्यन्त उपजाऊ भूमि और रासायनिक खाद्य-पदार्थ आदि से वहाँ की कृषि व्यवस्था अत्यन्त सन्तुलित है। केवल अमेरिका ही ऐसा देश है जिसे खेती की बहुत अधिक पैदावार होने के कारण चिन्तित होना पड़ता है जब कि अन्य देश बहुत कम पैदावार होने से चिन्तित रहते हैं। फिर भी आश्चर्य होगा कि खेती अमेरिका के लोगों के केवल पाँचवें भाग का ही व्यवसाय है। बाकी लोग उद्योग आदि से जीविकोपार्जन करते हैं। अमेरिका की खेतों, चरागाहों, जंगलों और मछली उद्योग द्वारा अधिकांश आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती हैं।

जहाँ तक खनिज-पदार्थों का सम्बन्ध है अमेरिका में लोहा, ताँबा, जिक, सीसा बहुतायत से मिलता है। गंधक, फास्फेट और कोयला आदि भी पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है। बिजली और गैस आदि की सहायता से वहाँ के कारखाने सुचारु रूप से चलते रहते हैं। एटमी शक्ति का विकास विशेष उल्लेखनीय है। हाँ, अमेरिका को मैंगनीज, रांगा, एल्यूमीनियम, क्रोमियम और अभ्रक का अभाव अवश्य सहन करना पड़ता है। शान्ति के समय में तो ये वस्तुएँ विदेशों से प्राप्त हो जाती हैं, पर युद्धकाल में बाहर से सामान मँगाना कठिन हो जाने के कारण स्थिति गम्भीर हो सकती है।

औद्योगिक उत्पादन में अमेरिका संसार में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर चुका है। एक स्थिर शासन-व्यवस्था के अधीन अमेरिका की औद्योगिक शक्ति संसार में सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गयी है और इसमें उसे देश की पूँजी, धन, कच्चे माल, खनिज-सम्पत्ति, विद्युत-शक्ति और टैकनिकल कौशल से सहायता मिली है। औद्योगिक उत्पादन में उसका यदि कोई थोड़ा-बहुत मुकाबला कर सकता है तो वह केवल रूस ही

लेकिन वह भी उससे बहुत नीचे रह जाता है। द्वितीय महायुद्ध में अमेरिका की औद्योगिक शक्ति इतनी स्पष्ट हो गयी थी कि अन्य कोई भी देश उसे चुनौती देने का साहस ही नहीं कर सकता था ।

अमेरिका के पास सबसे अधिक वैज्ञानिक हैं, सबसे अधिक शिक्षित और कुशल कारीगर हैं और सबसे अधिक ऐसे लोग हैं जो नये-नये कामों में हाथ डालने को तैयार रहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में अमेरिका ने हाल ही में बहुत अधिक उन्नति की है। जितना माल अमेरिका में तैयार होता है उसका प्रायः ७० प्रतिशत विदेशों को भेज दिया जाता है। औद्योगिक विकास से अमेरिकी जीवन में कायापलट हो गयी है। मशीनों की सहायता से वर्षों का काम दिनों में और दिनों का काम घण्टों में करना सम्भव हो गया है। इससे मजदूरों को वेतन अधिक मिलता है और अवकाश भी अधिक प्राप्त होता है। नवयुवकों और युवतियों को शिक्षा की विशेष सुविधाएँ मिल सकी हैं। जीवन में एक नया अनुराग और एक नयी तरंग पैदा हो गयी है। सरकार के लिए अधिक कर लेना सम्भव हो गया है। इसलिए विकास के मार्ग सर्वत्र खुल गये हैं। एक या दो जगहों को छोड़ ख्याल है कि अमेरिकी लोग संसार में सबसे सुखी, खुशहाल और भाग्यवान हैं।

जहाँ तक परिवहन आदि का सम्बन्ध है सभी तरह की सुविधाएँ है। सड़कें आदि बहुत सुन्दर और अच्छी बनी हुई है। जलमार्ग भी यथेष्ट हैं। वायुयान परिवहन में भी अमेरिका किसी से पीछे नहीं है और वहाँ निरन्तर प्रगति हो रही है।

सारे अमेरिका में समुन्नत नगर है।

१९४० में जनगणना के अनुसार लगभग ७॥ करोड़ अमेरिकी नगरों में वास करते हैं। अमेरिका में १ लाख से अधिक की आबादी वाले ९२ नगर है। अमेरिका के १० प्रमुख नगरों के नाम इस प्रकार हैं —

न्यूयार्क, शिकागो, फिलडेल्फिया, डेट्रायट, लासेंजल्स, क्लीवलेंड, बाल्टीमोर, सेंट लुई, बोस्टन और पिट्सबर्ग ।

वर्तमान युग में जब कि संसार में तीन बड़ी शक्तियाँ मानी जाती है रूस और अमेरिका में प्रतियोगिता चल रही है। रूस पुरानी दुनियाँ का सबसे अधिक शक्तिशाली देश है और अमेरिका नयी दुनियाँ का। ब्रिटेन जो इन दोनों के मुकाबले का तो नहीं है, किन्तु फिर भी बड़ी शक्ति माना जाता है, भौगोलिक दृष्टि से रूस के अधिक समीप होते हुए भी अमेरिका से अधिक सहयोग करता है।

यद्यपि पिछले महायुद्ध के पश्चात् राष्ट्रसंघ की तरह संयुक्त राष्ट्र की स्थापना की गयी थी जिससे कि शांति-भंग न होने पाये और महायुद्ध की पुनरावृत्ति न हो, लेकिन जैसा विदित है कुछ ही समय पश्चात् कोरिया की समस्या उठ खड़ी हुई, जो

अब भारत के प्रयत्नों के बाद सुलझी तो है लेकिन अभी भी पूरी तरह समाप्त नहीं हो पायी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस समस्या के इस हद तक उलझ जाने का कारण यह है कि इसमें बड़े राष्ट्रों की दिलचस्पी है और वे अप्रत्यक्ष रूप से इसके पीछे हैं। कोरिया की समस्या से दो राष्ट्र प्रमुख राष्ट्रों की पंक्ति की ओर अग्रसर होते दिखायी दे रहे हैं वे हैं—लाल चीन और भारत। लाल चीन जिस तरह कोरिया में लड़ा और उसने जिस तरह अपनी शक्ति का परिचय दिया उससे संसार के देश दाँतों-तले उँगली दबाकर रह गये हैं। उधर नैतिक दृष्टि से भारत ने बड़ी प्रतिष्ठा पायी है और उसे शांतिका सच्चा समर्थक समझा जाने लगा है। इसके उपरान्त तो केवल एक और शक्ति उल्लेखनीय रह जाती है और वह है फ्रांस। सो फ्रांस न तो अपनी सामर्थ्य के कारण ही अधिक विश्वास पैदा करता है और न अपनी नीति के कारण ही। इण्डोचाइना, ट्यूनीसिया, मोराको आदि के सम्बन्ध में अपनी नीति के कारण उसे तिरस्कार ही अधिक मिलता है। फ्रांस की गणना यदि आज बड़ी शक्तियों में की जाती है तो वह केवल इसलिए कि वह काफी अर्से तक एक बड़ी शक्ति रहा है और अमेरिका व ब्रिटेन उसे अभी भी बड़ी शक्तियों में बनाये रखना चाहते हैं।

अपने मुख्य विषय अमेरिका पर लौटते हुए मैं यही कहना चाहता हूँ कि यद्यपि अमेरिका आज संसार का सिर-मौर बना हुआ है किन्तु उसका यह स्थान उसके लिए एक कसौटी है। देखना तो यह है कि अमेरिका संसार में शान्ति बनाये रखने, कम उन्नत देशों को सबल स्वस्थ बनाने, पीड़ित मानवता का कष्ट-निवारण करने में कहाँ तक योग देता है। साम्यवाद के निवारण के लिए अमेरिका आवश्यकता से अधिक चिंतित जान पड़ता है और कभी-कभी ऐसा जान पड़ता है कि अपनी बौखलाहट में अमेरिका कहीं गलत कदम न उठा ले। लेकिन मेरा मत है कि अमेरिका को साम्यवाद से कोई खतरा नहीं होना चाहिए। खतरे की वस्तु तो संसार के देशों में अभाव, भूख, रोग और कष्ट आदि का विद्यमान रहना है। यदि अमेरिका ने रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाकर इन्हें दूर करने का दृढ़ निश्चय किया तो उसकी सफलता निष्कंटक है इसमें सन्देह नहीं होना चाहिए। मेरे विचार में जो दृष्टिकोण अमेरिका के लिए उचित है वही रूस के लिए भी श्रेयष्कर है। यदि ये दोनों महान् राष्ट्र प्रतिस्पर्धा छोड़कर विश्व के कल्याण के लिए रचनात्मक कार्यों में लग जायें तो मानवता का सारा कष्ट ही दूर हो जाय और संसार समृद्ध होकर जीता-जागता स्वर्ग बन जाय। अमेरिका की तीन गैर सरकारी धर्मार्थ संस्थाएँ—फोर्ड फाउण्डेशन, रौक फैलर फाउण्डेशन और कार्नेगी निधि, जिनकी चर्चा हम पिछले अध्याय में कर आये हैं, इसी दिशा में प्रयत्नशील हैं—ऐसा मेरा मत है और उनके

कार्य को मैं सराहनीय समझता हूँ।

परन्तु इस अध्याय को एक बात और कहे बिना पूरा करना कदाचित् अमेरिका की स्थिति का सच्चा दिग्दर्शन कराये बिना अमेरिका का वर्णन पूरा कर डालना होगा। अमेरिका का सारा जीवन देखकर मेरे मन पर यह प्रभाव भी पड़ा है कि धन और आधिभौतिक सुखों के अतिरेक से जो एक प्रकार का पतन आरम्भ होता है वह भी अमेरिका में शुरू हो गया है। इसका एक छोटा-सा प्रमाण है अमेरिका के 'फेडरल ब्यूरो ऑफ़ इनवेस्टीगेशन' के डायरेक्टर श्री जे. एडगर हूवर द्वारा प्रकाशित सन् १९५३ की पहली शशमाही में अमेरिका के अपराधों की सूची। इस सूची में बताया गया है कि इन छः महीनों में अमेरिका में दस लाख सेंतालीस हजार दो सौ नब्बे बड़े अपराध हुए, हर ४०·३ मिनिट पर एक खून, हर २९·४ मिनिट पर एक बलात्कार, हर ८·८ मिनिट पर एक डाका, हर ५·७१ मिनिट पर एक चोरी, इस प्रकार हर १४·९ सैकिंड पर एक बड़ा अपराध। इसी रिपोर्ट में यह बताया गया है कि अपराधों की यह संख्या बढ़ रही है।

अमेरिका को अपने नैतिक चरित्र की ओर ध्यान देने की और इस ओर अत्यधिक सतर्क रहने की नितान्त आवश्यकता है। जिनका यह मत है कि गरीबी ही सारे अपराधों का कारण है वे अमेरिका के इन अपराधों की ओर दृष्टिपात करें; अपराधों की जड़ है अनैतिकता, वह चाहे अमीरी में हो या गरीबी में।

फिर इतना सम्पन्न रहते हुए भी अमेरिका भावी युद्ध के भय से काँप रहा है। यह भी उसके जीवन में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

२५

हवाई द्वीपों में दो दिन

ता० २ नवम्बर को ग्यारह बजे दिन के लगभग हमारा हवाई जहाज सैन्फ्रान्सिस्को से होनोलुलू की ओर उड़ा। भारत से कैनेडा जाते हुए लन्दन से मांट्रियल पहुँचने में एटलांटिक महासागर को पार करते समय ही इस दौरे की अब तक की सबसे बड़ी उड़ान हुई थी। सैन्फ्रान्सिस्को से टोकियो की उड़ान में प्रशान्त महासागर को पार करना पड़ता है। यह उड़ान एटलांटिक महासागर को पार करने वाली उड़ान से कहीं लम्बी थी और सैन्फ्रान्सिस्को से होनोलुलू की उड़ान, जो बिना बीच में कहीं ठहरते हुए थी, संसार की बिना बीच में कहीं ठहरने वाली उड़ानों में सबसे लम्बी। कोई २,४०० मील की उड़ान थी जिसमें पौने दस घण्टे के लगभग लगते थे।

चार इंजन वाला पैन अमेरिकन लाइन का हमारा वायुयान खूब बड़ा और सुविधाजनक था। एअर कण्डीशन होने के कारण पन्द्रह हजार फुट ऊपर उठ जाने पर भी वायुयान के भीतर का वायुमण्डल वैसा ही था, जैसा उस समय था जब वह जमीन से उड़ा था। फिर बाहर किसी तरह का तूफान आदि न था, अतः इतनी लम्बी उड़ान होने पर भी बिना किसी कष्ट के ठीक समय हम होनोलुलू पहुँच गये। यद्यपि हमारी उड़ान में पौने दस घण्टे लगे, परन्तु होनोलुलू का समय सैन्फ्रान्सिस्को से दो घण्टे पीछे रहने के कारण होनोलुलू के इस समय पौने सात ही बजे थे।

होनोलुलू के हवाई अड्डे पर यात्रियों के स्वागतार्थ बड़ी भारी भीड़ जमा थी और यह भीड़ उमंगों से परिप्लावित थी।

होनोलुलू हवाई द्वीपों में से एक पर बसा हुआ है और यद्यपि यह अमेरिका का हिस्सा नहीं है तथापि इस पर अधिकार है अमेरिका का। इसका फौजी महत्त्व भी है। यहीं है प्रसिद्ध फौजी पर्ल हार्बर; पर फौजी महत्त्व के अलावा यह है अमेरिका निवासियों की विहार-भूमि। इसका कारण है हवाई द्वीपों का प्राकृतिक सौन्दर्य और कुछ उष्णता लिये हुए यहाँ की हवा। हवाई आइलैण्ड्स अंग्रेजी का नाम का चाहे कोई अर्थ हो, पर मैं तो हवाई द्वीपों का यह अर्थ कर लेता हूँ कि जहाँ की हवा बड़ी रुचिकर है। अमेरिका-निवासी यहाँ आते हैं छुट्टियाँ मनाने तथा

विवाह के बाद 'हनीमून' के लिए। यहाँ आकर के खूब घूमते, घण्टों समुद्र में नहाते तथा घण्टों ही समुद्र की रेत पर पड़े-पड़े धूप का सेवन करते हैं। जो यहाँ विहार करने आये हुए थे वे ही आये थे उनका स्वागत करने जो इसी प्रकार का विहार करने आ रहे थे। स्वागतार्थ आने वाली जनता में इसीलिए उमंगें थीं। अब तक जो यात्री शान्ति से वायुयान में बैठे हुए आ रहे थे वे भी इन उमंगों को देख उत्साहित हो उठे। उतरते हुए यात्रियों को पैन अमेरिकन लाइन वालों ने एक-एक पुष्पहार पहनाया और स्वागत के लिए आये हुए लोगों ने जो जिसका स्वागत करने आया था उसे। सुना यह कि यहाँ आनेवालों का सदा पुष्पहारों से इसी प्रकार स्वागत होता है।

हमारे यहाँ ठहरने का प्रबन्ध यहाँ के एक प्रसिद्ध होटल 'माग्रोना' में श्री हुसैन ने भारत के एक प्रसिद्ध व्यापारी श्री वाटूमल को लिखकर कराया था। रात्रि का अँधेरा सब ओर फैल गया था। दिन भर की यात्रा की कुछ थकान भी थी। अतः आज रात को अब हमने और कुछ न कर होटल में ही विश्राम करने का निश्चय किया।

जब प्रातःकाल हम उठे तब हमने देखा कि सारा प्राकृतिक दृश्य एकदम बदल गया है। यूरोप, कैनेडा, अमेरिका की उद्भिज सृष्टि यहाँ न थी। यहाँ की यह सृष्टि थी भारत से मिलती-जुलती। नारियल, सुपारी, आम न जाने कितने प्रकार के भारतीय वृक्षों के यहाँ दर्शन हुए। भारत छोड़े हमें तीन महीने के कुछ ऊपर हुए थे, पर जान पड़ता था जैसे वर्षों बीत गये हैं। भारतीय तरु और लता-गुल्मों को देख भारत से अभी भी बहुत दूर रहने पर भी जान पड़ा जैसे हम भारत में नहीं तो भारत के समीप अवश्य पहुँच गये हैं, और यद्यपि हमें किसी ने न देश-निकाला दिया था, न हम कहीं कैद ही थे, स्वयं आये थे इस पृथ्वी-परिक्रमा के लिए, पर अब हम भारत के निकट हैं यह अनुभव कर हमें कितना आनन्द हुआ। प्रशान्त महासागर के फीजी द्वीपों में भी मैं इसी प्रकार की उद्भिज सृष्टि के दर्शन कर चुका था। वहाँ तो मैंने आमों पर मौर और फल तथा मोगरे के पुष्प भी देखे थे। प्रशान्त महासागर के ही इन हवाई द्वीपों में हमें भारत के बाहर पुनः वैसी ही भारतीय उद्भिज सृष्टि के दर्शन हुए। इस भारतीय उद्भिज सृष्टि के सिवा भी प्राकृतिक दृष्टि से हवाई द्वीप सचमुच बड़े सुन्दर हैं, चारों ओर लहराता हुआ समुद्र और बीच में खूब हरे-भरे ये द्वीप।

हवाई द्वीपों के निवासी दूसरी आकर्षक वस्तु थी। भारत के निवासियों के सदृश ही वर्ण तथा रूप में भी भारतीयों से कुछ मिलते-जुलते।

यहाँ जो लोग विहार करने आये थे उनकी संख्या भी कम न थी। सुना

कि इन द्वीपों की आर्थिक आय प्रधानतया तीन जरियों से है—गन्ने की खेती तथा शक्कर का उत्पादन, अनानास की खेती और यात्रियों का आगमन। इनमें यात्रियों का आगमन भी कम महत्त्वपूर्ण न था।

हवाई द्वीपों की अर्थ-व्यवस्था का आधार मजबूत है। यहाँ का सबसे बड़ा उद्योग चीनी-उद्योग है। पिछले सौ वर्ष से यह उद्योग हवाई द्वीपसमूह की अर्थ-व्यवस्था का मूलाधार रहा है। औद्योगिक आय और राजस्व की दृष्टि से भी चीनी-उद्योग सर्वोपरि है। १७७८ में जब कप्तान जेम्सकुक ने पश्चिमी देशों को हवाई द्वीपों की जानकारी करायी थी तब भी यहाँ गन्ना पैदा होता था, लेकिन गन्ने की खेती १८३७ में प्रधानता पा गयी। प्रति वर्ष सारे अमेरिका में जितनी चीनी तैयार होती है उसकी एक चौथाई हवाई द्वीपों में होती है और इस चीनी के कोई सातवें भाग का उपयोग संयुक्त राज्य अमेरिका करता है।

दूसरा स्थान अनानास उद्योग का है। पिछले पचास वर्ष से टीन के डिब्बों में अनानास भरकर बाहर भेजा जाता है।

तीसरा स्थान यात्रियों के आगमन का है। सारे वर्ष भर हवाई द्वीपों की ऐसी मनमोहक जलवायु रहती है कि बराबर यात्री आते रहते हैं। पिछले पचास वर्ष से सैर के लिए आनेवाले यात्रियों की संख्या बहुत बढ़ गयी है। १९५१ में ७८,७३६ यात्री आये और उन्होंने यहाँ पर साढ़े तीन करोड़ डालर से अधिक खर्च किया। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि यात्रियों के आगमन का वहाँ की अर्थ-व्यवस्था में क्या स्थान है। अधिक यात्रियों को आकर्षित करने के लिए यहाँ उपाय भी किये जा रहे हैं। यहाँ हमने जिन यात्रियों को देखा उनमें अधिकांश अमेरिकन थे, प्रायः सभी रंग-बिरंगी बुशशर्ट पहने हुए। कई युग्म तो ऐसे थे जिनकी पुरुष और महिला के एक से वस्त्र थे। महिला की ड्रेस का जैसा रंग-बिरंगा, जिस नमूने का कपड़ा, उसी रंग और उसी नमूने का पुरुष का बुशशर्ट। फिर ऐसे पुरुषों और महिलाओं की संख्या भी कम न थी जो नहाने के यूरोपीय ढंग के न्यून-से-न्यून वस्त्र पहने हुए स्त्री-पुरुष साथ-साथ नहाते तथा समुद्र की बालू पर पड़े-पड़े धूप-स्नान करते।

ज्यों ही हम नित्य-कर्मों से निवृत्त हुए त्यों ही श्री वाटूमल और उनकी अमेरिकन धर्मपत्नी हम से मिलने तथा होनोलुलू के मुख्य-मुख्य दृश्य हमें दिखाने के लिए आ पहुँचे। होनोलुलू हम दो दिन रहे। श्री वाटूमलजी के साथ तथा स्वयं टैक्सी पर भी हम यहाँ खूब घूमे।

होनोलुलू हवाई प्रदेश की राजधानी है। होनोलुलू की सरकारी इमारतें किंग स्ट्रीट पर बनी हुई हैं। हवाई साम्राज्य के दिनों का पिछला शाही महल दर्शनीय है। संयुक्त राज्य अमेरिका भर में महल यदि कोई है तो सिर्फ यही। इन दिनों इस महल
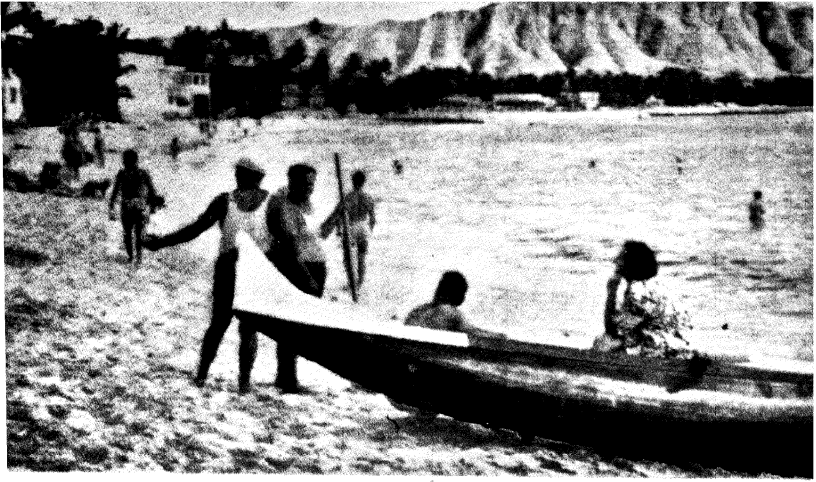
१२२. हवाई के समुद्र-तट का एक दृश्य
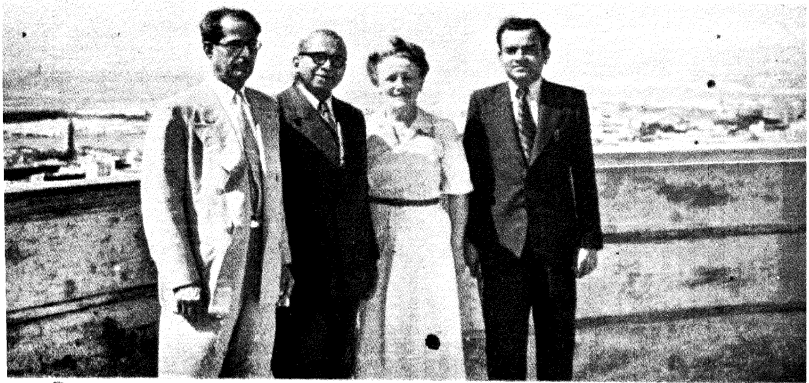
१२३. हवाई के प्रसिद्ध भारतीय उद्योगपति श्री वाटूमल और उनकी अमेरिकन पत्नी के साथ लेखक और जगमोहनदास

१२५-१२८. 'हूलू' नृत्य के कुछ दृश्य

में ऊँचे प्रबन्ध-अधिकारियों के दफ्तर हैं। सिंहासन-भवन अब भी ज्यों का त्यों सुरक्षित रखा गया है। गवर्नर का दफ्तर महल के उस कमरे में है जो पिछले सम्राट् का शयन-कक्ष था। पिछले साम्राज्य के संसद्-भवन में इन दिनों न्यायालय है। इसका निर्माण १८७४ में हुआ था। सम्राट् कामेहामेहा की मूर्ति पर फोटोग्राफरों की भीड़ रहती है। हवाई के गवर्नर का निवास-स्थान वाशिंगटन पैलेस है। बर्तानिया स्ट्रीट पर महारानी अस्पताल है। इसी सड़क पर होनोलुलू कला-भवन है। इसमें दुनियाँ भर की कला-कृतियाँ रखी गयी हैं।

नू आनू घाटी उन लड़ाइयों के लिए प्रसिद्ध है जो हवाई सम्राटों ने इस द्वीप पर नियन्त्रण रखने के लिए लड़ी थीं। इसी घाटी में शाही मकबरा है जहाँ कामेहा-मेहा सम्राटों के शव दफनाये गये हैं। नू आनू घाटी के अन्त में कूला पर्वत श्रेणी में एक विचित्र संधि-स्थल है जो अवश्य ही दर्शनीय है।

होनोलुलू के सुन्दर समुद्र-तट का नाम वाइकीकी है। यह तट प्रदेश अलावाई नहर के मुहाने से डाइमण्ड हैड तक फैला हुआ है और तैराकी, नौका-विहार तथा मछली पकड़ने का केन्द्र है। होनोलुलू के बाजारों में भी खूब रौनक रहती है। दूकानें, सड़कें आदि यथेष्ट रूप से साफ-सुथरी हैं।

उपर्युक्त वस्तुओं के सिवा होनोलुलू मे हमने हूला नृत्य भी देखा तथा नृत्य के सिवा हमने उनकी हवाई भाषा में उनका गान भी सुना। उनकी भाषा न जानने के कारण यद्यपि उनका गान हमारी समझ में न आया तथापि नृत्य का ढंग और वाद्य तथा गान की ध्वनि हमें भारतीय नृत्य के ढंग और ध्वनि से कुछ मिलते-जुलते जान पड़े।

यहाँ पर हवाई भाषा के विषय में कुछ शब्द कहना उचित होगा। हवाई भाषा में कुल बारह अक्षर है। यह स्वर-प्रधान भाषा है और स्वर एक दूसरे से घुल-मिलकर भाषा को अत्यधिक संगीतमय एवं मधुर बना देते हैं। हवाई भाषा के अतिरिक्त अब हवाई द्वीपों के अधिकांश शहरों, कस्बों और गाँवों में अंग्रेजी भाषा बोली जाने लगी है, किन्तु अंग्रेजी का उच्चारण कुछ विलक्षण होता है। अंग्रेजी भाषा ने हवाई भाषा के कुछ शब्द भी ग्रहण कर लिये हैं; उदाहरण के लिए 'ली' पुष्पहार के लिए।

अब हूला नृत्य पर आता हूँ। इस नृत्य में कविता, संगीत और अभिनय का अपूर्व मिश्रण रहता है। प्रेम, युद्ध और रीति-रिवाज के चित्रण इस नृत्य द्वारा किये जाते हैं। प्राचीन काल में हूला नृत्य धार्मिक क्रिया-कलाप का ही एक अंग था और केवल अत्यन्त पटु कलाकार ही इसमें भाग लेते थे जो निरन्तर अभ्यास द्वारा इसकी कला में पारंगत हो जाते थे। वर्तमान समाज में कोई भी हूला नृत्य सीख सकता है। इस नृत्य द्वारा गीत को अभिनय द्वारा मुखर किया जाता है। हाथ-पैर

की क्रियायें सीधी-सादी होती हैं, न इनमें भारतीय नृत्यों-की-सी उच्चता है और न वैसी जटिलता ही।

होनोलुलू बड़ा महँगा स्थान है, सभी चीजें बड़ी महँगी हैं। एक ही दृष्टान्त से इस महँगाई का अन्दाज हो जायगा। भारत में जो पुष्पहार चार आने से आठ आने तक में मिलते हैं उनकी कीमत यहाँ है एक डालर से तीन डालर तक अर्थात् पाँच रुपये से पन्द्रह रुपये तक।

२६

हवाई द्वीपों के सम्बन्ध में दो-चार बातें और

हवाई द्वीपसमूह को प्रशान्त सागर का स्वर्गलोक कहा जाता है। दुनियाँ में अन्यत्र ऐसा सुन्दर द्वीपसमूह शायद नहीं है। संयुक्त राज्य अमेरिका की जनता को हवाई द्वीपों के सौन्दर्य का बोध कराने वाला पहला व्यक्ति प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक मार्क ट्वैन था। यह लेखक १८६६ में यहाँ आया था और इसने हवाई द्वीपों के सम्बन्ध में लेख तथा कहानियाँ लिखी थीं।

हवाई द्वीप कई बातों के लिए प्रसिद्ध है, जिनमें कुछ ये हैं—जलवायु, सुन्दर समुद्र-तट, विशाल ज्वालामुखी, प्रचुर वनस्पति जगत् और मधुर फल जिनमें अनानास प्रमुख है। हवाई द्वीप उत्तर-पश्चिम से लेकर दक्षिण-पूर्व तक डेढ़ हजार मील की लम्बाई में फैले हुए हैं। भूगर्भ शास्त्र के जानकारों ने यहाँ के विशाल ज्वालामुखी पर्वतों को शान्त बताया है, किन्तु दर्शक को ये विशाल पर्वत काफी भयानक प्रतीत होते हैं। माउना लोआ दुनियाँ के सबसे बड़े ज्वालामुखी पर्वतों में गिना जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका की मुख्य भूमि से हवाई द्वीप दो हजार मील दूर हैं। राजनैतिक दृष्टि से ये द्वीप १८९८ से ही संयुक्त राज्य अमेरिका के अंग हैं और तभी से इन द्वीपों को प्रशान्तसागर में अमेरिका की रक्षा-पंक्ति माना जाता है।

हवाई द्वीपों की जनसंख्या पाँच लाख से कुछ ही कम होगी। हवाई के मूल निवासी पोलीनीसियन हैं जो काकेशस, मंगोल और नीग्रो जातियों के मिश्रण से उत्पन्न माने जाते हैं। अधिकांश आबादी दक्षिण के आठ बड़े-बड़े द्वीपों में है जिनके नाम हैं—हवाई, मायूई, मोलोकाई, लानाई, काहूलावे, ओहू, काऊआई और नीहाऊ। यद्यपि हवाई द्वीप शेष सभी सातों द्वीपों को मिलाकर भी बड़ा है, राजनीतिक दृष्टि से ओहू का स्थान सर्वोच्च है। वहीं सबसे बड़ा बन्दरगाह पर्ल हार्बर है और वहीं हवाई द्वीपों की राजधानी होनोलुलू है।

हवाई द्वीपों का क्षेत्रफल ६,४३५ वर्ग मील है। एक हजार किस्म के फूल, पौधे और वृक्ष तो यहाँ ऐसे होते हैं जो दुनियाँ के और किसी देश में नहीं होते। इन द्वीपों में पाये जानेवाले साँप जहरीले नहीं होते और यहाँ के समुद्र में मिलनेवाली शार्क

मछलियां आदमियों का भक्षण करनेवाली किस्म की नहीं होतीं।

होनोलुलू इन द्वीपों में प्रवेश करने का द्वार है। वैसे भी पूर्व से पश्चिम आने-जाने वाले जहाजों के ठहरने का यह मुख्य केन्द्र है। संयुक्त राज्य अमेरिका का पहला महान् तैराक होनोलुलू का ही था।

यहां हवाई समय का उल्लेख करना असंगत न होगा। इन शब्दों का विशेष अर्थ है जो हमारे 'हिन्दुस्तानी वक्त' के अर्थ से मिलता-जुलता है। यहां आनेवाले नये अमेरिकी या विदेशियों को कई बार हवाई समय का अर्थ न जानने के कारण बड़ी परेशानी उठानी पड़ती है। बहुधा यह होता है कि जिस समय के लिए किसी व्यक्ति को निमंत्रित किया जाता है उसका कभी पालन नहीं किया जाता। कई बार जब भोजन के लिए निमंत्रित कोई मेहमान ठीक समय पर पहुंच जाता है तो देखता है कि वहां कुछ भी तैयार नहीं है। इस तरह हवाई समय मजाक की वस्तु बन गया है।

हवाई द्वीप के निवासी अपनी पोशाक आदि के सम्बन्ध में बहुत सजग नहीं, यहां तक कि वे काफी लापरवाही बरतते हैं। भारत की तरह यहां भी लोग दफ्तरों को बिना कोट आदि पहने चले जाते हैं। युवक-युवतियां तो पोशाक और वेशभूषा की ओर और भी कम ध्यान देती हैं। बच्चे आम तौर पर नंगे पैर स्कूल जाते हैं। इस दृष्टि से भी भारत और हवाई द्वीपों के जीवन में काफी समानता है।

तैरने का हवाई द्वीपों के जीवन में अपना अलग महत्त्व है। जिस व्यक्ति को तैरना नहीं आता उसका हवाई द्वीपों में रहना उस व्यक्ति के समान है जो कान बन्द कर सिनेमा-हॉल में कोई तस्वीर देख रहा हो। मनोहर जलवायु के अतिरिक्त यहां का जल उष्ण और आकर्षक होता है। जगह-जगह समुद्र के किनारे लोगों के तैरने के स्थल बने हुए हैं, जहां सैर करने के लिए आने वाले व्यक्ति सैकड़ों और हजारों की संख्या में मौज उड़ाते हैं।

यहां के लोगों का पुष्प-प्रेम भी उतना ही निराला है। हो सकता है कि इसका कारण यह हो कि हवाई द्वीपों में वर्ष भर फूल खिलते हैं। एक विशेष प्रकार के पुष्प-हार बनाना यहां की प्राचीन कला है। ये पुष्प-हार पुरुषों और स्त्रियों द्वारा बड़े चाव से पहने जाते हैं और सुन्दरतम शृंगार माने जाते हैं। हूला नृत्य भी पुष्प-हार पहनकर किया जाता है। ये पुष्प-हार फूलों को गूंथकर इस प्रकार बनाया जाता है कि गर्दन के चारों ओर लिपटकर शरीर का ही एक अंग प्रतीत होने लगता है और महिलाओं के सौन्दर्य को बहुत अधिक बढ़ा देता है।

हवाई द्वीपों का पता १७७८ में कप्तान कुक ने लगाया था। उससे पहले हवाई द्वीपों के इतिहास के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी है। प्राचीन समय में हवाई द्वीपों

में निरंकुश एकतन्त्र स्थापित था। कामेहामेहा शासक राज्य करते थे। समाज जन-साधारण और शासक वर्ग में विभक्त था। शासक वर्ग तीन श्रेणी के होते थे—राजघराने का वर्ग, परम्परागत राज्यपाल बनने वाला वर्ग और गाँवों आदि का अधिकारी वर्ग। लिली अकालानी के शासन-काल में संयुक्त राज्य अमेरिका ने अमेरिकीयों की जान-माल की रक्षाके लिए हस्तक्षेप किया। १८९५ में यहाँ गणराज्य की स्थापना की गयी और पी डोल राष्ट्रपति बने, लेकिन हवाई में उनके बाद कोई और राष्ट्रपति नहीं हुआ, क्योंकि १२ अगस्त, १८९८, को अमेरिका ने ये द्वीप अपने अधीन कर लिये।

अब हवाई द्वीपों का राजनीतिक लक्ष्य संयुक्त राज्य अमेरिका के एक राज्य का दर्जा प्राप्त करना है। प्रेसीडेंट ट्रूमेन अमेरिका के ऐसे पहले राष्ट्रपति थे जिन्होंने हवाई द्वीपों को राज्य का दर्जा देने का समर्थन किया था। २१ जनवरी, १९४६, को उन्होंने कांग्रेस से एक संदेश में अनुरोध किया था कि हवाई द्वीपों को फौरन ही राज्य का रूप देकर अमेरिका यूनियन में शामिल कर लिया जाय। १९५१ में बयासीवीं कांग्रेस में लोक-सभा की बजाय यह विधेयक सेनेट मे रखा गया।

इन द्वीपों का नया राज्य बना देना सर्वथा उचित होगा।

२७

पूर्व के सबसे उन्नत देश की ओर

होनोलुलू से ता० ४ नवम्बर की रात को १ बजे, जब यथार्थ में ता० ५ शुरू हो रही थी, हमारा वायुयान जापान के लिए रवाना हुआ। मौसम अच्छा था। रात थी चाँदनी। निर्मल आकाश में तारे और ग्यारह कला का चाँद, नीलिमा से युक्त श्वेत प्रकाश फैला रहे थे, जिस प्रकाश में ऊपर नीले नभ और नीचे नीले सागर का एक अद्भुत प्रकार का सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता था। वायुयान के बैठने की सीटें बहुत अच्छी थीं। कुछ लोगों के सोने की व्यवस्था भी थी, जो स्थान कुछ अधिक देने पर प्राप्त किये जा सकते थे। बैठे-बैठे भी अच्छी तरह सोया जा सकता था।

वायुयान के चलने के थोड़ी ही देर बाद हमें नींद आ गयी। जब हमारी नींद खुली तब पौ फट चुकी थी। अब खिड़की के बाहर का दृश्य स्पष्ट दिखायी दे रहा था। आकाश अभी भी निर्मल था और जैसा आकाश था वैसा ही समुद्र। पूर्व दिशा में क्षितिज पर अरुण के सारथी अरुण का अरुण प्रकाश फैल रहा था। कैसा सुन्दर दृश्य था। थोड़ी ही देर मे भगवान् अंशुमाली के दर्शन हुए—पहले एकदम लाल वर्ण में और आज रक्त-वर्ण रवि को देख मुझे पवनसुत की उस कथा का स्मरण हो आया जब उन्होंने लोहित वर्ण के मार्तण्ड को लाल रंग का एक फल मान भक्षण करने का प्रयत्न किया था। लाल रंग के रवि की लाली ने नील वर्ण व्योम के संग-संग नीले सागर को भी एक नयी आभा दी। रक्तवर्ण से सुनहरी रंग लेने में सूर्य को बहुत देर न लगी और सोने के सहस्रांशु की सुवर्ण अंशुएँ सागर में सोना-सा घोलने लगीं। अब तक आँखों में इस सारे दृश्य को देखने की सामर्थ्य थी, पर ज्यों ही सूर्य ने अपना पूर्ण तेज धारण किया त्योंही चर्म-चक्षु चौंधिया गये। किन नेत्रों में वह शक्ति है जो सूर्य से नजर लड़ा सके।

ऊपर मार्तण्ड की मयूखों से सुशोभित नीलाकाश था और नीचे इन्हीं मयूखों से प्रतिबिम्बित नील समुद्र। बीच में कोई ३०० मील प्रति घण्टे की चाल से हमारा वायुयान चला जा रहा था, परन्तु ऊपर और नीचे अन्य कोई वस्तु न रहने के कारण इस तेज चाल से चलने पर भी जान पड़ता जैसे वायुयान खड़ा हुआ है। थोड़ी देर

मिलने पर नहीं। इस तूफान ने ग्रास्ट्रेलिया के पोर्ट डारविन से सिडनी जाते हुए जो तूफान मुझे मिला था उसका स्मरण दिलाया। अन्तर यह था कि पोर्ट डारविन से सिडनी हम रात को गये थे अतः बंपिग एवं बरसते हुए पानी के शब्द के सिवा हमें बाहर का कोई दृश्य दिखायी न देता था, ग्राज की यात्रा थी दिन की अतएव बंपिग के अतिरिक्त बाहर का दृश्य भी हमें दीख पड़ता था। घने बादलों के बीच से हमारा हवाई जहाज उड़ रहा था। खूब धुन्ध था ग्रौर बरसते हुए पानी के शब्द के सिवा वह पानी भी दिखायी पड़ रहा था। घोर वृष्टि हुई ग्रौर खूब बंपिग। कभी-कभी बंपिग के कारण वायुयान एकाएक नीचे की ग्रोर धँसता तब जोर की ग्रावाज होती ग्रौर यात्री भयभीत हो उठते। जान पड़ता कहीं वायुयान टूट तो नहीं रहा है। यह तूफान कोई सवा घण्टा चला। तूफान की समाप्ति ग्रौर टोकियो का पहुँचना प्रायः साथ-साथ ही हुग्रा। जापान की भूमि पर उतरने के पहले सर्वप्रथम दर्शन हुए जापान के सर्वोच्च पर्वत फूजी के। इस शैल के ऊपरी शिखरों पर जमा हुग्रा शुभ्र हिम चमक रहा था। जापान के इस गौरवशाली गिरि को चित्रोंमे तो हमने ग्रगणित बार देखा था, परन्तु ग्राज प्रत्यक्ष में इसके दर्शन कर इसे प्रणाम किया।

जब हमारा वायुयान टोकियो की भूमि पर उतरा उस समय टोकियो की ता० ६ नवम्बर के ग्रपराह्न के पौने तीन बजे थे। सेन्फ्रान्सिस्को से टोकियो तक हम कोई २६ घण्टे उड़ चुके थे ग्रौर हमने लगभग ४,५०० मील दूरी को नापा था।

२८

जापान में एक पक्ष

टोकियो के हवाई अड्डे पर हमें लेने भारतीय दूतावास के श्री नायर तथा जापान की एक प्रसिद्ध व्यापारी कम्पनी किनशो ट्रेडिंग के प्रतिनिधि श्री मियोरा मौजूद थे। भारतीय दूतावास वालों को हमारे आने की सूचना वाशिंगटन के भारतीय दूतावास ने दे दी थी और किनशो ट्रेडिंग कम्पनी को श्री गोवर्धनदासजी बिन्नानी ने। टोकियो के हवाई अड्डे पर मिलने के पश्चात् हमारे जापान छोड़ने तक इस कम्पनी के प्रतिनिधियों ने तो हमारी जो खातिर-तसल्ली की वह अवर्णनीय है। कितनी शिष्टता, कितना ममत्व दिखाया इन लोगों ने। ऐसा आतिथ्य-सत्कार हमारा इस सारे दौरे में अब तक किसी ने न किया था। माता और हैजे के टीकों के सर्टिफिकेट तथा चुंगी महकमे में सामान के निरीक्षण के पश्चात् हम लोग टोकियो के सर्वश्रेष्ठ इंपीरियल नामक होटल आये, जहाँ हमारे ठहरने की व्यवस्था पहले से की जा चुकी थी।

जापान में हम ता० २३ नवम्बर तक एक पक्ष से भी अधिक ठहरे। इन दिनों में हम लोग टोकियो में रहे और जापान के अन्य प्रसिद्ध स्थानों को भी गये।

अन्य देशों के सदृश जापान में भी हमने सभी कुछ देखने का प्रयत्न किया। यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा देखी। यहाँ के सबसे बड़े नगर टोकियो और यहाँ के सबसे बड़े व्यापार-केन्द्र ओसाका को देखा। यहाँ के प्राचीन धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्थान देखे। यहाँ के जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं को जानने का प्रयत्न किया। यहाँ की प्रसिद्ध संस्थाएँ देखीं। यहाँ की खेती और उद्योग-धन्धे देखे, विशेषकर छोटे-छोटे कल-कारखाने, (स्मॉल स्केल इण्डस्ट्रीज तथा कॉटेज इण्डस्ट्रीज) जिनके लिए जापान सारे संसार में प्रसिद्ध है। यहाँ का प्रसिद्ध काबुकी नामक रंगमंच देखा और यहाँ के नाइट-क्लब भी देखे।

प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण समूचे जापान को एक बड़ा पार्क या हिल-स्टेशन अर्थात् बाग अथवा पार्वत्य प्रदेश कहा जा सकता है, इसीलिए सैर के लिए जापान एक अत्यन्त उपयुक्त स्थान है। सर्वत्र ही पहाड़ दिखायी देते है जो कहीं भी बहुत

ऊँचे नहीं हैं। समूचे जापान मे पर्वत-श्रेणी रीढ़ की हड्डी के समान फैली हुई है। इनमें से कुछ पर्वत जलते हुए ज्वालामुखी हैं। पर्वतों के बीच-बीच में अत्यन्त सुन्दर झीलें हैं। मैदानों में पायी जानेवाली झीलें उतनी सुन्दर नहीं हैं और कहीं-कहीं तो दलदल-मात्र हैं। ज्वालामुखी के प्रकोप के कारण पर्वत के आकार कहीं-कहीं जहाँ-तहाँ बिगड़ गये हैं, पर इससे उनका सौन्दर्य और भी बढ़ गया है। इसके अतिरिक्त जापान का वनस्पति जगत् है जो सदैव हरा-भरा रहता है।

जापान की एक और विशेषता वहाँ के गरम सोते हैं। दुनियाँ में कोई और देश ऐसा नहीं है जहाँ इतने अधिक प्राकृतिक गरम सोते हों। इनके समीप जापान के प्रतिदिन के जीवन की जितनी सुन्दर झाँकी मिलती है उतनी अन्यत्र नहीं। गत कुछ वर्षों से शहरों के लोग सप्ताह के अंतिम दिनों में इन सोतों की ओर अधिकाधिक आकर्षित होने लगे हैं। इन लोगों की सुविधा के लिए एक संस्था भी कायम की जा चुकी है। एक हजार एक सौ से अधिक ऐसे सोते हैं जिनका पानी चिकित्सा के लिए लाभदायक माना जा चुका है। क्यूशू का बेप्पूनगर तो आश्चर्यजनक गरम सोतों के नगर के रूप मे विश्व-विख्यात् हो चुका है। गंधक के भी बहुत से सोते पाये जाते हैं जहाँ रोगी इलाज के लिए आते रहते हैं।

संसार के जितने देश हमने देखे उनमें प्राकृतिक शोभा की दृष्टि से जापान का स्थान सबसे अच्छे देशों में है। इस प्राकृतिक देन का मनुष्य ने भी उपयोग किया है। यहाँ के बगीचों में क्रिसैंथमम नामक पुष्प के पौधे तो विदेशी निरीक्षक कभी विस्मृत ही नहीं कर सकते। इन फूलों को भारत मे गुलदावरी कहते हैं। बड़े गुल-दावरी के फूल एक-एक पौधे मे सौ-सौ से अधिक होते हैं और छोटे गुलदावरी के फूल तो एक-एक पौधे में सैकड़ों। फिर इनके भिन्न-भिन्न रंग देखते ही बनते हैं।

प्रकृति ने यहाँ के जड़ जगत् पर ही कृपा नहीं की है, जंगम जगत् पर भी। इस जंगम जगत् की सर्वश्रेष्ठ सृष्टि मानव और मानव के वाम भाग पर यहाँ निसर्ग की जितनी दया हुई है उतनी मेरे मतानुसार इस संसार के किसी भी देश पर नहीं। मै पढ़ता और सुनता आ रहा था कि नखशिख जितना आर्य जाति का सुन्दर होता है उतना अन्य किसी का नहीं, परन्तु जापानी महिलाएँ मंगोल जाति की होने पर भी मुझे जितनी सुन्दर जान पड़ीं उतनी आर्य जाति की भी नहीं। जापान ठण्डा देश है, अतः यहाँ के निवासी गौर वर्ण हैं; बहुत ऊँचे पूरे भी नहीं, प्रायः ठिगने हैं। यहाँ के निवासियों की मुखाकृति आर्यों से सर्वथा भिन्न है। हमारी आर्य जाति में जिन कमल-दल लोचनों और शुक-नासिका का वर्णन है वैसे बड़े-बड़े नेत्र और नुकीली नाक यहाँ के निवासियों की नहीं। अनेक की आँखें तो दो रेखाओं के सदृश मुख पर खिची-सी रहती है, पर उनकी मुखाकृति पर ये टेढ़ी नेत्र-रेखाएँ मुझे तो बड़ी भली

जान पड़ीं। फिर यहाँ की महिलाओं के व्यवहार में एक विचित्र प्रकार की मृदुता है। यह व्यवहार आरम्भ होता है मुस्कराहट से युक्त अत्यन्त झुककर विनम्र नमन से। जापानी एक या दोनों हाथ उठा अथवा केवल सिर झुकाकर नमस्कार नहीं करते। नमस्कार करते समय वे कमर तक के शरीर के आधे ऊपरी भाग को झुकाते हैं। महिलाओं को इस प्रकार का नमन मुस्कराकर करना चाहिए, यह शायद सारी जापानी जाति को सिखाया गया है। यह नमन तथा इसके पश्चात् भी हर प्रकार के व्यवहार में विनम्रता ने इन महिलाओं के सौन्दर्य में मृदुता और माधुर्य का समावेश कर इन्हें कहीं अधिक सुन्दर बना दिया है। फिर इस सौन्दर्य में और वृद्धि की है इनके चित्र-विचित्र रंगों के एक विशेष ढंग के वस्त्रों ने। मुझे तो यह बड़े ही खेद की बात जान पड़ी कि जापानी महिलाएँ अपनी जापानी पोशाक छोड़कर पश्चिमी वेश-भूषा अपना रही हैं। और जापानी महिलाओं के इस समस्त सौन्दर्य, चटकीली वेश-भूषा एवं विनम्र तथा मधुर व्यवहार में कहीं भी अश्लीलता का स्पर्श तक नहीं हुआ है। उनमें सौन्दर्य है, शील है, शालीनता है। जो लोग यह समझते हैं कि स्त्रियों की अर्ध नग्न वेशभूषा और केवल चटक-मटक आकर्षक वस्तुएँ हैं उनके लिए जापानी महिलाएँ एक चुनौती हैं। ये महिलाएँ अपने बच्चों को एक विचित्र प्रकार से ले जाती हैं; गोद में नहीं पीठ पर।

आर्थिक दृष्टि से इस देश में मानव ने कम काम नहीं किया है। भूमि पर्याप्त न होने तथा जन-संख्या की अधिकता होने के कारण यदि जापान के निवासी अपनी आवश्यकता के अनुसार खाद्य-वस्तुएँ उत्पन्न न कर सकें तो इसमें उनका दोष नहीं, पर उन्होंने सारे देश की भूमि का इंच बराबर भाग भी निकम्मा नहीं छोड़ा है। यहाँ खेती के बड़े-बड़े फार्म नहीं हैं। इसीलिए खेती में ट्रैक्टर आदि बड़ी-बड़ी मशीनों का उपयोग नहीं होता। छोटे-छोटे खेत हैं। कृषक अपने हाथों, पशुओं तथा छोटी-छोटी मशीनों की सहायता से खेती करते हैं। सुना गया कि खेती करनेवाले एक कुटुम्ब के पास ढाई एकड़ से अधिक भूमि शायद ही किसी के पास हो। इन अनेक छोटे-छोटे फार्मों में वर्ष में छः-छः फसलें तक होती हैं। मुख्य चावल की फसल है और फी एकड़ जितना चावल यहाँ पैदा होता है उतना दुनियाँ में कहीं नहीं। अन्न के सिवा अन्य कोई भी ऐसी वस्तु नहीं जिसे जापानी अपने देश में न बनाते हों। बड़ी-से-बड़ी और छोटी-से-छोटी हर प्रकार के उपयोग की वस्तु जापान में तैयार होती है। इसलिए अन्न बाहर से मँगाने पर भी इस देश के निर्यात के आँकड़े सदा आयात के आँकड़ों से अधिक रहते हैं। कल-कारखाने बड़े और छोटे दोनों प्रकार के हैं। छोटे-छोटे कारखानों (स्मॉल स्केल इण्डस्ट्रीज)का तो सारे देश में जाल-सा फैला हुआ है। छोटे-छोटे इन कारखानों में मशीनों के भिन्न-भिन्न पुर्जे भी तैयार होते हैं और फिर वे पुर्जे

बड़े-बड़े कारखानों में इकट्ठे कर बड़ी-बड़ी मशीन बन जाती हैं। हमने कुछ बड़े-बड़े छापेखाने देखे। इन छापेखानों की बड़ी-से-बड़ी रोटरी और मैट्रस बनाने की मशीनें हमने जापान की ही बनी पायीं। हमने धातु के भी कुछ कारखाने देखे। उनकी भी अधिकांश मशीनें जापान की ही बनी हुईं। छोटे कारखानों के सिवा लोहे तथा इस्पात के बड़े-से-बड़े कारखाने भी यहाँ हैं। और इन सारे कल-कारखानों को चलाने के लिए बिजली की ताकत तो तमाम देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली हुई है। पानी से निकलनेवाली बिजली (हाइड्रो-इलैक्ट्रिक) के खम्भे सुदूर-से-सुदूर गाँवोंमें भी दिखायी पड़ते हैं। यह सस्ती बिजली की ताकत यहाँ के उद्योग-धन्धों की नींव है। यहाँ के उद्योग-धन्धों के सफलतापूर्वक चलते रहने के तीन प्रधान कारण हैं। पहला है, हर तैयार माल की बिक्री के लिए 'मार्केटिंग ब्यूरो' का देश-व्यापी संगठन। इस संगठन के कारण कोई भी माल कारखानों में पड़ा नहीं रह सकता। ये संगठन माल की देश में बिक्री करता है और देश के बाहर भी माल का निर्यात करता है। कोई भी तो तैयार माल ऐसा नहीं जिसकी बिक्री का 'मार्केटिंग ब्यूरो' न हो। दूसरा कारण है, यातायात की व्यवस्था। यह व्यवस्था इतनी अच्छी है कि कोई माल यातायात के साधनों की कमी के कारण पड़ा नहीं रहने पाता। और तीसरा कारण है, हर कारखाने वालों को कानूनन कुछ संख्या काम सीखने वालों (एपेरेन्टिसों) को रखना पड़ता है। इससे काम जानने वालों (स्किल्ड लेबर) की कमी नहीं होने पाती। जापान में आर्थिक उन्नति का प्रधान कारण वहाँ के लोगों का अत्यधिक श्रमशील और चरित्रवान होना है। अपने काम-धन्धों में जापानी जितनी अधिक मेहनत करते हैं कम जातियाँ करती होंगी। इसी के साथ सुना गया कि वे बड़े ईमानदार होते हैं। कोई भी जिम्मेदारी का काम उन्हें निःशंक होकर सौंपा जा सकता है। इतने पर भी जापान अमेरिका और यूरोप के सदृश धनवान नहीं है। हाँ, पूर्व का शायद सबसे धनवान देश कहा जा सकता है।

परन्तु सम्पन्न होने पर भी जापान की अर्थ-व्यवस्था मूलतः कमजोर है। अर्थ-व्यवस्था की कमजोरी के कारण हैं—भूमि की और प्राकृतिक साधनों की कमी, बढ़ी हुई आबादी, अभी भी किसानों की गरीबी, उद्योग-धन्धों के आधुनिकता की ओर जाते हुए भी जापानी माल की निकासी के लिए मंडियों की कमी और विदेशों पर आवश्यकता से अधिक निर्भरता आदि।

जापान का केवल साढ़े पन्द्रह प्रतिशत भाग खेती के योग्य है। कोई साढ़े सात प्रतिशत भाग में चरागाह हैं। बाकी भाग में जंगल हैं। जापान के प्राकृतिक साधन न्यून हैं। अपनी आवश्यकता का एक-तिहाई लोहा उसे विदेशों से मँगाना पड़ता है। अधिकतर कच्चे माल के लिए उसे दूसरे देशों का मुँह ताकना पड़ता है। रबड़, कपास, ऊन आदि उसे लगभग पूरे के पूरे बाहर से भी मँगाने पड़ते

है। मोटे तौर पर अपने कारखानों की आवश्यकता के कच्चे माल का ४० प्रतिशत भाग ही जापान अपने यहाँ से प्राप्त कर पाता है। गन्धक जापान में अवश्य बहुत अधिक होता है। जापान में अधिकांश छोटे और घरेलू उद्योग हैं। ८० प्रतिशत कारखाने छोटी-छोटी दूकानें मात्र हैं जिनमें काम करनेवालों की संख्या बहुत कम होती है। इसके अलावा तरीके भी पुराने और दकियानूसी हैं। जापान एक ऐसा देश है जिसे कच्चे माल के लिए भी विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है और अपने कारखानों में तैयार होने वाले सामान की निकासी के लिए भी विदेशों पर। इस प्रकार विदेशी व्यापार ही उसके जीवन का मुख्य साधन है और यही उसकी अर्थ-व्यवस्था का एक बहुत महत्त्वपूर्ण पहलू है।

जापान में कोई भी अशिक्षित नहीं है। सारी जनता शिक्षित है। शिक्षा दी जाती है जापानी भाषा में। वैज्ञानिक शब्दावली भी जापान की अपनी है, विदेशी नहीं। किसी विदेशी भाषा का यहाँ प्रभुत्व नहीं। अंग्रेजों और अमेरिकनों से सम्बन्ध रहने पर भी अंग्रेजी गिनती के लोग जानते हैं और जो जानते हैं उनमें भी ठीक तरह अंग्रेजी जानने वाले तो हमें मिले ही नहीं, उनकी गिनती तो शायद उँगलियों पर की जा सकती है।

१९४७ के नये शिक्षा कानून के अनुसार विद्यार्थी को छः वर्ष तक प्राइमरी शिक्षा, तीन वर्ष तक निम्न माध्यमिक और उच्च माध्यमिक शिक्षा और चार वर्ष तक कालिज शिक्षा दी जाती है। छः वर्ष की प्राइमरी शिक्षा और तीन वर्ष की निम्न माध्यमिक शिक्षा सबके लिए अनिवार्य है। एक और परिवर्तन यह हुआ है कि सामाजिक शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाने लगा है। सैनिकवाद और राष्ट्रवाद की शिक्षा अब समाप्त कर दी गयी है। वहाँ एक शिक्षा आयोग (कमीशन) बनाकर शिक्षा का विकेन्द्रीकरण कर दिया गया है। स्थानीय शिक्षा के प्रबन्ध का काम इसी आयोग को सौंपा गया है और शिक्षा मन्त्रालय सलाहकार संस्था मात्र हो गया है।

जापान में कालिजों और विश्वविद्यालयों की संख्या २०३ है। इनमें से ७१ राष्ट्रीय, २६ सरकारी और १०६ गैर सरकारी हैं। कालिजों और विश्वविद्यालयों में लड़के-लड़कियाँ साथ-साथ शिक्षा प्राप्त करते हैं।

किसी विदेशी भाषा में पटु न होने पर भी जापानी असभ्य या असंस्कृत नहीं कहे जा सकते। वे पूर्णतया सभ्य और सुसंस्कृत हैं। यह तो भारत का ही एक शाप है कि अपनी मातृभाषा का पण्डित भी यदि विदेशी भाषा अंग्रेजी न जाने तो वह अर्द्धशिक्षित तथा असंस्कृत माना जाता है।

जापानी अधिकतर बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। बौद्ध धर्म के पूर्व जापान में 'शिंटो'

धर्म का प्रचार था। उसके भी अनुयायी यहाँ कम नहीं। सारे देश में बौद्ध और शिंटो मन्दिर फैले हुए हैं। जापान की सारी संस्कृति इन दोनों धर्मों से पूर्णतया प्रभावित है फिर भी इन दोनों धर्मों में कोई झगड़ा नहीं है। आरम्भ में जापानी प्रकृति के उपासक थे और मृत आत्मा में विश्वास करते थे, पर तीसरी शताब्दी में चीनी संस्कृति के सम्पर्क से जापान में बौद्ध मत और कनफ्यूसियस मत का प्रभाव पड़ा। बौद्ध मत के प्रभाव से उच्च आदर्शों, कलाओं और साहित्य को प्रेरणा मिली। बौद्ध मत के साथ-साथ जापान में कला, साहित्य, दर्शन और विज्ञान का विकास होने लगा। सातवीं शताब्दी समाप्त होते न होते सारा देश बौद्ध मत के प्रभाव में आ गया था। चौदहवीं शताब्दी में धर्म और राजनीति के बीच संघर्ष छिड़ा। मूल जापानी धर्म शिंटो का पुनः प्रादुर्भाव हुआ। दो शताब्दी तक खींचतान चलती रही। सत्रहवीं शताब्दी में जब शान्ति और राजनीतिक एकता स्थापित हुई तो जापान में ईसाई धर्म ने भी प्रवेश किया।

इस धार्मिक प्रभाव वाली संस्कृत ने यहाँ के लोगों को बड़ा कलापूर्ण बना दिया है।

यहाँ के लोगों की तन्दुरुस्ती भी बुरी नहीं। महामारियों का प्रकोप यहाँ नहीं सुना गया। पर इस सम्बन्ध में यहाँ की सरकार की कुछ विचित्र आज्ञाएँ हैं जैसे न जाने क्यों यह माना गया है कि आम से हैजा होता है, अतः आम के आयात पर यहाँ पूर्ण प्रतिबन्ध है।

यहाँ के लोगों की वेशभूषा पश्चिमी हो गयी है। पुरुष तो प्रायः सभी पश्चिमी ढंग के वस्त्र पहनते हैं, स्त्रियों में भी अधिकतर पश्चिमी। यह क्यों हुआ है यह कहना कठिन है। कदाचित् पश्चिमी वेशभूषाका यहाँ की वेशभूषा से अधिक सुविधाजनक होना इसका प्रधान कारण है। गाँवों तक में पश्चिमी वेशभूषा का प्रचार है। फिर आज तो सारे संसार के देशों पर ही पश्चिमी सभ्यता और पश्चिमी वेशभूषा का प्रभाव है। परन्तु वेशभूषा पश्चिमी होने पर भी जापानियों के रहन-सहन में अधिकांश बातें पूर्वी ढंग की है, जैसे, उनके मकानों के भीतर जूते नहीं जाते। कुर्सियों पर न बैठ वे जमीन पर बैठते हैं और जमीन पर बैठकर ही खाते हैं।

यहाँ के निवासियों में बहुत अधिक धनवान और बहुत अधिक निर्धन दोनों ही कम हैं। मध्यम श्रेणी के लोग अधिक हैं। पर धनवान और निर्धन दोनों ही नहीं हैं यह नहीं कहा जा सकता। निर्धन तो काफी कहे जा सकते हैं। हमने यहाँ भिक्षा माँगने वाले भी देखे। जीवन-धोरण अमेरिका और यूरोप के अनुसार नहीं, पर पूर्व के देशों में शायद सबसे अच्छा है। गाँवों में मकान बहुत अच्छे नहीं, पर कपड़े सभी अच्छे पहनते हैं। बच्चों में भी नंगे बच्चे हमने कहीं नहीं देखे। लोगों का भोजन चावल

१२९. जापान का प्रसिद्ध पर्वत 'माउंट' फ्यूजी
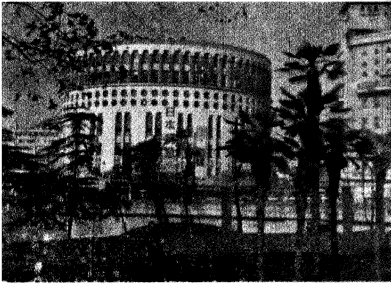
१३३. एक गोलाकार नाटकघर; टोकियो
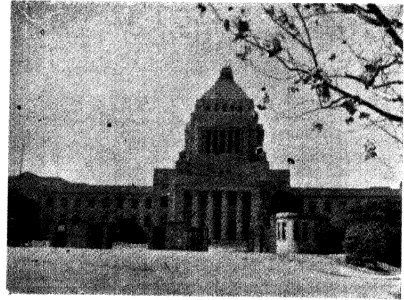
१३१. जापान का संसद् (डायट) भवन
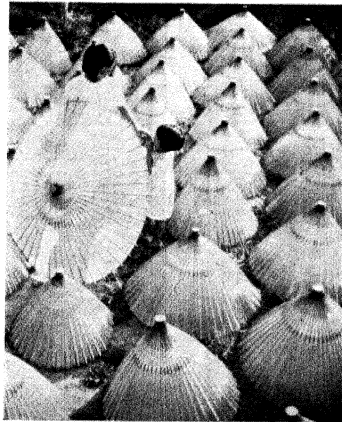
१३२. जापान के प्रसिद्ध कागज के छाते

१३०. टोकियो की प्रधान सड़क

१३४. काबुकी रंगमंच के नाटकघर का बाहरी भाग; टोकियो
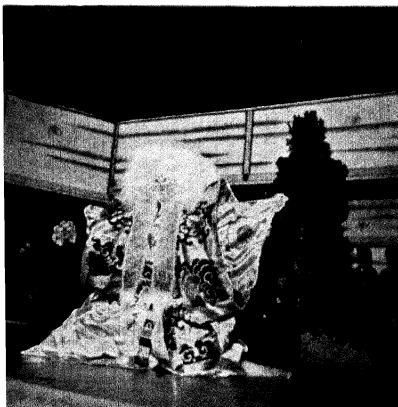
है। और भी सभी प्रकार के मांस खाये जाते है। बिना पकायी हुई मछली लोग बड़े चाव से खाते हैं। कहीं-कहीं मेंढक और सांप भी आहार के काम में आते हैं। हमने, जापान में जिन स्थानों को देखा वे हैं—टोकियो, कामाकुरा, इनोशिमा, ओसाका नारा, किओटो, हाकोने, निक्को।

टोकियो

टोकियो जापान की राजधानी तथा इस देश का सबसे बड़ा नगर है, और इस देश का ही क्या संसार के सबसे बड़े नगरों में टोकियो का नम्बर चौथा है। उसका स्थान पैरिस के बाद आता है। टोकियो की आबादी है लगभग साठ लाख। छोटे-छोटे लकड़ी के मकानों का यह खूब फैला हुआ शहर है। पत्थर, सीमेन्ट या ईंट-चूने के पक्के मकान यहाँ बहुत कम हैं। प्रायः भूकम्पों का होते रहना कदाचित् इसका मुख्य कारण है। सड़कें भी बहुत चौड़ी नहीं हैं। नगर में सफाई अच्छी नहीं है; अधिकांश भाग काफी गन्दा है (चित्र नं० १३०)।

टोकियो शहर जापान का मैं कोई दर्शनीय स्थान नहीं मानता। यहाँ की धारा-सभा के भवन, कुछ बगीचे और डिपार्टमेंटल स्टोर्स नामक सब वस्तुओं के मिलने की विशाल दुकानों को छोड़ यहाँ का न कोई मकान ही देखने योग्य है और न कोई बाजार। संसद् जिसे यहाँ 'डायट' कहते हैं उसका भवन अवश्य दर्शनीय है (चित्र-नं० १३१)। संसद् की तीन मंजिली इमारत कसूमीगासे की पहाड़ी पर बनी है। इसकी उंचाई २१५ फुट है और यह जापान की सबसे ऊँची इमारत है। इस इमारत को बनने में अठारह वर्ष लगे और इस पर २ करोड़ ५८ लाख येन (जापान का सिक्का) खर्च हुआ। पूरी इमारत १९३६ में बनकर तैयार हुई। यह इमारत लोहे की सलाखों से पक्के किये गये कंकरीट और ग्रेनाइट से बनी है। इस इमारत में विदेशी सामान नहीं लगा है। संसद् की इमारत में ३९० कमरे हैं। इमारत के दायें भाग में परिषद्-भवन है जिसमें ४६० व्यक्तियों के बैठने का स्थान है। बाईं ओर धारा-सभा भवन है जिसमें ४६६ व्यक्तियों के बैठने का स्थान है, किन्तु दोनों सदनों के सदस्यों की निश्चित संख्या २५० और ४६६ है। परिषद् भवन की दर्शक गैलरी में ७७० व्यक्तियों और धारा-सभा की दर्शक गैलरी में ९२२ व्यक्तियों के बैठने का प्रबन्ध है। इस इमारत के केन्द्र में एक बड़ी मीनार है। बड़े हॉल में आधुनिक जापान के तीन बड़े निर्माताओं—स्वर्गीय युवराज ईटो, मारक्विसओकूमा और काउण्ट इटागा की कांसे की मूर्तियां हैं।

टोकियो के तीन बगीचे दर्शनीय हैं। ये तीनों बाग खूब फैले हुए और रमणीय हैं। इनमें फूले हुए रंग-बिरंगे क्रसैन्थमम पुष्पों के सदृश पुष्प हमने कहीं न देखे थे।

डिपार्टमेंटल स्टोर लन्दन, न्यूयार्क आदि के समान ही है। इनमें मुख्य है

मटसूजाकाया। क्यूरिओ या अदभुत दिखने वाली चीजें जितनी जापान में मिलती हैं उतनी दुनियां में कहीं नहीं। इन चीजों में वहां की गुड़िया सबसे आकर्षक हैं। कितनी तरह की और कितनी वेश-कीमती बड़ी तथा छोटी गुड़िया मिलती हैं यहां। ये स्टोर इस प्रकार की चीजों से भरे रहते हैं।

यहां के राष्ट्रीय अजायबघर का संग्रह भी कोई बहुत बड़ा नहीं; हां, यहां की चित्र-कला का संग्रह अवश्य विशाल है। पर इस चित्रशाला में संग्रहीत चित्र और मूर्तियों को सजाने का ढंग बहुत ही बुरा है। दीवालों पर चित्र इस तरह टांगे गये हैं कि उन सबों की भीड़-सी हो गयी है और मूर्तियां तो इस तरह जमायी गयी हैं कि जान पड़ता है कि मूर्तियों का मेला लगा है। स्थान की कमी ही शायद इसका प्रधान कारण है।

टोकियो का जीवन जापान देश के जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। यहां की सड़कों पर नर-नारियों का सदा प्रवाह-सा बहता रहता है। उनके नखशिख तथा वेशभूषा से जापान की जनता के स्वरूप एवं उनके व्यवहार से इस जनता की विनम्रता का ज्ञान हो जाता है। साथ ही टोकियो की गन्दगी से इस बात का भी पता चल जाता है कि जापान के निवासियों का रहन-सहन बहुत स्वच्छ नहीं है। सभी जगह तेल में पकती हुई मछली की दुर्गन्ध आती रहती है।

यहीं हमने जापान के प्रसिद्ध काबुकी नामक रंगमंच को देखा। इसका आरम्भ सत्रहवीं शताब्दी में हुआ था। बड़ा भारी मंच, उस पर चित्र-विचित्र रंगों के विशाल और भव्य दृश्य। जापान की पुरानी वेशभूषा में नट और नटी। स्त्रियों का काम भी इस रंगमंच पर पुरुष ही करते हैं, परन्तु कुछ ऐसे ठिगने-ठिगने तथा दुबले-पतले पुरुषों को स्त्रियां बनाया जाता है कि जब तक हमें यह बात बतायी नहीं गयी कि काबुकी रंगमंच पर स्त्रियों का काम पुरुष ही करते हैं, तब तक हम यह बात जान न सके कि वे स्त्रियां न होकर यथार्थ में पुरुष हैं। काबुकी रंगमंच पर एक प्रदर्शन में एक ही नाटक नहीं खेला जाता। बहुधा छोटे-छोटे नाटकों का संग्रह रहता है। रंगमंच पर एक ओर एक या एक से अधिक लोग जापानी तंबूरे पर नाटक की कथा का गान करते हैं और बीच में नाटक खेला जाता है। इस खेल में सम्भाषण, अभिनययुक्त गीत, नृत्य सभी होते हैं। नाटक की कथा का गान बैक-ग्राउण्ड म्यूजिक की भांति चलता है। मुझे अभिनय बहुत स्वाभाविक न जान पड़ा। ओवर-एक्टिंग बहुत था। मुख्य कलाकारों की सहायता के के लिए रंगमंच पर काले वस्त्र पहने व्यक्ति आते हैं जिन्हें 'कुरोगो' कहा जाता है। इस रंगमंच की वेशभूषा जिस प्रकार जापान की पुरानी वेशभूषा रहती है उसी प्रकार इस रंगमंच की भाषा भी पुरानी जापानी भाषा, जिसे वर्तमान जापान

३७. जापान की प्रसिद्ध 'गेशा' नर्तकियाँ

१३८. एक नर्तकी फूली हुई चैरी को देख प्रफुल्लित हो रही है

१३९. जापान के प्रसिद्ध क्रिसैन्थमम पुष्प

१४०. जापान की खड़ी धान की फसल

१४१. फूली हुई सेबों की लाली का अपने कपोलों की लाली से मिलान करती और हँसती हुई एक तरुणी सेब तोड़ रही है
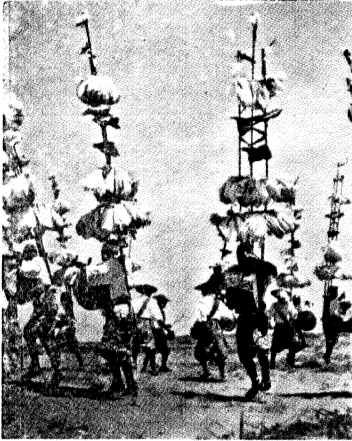
१४२. 'ववेन्ट' नामक पर्व पर एक विशिष्ट प्रकार का नृत्य

१४३–१४४. घास (स्ट्रा) के बने हुए जूते पहने बच्चे बरफ से ढके स्थानों में खेल रहे हैं

निवासी तक बहुत कम समझते हैं और इतने पर भी कितनी अधिक संख्या में कितने अधिक चाव से जापानी देखते हैं इस काबुकी रंगमंच को। सुना यह गया कि काबुकी रंगमंच जापान का राष्ट्रीय रंगमंच है, जिसे सिनेमा आदि कोई भी आधुनिक प्रदर्शन जरा भी आँच नहीं पहुँचा सके। दिसम्बर १९५० में अट्ठाईस करोड़ दस लाख येन की लागत पर इसका पुनर्निर्माण हुआ और यह जापान की आधुनिक वास्तु-कला का एक अनुपम नमूना है। यहाँ प्रमुख काबुकी कलाकार दर्शकों के सम्मुख उपस्थित होते हैं। वर्ष में तीन बार।जनवरी अप्रैल और नवम्बर में विशेष कार्यक्रम होता है। इस थियेटर में ढाई हजार से अधिक लोगों के बैठने का स्थान है। (चित्र नं० १३४ से १३६)

काबुकी रंगमंच का टिकट हफ्तों पहले रिजर्व कराना पड़ता है। अंग्रेजी भाषा में काबुकी नाटक की कथा मिल जाती है। कथा पढ़ने के बाद भाषा समझ में न आने पर भी नाटक की गति समझ में आ जाती है। हम ने इस दौरे में सभी जगहों के रंगमंचों को देखने का प्रयत्न किया। रंगमंचों में काबुकी का अपना एक विशेष स्थान है इसमें सन्देह नहीं। आधुनिक ढंग के रंगमंचों का भी जापान में निर्माण हुआ है। इसे भी हमने देखा, पर इसमें कोई विशेषता नहीं है।

काबुकी के सदृश 'गेशा' नृत्य भी जापान का अपना एक विशेष नृत्य है। इसे भी हमने देखा। गेशा नर्तकियों के इस नृत्य का मिलान भारतीय पुरानी महफिलों से किया जा सकता है। जापानी तंबूरे के साथ एक या एक से अधिक ये गेशा नर्तकियाँ गाती और नाचती हैं। वेशभूषा पुरानी जापानी (चित्र नं० १३७-१३८)। गान तो हमारी समझ में न आया, पर नृत्य में भी हमें कोई विशेषता न दिखी। यह नृत्य प्रायः रंग-बिरंगे चमकदार पंखों को हाथ में लेकर किया जाता है। भारत के पाँचों — भरत नाट्यम्, मैनपुरी, कथाकली, कत्थक और गरभा इस गेशा नृत्य से कहीं अधिक कला-पूर्ण हैं।

रात्रि-क्लबों का इस लड़ाई के बाद यहाँ के जीवन में प्रचार हुआ है, परन्तु यूरोप तथा अमेरिका के रात्रि-क्लबों और यहाँ के रात्रि-क्लबों में कई बातों में बहुत अन्तर है। यहाँ के रात्रि-क्लबों को देखने एवं वहाँ नाचने आदि के लिए पुरुष सपत्नीक या अन्य गार्हस्थ महिलाओं के साथ नहीं जाते। यहाँ जाते हैं पुरुष अकेले, क्योंकि उनकी खातिर-तसल्ली के लिए यहाँ की स्त्रियों का एक समूह रहता है, जो किसी पुरुष के जाते ही उनके पास आ जाती हैं। रात्रि-क्लब मुझे तो सभी जगह व्यभिचार के अड्डे दिखे, पर जापान के ये क्लब तो परोक्ष ही में नहीं प्रत्यक्ष में भी व्यभिचार के अड्डे कहे जा सकते हैं। यहाँ जाने वाले पुरुषों को यहाँ की ये अर्द्ध-नग्न रमणियाँ खिलाती-पिलाती हैं और फिर इनके साथ नाचती हैं। प्रेक्षकों

के इस नृत्य के अतिरिक्त नृत्य और गीतों के कुछ प्रदर्शन भी होते हैं। इन में कुछ प्रदर्शनों की नर्तकियाँ नृत्य करते-करते अपने शरीर पर के कपड़े उतार-उतारकर फेंकती जाती हैं और अन्त में दोनों जाँघों के बीच तीन इंच की पट्टी के सिवा ऊपर और नीचे के अंगों में पैरिस के सदृश यहाँ की नर्तकियों के शरीर पर भी कोई वस्त्र नहीं रहता। इन करीब-करीब नंगी स्त्रियों के हाव-भाव तो इतने कामुक होते हैं जितने मैंने न रोम में देखे थे और न पैरिस में। सुना गया कि लड़ाई के बाद अमेरिकनों के यहाँ आने के पश्चात् की यह सृष्टि है। अमेरिका को अच्छे नाम पर जापान के इन रात्रि-क्लबों को मैं कलंक का रूप मानता हूँ।

टोकियो में हमने दो जापानी फिल्म भी देखे जिन्हें देखकर हमारा मत हुआ कि जापान में अभी सिनेमा की बहुत तरक्की नहीं हुई है। इनमें से एक फिल्म में जापान की इस समय की सबसे प्रसिद्ध कलाकार सुश्री हारा हेरोइनी ने काम किया था।

कामाकुरा और इनोशिमा

टोकियो के निकट ही हमने दो स्थान और देखे। इन दोनों को दर्शनीय कहा जा सकता है। इनके नाम हैं—कामाकुरा और इनोशिमा। कामाकुरा सागामी खाड़ी के किनारे स्थित है और अपनी मधुर जलवायु तथा सुन्दर तट के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ भगवान् बुद्ध की ब्रांज की विशाल, दाइबुत्सू मूर्ति है जो दुनियाँ में अपने ढंग की अनोखी है। अकेले इस मूर्ति के कारण भी कामाकुरा दर्शनीय है और कोई भी दर्शक वहाँ जाने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। सन् ७३७ ई० में जापान के प्रसिद्ध सम्राट् श्री शोमू (Shomu) में जो अनेक बौद्धमठ और मन्दिरों का निर्माण कराया उसमें 'कामाकुरा' सर्वश्रेष्ठ है (चित्र नं० १४५)।

यहाँ की गौतम की विशाल मूर्ति सन् १२५२ में गढ़ी गयी थी। इसे प्रसिद्ध जापानी कलाकार ओनो-गोरोये-मान (Ono-Goroe-Man) ने राजकुमार शोगुन (Shogun) की आज्ञानुसार निर्मित किया था। यद्यपि सन् १४६५ ई० के भयंकर समुद्री तूफान ने मूर्ति को क्षति पहुँचायी फिर भी आज मूर्ति की हालत बहुत अच्छी है। इस मूर्ति की उँचाई ४३ फुट है और इसका घेरा ६७ फुट। चेहरे की लम्बाई ७·७ फुट है। एक-एक आँख ३·३ फुट की है। कान की लम्बाई ६·६ फुट है। मूर्ति का कुल वजन दो हजार सात सौ मन है (चित्र नं० १४६)। इस से बड़ी जापान में एक ही बौद्ध मूर्ति है—किओटो में। टोकियो से कामाकुरा पहुँचने में ५४ मिनिट लगते हैं। बिजली की रेलगाड़ियाँ जल्दी-जल्दी चलती रहती हैं। मोटर कार भी इन स्थानों को जाती हैं। कामाकुरा में बहुत से प्राचीन मंदिर आदि हैं। इन मंदिरों तथा कई अन्य कला-वस्तुओं से पता चलता है कि बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में इसका
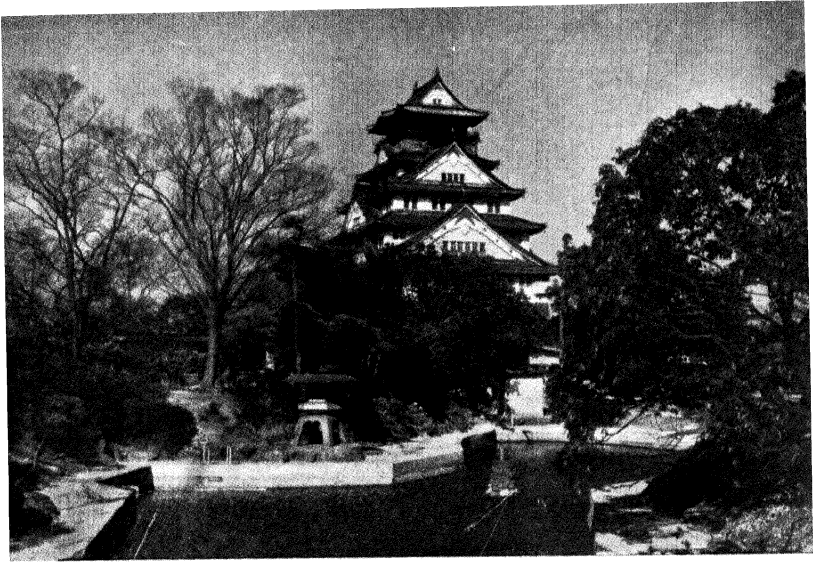
१४५. कामाकुरा की एक इमारत
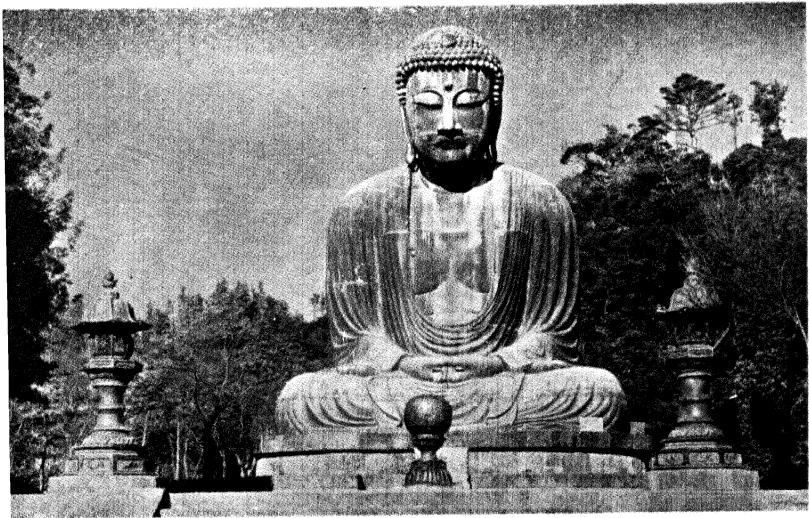
१४६. कामाकुरा की दाइबुत्सू (बड़ा बौद्ध) अमित बुद्ध नामक तांबे की मूर्ति । यह प्रतिमा ४३ फुट ऊँची है और इसका वजन है दो हजार सात सौ मन । सन् १६५२ में यह स्थापित हुई थी

१४७. नारा के 'कासुगा' मन्दिर के सामने मन्दिर में पले हुए मृग
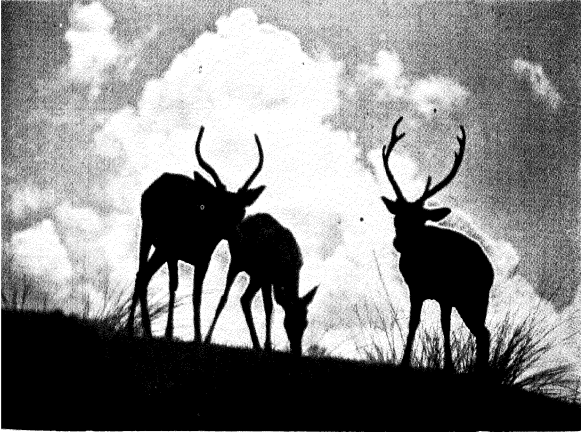
१४८. इसी मन्दिर में पले हुए बारहसिंहे

१४९. लेखक इन मृगों को अपने हाथ से खिला रहे हैं

कितना ऊँचा स्थान था। प्राचीन ऐतिहासिक दृश्य और मंदिर आदि दर्शकों के लिए बड़ी आकर्षक वस्तुएँ हैं।

इनोशिमा कामाकुरा के समीप ही एक छोटा टापू है। इस टापू में एक गुफा है जो कोई ३६० फुट गहरी है और दो शाखाओं में बंटी हुई है। दर्शकों को गुफा देखने के लिए मोमबत्तियां दी जाती हैं। गुफा के छोर पर बाईं ओर बनेटन की एक मूर्ति है जिसे सौभाग्य के सात देवी-देवताओं में से एक माना जाता है।

ओसाका

ओसाका जापान का सबसे बड़ा व्यापार-केन्द्र है। नगर प्रायः टोकियो के सदृश; वहीं का-सा जीवन। ओसाका जापान का दूसरे नम्बर का नगर है। प्राचीन काल में ५५२ ईसवी के आसपास जब जापान में बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ था तब भी ओसाका का देशी और विदेशी व्यापार में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान था। ओसाका योडो नदी के मुहाने पर बसा हुआ है। बहुत अधिक नहरें और पुल होने के कारण ओसाका को जापान का वेनिस कहते हैं। पर रेलें बन जाने के बाद इन पुलों और नदियों का पहले जैसा महत्त्व नहीं रहा। शहर भर में चौड़ी-चौड़ी सड़कें होने के कारण यातायात भी सुगम हो गया है। गत युद्धों में भारी नुकसान होने पर भी पिछले पचास वर्ष में ओसाका एक आधुनिक नगर बनता गया है। ओसाका में कारखानों की बहुत अधिक चिमनियाँ होने और सड़कों पर निरन्तर बढ़ते हुए याता-यात के कारण वह पूर्व की बजाय पश्चिम का नगर अधिक प्रतीत होता है। अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी ओसाका में आकर्षण की जगहें बहुत अधिक नहीं हैं। ओसाका का प्राचीन राज्य-प्रासाद अवश्य दर्शनीय है। इसे १५८४ ई० में हिडेयोशी ने बनवाया था।

नारा

नारा जापान का प्राचीन धार्मिक और सांस्कृतिक केन्द्र है। नारा का कासुगा बौद्ध मन्दिर तो ऐसे रमणीय स्थान पर बना है कि उसे देख भारत के प्राचीन तपो-वनों का स्मरण आता है। इस मंदिर के उपवन में हरिणों के झुण्ड के झुण्ड विचरण किया करते हैं। ये ऐसे पालतू हैं कि खाने की कोई भी वस्तु देने पर आपके निकट आ आपके हाथ से उसे खाते हैं। सुना है कि इन हरिणों के पूर्वज भारत से यहां लाये गये थे और इनकी नस्ल उन्हीं भारतीय हरिणों की हैं। इस तपोवन को देख मुझे महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में वर्णित महर्षि कण्व के आश्रम का स्मरण आये बिना न रहा (चित्र नं० १४७ से १४६)।

किओटो

किओटो सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों वाला एक रमणीय स्थल है। किओटो जापान

की प्राचीन राजधानी रहा है और एक हजार वर्ष से अधिक समय से जापान की सभ्यता का केन्द्र। यह नगर प्राचीन ऐतिहासिक और धार्मिक परम्पराओं का स्थान है और यहाँ उन कलाओं व दस्तकारियों का जन्म हुआ जिनके लिए जापान सारे संसार में प्रसिद्ध है। आधुनिक भौतिक प्रगति के साथ-साथ किओटो बौद्धमत का एक प्राचीन केन्द्र है और यहाँ आज भी प्राचीन जापान की आत्मा के दर्शन किये जा सकते हैं। यह नगर पर्वतों से घिरा हुआ है और इसमें अनोखी मोहक कान्ति है। यहाँ का 'दाइबुत्सू' बौद्ध मन्दिर, उसका पगोडा, उस मन्दिर की विशाल बौद्ध-प्रतिमा तथा घण्टा दर्शनीय है। इस मन्दिर में एक मुरली बजाती हुई श्रीकृष्ण की मूर्ति भी है।

(चित्र नं० १५० से १५४)

हाकोने

यहाँ का प्राकृतिक दृश्य भी बड़ा रमणीय है। गन्धक के कारण यहाँ अनेक गरम झरने हैं जिनसे भाप निकला करती है। एक खासी बड़ी झील भी है। परन्तु गन्धक के ये खेल न्यूजीलैंड के रोटारुआ नामक स्थान में इस स्थल से कहीं अधिक विशेषता रखने वाले हैं।

निक्को

निक्को एक पहाड़ी स्थल है। कुछ फुट चढ़कर एक पहाड़ी मैदान मिलता है जिसमें एक सुन्दर झील और जल-प्रपात है। नदियों, झरनों और पुरातन वृक्षों के कारण निक्को का प्राकृतिक सौन्दर्य अद्वितीय हो गया है। जापान में कहावत प्रसिद्ध है कि जब तक आप निक्को को न देखें आपको जापान के सौन्दर्य का पता नहीं चल सकता। निक्को जापान के सत्रह राष्ट्रीय पार्कों में सर्वप्रमुख है। निक्को में टोशोगू नामक एक शिंटो मन्दिर है। यह मन्दिर बड़ा कलापूर्ण ढंग से बना है।

टोशोगू मन्दिर का निर्माण १६३६ ईसवी में हुआ। इसका योमिनोन द्वार इतना सुन्दर और आकर्षक है कि इसकी सराहना करते मनुष्य का जी नहीं अघाता और वह दिन भर वहाँ से हटने का नाम नहीं लेता। योमिनान के पार जो सफेद द्वार दिखायी देता है वह चीनी ढंग का है और चीनी द्वार के नाम से प्रसिद्ध है। पत्थर की दो सौ सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद ईयासू की समाधि आती है जिस पर काँसे का ग्यारह फुट ऊँचा स्तूप है। टोशोगू का मुख्य त्योहार १७ मई को मनाया जाता है। इस दिन एक विशाल जुलूस निकाला जाता है।

जापान के दर्शनीय स्थानों और वस्तुओं को देखने के अतिरिक्त हमने वहाँ की कुछ संस्थाओं को देखा।

टोकियो में और टोकियो के आसपास टोकियो के अत्यधिक सन्निकट कोई बीस विश्वविद्यालय है। इन विश्वविद्यालयों में से कई में बीस-बीस सहस्र विद्यार्थी

१५०. किम्रोटो का दाइबुत्सु (बड़ा बौद्ध) मन्दिर

१५१. किम्रोटो का पगोडा
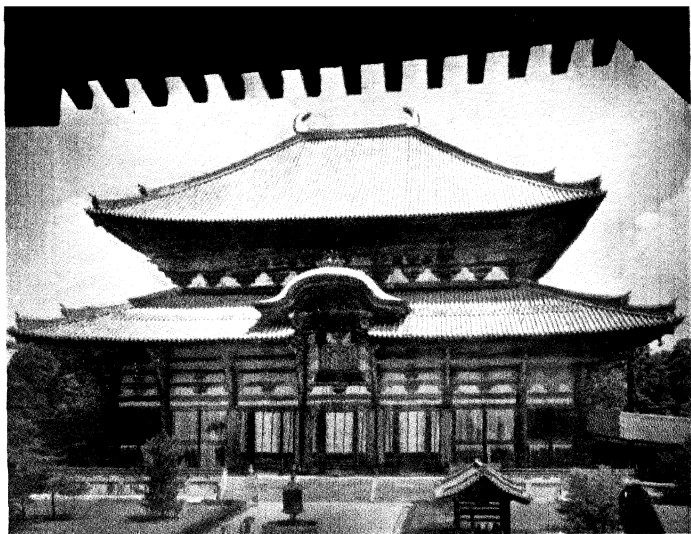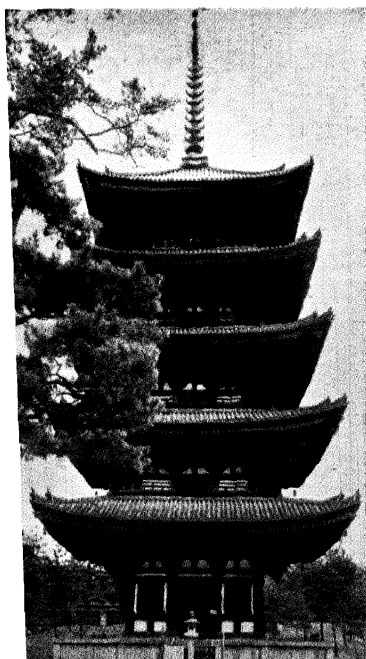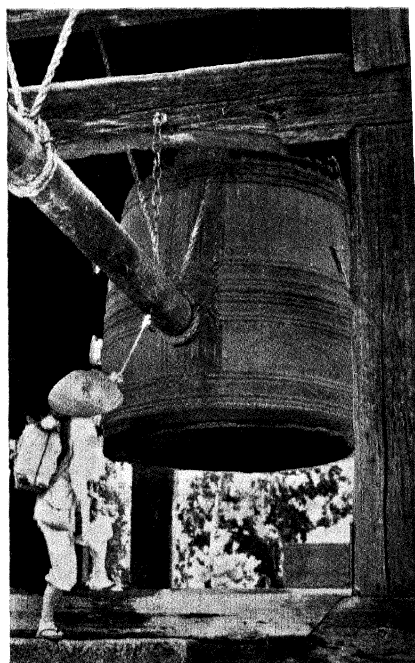
१५२. किम्रोटो के उपर्युक्त मन्दिर का घंटा

१५३. 'कियोटो' के बौद्ध-मन्दिर की प्रतिमा । यह संसार की सबसे बड़ी तांबे की ५३ फुट ५ इंच ऊँची बौद्ध-मूर्ति है । इसका वजन चौदह हजार मन है

१५४. इस मन्दिर में मुरली बजाते हुए श्रीकृष्ण की प्रतिमा भी है

तक पढ़ते हैं। सबसे बड़े विश्वविद्यालय का नाम टोकियो-विश्वविद्यालय है। हमने कुछ विश्वविद्यालय विशेषकर टोकियो विश्वविद्यालय का अवलोकन किया। इस विश्वविद्यालय की काफी बड़ी इमारत है। कुछ इमारतें आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से मिलती-जुलती हैं। विश्वविद्यालय में खेलने के कुछ मैदान और बगीचे भी हैं।

टोकियो-विश्वविद्यालय जापान की सर्वोच्च शिक्षा-संस्था है जो सीधे सरकार के नियन्त्रण में है। सरकारी विश्वविद्यालय के रूप में १८६६ ई० में इसकी स्थापना हुई थी। विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी अमूल्य पुस्तकों, पांडुलिपियों और अन्य सामग्री समेत १९२३ के भूचाल में नष्ट हो गयी थी, किन्तु देश-विदेश के समर्थकों की सहायता से अब वह पुनः पहले जैसी हो गयी है। १९५० में विश्वविद्यालय में कुल विद्यार्थियों की संख्या १३,६११ थी। १९३७ की गर्मियों में सातवां अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन यहीं हुआ था।

टोकियो से जापानी भाषा में कई दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र निकलते हैं। कुछ पत्र अंग्रेजी भाषा में भी प्रकाशित होते हैं। अंग्रेजी भाषा के पत्रों के तो अधिक ग्राहक नहीं है, परन्तु जापानी भाषा के पत्रों के हजारों नहीं पर लाखों ग्राहक हैं। इसका कारण कदाचित् यह है कि जापान में सभी शिक्षित हैं और आर्थिक अवस्था में भी बहुत बुरे नहीं। 'या मी उरी' नामक जापानी भाषा के दैनिक पत्र का दफ्तर और प्रेस हमने देखा। इस पत्र के ग्राहक हैं करीब चालीस लाख। शायद दुनियाँ के किसी पत्र का इतना प्रचार नहीं है। पत्र का दफ्तर और प्रेस दोनों ही अत्यन्त विशाल हैं। प्रेस से सम्बन्ध रखने वाली कोई ऐसी मशीन नहीं जो वहाँ न हो और फिर छोटी-से-छोटी मशीन से लेकर रोटरी तक विशाल-से-विशाल मशीन सब जापान की बनी हुई। एक बात हमें यहाँ की अवश्य खटकी। दफ्तर और प्रेस दोनों में गन्दापन बहुत है। जापान की गन्दगी का यहाँ भी असर है। दफ्तर अत्यन्त विशाल और आधुनिक साधनों से सुसज्जित है। बड़ी-बड़ी रोटरी मशीनों के साथ-ही-साथ तारों द्वारा चित्र भेजने के यन्त्र, विशेष अवसरों पर समाचारों के संकलन के लिए वायुयान इत्यादि की भी व्यवस्था है। संगठन भी बहुत विशाल और चुस्त है।

हमने यहाँ के पी. ई. एन. क्लब और कुछ संस्थाओं को भी देखा। पी. ई. एन. क्लब और इंडोजैपैनीज़ कल्चरल एसोसिएशन के संचालकों ने मुझे भाषण देने के लिए निमन्त्रित किया था। हमने देखा कि इन संस्थाओं के कामों में वहाँ के पढ़े-लिखे और साधारण रोजगार-धन्धे करनेवाले सभी प्रकार के लोग अनुराग रखते हैं। दोनों संस्थाओं की सुन्दर व्यवस्था है और आर्थिक अवस्था भी अच्छी है। पी. ई. एन. क्लब में मेरे भाषण का विषय था आधुनिक लेखकों का क्या दृष्टिकोण होना चाहिए और इंडो-

जैपैनीज़ कल्चरल एसोसिएशन की भारतीय संस्कृति। दोनों जगह मेरे भाषण अंग्रेजी में हुए, पर श्रोताओं में अंग्रेजी समझनेवाले कम थे, अतः दोनों ही स्थानों पर इन भाषणों का जापानी भाषा में अनुवाद किया गया। इन भाषणों के पश्चात् यहाँ भी कुछ प्रश्नोत्तर हुए। इन दोनों भाषणों की जापान की विद्वत्समाज में तथा वहाँ के साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों में बहुत समय तक चर्चा चलती रही जो इस बात का प्रमाण है कि जापान के लोगों को भारत से कितना अधिक अनुराग है।

हम लोग जापान के भिन्न-भिन्न प्रकार के कुछ लोगों से भी मिले इन में कुछ ऐसे भारतीय भी थे जो जापान में ही बस गये हैं। जिन भारतीयों से हम वहाँ मिले उनमें दो प्रधान थे—श्री नारायण और श्री मूर्ति। दोनों ही सज्जन दक्षिण भारत के हैं और दोनों ने अपना विवाह जापानी महिलाओं से किया है। दोनों जापानी भाषा भी इतनी जानने लगे हैं कि जापान में अपना काम भली भाँति चला लेते हैं। श्री नारायण कोई पन्द्रह वर्ष से और श्री मूर्ति कोई अठारह वर्ष से जापान में रहते हैं। श्री नारायण समाचार-पत्रों से सम्बन्धित हैं, भारतीय प्रेस ट्रस्ट के भी संवाददाता हैं और श्री मूर्ति व्यापारी हैं।

मेरे पी. ई. एन. क्लब के भाषण का प्रबन्ध श्री नारायण ने किया था। इसके सिवा उन्होंने जापान के सम्बन्ध में मेरे विचार व्यक्त कराने का जापान के प्रधान ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन से प्रबन्ध कराया था और इसी विषय पर मेरी एक मुलाकात भी ली थी। मैंने सुना कि जापान के सम्बन्ध में ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन में जो कुछ मैंने कहा था उसे अमेरिका में एक विशिष्ट स्थान दिया गया। मेरी मुलाकात के संवाद को जापान और भारत के प्रायः सभी पत्रों ने बड़े-बड़े शीर्षकों से छापा। श्री नारायण का जापान के पढ़े-लिखे समाज से अच्छा सम्बन्ध है।

श्री मूर्ति व्यापारी होते हुए भी सार्वजनिक कार्यों में बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। ये इन्डोजैपैनीज़ कल्चरल एसोसिएशन के सभापति हैं। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के यहाँ के समस्त कार्यों में नेताजी के ये बड़े भारी सहयोगी थे। इनके नाम नेताजी के लिखे हुए कई पत्र हमने देखे। नेताजी के कुछ चित्र और उनके भाषणों के पत्रों के कटिंग भी देखे। उनके एक भाषण का रिकार्ड भी सुना। हमें यह भी मालूम हुआ कि नेताजी के अंग्रेजी भाषणों का जापानी भाषा में अनुवाद श्री मूर्ति की धर्म-पत्नी करती थीं। श्री मूर्ति हमें उस बौद्ध मन्दिर में भी ले गये जहाँ नेताजी की भस्म रखी हुई है। नेताजी की भस्म के साथ उनके चित्र के दर्शन कर ऐसा कौन भारतीय है जिस की आँखों में आँसू न बह निकलें। हमारी भी यही दशा हुई। नेताजी से सम्बन्ध रहने वाली कितनी बातों का मुझे स्मरण हो आया; खासकर त्रिपुरी के कांग्रेस-अधिवेशन का जिसके सभापति नेताजी थे और जिसकी स्वागत-समिति का अध्यक्ष मैं।

भारत के इस महान् सुपूत ने भारत की स्वतन्त्रता के लिए क्या-क्या किया था और इसका आजाद हिन्द फौज सम्बन्धी काम तो इसके महान् साहस, अद्वितीय त्याग और अनुकरणीय देश-भक्ति के मन्दिर का कलश था। उनकी भस्म को देखकर भी मन इस बात पर विश्वास करने को तैयार न हुआ कि नेताजी अब नहीं हैं। श्री मूर्ति के सामने उनका अग्नि-संस्कार भी न हुआ था; भस्म यहाँ आयी थी उस समय की जापानी सरकार के प्रतिनिधि द्वारा। अतः आज निश्चयपूर्वक कौन कह सकता था कि यह नेताजी की ही भस्म थी। जो कुछ हो, नेताजी अब हों या न हों, और इस नश्वर शरीर का नाश तो एक दिन अवश्यम्भावी ही है, नेताजी के कार्य भारत के इतिहास में सदा स्वर्णाक्षरों में लिखे रहेंगे और उनका नाम रहेगा अजर, अमर।

श्री मूर्ति ने मुझे वहाँ के प्रसिद्ध सुगामो नामक जेल ले जाकर युद्ध के कैदियों से भी मिलाया। मैं वहाँ तीन कैदियोंसे मिला। जनरल ओशिमा, जनरल के. सेटो और श्री कुमारोईगी उर्फ चन्द्रदेव। प्रथम महाशय गत युद्ध के पूर्व से तथा युद्ध के समय जर्मनी में जापानी राजदूत थे। इन्हीं ने नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को एक युद्ध की सबमरीन द्वारा जर्मनी से जापान भेजा था। उस समय के अनेक वृत्त उन्होंने बताये, जिन्हें सुन-सुनकर अनेक बार रोमांच हो आया। श्री के. सेटो उस समय के जापान के प्रधान मन्त्री श्री टोजो की युद्ध-समिति के श्री टोजो के बाद प्रधान व्यक्ति थे। इनसे भी उस काल की अनेक बातें मालूम हुई। श्री कुमारोईगी उर्फ चन्द्रदेव दाँत के एक डाक्टर थे। ये सात वर्ष बम्बई में रहे थे और वहाँ के कक्कलवाड़ी रोड के आर्यसमाज ने इन्हें हिन्दू धर्म की दीक्षा दी थी। उसी समय से इनका चन्द्रदेव यह हिन्दू नामकरण भी हो गया था। इन्होंने सात वर्ष तक बम्बई में प्रेक्टिस किया था। इनका दवाखाना बम्बई की मस्जिद स्टेशन के सामने गौमुख भवन में था। ये अपने को हिन्दू कहते हैं तथा भली भाँति हिन्दी भाषा बोलते हैं। भारत से सम्बन्ध रखनेवाले इनके कई सु-संस्मरण हैं। इन तीनों युद्ध के कैदियों से मिल उस समय के जापान का एक जीता-जागता चित्र मेरे सामने खिच गया। जापान और भारत के सम्बन्ध अच्छे-से-अच्छे रहे हैं और भविष्य में और भी अच्छे रहेंगे, यह विचार इन महानुभावों ने व्यक्त किये तथा जापान और अमेरिका की वर्तमान संधि के सम्बन्ध में भारत का जो रुख रहा है उसका हार्दिक समर्थन किया। जापान में उस समय यह आशा की जाती थी कि ये युद्ध कैदी अब शीघ्र ही छूटेंगे और जापान की भावी राजनीति में इनका फिर से हाथ होगा।

जापान के आधुनिक एक श्रेष्ठ साहित्यकार श्री कट्सूजो अराहता से श्री नारायण ने मुझे मिलाया, ये बड़े ही सज्जन पुरुष हैं। कुछ दिन पहले ये भारत आये थे। इनसे साहित्य पर बहुत देर तक चर्चा होती रही। इस चर्चा में जब मैंने इन्हें भारतीय ललित-कला के पाँच प्रधान अंगों—स्थापत्य, मूर्ति, चित्र, संगीत और काव्य का

विश्लेषण तथा नव रसों की व्याख्या बतायी तब इनकी भावुकता का पता चला। इन्होंने कहा कि इस प्रकार का विवरण जापानी साहित्य में नहीं है। और इस सम्बन्ध में मैं उन्हें एक नोट भेजूँ, जिसकी वे जापान के साहित्यिक पत्रों में चर्चा करेंगे।

जापान में हम जिन अन्य सज्जनों से मिले, उनमें तीन मुख्य थे। पहले श्री इशीजाका जो जापान के मुख्य व्यवसायियों में एक थे। इनसे हमें जापान के रोजगार-धन्धे के विषय में अनेक बातें ज्ञात हुईं।

दूसरे श्री राधाविनोद पाल, जिनका जापान के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री टोजो के मुकदमे के समय से जापान में एक विशेष स्थान हो गया था।

तीसरे सज्जन थे प्रसिद्ध अंग्रेज पत्रकार श्री लुई फिशर। श्री लुई फिशर कुछ देशों के दौरे पर निकले हुए थे और इस समय जापान में थे। इस दौरे पर श्री फिशर एक पुस्तक लिख रहे थे। श्री फिशर से उनके इस दौरे के सम्बन्ध में तथा उनके भारत के एवं महात्मा गांधी के सुखद संस्मरणों के विषय में बातें होती रहीं। श्री लुई फिशर ने इस चर्चा में यह भी व्यक्त किया कि भारत तथा जापान का जो पुराना सम्बन्ध है उसे और बढ़ाना तथा दृढ़ करना आवश्यक है एवं दोनों देश एक दूसरे से अनेक बातों में बहुत अधिक लाभ उठा सकते हैं।

भारतीय दूतावास का मुख्य काम ही यह है, परन्तु मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि हमने कहीं का भी भारतीय दूतावास इतना अकर्मण्य नहीं देखा, जितना जापान का भारतीय दूतावास है। यद्यपि इस दूतावास से और इसके कुछ कर्मचारियों से, जिनमें मुख्य हैं श्री रणवीरसिंह, श्री नारायणन् और श्री नायर, हमें हर प्रकार की सहायता प्राप्त हुई, तथापि हमने देखा कि इस दूतावास का जापान के जीवन के किसी भी क्षेत्र से न किसी प्रकार का विशिष्ट सम्बन्ध है और न वहाँ के जीवन के किसी भी क्षेत्र पर इस दूतावास का कोई प्रभाव। शताब्दियों से जापान से हमारे देश का जिस प्रकार का सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है उसे देखते हुए यदि हमारा जापान का दूतावास कर्मण्य हो तो इन दोनों देशों का सम्बन्ध अभी भी कितना अधिक बढ़ सकता है। मैंने भिन्न-भिन्न देशों के भारतीय दूतावासों के काम को कुछ निकट से देखने का प्रयत्न किया है और उनके छोटे-मोटे दोषों की ओर भी ध्यान न देकर उसकी प्रशंसा ही की है, पर जापान के भारतीय दूतावास के प्रति इसी प्रकार की सद्भावना रखते हुए भी मैं अन्य भारतीय दूतावासों के सदृश उसकी प्रशंसा करने में अपने को असमर्थ पाता हूँ।

हमारे टोकियो में रहते दो बातें और हुईं—एक भारतीय कृषि प्रतिनिधि-मंडल जो जापान आया था उसके सदस्यों से भारतीय राजदूतश्री रऊफ़ के यहाँ के एक भोज में हमारी भेंट और दूसरा जापान के युवराज का युवराज-पद पर अभिषेक।

हमें एक बात का खेद रहा कि संसार में एक सरकार की स्थापना के उद्देश्य से हिरोशिमा में होनेवाली एक परिषद् का निमंत्रण मिलने पर भी जापान देर से पहुँचने के कारण मैं हिरोशिमा न जा सका और इस परिषद् का संगठन करने वालों से मिलकर ही हमें सन्तोष करना पड़ा।

जैसा कि सर्वविदित है, हिरोशिमा पर ६ अगस्त १९४५, को अणुबम फेंका गया था। बम गिरने के स्थान से चारों ओर दो-दो मील तक के प्रदेश को 'अणु मरुस्थल' कहा जाने लगा था। सरकारी आँकड़ों के अनुसार इस बम-विस्फोट में हताहत होने वालों की संख्या इस प्रकार है—

मृत	७८,१५०
लापता	१३,९८३
घायल	३७,४२५
कुल जोड़	१,२९,५५८

इस बम-विस्फोट में ६,०४० भवन और इमारतें जलकर नष्ट हो गयी थीं।

प्रारम्भ में यह खबर थी कि जिस प्रदेश में अणुबम का विस्फोट हुआ है वह ७५ वर्ष तक बंजर रहेगा, किन्तु कुछ महीनों के अनन्तर यह बात निराधार साबित हुई।

विस्फोट के बाद जीवित रहने वालों ने साहस के साथ पुनर्निर्माण का काम प्रारम्भ किया और १९५० में हिरोशिमा की जनसंख्या बढ़ती हुई २ लाख ८५ हजार ७१८ तक पहुँच चुकी थी।

२६

जापान पर एक दृष्टि

यूरोप म जो स्थिति ब्रिटेन की है, एशिया में वही स्थिति जापान की है। दोनों बहुत छोटे किन्तु अत्यन्त विकसित देश हैं। दोनों की स्थिति में एक अन्तर अवश्य है के जापान चीन के समुद्र-तट से कोई पाँच सौ मील दूर है जब कि ब्रिटेन यूरोप के अत्यन्त निकट है। जापान-टापू समूह का अधिकांश भाग पहाड़ी है और ज्वालामुखी व भूचाल का जहाँ प्रकोप रहता है। भारत के से मैदान जापान में देखने को नहीं मिलते। अठारह हजार मील लम्बा और कटा-फटा समुद्र-तट होने के कारण जापान में बंदरगाह बहुत अच्छे हैं, जिनसे व्यापार में बड़ी सहायता मिलती है। नदियाँ छोटी और गतिवान हैं जिनसे बिजली तो यथेष्ट प्राप्त हो जाती है, किन्तु वे नौ-परिवहन के काम की नहीं है।

जापान एक अत्यन्त सुन्दर देश है और हो सकता है कि जापानी इसी कारण अत्यधिक सौन्दर्य-प्रेमी है।

जापान का उत्तरी छोर फ्रांस के बन्दरगाह बोर्डो की सीध में है और दक्षिणी छोर दिल्ली की सीध में पड़ता है। जापानियों की उत्पत्ति एक रहस्य का विषय है। वहाँ के प्राचीनतम मूल निवासी मंगोल नहीं बल्कि काकेशियन जाति के लोगों से मिलते-जुलते थे। सम्भवतः इसी आधार पर हिटलर जापानियों को आर्य परिवार में सम्मिलित करता था।

जापान पश्चिम और पूर्व, प्राचीन और नवीन का संधि-स्थल है। जापान पर अन्य संस्कृतियों का प्रभाव धीरे-धीरे न पड़कर एकाएक फैलनेवाली लहर के रूप में पड़ा। पहले जापान पर प्राचीन चीनी संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ा। बाद में वहाँ बौद्धमत छा गया। नये युग में जापान पर पश्चिम का भी व्यापक प्रभाव पड़ा और आज के जापानी जीवन मे हम देख सकते है कि पुरानी जापानी संस्कृति और परम्परा पर पश्चिमी सभ्यता का खासा रंग चढ़ गया है।

चीनियों की तरह जापानी भी कला के बड़े प्रेमी है। रूप, रंग और आकार का सौन्दर्य उन्हें वास्तव मे बहुत आकर्षित करता है। जापानियों की सबसे बड़ी

विशेषता यह है कि उन्होंने अपने प्रतिदिन के सादे और एकरस जीवन में कला को स्थान दिया है। अपने आसपास की वस्तुओं को सजा-सँवारकर रखने और कल्पना की सूझ से उन्हें कलात्मक बनाने में वे अपना सानी नहीं रखते। अपने साज-सामान और गहनों आदि को ही नहीं, नित्य-प्रति काम आनेवाली, बर्तनों जैसी चीजों को भी उन्होंने कलात्मक बना दिया है।

जापान के किसानों का जीवन प्राचीन परिपाटी के अनुसार चला आता है। पिता परिवार का मुख्य सदस्य होता है। कमाया हुआ समस्त धन उसके पास जमा होता है। मकान सीधे-सादे होते हैं। पार्टीशनों की सहायता से वे इच्छानुसार कई कमरों में या एक बड़े हॉल में परिवर्तित किये जा सकते हैं। फर्नीचर की बजाय जमीन पर चटाई और गद्दे आदि का ही अधिक प्रयोग होता है। स्नान-गृह इनकी एक विशेषता होती है। यह स्नान-गृह मकान के पिछले भाग में होता है। दिन के कार्य के पश्चात् गर्म पानी से स्नान करना जापानी किसान की बड़ी-से-बड़ी खुशी है। जापान के देहाती जीवन की एक और विशेषता यह है कि एक-एक जगह थोड़े-थोड़े मकान होते हैं। इन मकानों के लोग एक ही जगह आग जलाकर अपने-अपने लिए पानी गरम कर लेते हैं। इससे भाईचारे की गहरी भावना पैदा होती है। इसके अति-रिक्त गाँव में कई अन्य काम मिल-जुलकर मेहनत करके पूरे किये जाते हैं—उदाहरण के लिए धान बोना और सड़क व पुल बनाना। गाँव का प्रत्येक व्यक्ति शिशु-अवस्था में ग्राम-पाठशाला में पढ़ने जाता है। इससे भी उनके बीच सौहार्द्रता की कड़ी मजबूत होती है। आम तौर से ग्राम-जीवन केवल सिक्के पर ही निर्भर नहीं करता। वहाँ चावल के बदले में कुछ सामान प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय गाँवों में भी अनाज के बदले सामान प्राप्त हो जाता है। आधुनिक युग की मोटर, बस, रेल, बिजली आदि वस्तुओं से परम्परागत ग्राम-जीवन पर प्रभाव अवश्य पड़ा है पर मूलतः उसमें कोई बड़ा अन्तर नहीं पड़ा। जापानी किसान राज्य-आज्ञा के प्रति अति निष्ठावान होता है।

जापान की मुख्य फसलें है, चावल, गेहूँ, चाय और तम्बाकू। खेती-योग्य भूमि के तीन बटा पाँच भाग में वे लोग खेती करते हैं जो जमीन के मालिक हैं। बाकी जमीन में ऐसे किसान हैं जो दूसरे से जमीन लेकर खेती करते हैं। धान की खेती के जापानी तरीके का उल्लेख करना यहाँ उचित ही होगा, क्योंकि इस तरीके का भारत में बड़ा प्रचलन हो रहा है। यह धान की खेती का एक वैज्ञानिक तरीका है जिससे फसल कई गुनी होती है।

तरीका यह है हर पच्चीस फुट के लिए एक पौण्ड कम्पोस्ट खाद अथवा गोबर की खाद काम में लाइए। हर पच्चीस फुट पर एक पौण्ड खाद मिश्र छितरा दीजिए,

मिट्टी को सम करके कम्पोस्ट खाद डाल दीजिए और ऊपर से हलकी-हलकी राख बुरक दीजिए। फसल कटने के ठीक बाद ही जमीन की जुताई करनी चाहिए। एक-एक फुट जगह छोड़कर चार-चार फुट चौड़ी पट्टियां बना लीजिए जिनकी मोटाई तीन इंच हो। बहुत अधिक बीज न बोएँ। बीज अच्छे किस्म के लें और उनको ननखरे पानी से भरी बाल्टी में भिगो दें। इसके बाद बीजों को हिलाएँ। भारी बीज बैठ जायेंगे, हलके बीज ऊपर तिरने लगेंगे। भारी बीजों को ही चुनें। बीस मिनट के लिए बीजों को मिक्स्चर में डालकर ऊपर से ½ इंच अच्छी मिट्टी बिछा दें। पच्चीस फुट की पट्टी में एक पौण्ड बीज बोना ठीक रहेगा। यदि वर्षा न हो तो जल दें। फिर पौधे तैयार होने पर उन्हें अन्यत्र बो दें। पौधे उस समय तैयार समझने चाहिएँ जब वे ६ से ८ इंच तक लम्बे हों और उनमें ६ पत्तियाँ निकल आयी हों। ये पौधे उस जमीन में अच्छे उगेंगे जो खूब तैयार की गयी हो और जहां फी एकड़ जमीन में पन्द्रह-बीस गाड़ी खाद डाला गया हो। एक विशेष बात ख्याल रखने की यह है कि पौधे एक दूसरे से दस-दस इंच की दूरी पर होने चाहिएँ।

जापान के शहरी जीवन पर पश्चिमी सभ्यता की अधिक गहरी छाप दिखायी पड़ती है। जापान के शहरों में लकड़ी के छोटे-छोटे मकान दिखायी देते हैं। उनमें बाग-बगीचे के लिए अधिक स्थान नहीं होता। शहरी जापानियों के रीति-रिवाज तो अपने ही हैं, किन्तु उन्होंने सामाजिक आचार-विचार पश्चिमी सभ्यता के अपना लिये हैं। अमेरिकी सभ्यता का जापान पर काफी प्रभाव पड़ा है।

जापान की राजनीतिक रूपरेखा समझने के लिए वहाँ के जीवन में सम्राट् का स्थान जान लेना बड़ा जरूरी है। दूसरे महायुद्ध में जापान की हार के बाद सम्राट् के महत्त्व में काफी परिवर्तन हुआ है। दूसरा महायुद्ध समाप्त होने तक सम्राट् की बड़ी पूजा होती थी, उसकी आलोचना करना या उसके विरुद्ध मत प्रकट करना गुनाह था। लोगों का अपने सम्राट् में अंधविश्वास-सा था और वे उसे दैवी शक्ति मानते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि जापान अपने सम्राट् के अधीन एक अत्यन्त संगठित देश बन गया।

सन् १८८९ में मेजी संविधान की रचना हुई और पश्चिमी देशों की देखा-देखी संसद् डायट भी बनी, किन्तु इसका अधिकार-क्षेत्र बहुत ही सीमित था। सम्राट् के हाथों में पूर्ण सत्ता रहने का व्यवहार रूप यह था कि सारे अधिकार सरकारी अधिकारी वर्ग और सैनिक गुट के हाथों में आ गये। परिणाम यह हुआ कि जापान एक महान् सैनिक शक्ति के रूप में संगठित हुआ और दूसरे महायुद्ध में उसकी करारी हार हुई।

३ नवम्बर, १९४६, को जापान में नया संविधान तैयार किया गया जिससे

उसका राजनीतिक स्वरूप ही बदल गया। नये संविधान के अनुसार सारे अधिकार जनता के हाथों में आ गये हैं और जनता के प्रतिनिधियों की सभा के रूप में संसद् को मिल गये हैं। सम्राट् राष्ट्र का प्रतीक मात्र रह गया है। जापानी संसद् में दो सदन हैं—लोकसभा और परिषद्। देश के लिए कानून बनाना और देश की सरकार चलाना सब संसद् और मन्त्रिमण्डल के हाथों में है। इस तरह जापान में लोकतंत्र का सूत्रपात हुआ है और अब देखना यह है कि वह कहाँ तक सफल होता है। जापान का भविष्य क्या है यह तो निश्चित नहीं कहा जा सकता पर इतना अवश्य है कि लड़ाई के आघात के बाद जापान ने बड़ी तेजी से अपनी खोयी शक्ति प्राप्त करने की कोशिश की है और इसमें उसे काफी सफलता भी मिली है।

३०

उस प्राचीन देश की ओर जहाँ आर्वाचीन साम्यवाद का नेतृत्व है

चीन की मुख्य भूमि में प्रवेश करने के लिए चीन के ही एक द्वीप हांगकांग आना पड़ता है। परन्तु भौगोलिक दृष्टि से हांगकांग चीन का ही एक विभाग होने पर भी चीन के राज्य में सम्मिलित नहीं है। हांगकांग पर ब्रिटिश राज्य का अधिकार है।

टोकियो से २३ नवम्बर की रात को ६ बजे पैन अमेरिकन लाइन के हवाई जहाज से चलकर दूसरे दिन प्रातःकाल लगभग ६ बजे हम हांगकांग पहुँचे। टोकियो से हांगकांग केवल १,८५३ मील है और इतनी दूर का रास्ता तय करने को हवाई जहाज ने जितना समय लिया वह बहुत अधिक था, परन्तु एक तो इस मार्ग में वायुयान की गति धीमी रहती है, दूसरे टोकियो और हांगकांग के बीच में वायुयान एक द्वीप में पैट्रोल आदि लेने में लगभग डेढ़ घण्टे ठहरता है।

जब हमारा हवाई जहाज हांगकांग के हवाई अड्डे पर उतर रहा था उस समय हमने देखा कि हवाई द्वीपों के सदृश ही हांगकांग भी एक सुन्दर और रमणीय द्वीप है। साथ ही हवाई द्वीप की उद्बिज सृष्टि जिस प्रकार भारत की उद्बिज सृष्टि से मिलती-जुलती है उसी प्रकार हांगकांग की भी भारत के सदृश ही; नारियल और सुपारी आदि के वृक्ष; किन्तु यहाँ आम के वृक्षों का अभाव था। हांगकांग की उद्बिज सृष्टि हवाई के समान अत्यधिक घनी भी नहीं थी। हवाई द्वीप के समान हांगकांग पहुँचते ही भावना की एक लहर-सी उठी कि हम भारत के निकट पहुँच रहे हैं, परन्तु भावना की इस लहर को आज विलीन होते भी देर न लगी। जिस प्रकार होनोलुलू से हम सीधे भारत न जाकर जापान रुक गये थे और भारत फिर से बहुत दूर हो गया था उसी प्रकार हांगकांग से भी हम चीन जा रहे थे और भारत पुनः दूर होनेवाला था।

हांगकांग के हवाई अड्डे पर चुंगी वालों का व्यवहार बदतमीजी से भरा हुआ था। हमारे साथ ऐसा व्यवहार अब तक किसी भी जगह न हुआ था। हमें इस व्यवहार से कुछ और आश्चर्य इसलिए हुआ कि हांगकांग एक खुला बन्दर (ओपिन

पोर्ट) है। फिर हमने यह सुना था कि कामनवैल्थ के देशों में रहने वालों को हांगकांग के विसा की आवश्यकता नहीं रहती, अतः जगमोहनदास और घनश्यामदास के पासपोर्टों में हांगकांग का कोई जिक्र न था। हवाई अड्डे के इमीग्रेशन अफसर ने नाक-भौं सिकोड़ते हुए इन दोनों को हांगकांग में जाने की इजाजत तो दे दी, पर साथ ही यह भी कहा कि चीन से लौटते हुए हांगकांग आने की इजाजत इन्हें हांगकांग के इमीग्रेशन दफ्तर से लेनी होगी। इस इजाजत के लिए जब हम हांगकांग के इमीग्रेशन दफ्तर को गये तब वहाँ के लोगों का व्यवहार भी शिष्टाचार के सर्वथा प्रतिकूल था। इसके सिवा वहाँ के मुख्य अधिकारी ने इस इजाजत के लिए चार दिन की आवश्यकता बतायी जबकि वह इजाजत चार मिनट के अन्दर दी जा सकती थी। जैसा कि यूनान के लिए काहिरा में यूनान के दूतावास ने किया था और बाद में शंघाई में ब्रिटिश कौंसलेट ने हांगकांग के विषय में भी किया। हांगकांग के इन अंग्रेज अफसरों के इस प्रकार के व्यवहार को देख मुझे अंग्रेजी राज्य के समय के भारत के कई अंग्रेज अफसरों के बर्ताव का स्मरण हो आया। मेरे मन में उठा कि अंग्रेजी साम्राज्य की समाप्तप्राय स्थिति में भी कई अंग्रेजों के गर्व का परिहार नहीं हो पाया है और गर्वहारी भगवान् को इनके इस गर्व-परिहार के लिए शायद अभी और कुछ करना शेष है। अंग्रेज जाति में अनेक सद्गुणों के रहते हुए भी इनके अधिकारी वर्ग में अशिष्टता इनका सदा से एक महान् दुर्गुण रहा है जिसका कुत्सित अहंमन्य रूप हांगकांग में फिर देखने को मिला।

हांगकांग में हम वहाँ के सबसे अच्छे होटल पैन्सलपेनिया में ठहरे। हम जल्दी-से-जल्दी लाल चीन जाना चाहते थे, परन्तु हमें वहाँ जाने के लिए विसा मिलने वाले थे लाल चीन की सीमा पर। लाल चीन की सीमा कहाँ से आरम्भ होती है, वहाँ तक पहुँचने के क्या साधन हैं, कहाँ हमें ये विसा किससे प्राप्त होंगे, इत्यादि बातों का हमें टोकियो में कोई पता न लग पाया था अतः होटल में सामान रख हम इन सब बातों का पता लगाने निकले।

सबसे पहले तो हमें यह मालूम हुआ कि जिस हवाई अड्डे पर हम उतरे हैं और जिस होटल में हम ठहरे हैं वे स्थान हांगकांग नगर के इस विभाग में न होकर एक दूसरे विभाग में हे जहाँ जाने के लिए हमें समुद्र की एक खाड़ी जहाज से पार करनी होगी। साथ ही हमें यह भी मालूम हुआ कि जो जानकारी हम चाहते हैं वह हमें हांगकांग नगर के उस विभाग में ही मिलेगी।

हम शीघ्रता से हांगकांग के इस विभाग में पहुँचे और वहाँ पहुँचते ही अचानक हमारी दृष्टि एक ऐसे साइन-बोर्ड पर पड़ी तथा इस साइन-बोर्ड को पढ़ हम एक ऐसे दफ्तर में पहुँच गये कि दैवयोग से हमारी सारी समस्याएँ तत्काल हल हो गयीं। यह साइन-

बोर्ड और दफ्तर था चाइना ट्रैवलिंग एजेन्सी का।

चीन की सरकार ने चाइना ट्रैवलिंग एजेन्सी वालों को हमारे हांगकांग पहुँचने पर हमें उनके राज्य की सीमा तक पहुँचाने की सारी व्यवस्था करने के लिए सूचना दे दी थी। हमारा कार्यक्रम हांगकांग २२ तारीख को पहुँचने का था। उस दिन इस एजेन्सी के प्रतिनिधि हमें लेने हवाई अड्डे पर भी गये थे। हम आज हांगकांग पहुँच रहे हैं इसकी इन्हें कोई खबर न थी, अतः आज इनका प्रतिनिधि हवाई अड्डे पर न आया था। और हमें इसका पता न था कि हमें चीन की सीमा तक जाने के लिए क्या करना चाहिए। इसीलिए जैसा ऊपर लिखा है हमारी इस समय की समस्याओं का हल दैवयोग से ही हुआ।

चाइना ट्रैवलिंग एजेन्सीवालों ने हमारे सारे कार्यक्रम को व्यवस्थित कर हमसे होटल में सन्ध्या को मिलने के लिए कहा। हाँ, इतना प्रायः निश्चय हो गया कि चीन की सीमा के लिए हम लोग दूसरे दिन प्रातःकाल ११ बजे की ट्रेन से रवाना होंगे।

चीन की सीमा के लिए रवाना होने के पहले हमने हांगकांग देख लेना चाहा।

हांगकांग एक छोटे से समुद्री टापू पर बसा हुआ है। यह द्वीप घिरा है पर्वत-श्रेणियों से। आबहवा है बम्बई के सदृश। प्राकृतिक दृश्य समुद्र और पहाड़ियों के कारण बड़ा सुन्दर हो गया है। लगभग बीस लाख की आबादी की बड़ी-बड़ी इमारतों और सकड़ी-सकड़ी सड़कों वाला यह शहर भूमि की कमी के कारण बहुत घना बसा है। पर बस्ती के घने होने पर भी नगर काफी साफ सुथरा है। आबादी में अधिकांश चीनी है, पर कम रहते हुए भी प्रभुत्व है श्वेतांगों का। ये सफेद अधिकतर अंग्रेज हैं, यहाँ के गोरे खूब धनवान जान पड़ते हैं, पर यहाँ की जनता अत्यधिक गरीब। यह गरीबी शोषण का परिणाम है और गरीबी में जिन कष्टों तथा दुर्गुणों की उत्पत्ति होती है वे सब यहाँ की आम जनता में स्पष्ट दिखायी देते हैं। लोगों के शरीरों, उनके मुखों, उनकी वेशभूषा से निर्धनता साफ दिख पड़ती है। भिखारियों की भी काफी तादाद है और चोरों तथा उठाईगीरों की भी। मेरे कोट के ऊपर के जेब से मेरा फाउण्टेनपेन और पेंसिल इस सिफ्त से निकाल लिये गये कि हमें ज्ञात हो गया कि चोरी में यहाँ के निवासी कितने पटु हो गये हैं। हांगकांग को देखकर हमें पुनः याद आ गया कि विदेशी अंग्रेजी राज्य और गरीबी तथा गरीबी के कष्ट एवं दुर्गुण शायद पर्यायवाची हैं।

फौजी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के कारण हांगकांग का संसार की भूगोल में अपना एक विशेष स्थान है। फिर हवाई यातायात में भी हांगकांग का हवाई अड्डा संसार के मुख्य हवाई अड्डों में एक है। यहाँ व्यापार का भी बड़ा विकास हुआ है

ओर सिंगापुर के सदृश हांगकांग का बन्दर भी एक खुला बन्दर होने की वजह से यहाँ के व्यापार को बहुत सहायता मिली है।

हांगकांग में एक और विशेष कष्ट वहाँ के निवासियों को है। यह कष्ट है पानी का। इस दौरे में पहले बार होटल पहुँचने पर हम लोगों को यह मालूम हुआ कि हम स्नान नहीं कर सकते, क्योंकि नलों में पानी केवल प्रातःकाल दो घण्टों के लिए आता है और सन्ध्या को दो घण्टों के लिए। साथ ही पानी खराब न करने की लम्बी हिदायतें हुकूमत-भरे शब्दों में होटल के स्नानागार में लिखी हुई थीं। जब हम लोग सन्ध्या को हांगकांग की सड़कों पर घूम रहे थे हम लोगों को कुछ जगह गरीब स्त्रियाँ नाली के पानी में कपड़े धोते दिखायी दीं। हमारी यह समझ में नहीं आया कि जिस हांगकांग नगर में इतने दिनों से अंग्रेजों का अधिकार है, जहाँ से करोड़ों रुपयों का व्यापार अंग्रेज प्रति वर्ष करते हैं, वहाँ अब तक पानी की व्यवस्था क्यों न हो पायी।

ता० २५ को प्रातःकाल ११ बजे जब हम हांगकांग से लाल चीन की सीमा के लिए रवाना हुए तब चाइना ट्रेवलिंग एजेन्सी के दो आदमी हमारे साथ थे। हांगकांग से लाल चीन की इस सीमा का शुनचुन स्थान बहुत दूर नहीं है।

लाल चीन की सीमा का यह स्थान एक अपनापन रखता है। हांगकांग से आनेवाली रेल जहाँ ठहरी वहाँ लहरा रहे थे अंग्रेजी राज्य के यूनियन जैक और एक छोटे से पुल के बाद लाल चीन की सीमा पर लाल चीन के लाल झण्डे। दोनों ओर इन झण्डों की जितनी अधिकता थी उतनी हमें इस दौरे में किन्हीं झण्डों की न मिली थी। केवल नाइग्रा नदी के पुल पर कैनेडा और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की सीमा पर कैनेडा और अमेरिका के झण्डे थे, किन्तु वहाँ चिन्ह स्वरूप एक-एक झण्डे ही लगाये गये थे। इसका कारण कदाचित् इस स्थल का ऐसे स्थान पर होना था जहाँ दो राज्यों की सीमा लगती है। इन झण्डों की बहुतायत के सिवा लाल चीन की सीमा में पैर रखते ही अन्य जिन दो चीजों ने हमारा ध्यान सबसे अधिक आकर्षित किया वे थीं रूस के सर्वेसर्वा स्तालिन और चीन के सर्वेसर्वा माओत्सेतुंग के चित्र तथा चीन की सरकार के कार्यों का हर प्रकार का लगातार प्रचार करनेवाला रेडियो। लाल चीन की सीमा में प्रवेश करने के बाद लाल चीन छोड़ने तक ये दो चीजें तो हर जगह अनेक रूपों में हमें दृष्टिगोचर होती रहीं।

लाल चीन की इस सीमा पर हमें लेने के लिए चीन की सरकार की ओर से श्री वी तथा साइनो-इंडियन फ्रेण्डशिप एसोसिएशन के एक प्रतिनिधि आये थे। आज से लेकर चीन छोड़ने तक श्री वी महोदय तो लगातार हमारे साथ ही रहे। श्री वी के सदृश सज्जन व्यक्ति जीवन में हमें विरले ही मिले हैं और साइनो-इंडियन फ्रेण्डशिप एसो-सिएशन ने चीन में हमारा जो प्रेम-पूर्ण महान् आतिथ्य-सत्कार किया वह भी हम

जीवन भर कभी भी विस्मृत नहीं कर सकते ।

लाल चीन में प्रवेश करने के लिए जिन विसा आदि की आवश्यकता थी उसकी यहाँ समस्त व्यवस्था थी । चुंगी आदि के सम्बन्ध में भी हमें किसी प्रकार की कोई अड़चन नहीं हुई ।

लाल चीन की इस सीमा से चीनी रेल लगभग दो बजे जाती थी । चीन की हमारी सारी यात्रा अब रेल से होने वाली थी । यहाँ से चलकर लाल चीन के जिस प्रथम स्थान पर हम ठहरने वाले थे उसका नाम था कैण्टोन । इस स्थान से कैण्टोन पहुँचने में लगभग चार घण्टे लगते थे ।

भोजन कर दो बजे हम कैण्टोन के लिए रवाना हो गये ।

३१

चीन में दो सप्ताह

जब हमने चीन के मुख्य भूभाग में प्रवेश किया तब मेरे मन में जैसी उत्सुकता थी वैसी इस पृथ्वी-परिक्रमा में अब तक कहीं भी न रही थी।

इसका प्रधान कारण था इस प्राचीनतम देश में एक नवीनतम प्रयोग का होना। अब तक हम जिन देशों को गये थे उनकी राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था थोड़े-बहुत हेरफेर के साथ वैसी ही है जैसी हमारे देश की। लगभग सौ वर्षों से जो पूँजीवाद संसार के सभी देशों की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित किये हुए है उसको उखाड़ फेंकने का जो देश प्रयत्न कर रहे हैं उनमें चीन का एक मुख्य स्थान है। यद्यपि चीन के आधुनिक नेताओं का यह दावा नहीं है कि चीन का जीवन साम्यवादी जीवन हो गया है तथापि वहाँ के शासन में साम्यवादियों का नेतृत्व है और चीन को वे उसी दिशा में ले जा रहे हैं। हमारे देश के कुछ प्रतिनिधिमंडल इन्हीं दिनों चीन आये थे और इन मंडलों के कुछ प्रतिनिधियों ने चीन में जो कुछ हो रहा है उसके सम्बन्ध में अपनी-अपनी सम्मतियाँ दी थीं कुछ ने पक्ष में, कुछ ने विपक्ष में। इन प्रतिनिधियों में से कुछ के भाषण मैंने सुने थे और कुछ के विचार पत्रों में पढ़े थे। मेरे मन में बड़ी उत्सुकता रही थी चीन के इस नवीन प्रयोग को स्वयं देखने की। यद्यपि रूस में यह प्रयोग बहुत समय से चल रहा है और वहाँ जो लोग गये थे या कुछ साल तक रह आये थे, उन्होंने वहाँ की सफलता तथा विफलता के सम्बन्ध में भी अनेक बातें कही थीं, जिन्हें सुनकर या पढ़कर मेरी वहाँ जाने की भी बड़ी इच्छा थी और अभी भी है तथापि रूस की अपेक्षा भी चीन के सम्बन्ध में यह इच्छा कहीं अधिक प्रबल थी। इसका प्रधान कारण था हमारे देश का और चीन का बहुत पुराना सांस्कृतिक सम्बन्ध। साम्यवाद के सिद्धान्तों से मैं पूर्णतया सहमत नहीं हूँ। इसके प्रधान कारण दो हैं—साम्यवाद सर्वथा भौतिकवाद है अतः मैं उसे इकंगावाद मानता हूँ। मानव को किसी भी प्रकार के केवल भौतिकवाद से सन्तोष नहीं हो सकता यह मेरा मत है। दूसरे साम्यवाद व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का लोप कर देता है। पर साम्यवादी न होते हुए भी मैं यह भी मानता हूँ कि पूँजीवाद

ने उसके पूर्व के सामन्तवाद आदि के सदृश अधिकतर लोगों को दुखी ही रख छोड़ा है अतः समाज की वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन आवश्यक है। यद्यपि मैं अभी अमेरिका देखकर लौटा था और मैंने वहाँ देखा था कि पूंजीवादी-व्यवस्था में भी दुखियों की संख्या बहुत कम है तथापि अमेरिका के समान अन्य कोई पूँजीवादी देश नहीं यह भी मैं देख चुका था। हमारा पड़ोसी और शताब्दियों से जिस देश से हमारा सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है ऐसा जो देश पूँजीवाद से पिण्ड छुड़ाने का प्रयत्न कर रहा है आज मैं उसी देश को देखूँगा, मेरी इस समय की उत्सुकता का यह प्रधान कारण था। अन्य देशों को जाते समय वहाँ के प्राकृतिक दृश्य और दर्शनीय स्थानों को देखने की मेरी जैसी उत्सुकता रहती थी उससे चीन देखने की उत्सुकता सर्वथा भिन्न थी।

चीन की मुख्य भूमि में प्रवेश करने के दिन से उसे छोड़ने तक हम लोग सोलह दिन और पन्द्रह रात चीन में रहे। इन सोलह दिनों में आठ दिन और पन्द्रह रातों में छः रातें हमारी रेल में बीतीं; शेष समय हमने बिताया कैण्टोन, शंघाई, पीकिंग और हैंको नगरों तथा इनके आसपास के कस्बों, गाँवों आदि में। परन्तु चूँकि हमारी यह सारी यात्रा रेल में हुई और इस यात्रा में दक्षिण से उत्तर तथा उत्तर से दक्षिण हमने चीन देश के अनेकों मीलों के भूभाग को नापा इसलिए रेल के डब्बों की खिड़कियों से भी हमने चीन के कितने नगर, कस्बे, गाँव, वहाँ की भूमि, नदियाँ, पहाड़ और मैदान, बस्तियाँ और खेत तथा वहाँ का हर प्रकार का जीवन देखा। हमें इस बात पर बड़ा खेद हुआ था कि रेल की इस यात्रा के कारण हमारा बहुत सा समय यात्रा में ही लग जायगा और जो कुछ हम वहाँ देख सकेंगे वह बहुत थोड़ा होगा, परन्तु आज मुझे इस बात पर हर्ष है कि हमारी यह यात्रा रेल से हुई। रेल की इस यात्रा के कारण हम जो कुछ देख सके वह हवाई यात्रा से सम्भव न था। फिर जिस दृष्टि से हम यह देश देखना चाहते थे वह स्पष्ट होने के कारण चलती हुई रेल से, स्टेशनों से, जहाँ-जहाँ हम ठहरे और जिन-जिन स्थानों को हम गये उन सबके नाना प्रकार के दृश्यों से, एवं जिन-जिन से हम मिले उनके वार्तालापों तथा जो साहित्य हमने वहाँ इकट्ठा किया उससे, इतने थोड़े समय में भी हम वर्तमान चीन का थोड़ा बहुत अध्ययन करने में शायद सफल हो सके हैं। यों तो किसी देश के सांगोपांग अध्ययन के लिए हफ्तों, महीनों ही नहीं, वर्षों की आवश्यकता होती है, फिर चीन के सदृश विशाल देश के लिए तो युगों की। पर घूमते-फिरते यात्रियों की अपनी एक दृष्टि होती है। यह दृष्टि खींचती है मन पर कुछ धुँधली-धुंधली-सी रेखाएँ जो मिल-जुलकर एक चित्र-सा बना देती है। हमारे चीन के चित्र की ये रेखाएँ विविध प्रकार की थीं, क्योंकि घूमते-फिरते यात्री होने पर भी हम चीन को एक विशिष्ट प्रकार से देखना चाहते थे और इसीलिए हमने इतने थोड़े समय में भी केवल दर्शनीय स्थान ही नहीं,

पर वहाँ के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली विविध प्रकार की वस्तुओं को देखने का प्रयत्न किया तथा वहाँ के अनेक फिरकों के जिम्मेदार व्यक्तियों से मिल अनेक समस्याओं पर चर्चा करने एवं वहाँ के नाना प्रकार के साहित्य को इकट्ठा कर उसका अध्ययन करने का। फिर हम एक न होकर तीन थे, साथ ही साइनो-इंडियन फ्रेण्डशिप एसोसियेशन के पदाधिकारियों ने हमारे इस प्रयत्न में हमें हर तरह की पूरी सहायता प्रदान की इसीलिए हमारे इस प्रयत्न में हमें कई सहूलियतें मिल गयीं।

हमने चीन में जो कुछ देखा उसमें दर्शनीय स्थानों एवं नाटक, नृत्य आदि सांस्कृतिक प्रदर्शनों की बात तो बाद में करेंगे, पहले चीन में जो एक नवीन प्रयोग हो रहा है और जिस प्रयोग को देखने की ही मेरी सबसे अधिक उत्सुकता थी उसी की मैं कुछ चर्चा कर लूँ। इसके लिए मैंने कुछ सरकारी और गैर सरकारी कारखाने देखे। मजदूरों की बस्तियाँ देखीं। गाँव, वहाँ की खेती और वहाँ के लोगों का रहन-सहन देखा। कुछ लोगों से मुलाकातें कर कुछ विषयों पर चर्चा की और कुछ साहित्य इकट्ठा किया। इस सब निरीक्षण से वहाँ के इस नवीन प्रयोग के विषय में हमारा जो मत बना उसी का संक्षेप में एक मोटे रूप में मैं यहाँ एक निचोड़-सा रख रहा हूँ। पर इस निचोड़ को रखने के पूर्व मैं इतना अवश्य कह देना चाहता हूँ कि चीन के निरीक्षण के उपर्युक्त सारे साधनों के जुटाने पर, इस निरीक्षण के सारे प्रयत्न करने पर और यह मानने पर भी कि हम अपने निरीक्षण में कुछ दूर तक शायद सफल हो सके हैं, हमारा चीन के सम्बन्ध में जो मत बना है वह गलत भी हो सकता है। इसका प्रधान कारण यह है कि वहाँ इन तीन वर्षों में जो कुछ किया गया है उसके विषय में वहाँ के जिन लोगों से हम मिले उनकी राय में इतनी विभिन्नता है तथा जो शासन इस समय वहाँ चल रहा है उसमें इतनी बातें गुप्त रखी जाती हैं, यहाँ तक कि वहाँ का वार्षिक बजट तक प्रकाशित नहीं होता कि किसी भी बारीक-से-बारीक और स्पष्ट-से-स्पष्ट दृष्टि रखने वाले निरीक्षक का भी यह कह सकना कि उसका मत ठीक है मैं कठिन ही नहीं असम्भव मानता हूँ। मेरी यह राय उन लोगों के सम्बन्ध में भी है जो दीर्घकाल तक वहाँ रहे हों, यहाँ तक कि उन दूतावासों के सम्बन्ध में भी, जो सदा वहाँ रहते हैं और जिनका काम हर प्रकार से हर बात का पता लगाते रहना रहता है।

नये चीन को लाल चीन कहना यथार्थ में उपयुक्त नहीं है। इस समय का चीन साम्यवादी नहीं कहा जा सकता और चीन ही क्या रूस तथा पूर्वी यूरोप के चेकोस्लोवेकिया, यूगोस्लाविया, बलगेरिया आदि देश जो साम्यवादी कहे जाते हैं, यथार्थ में साम्यवादी नहीं हो पाये हैं। सच्चे साम्यवाद में व्यक्तिगत सम्पत्ति का कोई स्थान नहीं है। इन सब देशों में यहाँ तक कि रूस में भी व्यक्तिगत सम्पत्ति मौजूद

है, चीन में तो बहुत बड़े परिमाण में। चीन में चाहे जमीन का पुनर्वितरण हो गया हो, पर अभी भी सारी जमीन व्यक्तिगत सम्पत्ति ही है। कहीं-कहीं सहकारी (कोऑपरेटिव) और सामूहिक (कलेक्टिव) फर्मों की स्थापना का प्रयत्न हुआ है, पर सुना गया है कि ये सफल नहीं हो रहे हैं। कहीं-कहीं सरकारी फार्म स्थापित हुए हैं, पर इन्हें स्थापित हुए अभी इतना कम समय बीता है कि इनकी सफलता के सम्बन्ध में आज कुछ भी कहना उपयुक्त न होगा। चीन मे उद्योग-धन्धे कम हैं और उनमें अभी भी कुछ व्यक्तिगत सम्पत्ति ही है। कुछ बड़े-बड़े कारखानों का राष्ट्रीय-करण हुआ है, पर इनकी संख्या अभी बहुत कम है। चीन का व्यापार सरकार के हाथ में आया है, पर व्यक्तियों के हाथ में भी है। साम्यवाद का दूसरा सिद्धान्त है कि हर आदमी अपनी शक्ति के अनुसार उत्पादन करे और अपनी आवश्यकता के अनुसार प्राप्त। इस सिद्धान्त के तो निकट भी कोई देश नहीं बढ़ रहा है। चीन में तो इसकी चर्चा तक सुनायी नहीं दी। एक व्यक्ति की आमदनी से दूसरे की आमदनी में बहुत बड़ा अन्तर सभी साम्यवादी कहे जानेवाले देशों में है; रूस में भी, चीन में एक बड़े परिमाण में। फिर भी यह बात माननी होगी कि पूंजीवादी देशों की अपेक्षा आय का यह अन्तर चीन में कम है। अमेरिका आज के संसार का सबसे बड़ा पूँजी-वादी देश है और अन्य अधिकांश पूँजीवादी देशों मे पूँजीवाद बहुत दूर तक जो बुरा समझ केवल सहनीय माना जाता है, वैसा अमेरिका में नहीं, अमेरिका में तो पूँजी-वादी सिद्धान्त ही ठीक है यह माना जाता है। अमेरिका मे एक व्यक्ति की आमदनी से दूसरे की आमदनी में जितना अन्तर है, उतना कदाचित् कहीं नहीं, पर इतने पर भी वहाँ जिनकी आमदनी सबसे कम है उनमे भी हमे असन्तोष न दिखायी दिया, ऐसे लोग भी पूँजीवाद बुरा है और साम्यवाद की आवश्यकता है, यह कहते हुए नहीं सुने गये। इसका कारण कदाचित् यह है कि वहाँ की न्यूनतम आय भी इतनी अधिक है जितनी अन्य देशों में अधिकांश की अधिकतम आय। यहाँ मे चीन का ही उदाहरण दूँगा। चीन में अधिक लोगों की राय मे उच्च-से-उच्च सरकारी कर्मचारी को हमारे रुपयों में ६४०) मासिक वेतन मिलता है। चीन जनराज्य के प्रधान माओत्से तुंग का वेतन कोई ७००) रुपये है। यद्यपि कुछ लोगों की राय है कि यह ऊँचे-से-ऊँचा वेतन चार हजार रुपया महीना भी है। ठीक बात क्या है इसका पक्का पता इसलिए नहीं चलता कि जैसा ऊपर कहा है कि चीन का बजट ही किसी को ज्ञात नहीं। अमेरिका में एक घण्टे की मजदूरी की निरख कम-से-कम चार रुपये के लगभग (पचहत्तर सैंट) कानून से नियुक्त है, यद्यपि मिलती इससे कहीं अधिक है। पर यदि हम कानून द्वारा निश्चित कम-से-कम मजदूरी भी ले लें तो अमेरिका में आठ घण्टे के काम की मजदूरी बत्तीस रुपये हुई। हफ्ते में दो दिन की वहाँ छुट्टी होती

है अतः बाईस दिन की मजदूरी हुई ७०४) रुपये। ऊपर चीन के उच्च-से-उच्च सरकारी कर्मचारी के वेतन की बात कही गयी है। जिनके उद्योग-धन्धे और व्यापार हैं उनकी आय शायद इससे अधिक है और मजदूरों की बहुत कम। सुना गया कि मजदूरों की कम-से-कम मजदूरी एक रुपया रोज तक भी है। पर अमेरिका के लोगों की आमदनी और चीन के लोगों की आमदनी का कोई मिलान नहीं किया जा सकता। यथार्थ में अमेरिका के लोगों की आय से तो संसार के किसी भी देश के लोगों की आय का मुकाबला नहीं। अमेरिका में एक व्यक्ति की आमदनी से दूसरे की आमदनी में बहुत अधिक अन्तर होने पर भी जिनकी आमदनी कम-से-कम है उन्हें भी इतना अधिक मिलता है कि उन्हें असन्तोष नहीं। पर जहाँ लोग भूखों मरते हों वहाँ यदि एक व्यक्ति की आय से दूसरे की आय में बहुत अधिक अन्तर हो तो कम आय वाले को असन्तोष ही नहीं ईर्ष्या होती है, जलन होती है और इसका अन्तिम परिणाम निकलता है क्रान्ति। संसार के किसी भी देश में साम्यवाद के मुख्य सिद्धान्त के अनुसार चाहे हर आदमी अपनी शक्ति के अनुसार उत्पादन कर अपनी आवश्यकता के अनुसार प्राप्त न करता हो, चाहे एक व्यक्ति की आमदनी से दूसरे व्यक्ति की आमदनी में काफी अन्तर भी हो, पर साम्यवादी कहे जाने वाले देशों में इस अन्तर को घटाने का प्रयत्न अवश्य किया गया है, चीन में भी यह हुआ है और इसीलिए निर्धनता रहते हुए भी वहाँ के लोगों के पुराने असन्तोष की मात्रा अवश्य घटी है।

इस प्रकार साम्यवाद के उपर्युक्त दोनों मुख्य सिद्धान्तों के अनुसार संसार का कोई भी देश पूर्णतया साम्यवादी नहीं कहा जा सकता, चीन तो सर्वथा नहीं, और इसीलिए चीन का शासन जिनके हाथ में है वे भी चीन को साम्यवादी न कह केवल इतना ही कहते हैं कि चीन का शासन साम्यवादियों के नेतृत्व में है, और इस नेतृत्व का ध्येय चीन में साम्यवाद की स्थापना है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या चीन इस ध्येय की ओर बढ़ रहा है? इसका उत्तर देना सरल नहीं है। जिस रूस में पहली साम्यवादी क्रान्ति हुई और जिस क्रान्ति को हुए ३५ वर्ष हो चुके जब उसके सम्बन्ध में भी इस विषय पर विचारकों में मतभेद है तब चीन के सम्बन्ध में, जहाँ वर्तमान क्रान्ति को हुए केवल तीन वर्ष बीते हैं, इस विषय में कुछ भी कहना एक असंगत बात होगी।

इतने पर भी इन तीन वर्षों में चीन में कुछ बड़ी-बड़ी बातें करने का प्रयत्न किया गया है और कुछ बड़े-बड़े काम हुए हैं। मेरे मतानुसार ये बड़े काम चार हैं—चीन की भूमि का पुनर्वितरण, चीन की स्त्रियों का उत्कर्ष, चीन में भ्रष्टाचार की समाप्ति और चीन की न्याय-पद्धति का परिवर्तन। अब इन चारों बातों में प्रत्येक

का संक्षेप से कुछ दिग्दर्शन उपयुक्त होगा।

चीन की इस नयी शासन-व्यवस्था के पूर्व चीन की अधिकांश भूमि पर जमींदारों का अधिकार था। ये जमींदार इस जमीन को या तो शिक्मी काश्तकारों को उठाते थे या मजदूर रखकर खेती कराते थे; अधिकतर पहली पद्धति से। जमींदारी खत्म होने के पहले की भारत की और चीन की उस स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं था। नये चीन ने केवल जमींदारी खत्म नहीं की, पर जमींदारी खत्म करने के साथ ही जमींदारों की सारी जमीन भी लेकर उसका पुनर्वितरण कर दिया गया, यद्यपि सब जगह और सब की जमीन के सम्बन्ध में यह नहीं हुआ। किनकी जमीन लेकर बाँटी गयी और किनकी नहीं, इसके विषय में चीन का जमीन के सम्बन्ध में जो नया कानून है उसी के आधार पर कुछ कहना उचित होगा।

चीन में जिन लोगों के पास भूमि थी उन्हें नये कानून के अन्तर्गत निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है—

(१) जमींदार;

(२) धनी किसान;

(३) मध्यम श्रेणी का किसान; और

(४) गरीब किसान।

इनमें जमींदारों और इसी प्रकार मंदिरों इत्यादि की जमीनें तो सरकार ने पूरी तरह छीन ली हैं। भूमि सुधार कानून की धारा २ और ३ में कहा गया है—

"जमींदारों की जमीनें, उनके पशु खेती के औजार, उनका फालतू अनाज व देहातों में उनके फालतू मकानों को जब्त कर लिया जायगा, पर उनकी अन्य सम्पत्ति जब्त नहीं की जायगी।"

"पैतृक धर्मस्थानों, मन्दिरों, मठों, गिरजों, स्कूलों आदि संगठनों की कृषि-भूमि तथा सार्वजनिक संस्थाओं की अन्य भूमि सरकार प्राप्त कर लेगी पर स्थानीय जनसरकारों को इस बात का समुचित प्रबन्ध करना होगा कि इन जमीनों को प्राप्त करने के बाद इन जमीनों की आय से चलने वाली संस्थाओं के लिए अर्थ-प्रबन्ध की व्यवस्था हो जाय।

"मसजिदों की जमीनों के सम्बन्ध में परिस्थितियों के अनुकूल और स्थानीय मुस्लिम जनता की इच्छानुसार निर्णय किया जाय।"

इसी कानून की धारा ५ के अनुसार सैनिकों, शहीदों के उत्तराधिकारियों और कुछ अन्य लोगों की जमीनें उन्हीं के पास कुछ शर्तों पर छोड़ दी गयी हैं—

"क्रान्तिकारी व्यक्तियों, शहीदों के आश्रितों, मजदूरों, सरकारी कर्मचारियों,

पेशेवर कारीगरों तथा ऐसे अन्य व्यक्तियों की जमीनों को जो अन्य कोई काम करने के कारण अपनी जमीनें लगान पर चढ़ा देते हैं, जमींदारियों के अन्तर्गत वर्गीकृत नहीं किया जायगा और ना ही सरकार उसे लेगी। पर इसके साथ शर्त यह है कि जिस इलाके में जमीन हो उसमें औसत से प्रति व्यक्ति को जितनी जमीन मिली हुई हो उससे यह प्रति व्यक्ति के हिसाब से दुगनी से अधिक नहीं होनी चाहिए। उदाहरण के लिए यदि किसी इलाके में प्रति व्यक्ति औसत जमीन दो 'मौन' हैं तो प्रति व्यक्ति को चार मौन जमीन तक छोड़ दी जायगी, पर इससे अधिक हुई तो अतिरिक्त जमीन को सरकार ले सकती है। यदि यह साबित हो जाय कि जमीन व्यक्ति की खून-पसीने की कमाई से खरीदी हुई है या अकेले रहने वाले किसी बूढ़े व्यक्ति की है, अनाथ की है, अपंग की है या निराश्रित विधवा या विधुर की है, जिसकी आजीविका इस भूमि पर ही निर्भर करती है, तो हरेक मामले को देखते हुए इस बात की रियायत दी जा सकेगी कि दुगनी से अधिक होने पर ऐसी जमीन को भी सरकार न ले।"

धनी किसानों की जमीनें भी छीनी नहीं गयी हैं। धारा ६ का भी यहाँ उद्धृत करना अनुपयुक्त न होगा—

"धनी किसानों की जमीनें जिन पर वे खुद काश्त करते हैं या मजूरों से कराते हैं उनकी और ऐसे किसानों की अन्य सम्पत्तियों की रक्षा की जायगी।

"धनी किसान जिन छोटी जमीनों को लगान पर जोत के लिए उठा देंगे उनको भी यों ही रहने दिया जायगा। पर कुछ खास इलाकों में लगान पर उठायी गयी जमीन का कुछ अंश या वह समूची की समूची प्रान्तीय जन-सरकारों की स्वीकृति से या अधिक उच्च स्तर पर कार्रवाई करके हस्तगत की जा सकेगी।

"यदि किसी अर्ध जमींदार जैसे धनी किसान की लगान पर उठायी गयी जमीन उस जमीन से अधिक होगी जिसमें वह खेती करता है या जिसमें वह मजूरों से खेती कराता है तो लगान पर उठायी गयी जमीन हस्तगत कर ली जायगी।

"जिस भूमि को किसान लगान पर उठाता हो वह उसी भूमि के साथ सन्तुलित होनी चाहिए जिसमें वह खुद काश्त करता या कराता हो।"

मध्यम श्रेणी के और गरीब किसानों की भूमि उनके पास ही अछूती छोड़ दी गयी है।

इन श्रेणियों की परिभाषा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जमींदार की परिभाषा में इस बात पर विशेष जोर दिया गया है कि वह स्वयं शारीरिक श्रम करता है या नहीं। यदि वह स्वयं शारीरिक श्रम नहीं करता तो उसे जमींदार माना जायगा।

"ऐसे व्यक्ति को जमींदारों के वर्ग में रखा जायगा जो भूमि का स्वामी तो

हो पर स्वयं मजदूरी न करता हो अथवा नाम मात्र की मजदूरी करता हो और जो अपनी आजीविका के लिए शोषण पर निर्भर रहता हो।"

इसी प्रकार धनिक किसान वे हैं जिनके पास कार्य करने के लिए अच्छे साधन हैं। जिनकी स्वयं की जमीन भी है और जो दूसरों से जमीन भी जोतने को लेते हैं किन्तु वे यद्यपि स्वयं भी श्रम करते हैं तथापि अधिकतर दूसरों के श्रम के शोषण पर निर्भर रहते हैं।

साधारणतया ऐसे लोगों के पास उत्पादन के बहतर साधन रहते हैं और कुछ नकद पूंजी भी। वे श्रम का कुछ भाग स्वयं करते हैं, पर अधिकतर दूसरों के श्रम पर निर्भर रहते हैं। उनकी आजीविका का मुख्य भाग शोषण पर अवलम्बित है।

मध्यम श्रेणी के किसानों के पास यद्यपि स्वयं की जमीन होती है, किन्तु वे अपने श्रम के उत्पादन पर ही निर्भर रहते हैं। गरीब किसान भी अपनी मेहनत पर ही निर्भर रहते हैं। उनके पास जमीन रहती भी है और नहीं भी रहती।

इस तरह का श्रेणी विभाजन किसान सघ के द्वारा ही किया गया है। किसान संघ को कानूनी मान्यता प्राप्त है और किसान संघ में जिम्मेदार पदाधिकारी साम्य-वादी दल के सदस्य हैं।

चीन की अधिकतर भूमि का पुनर्वितरण हुआ है। आम तौर पर हर व्यक्ति को एक तिहाई एकड़ जमीन दी गयी है। कहीं-कहीं उत्तर में जहाँ भूमि अधिक है, अधिक भी दी गयी है। चीन अधिक आबादी का देश है और वहाँ एक कुटुम्ब औसत से पाँच व्यक्तियों का माना जाता है। एक तिहाई एकड़ प्रति व्यक्ति के हिसाब से एक कुटुम्ब को १$\frac{२}{३}$ जमीन मिली है। जमीन के नये कानून के अनुसार धनवान किसानों के पास अधिक जमीन भी है और जिन्होंने चीन की नयी सरकार की स्थापना में सहायता की है उनकी और विशेष रूप से सैनिकों की जमीन भी नहीं ली गयी है। ये लोग अपनी जमीन पर मजदूर रखकर भी काम करा सकते हैं। चूंकि इसके पहले जमीन बहुत थोड़े लोगों के पास थी अतः जमीन पाकर चीन के देहातियों को पहले पहल सन्तोष हुआ यद्यपि यह सन्तोष बहुत दूर तक मनोविज्ञान की दृष्टि से मानसिक सन्तोष ही था। भारत के सदृश चीन में भी वहाँ की ७५ प्रतिशत जनता देहातों में रहती है, अतः वहाँ की जनता का इस प्रकार का सन्तोष बहुत बड़ी बात है, यद्यपि यह भी सुना गया कि यह सन्तोष अब असन्तोष में परिणत हो रहा है, क्योंकि भूमि का कर बहुत बढ़ा दिया गया है। जो कुछ हो, अधिक भूमि का पुनर्वितरण चीन का बहुत बड़ा काम है। पर इसका एक दूसरा रुख भी है, जिसमें आँखें मूंदी नहीं जा सकतीं। एक सही दो बटे तीन एकड़ के फार्म ही अब चीन में अधिक हो गये हैं और

ऐसे एक फार्म का उत्पादन क्या सन्तोषजनक हो सकता है तथा इस उत्पादन से जो आय एक कुटुम्ब को होती है उससे वहाँ की जनता का जीवन-स्तर क्या ऊँचा ले जाया जा सकता है ? हमने वहाँ की खड़ी और कटती हुई फसलें भी देखीं। चीन में अधिकतर चावल होता है और वहाँ चावल की फसल आने का वही समय था, जब हम वहाँ गये। वहाँ की फसलें हमें कमजोर और अत्यन्त साधारण कोटि की जान पड़ीं। चूँकि चीन में वहाँ की आवश्यकता के अनुसार अन्न उत्पन्न हो जाता है और वहाँ बाहर से अन्न मँगाने की आवश्यकता नहीं है इसलिए उत्पादन बढ़ाने का प्रश्न वहाँ चाहे तात्कालिक महत्त्व न रखता हो, पर गरीबी की दृष्टि से चीन गरीब से गरीब देशों में एक देश है। वहाँ के गाँव, उन गाँवों के मकान, रास्ते आदि हमारे देश के गाँवों के समान ही हैं। लोगों की रहन-सहन भी उत्कट गरीबी की है। दुबले-पतले गाल, पिचके हुए निस्तेज शरीर और उन पर फटे थिगड़े लगे हुए चिथड़े वहाँ की जनता की आर्थिक स्थिति के स्पष्ट प्रदर्शन हैं। यदि चीन की जनता का मुख्य पेशा खेती है तो वहाँ की गरीबी दूर करने के लिए खेती का उत्पादन बढ़ना ही चाहिए। इतनी थोड़ी जमीन में आधुनिक मशीनों आदि का उपयोग तो दूर रहा, पशुओं का उपयोग भी नहीं किया जा सकता, अतः आज थोड़ी-थोड़ी जमीन मिलने से लोगों को चाहे सन्तोष हो गया हो, पर यह क्षणिक सन्तोष है। जमीन का इस प्रकार का विभाजन वहाँ की स्थायी स्थिति में नहीं रह सकता। तब आगे चलकर इस सम्बन्ध में वहाँ क्या होगा ? कहना सरल नहीं है। या तो जो सहयोगी और सामूहिक फार्म वहाँ इस समय सफल नहीं हो रहे हैं और वहाँ के लोगों को रुचिकर भी नहीं उन्हीं की स्थापना इस प्रकार के भूमि-वितरण का अन्तिम रूप होना चाहिए। या फिर जापान के सदृश हर छोटे-छोटे फार्म के लिए उत्तम-से-उत्तम खाद की बहुतायत और अच्छी-से-अच्छी आबपाशी के साधन होने चाहिएँ जो चीन के सदृश अत्यन्त विशाल साथ ही अत्यधिक गरीब देश के लिए जुटा सकना सरल बात नहीं है।

चीन की स्त्रियों का उत्कर्ष वहाँ के कामों का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है। पुराने चीन में स्त्रियों की जो दशा थी उसका कुछ विवरण यहाँ दिया जा रहा है। प्राचीन चीनी परम्परा के अनुसार चीनी स्त्रियों में केवल ये गुण होने आवश्यक थे—रसोई का काम आना, घर का प्रबन्ध देखना और शिशु-पालन। विवाह से पहले वह पिता की आज्ञा मानती थी, विवाह के बाद पति की आज्ञा पर चलती थी और पति की मृत्यु के बाद अपने बेटे पर आश्रित रहती थी। समाज में स्त्री का स्थान पुरुषों की तुलना में अत्यन्त हीन था। वह घरों की चारदीवारी में ही शोभा पाती थी। गरीबी के कारण लड़कियों को बेचने के उदाहरण भी पाये जाते थे। नये चीन ने स्त्रियों के उत्कर्ष के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और ठोस कदम उठाया। आज

चीन की स्त्रियों को यूरोप की स्त्रियों से अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है, किन्तु इससे नैतिकता का स्तर नहीं गिरने पाया वरन् कुछ ऊँचा हो गया है। पेरिस जैसे शहरों में नैतिक भ्रष्टाचार का जैसा नग्न चित्र दिखायी देता है उसका चीन में कहीं नाम-निशान भी नहीं है।

स्त्रियां सभी कामों में भाग लेती हैं। चीन की सेना में उनकी काफी संख्या है और सरकारी दफ्तरों में भी वे अपनी कुशलता का परिचय दे रही हैं। मर्दों से शरमाने, डरने अथवा उनसे अपने को निम्न कोटि का समझने का वहाँ प्रश्न ही नहीं उठता। विवाहित जीवन के साथ-साथ वे अपने लिए उपयुक्त आजीविका भी चुनती हैं। भारत की तरह चीन की महिलाएँ आर्थिक दृष्टि से एकदम पुरुषों पर आश्रित नहीं हैं।

चीन में महिलाओं का एक फैडरेशन है। हरेक गांव में इस संस्था की शाखाएँ हैं। इस संस्था के दो मुख्य काम हैं—महिलाओं के हितों की रक्षा करना और राष्ट्र की प्रगति में उनका योग प्राप्त करना। भारत में कुछ महिलाएँ अवश्य बहुत उन्नत हो गयी हैं पर स्त्री वर्ग में अधिक जागृति नहीं है। जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है चीन में महिला समाज को परिस्थितिवश समाज में आना पड़ा, हाँ, नये चीन में जिस दिशा में उनका संगठन किया गया वह सराहनीय है। भारत की तरह चीनी महिलाएँ फैशन के रूप में समाज में नहीं आयीं बल्कि आवश्यकतावश आयी हैं और अब राष्ट्रीय प्रगति में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योग दे रही हैं।

नये चीन में महिलाओं की ठीक-ठीक स्थिति का ज्ञान वहाँ के नये विवाह कानून से हो सकता है। यह कानून मई १९५० में पास किया गया। चीन में ऐसा नहीं है कि कानून सर्वोच्च संसद् ने पास कर दिया और इसके बाद उसे लागू कर दिया। वहाँ कानून जनता के फैसले से बनते हैं। गाँव सभा तक सभी संस्थाओं के विचार लिये जाते हैं। इसलिए नया विवाह कानून बनने में सोलह महीने का समय लगा।

इस कानून में विवाह का उद्देश्य अत्यन्त स्पष्ट दिया गया है—

(अ) आपसी प्रेम;

(आ) शिशु-पालन;

(इ) राष्ट्रीय प्रगति में योगदान और

(ई) नवीन समाज का निर्माण।

स्त्री और पुरुष दोनों का दरजा बराबर होता है जिसका अर्थ है कि दोनों ही अपने-अपने लिए व्यवसाय चुनने के लिए स्वतन्त्र हैं और सामाजिक जीवन में पूरा भाग ले सकते हैं।

इस कानून में इन बातों की भी व्यवस्था है—कोई भी व्यक्ति एक स्त्री के रहते हुए दूसरा विवाह नहीं कर सकता, स्त्री पति के रहते दूसरे व्यक्ति से अनुचित सम्बन्ध नहीं रख सकती, छोटी उम्र में विवाह नहीं हो सकता, विधवा विवाह पर आपत्ति नहीं की जा सकती और विवाह के अवसर पर दहेज आदि नहीं मांगा जा सकता।

जब तक लड़का बीस वर्ष का न हो और लड़की की उम्र अठारह वर्ष न हो उनका विवाह नहीं हो सकता। वे दोनों रजिस्ट्रार के दफ्तर में अपने विवाह की घोषणा कर सकते हैं। माता-पिता को दखल देने का अधिकार नहीं है। असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्ति विवाह नहीं कर सकते। यदि दोनों व्यक्ति तलाक देना चाहते हैं तो वह फौरन स्वीकार कर लिया जाता है। यदि तलाक देने के बाद वे पुर्नविवाह करना चाहते हैं तो कानून उन्हें इस बात की आज्ञा देता है।

आज चीनी जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिसमें महिलाएँ अग्रसर न हो रही हों। स्त्रियाँ सैनिक भी बनीं और छापामार भी। कारखानों और सरकारी दफ्तरों में, खेतों और स्कूलों में स्त्रियों ने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम किया। पहले स्त्रियाँ अपनी सुरक्षा का ही ख्याल करती थीं और समाज में आते डरती थीं। उन्हें अलग रहना ही पसन्द था। अब स्त्रियां समाज में आ गयी हैं और स्वतन्त्र हैं।

चीन की नयी सरकार को इस काम में बहुत बड़ी सफलता मिली है। इस चित्र का कोई दूसरा रुख नहीं और इस विषय में नये चीन की जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

भ्रष्टाचार की चीन में तीन वर्षों के अल्पकाल में प्रायः समाप्ति-सी हो गयी है। चीन का यह काम भी छोटा काम नहीं है। चीन की नयी सरकार को भ्रष्टा-चार समाप्त करने के लिए सख्त-से-सख्त कदम उठाने पड़े हैं।

भ्रष्टाचार रोकने के लिए और चीन को अवांछित तत्वों से मुक्त करने के लिए चीन के नवीन शासन ने दो प्रधान आन्दोलन चलाये। पहले का नाम था 'एण्टी थ्री' (तीन सामाजिक दोषों के विरुद्ध) आन्दोलन। यह सरकारी कर्मचारियों के लिए था। जिन तीन सामाजिक दोषों के विरुद्ध यह आन्दोलन चलाया गया था वे थे—(१) अकड़, (२) घूसखोरी और (३) सरकार का नुकसान। प्रत्येक कार्यालय में सरकारी कर्मचारियों से एक दूसरे के विरुद्ध शिकायतें मांगी गयीं। ऊँचे कर्मचारियों के विरुद्ध नीचे कर्मचारियों से और नीचे कर्मचारियों के विरुद्ध उनसे नीचे के कर्म-चारियों से। फिर इन सारी शिकायतों को एकत्र कर सभी दोषी पाये जाने वाले कर्म-चारियों को नौकरी से हटाना, कारावास, मृत्यु-दण्ड तक सभी दण्ड दिये गये। ये दोषी हैं या नहीं इसके निर्णय का अधिकार उस समय ऊँचे-से-ऊँचे सरकारी कर्मचारियों को

था जो अधिकतर साम्यवादी पार्टी के सदस्य थे। ऐसा सुना गया कि इस आन्दोलन में अनेकों कर्मचारियों को सजाएँ दी गयीं। कितनों को कारावास हुआ, कितनों को मृत्यु-दण्ड और कितने नौकरी से अलग किये गये—इसके कोई अधिकृत आंकड़े अप्राप्य हैं। इस आन्दोलन के फलस्वरूप सरकारी कर्मचारियों पर ऐसा आतंक जम गया कि वे कोई भी अवैध कार्य करने से बहुत अधिक डरने लगे।

इसी प्रकार जनता को सामाजिक दोषों से मुक्त करने के लिए एण्टी फाइव (पाँच सामाजिक दोषों के विरुद्ध) एक आन्दोलन चलाया गया। ये दोष निम्न थे—(१) सरकारी अफसर को घूस देना, (२) सरकारी अफसर से माल खरीदना, (३) टैक्स न देना, (४) सरकार के खिलाफ अफवाह फैलाना, और (५) जनता को ठगना। चीन के लगभग सभी प्रतिष्ठित लोगों को इस आन्दोलन के बीच से गुजरना पड़ा। एक दूसरे के विरुद्ध शिकायतें इकट्ठी की गयीं। उन पर जितनी जाँच की जा सकती थी वह की गयी और इन शिकायतों के आधार पर अनेकों स्त्री पुरुषों को सजा दी गयी। सजा भी मामूली से लेकर मृत्यु-दण्ड तक थी।

यह सुना जाता है कि उपर्युक्त दोनों आन्दोलनों के फलस्वरूप अनेकों ने आत्म-हत्या की, अनेकों को कारावास हुआ और अनेकों मारे गये। इन दोनों आन्दोलन ने भ्रष्टाचार-उन्मूलन में विशेष सहायता दी।

न्याय करने की पद्धति में परिवर्तन नये चीन का चौथा महत्त्वपूर्ण काम है। दीवानी और फौजदारी के सारे पुराने कानूनों को रद्द कर किसी भी नये लिखित कानूनों के बिना और बिना किसी भी मामले में वकीलों की उपस्थिति और दलील या नजीर देने के आजकल चीन में न्याय किया जाता है। पश्चिमी देशों में ही नहीं पर हमारे देश में भी इस विचित्र पद्धति को सुन बहुत कम ऐसे लोग होंगे जिन्हें आश्चर्य न हो, पर नये चीन में आज इसी प्रकार न्याय हो रहा है। चीन में जब हमने भी वहाँ की यह न्याय-पद्धति सुनी तब हमें भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। हम वहाँ के उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) के वाइस प्रेसिडेण्ट ऊँ की चीह अथवा चांग चिन जांग से मिले और उन्होंने स्वीकार किया कि हमने जो कुछ सुना वह ठीक है। चीन के पुराने दीवानी और फौजदारी सारे कानून रद्द कर दिये गये हैं। नये कानून बहुत कम बने हैं और जो बने हैं वे किसी कानून बनाने वाली सभा (लेजिस्लेचर) के द्वारा पास नहीं किये गये हैं वहाँ की सरकार के द्वारा बनाये गये हैं अर्थात् ये हैं एक प्रकार के अध्यादेश (आर्डीनेन्स)। पुराने वकीलों की सनदें छीन ली गयी हैं और किसी मामले में कोई वकील किसी तरह की पैरवी नहीं कर सकता। जब किसी व्यक्ति के खिलाफ कोई शिकायत आती है तब उसे कचहरी में तलब होने की आज्ञा मिलती है। मुलजिम को जो कुछ कहना होता है वह कह सकता है। इसके बाद न्यायाधीश गवाह आदि लेकर

देखते हैं कि शिकायत सही है या गलत। आवश्यकता जान पड़ती है तो न्यायाधीश जाँच के लिए उस स्थान पर जाते भी हैं जहाँ से शिकायत आयी है। अर्थात् चीन की अदालतों के न्यायाधीश निष्पक्ष बैठे हुए दोनों पक्षों को सुन केवल फैसला करनेवाले न होकर स्वयं जाँच करनेवाले भी होते हैं। इस छोटी-सी संक्षिप्त कार्यवाही के बाद बहुत जल्दी फैसला दे दिया जाता है। हाँ, फैसले की दो अपीलें अवश्य हो सकती हैं। अब तक के सभ्य कहलाने वाले समाज में न्याय के सम्बन्ध में सबसे बड़ा सिद्धान्त यह था कि चाहे दस दोषी छूट जायँ पर एक भी निर्दोष दण्डित न हो। चीन में भी निर्दोष दण्डित किये जायँ यह सिद्धान्त नहीं है, पर मुझे ऐसा अवश्य लगा कि उपर्युक्त सिद्धान्त शायद उलट गया है अर्थात् वहाँ यह सिद्धान्त हो गया है कि चाहे दस निर्दोष दण्डित हो जायँ, पर एक भी दोषी न छूटने पाये। इस पद्धति से वहाँ लाभ भी हुआ है। इसी पद्धति के कारण वर्तमान सरकार का कोई विरोधी नहीं और भ्रष्टाचार आदि की भी समाप्ति हो गयी है।

इन चार महत्त्वपूर्ण कामों के सिवा शिक्षा के प्रसार में वृद्धि, स्वास्थ्य-रक्षा, यातायात के साधनों की वृद्धि आदि के भी प्रयत्न हो रहे हैं। वैज्ञानिक और औद्योगिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। यह सारी शिक्षा चीनी भाषा में दी जाती है। वैज्ञानिक शब्द तक उन्होंने अपने बनाये हैं, विदेशी वैज्ञानिक शब्दावली उन्होंने किसी भी रूप में ग्रहण नहीं की है। हमें चीन में कहीं भी किसी विदेशी भाषा का कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हुआ। चिकित्सकों की बहुत अधिक आवश्यकता के कारण चिकित्सक शिक्षा का एक ऐसा पाठ्यक्रम निकाला गया है कि दो वर्षों के भीतर साधारण चिकित्सक तैयार हो जाते हैं। परन्तु इन क्षेत्रों का अब तक कोई अच्छे मापदण्ड का स्तर नहीं बन पाया है। यातायात के साधन—रेलें, सड़कें, रेलों पर चलने वाली गाड़ियाँ और सड़कों पर चलने वाली बसों अथवा मोटरों आदि की कमी प्राय: वैसी ही है जैसी पहले थी, यद्यपि इस दिशा में भी कुछ-कुछ प्रयत्न अवश्य हो रहा है। वायुयान तो वहाँ नहीं के बराबर स्थानों में चलते हैं।

गरीबी जैसा ऊपर कहा गया है, अभी भी चीन में अपने विकराल से विकराल रूप में मौजूद है। गाँव की आर्थिक अवस्था का वर्णन ऊपर आ चुका है। शहरों में भी इस गरीबी के भयानक से भयानक रूप के दर्शन होते हैं। शंघाई के सदृश औद्योगिक और व्यापारी केन्द्र में मजदूरों के रहने की चालें (स्लम्स) और उनके सब तरफ़ गन्दी नालियाँ तथा गन्दे पानी से भरे हुए गढ़े दम घोटते हैं। अभिजात वर्ग के प्राय: समाप्त हो जाने के कारण शहरों में भी व्यक्तिगत सम्पन्नता नहीं दिखायी देती। सरकारी मोटरकारों और दूतावासों की मोटरों को छोड़ शायद ही किसी व्यक्ति के पास मोटर हो। टैक्सी मोटर भी क्वचित ही चलती हैं। पैट्रोल के दाम

हैं पन्द्रह रुपये गैलन से भी अधिक। फिर भला किसकी सामर्थ्य है कि मोटर रख सके ? जिनकी किसी प्रकार की भी राजनैतिक स्थिति है, जैसे राजदूत आदि, उन्हें अवश्य अढ़ाई रुपये गैलन में पेट्रोल मिल जाता है।

पर जब हम नये चीन की इस गरीबी आदि का वर्णन करते हैं तब हमें यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि नये चीन के पास विश्वकर्मा के सदृश कोई देवता नहीं कि इतने थोड़े समय में इन सब चीजों को दुरुस्त कर सके।

यह है नये चीन का एक छोटा-सा चित्र। मेरे मतानुसार जो लोग यह कहते हैं कि पुराना फूहड़ चीन सर्वथा समाप्त हो वहाँ एकदम एक नयी जाज्वल्यमान वस्तु का निर्माण हो गया है उनका मत भी ग्राह्य नहीं किया जा सकता और जो यह कहते हैं कि वहाँ कुछ भी नहीं हुआ उनकी राय भी ठीक नहीं है।

इतने थोड़े समय में चीन में जो कुछ हो सका है उसके कुछ विशिष्ट कारण हैं और अब हम उन्हीं पर कुछ विचार करेंगे।

चीन में चाहे साम्यवादी सत्ता न हो, पर एकाधिकारवाली सत्ता है। और ऐसी सरकार में न प्रजातन्त्र का कोई स्थान रह सकता है और न व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का। वहाँ कभी भी कोई चुनाव नहीं हुए। वर्तमान सरकार भी चुनी हुई सरकार नहीं है। कोई स्वतन्त्र चुनाव निकट भविष्य में हो सकेंगे ऐसी आशा नहीं है। यद्यपि अभी हाल में ऐसी सरकारी घोषणा हुई है कि १८ वर्ष से अधिक उम्र के व्यक्तियों की मतदान-सूचियाँ बनायी जायँ, किन्तु स्वतन्त्र प्रजातन्त्र के चुनाव की कोई सम्भावना नहीं है। अतः सरकार को चुनाव की कोई चिन्ता न होने के कारण उसके मत में जो ठीक जान पड़ता है उसे करने में किसी प्रकार की बाधा नहीं है। यद्यपि कुछ राजनैतिक दल हैं, जिनमें प्रधान हैं तीन दल—साम्यवादी (कम्यूनिस्ट), प्रजातन्त्रवादी (डिमोक्रैटिक) और क्रान्तिकारी (रिवोल्यूशनरी) क्युमेन्टांग, पर वर्तमान सरकार का विरोधी (अपोजीशन) कोई दल नहीं। सरकार में साम्यवादी दल का नेतृत्व है और शेष दोनों प्रमुख दलों के भी कुछ व्यक्ति सरकार में शामिल हैं। वहाँ केन्द्र में कोई संसद् या प्रान्तों में कोई विधान-सभा कानून बनाने वाली संस्थाओं के सदृश संस्थाएँ नहीं जिनके प्रति सरकार जिम्मेवार हो, या जहाँ बड़ी-से-बड़ी बात से लेकर छोटी-से-छोटी बात तक की बाल की खाल निकालकर बहस-मुबाहसा होता हो। जैसा ऊपर कहा गया है वहाँ का बजट तक किसी को ज्ञात नहीं। चीन की सरकार की हर बात गुप्त रहती है और सरकार जो कुछ भी भला-बुरा, सफेद-स्याह करना चाहे उसे कर सकने की उसे पूरी-पूरी आजादी है। सरकार को सलाह देने के लिए (कन्सलटेटिव) कुछ सभाएँ अवश्य हैं, पर इनको किसी प्रकार का कोई अधिकार नहीं, इनका काम केवल सलाह देना है। चीन का कोई विधान

(कान्स्टीट्यूशन) तक नहीं है। वहां का शासन चलता है एकाधिपत्य से।

चीन के सारे अखबार सरकार के अधिकार में हैं। इसलिए वहां के अखबारों में सरकार की किसी प्रकार की कोई भी आलोचना सम्भव नहीं। वहां किसी सार्वजनिक सभा में भी सरकार की किसी तरह की आलोचना नहीं की जा सकती। सार्वजनिक सभा तो दूर की बात है पांच-दस आदमी इकट्ठे होकर भी सरकार की किसी प्रकार की भी आलोचना करने में अत्यधिक शंकित ही नहीं अत्यन्त भयभीत रहते हैं। इसका कारण है गत तीन वर्षों में सरकार के विरोधियों को क्रान्ति के विरोधी (काउण्टर रिवोल्यूशनरी) कहकर कठिन-से-कठिन यहां तक कि प्राण-दण्ड भी दिया जाना।

गत तीन वर्षों में इस प्रकार के क्रान्ति-विरोधियों और भ्रष्टाचारियों को कठिन-से-कठिन दण्ड दिये गये हैं। इस दण्ड की प्रथाएँ भी भिन्न-भिन्न प्रकार की रही हैं। सबसे अधिक प्रचलित प्रथा थी ऐसे लोगों से स्वयं अपराध को स्वीकृत कराना। अपराध को स्वीकृत कराने के लिए जिन साधनों का उपयोग किया गया, सुना, कि वे अगणित प्रकार के थे। अधिकांश अपराधियों ने ही अपने अपराध स्वीकृत किये होंगे, पर जिन साधनों को अपराध-स्वीकृति के लिए काम में लाया गया उनमें से कुछ, कहते हैं, ऐसे थे कि अपराध स्वीकृत न करने की अपेक्षा, अपराध न होते हुए भी, अपराध स्वीकार कर लोगों ने प्राण दे देना अधिक सरल माना। अनेक ने उस प्रकार के कष्टों से बचने के लिए आत्महत्या तक कर ली। इन तीन वर्षों में इस प्रकार से कितने लोग मरे या मारे गये इनकी कोई संख्या निश्चित मालूम न हो सकी। हजारों से लेकर लाखों तक इनकी संख्या बतायी जाती है। प्राणदण्ड के अतिरिक्त इन अपराधों में लोगों की पूरी की पूरी सम्पत्तियाँ जब्त की गयी हैं और जो कभी लाखों के धनी थे वे केवल शरीर पर के कपड़े छोड़ बिना एक पाई भी दिये अपने घरों से निकाल दिये गये हैं।

चीन की राजसत्ता आज जिनके हाथ में है वे लोग बड़े बुद्धिमान, विचारशील, चरित्रवान और निस्वार्थी व्यक्ति हैं। चेयरमैन माओत्सेतुंग में उपर्युक्त सारे गुणों का समावेश बताया जाता है। राज्य के प्रधान-प्रधान उत्तरदायित्व के स्थानों पर ऐसे व्यक्ति रखे गये हैं जिन्होंने वर्तमान सत्ता को स्थापित करने में किसी न किसी प्रकार का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष योग दिया था। इन लोगों में इस राजसत्ता और इसके कार्यक्रम में अखण्ड विश्वास और श्रद्धा है।

राज्य के वैतनिक कर्मचारी भी ऐसे लोग हैं जिनको इस समय की सत्ता और उसके कार्यक्रम पर पूर्ण विश्वास है। हमारे देश के इस प्रकार के वेतन-भोगी जिस तरह हमारी सरकार के हर काम की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से केवल आलोचना ही

नहीं करते पर मजाक तक उड़ाया करते हैं, वैसी बात की चीन में कल्पना तक नहीं की जा सकती। फिर कोई चुनाव होकर राज्य-सत्ता बदलने की सम्भावना न देख ये वेतन-भोगी कर्मचारी और भी अधिक राजभक्त हो गये हैं।

सरकार की ओर से रेडियो, लाउड स्पीकर, पोस्टर, लीफलट, नाटक, सिनेमा, भिन्न-भिन्न प्रकार के सतत आयोजन आदि से प्रचार का ऐसा ज्वार है जिसमें किसी भी क्षण भाटा नहीं आ पाता। इस सरकार के पूर्व की सरकार कितनी निकम्मी, भ्रष्ट और क्रूर थी इसे हर तरह भिन्न-भिन्न प्रकार से कहा जाता है। इस सम्बन्ध में अनेक प्रकार के चित्र और फिल्म लोगों को दिखाये जाते हैं। वर्तमान सरकार के छोटे-से-छोटे काम का बड़े-से-बड़ा प्रदर्शन किया जाता है। वर्तमान सरकार की असफलताएँ भी आगे चलकर किस प्रकार सफलताओं में परिणत होने वाली हैं, अभी का दरिद्री चीन कैसा सम्पन्न हो जाने वाला है, और आज जो लोगों को ग्यारह-ग्यारह, बारह-बारह घण्टे काम करना पड़ रहा है उसके परिणाम में उन्हें भविष्य में कैसा आराम मिलनेवाला है, इसे लोगों को नाना प्रकार से समझाया जाता है। इसके लिए सबसे अधिक रूस के कामों के दृष्टान्त दिये जाते हैं। रूस और चीन की महान् मित्रता के हर जगह प्रदर्शन किये जाते हैं। पूंजीवादी देश, विशेषकर अमेरिका के विरुद्ध युद्ध-लिप्सा के नाना प्रकार के दोषारोपण कर चीन और रूस शान्ति केवल शान्ति के उपासक हैं और उन्हें यदि लड़ाई की तैयारी करनी पड़ रही है तो अपने बचाव के लिए तथा इस तैयारी में सारी जनता को प्राणपण से योग देना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है, यह समझाया जाता है। कुछ विशिष्टि नारों और शब्दों का इस प्रचार में बड़ा योग रहता है। जैसे 'काउण्टर रिवोल्यूशनरी' क्रान्ति-विरोधी, 'एण्टी इम्पीरियलिस्ट' साम्राज्य-विरोधी, 'आफ्टर लिबरेशन ऑफ़ चायना' चीन की मुक्ति के बाद, 'पीपिल्स गवर्नमेण्ट' जनता की सर-कार, 'प्रोग्रेसिव' प्रगतिशील, 'बुराक्रेटिक कैपीटलिस्ट' नौकरशाही वाले पूंजीवादी, 'पपेट' हाथ के खिलौने, 'बैंडत' चोर, 'ब्रिसेन्स्स' गुण्डा, 'न्यू डिमोक्रेसी' नया प्रजा-तन्त्र इत्यादि। इन सारे शब्दों के सुन्दर चीनी शब्द बनाये गये हैं। पुरानी सरकार और च्यांगकाई शेक के लिए इनमें से कई विशेषणों का सतत उपयोग किया जाता है। स्कूलों और कालेजों में नयी पीढ़ी के निर्माण के लिए इस प्रचार का महान् उपयोग किया जा रहा है। इस सतत प्रचार के कारण चीन की जनता में एक नशा-सा चढ़ा हुआ है और इस नशे का किसी प्रकार उतार न आ जाय इसका बड़े वैज्ञानिक ढंग से पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है। चीन की जनता अधिकतर अशिक्षित है इसलिए उस पर इस प्रचार का अमोघ प्रभाव पड़ रहा है। चीन शान्ति का ही उपासक है इसलिए चीन का शान्ति-चिह्न कबूतर जगह-जगह अनेक रूपों में चित्रित है।

चीन की सेना यदि लड़ाई के समय युद्ध करने के लिए शिक्षित है तो शान्ति

के समय उसे चीन के उत्पादन बढ़ाने में दत्तचित्त रहना पड़ता है। सेना को प्रसन्न रखने के लिए उसे हर प्रकार की सुविधाएँ दी गयी हैं और चीन में सैनिकों का सबसे अधिक आदर है। यथार्थ में चीन की वर्तमान सरकार की यह सेना रीढ़ की हड्डी है।

चीन के मजदूरों को ग्यारह घण्टे काम करना पड़ता है—आठ घण्टे शारीरिक श्रम और तीन घण्टे मानसिक।

और उपयुक्त साधन चीन में क्यों सफल हो रहे हैं, अब इसका भी कारण सुनिए—

लगभग ५० वर्षों से चीन के निवासियों ने जितना कष्ट भोगा है उतना कदाचित् संसार के किसी देश के निवासियों ने नहीं। मांचू राज्य वंश के अन्तिम दिनों में चीन की जो दशा थी, सबसे पहले उसी का कुछ उल्लेख करना उचित होगा।

मांचू वंश के शासकों ने चीन पर परिस्थितिवश अधिकार प्राप्त किया। उत्तरी चीन पर उनका प्रभुत्व सर्वसम्मति से हुआ। दक्षिणी चीन को उन्होंने लम्बी और घमासान लड़ाई के बाद अपने बाहुबल से जीता। उत्तरी चीनी मांचू शासकों के प्रति वफादार थे और शासक भी लोगों का विश्वास करते थे। दक्षिणी चीन उनके प्रति विद्रोही था और वे भी वहाँ के लोगों को सशंक दृष्टि से देखते थे। मांचू शासकों ने पीकिंग नगर को अपनी राजधानी बनाया, जो उनके देश और उनके मंगोल मित्रों के समीप था।

यह स्पष्ट था कि मांचू शासक चीनी जनता का सहयोग पाये बिना इतने साम्राज्य पर शासन नहीं कर सकते थे। इसके साथ ही यह भी विदित था कि यदि चीनी और मांचू समान समझे जाते तो मांचू लोगों का चीनी जन समूह में पता भी न चलता। इसलिए आधे सरकारी पदों पर मांचू रखे गये और आधे पदों पर चीनी। धीरे-धीरे दक्षिण चीन के लोगों को अनुभव होने लगा कि मांचू साम्राज्य पीकिंग के राजदरबारियों की हित-रक्षा के लिए है यद्यपि उसके राजस्व का मुख्य आधार दक्षिणी चीन ही है। इसमें नये विशाल राजभवनों का निर्माण हो रहा था। पिछली शताब्दियों में जिन आक्रमणकारियों ने चीन में अपना प्रभुत्व स्थापित किया था वे घुल-मिलकर चीनियों के ही अंग बन गये थे, किन्तु मांचू शासकों और शासित चीनियों का अंतर सदैव बना रहा। अपेक्षाकृत अयोग्य मांचू भी सरकारी पदों पर आसानी से नियुक्त कर दिये जाते थे। परिणाम यह हुआ कि उनकी वह सैनिक शक्ति घटने लगी जो उनके पूर्वजों के पास थी। धीरे-धीरे मांचू वंश की शक्ति क्षीण होने लगी। एक ओर उन्हें दक्षिण के विद्रोह का सामना करना पड़ा, दूसरी ओर उन्हें विदेशी आक्रमणकारियों से मोर्चा लेना पड़ा। एक शताब्दी के आघात-प्रतिघात से चीन में प्रबल विद्रोह की ज्वाला धधक उठी जिसमें मांचू वंश का भस्म हो जाना कोई बहुत बड़ी घटना

न थी। अठारहवीं शताब्दी में जिस साम्राज्य की सराहना की जाती थी वह उन्नीसवीं सदी समाप्त होते न होते जर्जर हो चुका था। कहना न होगा कि जिस समय पश्चिमी देशों में विज्ञान की प्रगति हुई चीन के लिए वही समय गतिरोध का था। मांचू साम्राज्य की इतनी तीव्र अधोगति का कारण केवल राजनीतिक अथवा आर्थिक कुप्रबन्ध मात्र ही न था बल्कि शासक वर्ग की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति थी।

मांचू वंश के लोगों की अपनी कोई परम्परा तो थी नहीं इसलिए उन्होंने चीनी संस्कृति को ही अंगीकार किया, किन्तु वे रूढिवादी कनफ्यूशियन परम्परा को ही अपना सके। टाओवाद और उससे सम्बन्धित सिद्धान्तों की उन्होंने उपेक्षा की। मांचू सम्राटों ने तोपें बनाने और नक्षत्र विद्या के ज्ञानोपार्जन के लिए जैसुइट लोगों को अपने यहाँ रखा, किन्तु विदेशी वैज्ञानिक ज्ञान की उन्होंने घोर उपेक्षा की।

उन्नीसवीं शताब्दी में मांचू साम्राज्य के शीघ्र पतन का कारण उनका बौद्धिक गतिरोध था। सामन्तवादी युग के ग्रन्थ उनके साहित्य के आदर्श थे। मांचू साम्राज्य की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति का थोड़ा-सा परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है। देश की सारी पूँजी चीन के उत्तर-पूर्वी भाग में संचित और सीमित थी। व्यापार का मुख्य केन्द्र धुर दक्षिण में था। दोनों जगहों की दूरी लगभग दो हजार मील थी और ये दोनों स्थल उस भूभाग से काफी दूर थे जहाँ चीन की मुख्य आबादी थी तथा उत्पादन-केन्द्र था। मांचू सम्राटों के शासन प्रबन्ध में जो कुशलता पायी जाती थी उसका सामाजिक और आर्थिक जीवन में सर्वथा अभाव था। परिणाम यह हुआ कि दक्षिण चीन की आर्थिक और व्यापारिक प्रगति ने क्रान्ति का सूत्रपात कर दिया।

बोक्सर विद्रोह के बाद मांचू साम्राज्य टिक न सका। यह विद्रोह चीन पर विदेशियों के प्रभाव का परिणाम था। ये विदेशी मांचू वंश की जड़ें भी खोखली कर रहे थे और उसे टिकाये हुए भी थे। बड़ी-बड़ी पराजयों के कारण मांचू वंश का मान घटता जा रहा था, किन्तु विदेशी धन के बदले में उनके छीने हुए प्रदेश उन्हें वापस लौटा देते थे जिससे कि उनका कुप्रबन्ध चलता रहे। परिणाम यह हुआ कि राजनैतिक जागृति फैलने लगी। गुप्त संस्थाएँ संगठित होने लगीं। १९०४ में चीनी भूमि पर रूस और जापान की सेनाओं का संग्राम हुआ।

अन्त में डाक्टर सुनयतसेन के नेतृत्व में इस सत्ता को उलटने का सफल प्रयत्न हुआ और सन् १९११ में चीन पहले-पहल एक प्रजातन्त्र घोषित हुआ। परन्तु यद्यपि मांचू राज्यवंश समाप्त हो गया तथापि उस काल की सामन्तशाही के ऐसे सामन्त रह गये जिनके कारण चीन में सच्चा प्रजातन्त्र स्थापित न हो पाया। इन सामन्तों की कार्यवाहियों पर भी थोड़ा विचार करना उपयुक्त होगा।

१९११ की क्रान्ति से लेकर १९२६-२७ तक सामन्त सरदारों की सत्ता का

ही बोलबाला रहा। इनमें से लगभग प्रत्येक सरदार के पास अपनी अलग सेना थी। हरेक सामन्त का उद्देश्य एक न एक बन्दरगाह पर अधिकार प्राप्त करना होता था जिससे कि वह विदेशों से हथियार और सामान प्राप्त कर सके। यदि उसका प्रदेश समुद्र से दूर होता था तो वह अपने यहाँ एक शस्त्रागार बनाने का प्रयत्न करता था। अपनी सेना का खर्च वह उस रकम में से देता था जिसे वह अपनी सेना के बल पर नियंत्रित प्रदेश से कर के रूप में प्राप्त करता था। ये सामन्त आपस में भी लड़ते और केन्द्रीय सरकार का पक्ष लेकर या उसके विरुद्ध भी लड़ते थे। विभिन्न विदेशी सरकारों के साथ इनकी साँठगाँठ चलती रहती थी।

जापान उस समय बड़ी सावधानी की नीति पर चल रहा था। जापान चीन में किसी तरह की एकता अथवा निरंकुश सत्ता स्थापित होने देना नहीं चाहता था इसलिए वह एक से अधिक सामन्तों का समर्थन करता रहता था। पहले तो जापानी किसी सामन्त के प्रदेश में रियायतें प्राप्त कर लेते थे फिर वे इन रियायतों को केन्द्रीय सरकार से भी मनवा लेते थे। ऐसा ही एक शक्तिशाली सामन्त चांग सोलिन था जिसने उत्तरी चीन पर अधिकार कर रखा था और जिसके प्रदेश में जापानियों को बहुत अधिक रियायतें मिली हुई थीं। यहाँ पर स्मरण रखना महत्त्वपूर्ण होगा कि जिन दिनों चीन में सामन्त सरदारों का बोलबाला था उन्हीं दिनों यूरोप में लड़ाई छिड़ी हुई थी। १९१४ से लेकर १९१८ तक यूरोप लड़ाई में फँसा हुआ था और अमेरिका की भी दिलचस्पी उसी ओर थी। इस बीच सुनहरा अवसर पाकर जापान ने उत्तरी चीन में अपना पाँव जमा लिया, क्योंकि यहाँ से वह रूस पर भी आक्रमण कर सकता था और चीन पर भी नियन्त्रण रख सकता था।

संकट के इन वर्षों में सुनयतसेन निरन्तर कर्तव्य-रत रहे, यद्यपि पश्चिमी देश उन्हें स्वप्न-दृष्टा मात्र समझते थे। उनका सबसे बड़ा काम विभिन्न विचारों के लोगों को एक सूत्र में बाँधना था। जब कभी उन्हें चीन से बाहर रहना पड़ता था तो विदेशों में रहने वाले चीनियों के पास चीन की स्थिति के समाचार ले जाते थे और जब कभी वे चीन आ जाते थे तो प्रवासी चीनवासियों के पास से नया उत्साह और नवीन राजनीतिक विचार लाते थे। चीन की क्रान्ति में प्रवासी चीनियों का बहुत बड़ा हाथ था। इसका कारण यह था कि उपनिवेशों में रहने के कारण उन्हें अधिकारवादी विदेशियों का निष्ठुर व्यवहार सहना पड़ता था। वे चीन में क्रान्ति की कामना करने लगे थे। वहाँ के धनी चीनी भी इस सम्बन्ध में बड़े उग्र विचार रखते थे और धन से सहायता देने को तैयार रहते थे। धीरे-धीरे विदेशियों को सुन-यतसेन से स्पर्धा होने लगी। वे उनको सफल देखना नहीं चाहते थे, किन्तु प्रवासी चीनियों के उत्साह का परिणाम यह हुआ कि सुनयतसेन का काम कभी नहीं रुका।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है सामन्त सरदारों के ऐश्वर्य-काल में ही जहाँ एक ओर धीरे-धीरे जापान अपने नाखून गड़ाता जा रहा था वहाँ दूसरी ओर सन् १९२१ में सर्वप्रथम चीन के साम्यवादी दल की स्थापना हुई। इसके संस्थापकों में चीन के वर्तमान सर्वेसर्वा माओत्से तुंग भी थे। चीन में साम्यवादी दल की स्थापना में रूस की सन् १९१७ की क्रान्ति से स्पष्ट प्रेरणा प्राप्त हुई थी इसमें सन्देह नहीं हो सकता।

डाक्टर सेन के प्रजातन्त्र और माओत्से तुंग का साम्यवादी दल दोनों ही अपने-अपने अभीष्ट में पूर्णतया सफल न हो सके। सन् १९२५ में डाक्टर सेन का देहान्त हो गया और उनका स्थान लिया जनरल इस्मो च्यांगकाई शेक ने। जनरल इस्मो-च्यांग साम्यवादियों के कट्टर शत्रु थे। उन्होंने साम्यवादियों पर लोमहर्षण अत्याचार किये।

रूस की तरह चीन के लिए भी क्रान्ति का सुनहला अवसर उस समय आया जब कि यूरोप के युद्ध ने संसार की वर्तमान व्यवस्था की जड़ें हिला दी थीं। किन्तु दुर्भाग्य से सुनयतसेन का १९२५ ईसवी में देहान्त हो गया था। हाँ, १९२६-२७ की क्रान्ति के लिए उन्होंने मानसिक पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। उनके तीन सिद्धान्त थे—राष्ट्रीय लोकतन्त्र, राजनीतिक लोकतन्त्र और आर्थिक लोकतन्त्र।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना १९२१ में हुई थी। उसके सदस्यों को सुनयतसेन की कोमिंतांग अथवा राष्ट्रवादी पार्टी में शामिल होने की आज्ञा थी। यही नहीं, कुछ कोमिंतांग सदस्य जो कम्युनिस्ट नहीं थे रूस भेजे गये थे; च्यांगकाई शेक भी उनमें से एक थे।

सुनयतसेन की मृत्यु के बाद कोमिंतांग अथवा राष्ट्रवादी पार्टी की सेनाएँ च्यांगकाई शेक के नेतृत्व में कैंटन से अग्रसर होने लगीं। परिणाम यह हुआ कि सामन्त सरदारों की सेनाएँ पराजित होने लगीं, क्योंकि न तो उनमें देश-प्रेम ही था और न एकता ही। जापानियों के उग्र हस्तक्षेप के कारण यांगसी नदी के उत्तर में राष्ट्रवादियों की प्रगति धीमी पड़ गयी। इस तरह एक ओर तो जापान से युद्ध छिड़ जाने का खतरा था और दूसरी ओर चीन में विदेशी बस्तियों वाले देश राष्ट्रवादी आन्दोलन को पनपने देना नहीं चाहते थे। इसलिए स्थिति यह हो गयी कि क्या राष्ट्रवादी आन्दोलन पूर्ण विजय के लिए बढ़ता ही जाय अथवा कुछ काल के लिए रुक जाय, अपने को संगठित करे और पूर्ण विजय के लिए पूरी तरह तैयार हो जाय। फलस्वरूप क्रान्ति के नेताओं ने, जितनी सफलता प्राप्त हुई उसी पर सन्तोष कर, संगठन और शासन-प्रबन्ध का काम सम्हाल लिया।

१९२८ से लेकर १९३७ तक के समय में सरकार के सामने दो मुख्य काम

थे—चीन में राजनीतिक व्यवस्था कायम कर शासन-प्रबन्ध की नींव डालना और देश को मजबूत तथा नये ढंग का बनाना। इन दस वर्षों में पश्चिमी देशों द्वारा शिक्षित राजनीतिज्ञों को सबसे अधिक अवसर मिला। चीन में प्रगति होने लगी, कारखाने फैलने लगे और बैंकिंग, इंजीनियरी, शिक्षा और स्वास्थ्य के विकास की ओर पूरा ध्यान दिया जाने लगा।

पर इसी बीच दो बातें और हुई—नयी सरकार ने कम्युनिस्टों और रूस से अपना सम्पर्क तोड़ लिया जिससे सरकार और कम्युनिस्टों के बीच गृह-युद्ध छिड़ गया। दूसरे, चीन को जापान का भी सामना करना पड़ा।

१६२४ में डाक्टर सुनयतसेन ने राष्ट्रवादी कोमिंतांग पार्टी का पुनःसंगठन किया था। इसके बाद से कम्युनिस्ट भी इस पार्टी में शामिल किये जाने लगे थे। इसका परिणाम यह हुआ था कि पार्टी में क्रान्तिकारी भावना का प्रवेश हुआ था। उस समय तक पार्टी मध्य वर्ग और उच्च वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करती थी, सन् '२४ से वह जनसमूह का भी प्रतिनिधित्व करनें लगी। चीन की पचासी प्रतिशत किसान-मजदूर जनता का प्रतिनिधित्व उसे प्राप्त हो गया; किन्तु पार्टी का पुनःसंगठन करने के फौरन बाद ही १६२५ में, जैसा ऊपर कहा गया है, डाक्टर सेन का देहान्त हो गया। इस पर पार्टी के अन्दर कुछ शक्तिशाली दलों ने अधिकार और शक्ति प्राप्त करना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे च्यांगकाई शेक ने समस्त सत्ता हस्तगत कर ली और अप्रैल १६२७ में कम्युनिस्टों का सफाया होने लगा। रूस को छोड़ बाकी सभी बड़े देशों ने च्यांग सरकार को स्वीकृति दे दी। नानकिंग सरकार ने रूस से राजनीतिक सम्बन्ध तोड़ लिये। चीन की राष्ट्रवादी सरकार ने देश को पूंजीवादी आधार पर पुनर्गठित करना आरम्भ किया। कारखाने खोले गये और आधुनिक सुविधाएं जुटायी जाने लगीं। विदेशियों ने नयी सरकार से अपने स्वार्थ साधने का प्रयत्न किया और उन्हें सफलता भी मिली। अमेरिकी आर्थिक सलाहकार और जर्मन सैनिक सलाहकार च्यांग सरकार के परामर्शदाता बन बैठे। एक अंग्रेज सर फ्रेडरिक व्हाइट चीन के विदेश विभाग के सलाहकार के रूप में काम करने लगे। ये वे ही महाशय थे जो हमारी केन्द्रीय असेम्बली के प्रथम अध्यक्ष बनाये गये थे।

१६२७ में सारे देश में आतंक की लहर फैल गयी। कम्युनिस्टों और गैर-कम्युनिस्टों का वैर-भाव खुले विरोध में परिवर्तित हो गया। एक ओर च्यांगकाई शेक का दमन-चक्र चला, दूसरी ओर कम्युनिस्टों ने अपने बचाव की कार्यवाहियाँ बढ़ा दीं। चीनी मजदूरों और किसानों की लाल सेना तैयार की गयी जिसके प्रधान सेनापति जनरल शू-तेह थे और राजनीतिक निर्देशक माओत्से तुंग। बाद के वर्षों में चीन की भूमि जनता के रक्त से रंग गयी। कुछ गिने-चुने भाग्यशाली परिवार ही होंगे जिन पर इस गृह-

युद्ध का प्रभाव न पड़ा हो। बड़े-से-बड़े जमींदार, विद्वान् या सरकारी कर्मचारी अपने किसी कम्युनिस्ट पुत्र या पुत्री को अथवा किसी सम्बन्धी को बचाने की कोशिश करते पाये जाते तो कम्युनिस्ट होने के आरोप में उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया जाता। कम्युनिस्ट होने की एकमात्र सजा मृत्यु-दण्ड थी।

नानकिंग की कोमिंतांग सरकार ने लाल सेना पर पाँच बड़े-बड़े आक्रमण किये, किन्तु फिर भी इस सेना का दमन न हो सका और बड़े साधारण व न्यून हथियार होने पर भी उसकी शक्ति निरन्तर बढ़ती गयी। इस सेना को ऊँचे दर्जे की राजनीतिक शिक्षा मिल चुकी थी और इनका लड़ने का तरीका छापेमारों का था। इस सेना के सैनिकों में सब से बड़ी बात थी स्फूर्ति फूँकनेवाली यह भावना कि उनकी सेना जनता को मुक्ति दिलाने वाली सेना है।

इतने पर भी च्यांगकाई शेक के पाँचवें आक्रमण से लाल सेना को बड़ा आघात पहुँचा, क्योंकि वह दस लाख सैनिकों से घिर गयी थी। इस आक्रमण का नियन्त्रण एक जर्मन अफसर जनरल वान शविट ने किया। आगे चलकर यही जनरल हिटलर का भी एक सलाहकार बना। लाल सेना छिन्न-भिन्न तो हो गयी किन्तु नष्ट न हुई, क्योंकि जहाँ-जहाँ उसका प्रभाव था वहाँ उसके कामों के कारण जनता उसके साथ हो गयी थी। इन लोगों ने स्कूल, अस्पताल और किसान-संस्थाएँ बनायी थीं। जमीन लेकर किसानों में बाँट दी थी। किसानों को जमीन जोतने और फसल उगाने तक में सैनिक सहायता देते थे। यही कारण था कि शक्ति और साधन अधिक होते हुए भी कोमिंतांग सरकार का बल बराबर क्षीण होता गया।

कहा जाता है कि मार्शल च्यांगकाई शेक के नेतृत्व में कोमिंतांग दल ने जैसे अत्याचार किये उनकी तुलना नहीं हो सकती। लाखों कम्युनिस्ट सदस्य और युवक विद्यार्थियों की हत्या की गयी। करोड़ों मजदूर और किसानों को या तो दण्ड दिया गया या उनका दमन किया गया। लोगों को फाँसी देकर उनके शव लटका दिये जाते, परिवार के परिवार उजाड़ दिये जाते। जिस पर भी कम्युनिस्ट होने अथवा वाम-पक्ष का समर्थन करने का सन्देह किया जाता उसे या तो मृत्यु-दण्ड देकर समाप्त कर दिया जाता या फिर उसे जेल में पड़कर सड़ना पड़ता। च्यांगकाई शेक का विचार था कि इस प्रकार के दमन से कम्युनिस्ट समाप्त हो जायँगे, किन्तु उनकी आशा के विरुद्ध इन कुकृत्यों से भीतर-ही-भीतर विद्रोह की आग अधिकाधिक सुलगने लगी। किसान संगठित होते चले गये और धीरे-धीरे उनकी शक्ति बढ़ती गयी।

जब चीन का गृह-युद्ध चल रहा था उसी समय सन् १९३१ में चीन पर जापान का पहला हमला हुआ। चीन की जो अवस्था थी उसमें जापान का यन्त्र-तन्त्र सफल होना कठिन न था, परन्तु चीन के सदृश विशाल देश का जापान के सदृश

छोटे-से देश द्वारा पूर्ण रीति से पराजित होना भी सम्भव न था। चीन और जापान का यह युद्ध एक तरह से सन् १९४५ के द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति तक चलता रहा और इस युद्ध की समाप्ति भी यथार्थ में सन् १९४५ में जापान के विश्व-युद्ध में हारने से हुई जब जनरल स्मो च्यांगकाई शेक के मित्रराष्ट्रों के साथ रहने के कारण जापानी सेनाओं को चीन से भी हटना पड़ा। आज साम्यवादी सरकार के कर्ता-धर्ता च्यांगकाई शेक पर इस बात का आरोप करते हैं कि वे कभी भी जापान से डरकर युद्ध न करते थे, पर मेरे मतानुसार जनरल इस्मो पर यह आरोप सत्य नहीं है। उनकी सरकार पर भ्रष्टाचारी, क्रूर, कमजोर सरकार होने आदि के आरोप अवश्य सत्य हैं, पर वे लोग विदेशियों से लड़ना ही न चाहते थे यह कहना ऐसी सरकार के प्रति भी अन्याय करना है। अपने इस मत की पुष्टि में मैं एक ही घटना का उल्लेख करूँगा, जो सन् '३६ में हुई। सन् '३६ में सियान नामक स्थान पर च्यांगकाई शेक साम्यवादियों द्वारा गिरफ्तार हो गये थे। अब तक साम्यवादियों के प्रति उनकी क्रूरता का एक लम्बा इतिहास बन चुका था। यदि जापान से भी वे युद्ध नहीं कर रहे थे और साम्यवादी ही देश-भक्त थे तो वे सियान में सहज में जनरल इस्मो का बध कर सकते थे। पर जापानी युद्ध के लिए साम्यवादियों को भी उनके प्रति अगणित क्रूरता करने वाले च्यांगकाई शेक की आवश्यकता जान पड़ी और सियान में साम्यवादियों तथा जनरल इस्मो में समझौता हो गया।

सन् '४५ में जापानी युद्ध समाप्त होने के पश्चात् चीन में गृह-युद्ध की विभीषिका फिर से भड़की और अब च्यांगकाई शेक की हार पर हार आरम्भ हुई। इसका प्रधान कारण उनकी सरकार के कर्ता-धर्ताओं की स्वार्थपरता और भ्रष्टाचार था जिसके कारण यह सरकार धीरे-धीरे एक अत्यन्त निर्बल सरकार बन गयी थी।

कोमिंतांग शासन-काल के अधिकांश भाग का इतिहास उन चार परिवारों का इतिहास है जो वास्तव में शासन की बागडोर सम्हाले हुए थे। चीन के एक प्रसिद्ध शुंग परिवार की तीन बहनों में से एक बहन ने सुनयतसेन से विवाह किया जो चीन गणराज्य के संस्थापक और उसके पहले प्रधान भी थे। दूसरी बहन से विवाह करने वाले स्वयं च्यांगकाई शेक हैं। उनका नाम था शू मे लिन। तीसरी बहन का विवाह एच० एच० कुंग से हुआ था। इसके अतिरिक्त कोमिंतांग सरकार के वित्तमन्त्री श्री टी० वी० शुंग थे जो अत्यन्त कुशल मन्त्री माने जाते थे। चांग शू लियांग मार्शल च्यांगकाई शेक के विश्वासपात्र सैनिक जनरल थे। इस प्रकार चीन में स्वार्थ-साधना और सगे सम्बन्धियों के साथ पक्षपात का बोलबाला था।

इस प्रकार युद्धों और गृह-युद्धों से पीड़ित भ्रष्टाचारी और स्वार्थियों की सरकार द्वारा शासित चीन की जनता त्राण के लिए हाहाकार कर रही थी। उस समय माओत्से तुंग के नेतृत्व में इस नयी सरकार की स्थापना हुई है और इस सरकार का

हर काम तोला जाता है इसके पहले की घटनाओं को तराजू के एक पलड़े पर रख-कर। पचास वर्षों की लम्बी अवधि के बाद चीन में एक मजबूत सरकार की स्थापना हुई है। जिस सरकार के कर्ता-धर्ता निःस्वार्थी, विद्वान्, विचारशील और चरित्रवान् हैं। चीन की जनता के दुखों की निवृत्ति होकर वह सुखी और समृद्ध हो, हम विदेशियों की इसके अतिरिक्त और क्या अभिलाषा हो सकती है? फिर चीन का और भारत का तो शताब्दियों से अक्षुण्ण मैत्री का सम्बन्ध रहा है और आज भी है। भारत तो हर देश तथा राष्ट्र का मित्र रहना चाहता है चाहे वह देश और राष्ट्र अमेरिका के सदृश पूँजीवादी हो अथवा रूस और चीन के सदृश साम्यवाद की ओर जानेवाला। हम युद्ध और कलह नहीं चाहते, वर्ग संघर्ष भी नहीं चाहते, हम तो सदा से शान्ति के उपासक रहे हैं और आज भी है। हम यह मानने वाले हैं कि हर देश और राष्ट्र को इस बात का अधिकार है कि वह अपने यहाँ जिस पद्धति की भी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक रचना करना चाहें करें। हम आत्म-निर्णय (सेल्फ डिटरमिनेशन) के पक्षपाती प्रजातन्त्रवादी हैं। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर हम ने अपने देश का विधान बना, अपने हर देशवासी को वोट का अधिकार दे अपने देश की सरकार को भी बदल देने का अधिकार दिया है, बिना इस बात तक की परवाह किये कि हमारे देश की जनता शिक्षित है या अशिक्षित; और यह अधिकार दिया है इतना ही नहीं इस अधिकार का पूर्ण उपयोग करने के लिए स्वतन्त्र होने के पश्चात् शीघ्र-से-शीघ्र विधान बना चुनाव तक करवा दिये हैं। सत्ता में रहते हुए भी हमारी सरकार ने ये चुनाव कितनी निष्पक्षता से कराये हैं इसका प्रमाण है भिन्न-भिन्न दलों के सदस्यों का भी चुना जाना। चुनाव में हमारी सरकार कितनी निष्पक्ष रही है यह आज सारा संसार स्वीकार करता है। हाँ, किसी भी देश की सत्ता या दल अपनी पद्धति को जबरन किसी दूसरे देश पर लादने का प्रयत्न करे इसके हम घोर विरोधी हैं। चीन के प्रति तो अपनी प्राचीन मैत्री के कारण हमारी और अधिक सद्भावना है। डाक्टर सेन के प्रजातन्त्र का हमने पराधीन रहते हुए भी स्वागत किया था। जापान ने जब चीन पर आक्रमण किया उस समय भी हम स्वतन्त्र न हुए थे, पर हमने जापान की उस कृति का विरोध कर चीन की सहायता के लिए एक एम्बुलेंस भेजा था। वर्तमान चीन को यू० एन० ओ० में लिया जाना चाहिए इस सम्बन्ध में भी हम जो कुछ कर सकते थे हमने किया और आज भी कर रहे है। मैंने चीन में देखा कि भारत के प्रति भी उसकी महान् सद्भावना है। हमारे प्राचीन सम्बन्ध को, जापान के युद्ध के समय हमारा भेजा हुआ एम्बुलेंस को, यू० एन० ओ० में उसे लिया जाय हमारे इस प्रयत्न की सभी बातों को चीन स्मरण करता है। वह हमारे कल्याण का इच्छुक है और हम उसके।

चीन ने कुछ देशों के साथ मैत्री बढ़ाने के लिए गैर-सरकारी संस्थाओं की स्थापना की है। ये संस्थाएँ तीन देशों के लिए स्थापित हुई हैं—रूस, बरमा और भारत। इनके अंग्रेजी नाम हैं साइनो-सोवियट फ्रेंडशिप एसोसियेशन, 'साइनो-बर्मा फ्रेंडशिप एसोसियेशन और साइनो-इंडिया फ्रेंडशिप एसोसियेशन। अन्य कुछ देशों के लिए भी वहाँ इस प्रकार की संस्थाएँ बनने वाली हैं। वहाँ की सरकार इन संस्थाओं को हर प्रकार की पूरी-पूरी सहायता देती है। साइनो-इंडिया फ्रेंडशिप एसोसियेशन की कुछ शाखाएँ भारत में भी स्थापित हुई हैं। मैं इस संगठन का स्वागत करता हूँ। पर इस सम्बन्ध में मेरा इतना कथन अवश्य है कि यह संगठन ठीक व्यक्तियों के हाथ में रहना आवश्यक है जो इसका उपयोग सच्ची मैत्री के सम्बन्ध ही में करें। भारत में भी भिन्न-भिन्न देशों के साथ मैत्री के लिए इस प्रकार के गैर-सरकारी संगठन हो सकें तो एक उत्तम बात होगी, पर इस प्रकार के संगठन तभी चल सकते हैं जब उन्हें सरकारी सहायता प्राप्त हो।

भारत के साम्यवादी चीन की सफलताओं की प्रायः प्रशंसा किया करते हैं। मैं भी इस सम्बन्ध में बहुत दूर तक उनके साथ हूँ। पर जब यह प्रशंसा करते हुए वे प्रजातन्त्र और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की दुहाई दे भारत सरकार की आलोचना करते हैं, कहते हैं भारत सरकार भिन्न-भिन्न दलों विशेषकर साम्यवादी दल से इस-इस प्रकार का बुरा व्यवहार करती है, जो यथार्थ में सर्वथा असत्य है, तब मुझे जान पड़ता है जैसे वे ठंडी और गरम साँस दोनों साथ-साथ लेना और छोड़ना चाहते हैं। इसी के साथ जब वे यह कहते हैं कि तीन वर्षों में चीन ने सब कुछ कर डाला और भारत ने कुछ भी नहीं, तब मुझे कम आश्चर्य नहीं होता। मैं चाहता हूँ सत्य का अवलम्ब न छोड़ा जाय। यदि कोई निष्पक्षता से आँख खोलकर देखने का प्रयत्न करेगा तो गत पाँच वर्ष के भारत के कार्यों के सम्बन्ध में उसे वही मानना और कहना होगा जो अमेरिका के भारत में एक समय के राजदूत श्री चैस्टरबाउलस तथा अनेक प्रतिष्ठित एवं विशेषज्ञ विदेशियों तक ने माना और कहा है। हाँ, इतना अवश्य है कि हम जो कुछ कर रहे हैं उसके प्रचार में संसार के सब देशों से पीछे हैं।

चीन ठंडा देश होने के कारण वहाँ के निवासियों का रंग गोर है। रंग में पीली-सी झाँई है। कद बहुत ऊँचा नहीं, पर जापानियों के सदृश ठिगना भी नहीं। वहाँ के और जापान के लोग एक ही जाति के होने पर भी जापानी महिलाओं के सदृश वहाँ की स्त्रियों में सौन्दर्य नहीं है।

चीन इतना बड़ा देश है और उसकी संस्कृति इतनी प्राचीन है इसलिए विभिन्न जातियों का वहाँ होना स्वाभाविक ही है, किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि इस

विविधता में गहरी एकरूपता है। चीन के लोग अधिकांश मंगोल जाति के हैं यद्यपि महान् दीवार के पार से आकर आक्रमणकारी वहाँ बसे और वहीं के लोगों में घुल-मिल गये। यांगसी नदी के मैदान के उत्तरी और दक्षिणी भाग के निवासियों की आकृति आदि में अन्तर पाया जाता है, किन्तु इस अन्तर के कारण भी उनकी मूल समानता अक्षुण्ण है। उत्तरी भाग के चीनियों का कद कुछ बड़ा होता है और जगह-जगह उनका रंग भी अधिक गोरा होता है। दक्षिणी भाग के लोगों को देखने से पता चलता है कि भिन्न-भिन्न कबीलों के लोग जिस तरह उत्तरी भाग में घुल-मिल गये हैं वैसे ही दक्षिणी भाग में नहीं। किन्तु चीन की एक ही लिखित भाषा होने के नाते उनकी एकता अधिक बनी रह सकी है।

अत्यन्त प्राचीन काल में चीनी अपने पूर्वजों और प्रकृति के उपासक थे। भारत की ही तरह चीन में भी अनेक देवी-देवताओं में आस्था की जाती थी। प्रकृति की उपासना चाऊ-युग से पहले की जाती थी। देवी और मानवीय में विशेष अन्तर नहीं किया जाता था। मृत्यु को प्राप्त होने वाले पूर्वजों की गणना भी देवी-देवताओं में होने लगती थी।

चीन की वर्तमान संस्कृति में प्राचीनता के प्रभाव का सर्वथा लोप नहीं हुआ है, यद्यपि उसका असर कम अवश्य हो गया है और नयी पीढ़ी पर से उठता भी जा रहा है।

चीन का पुराना धर्म था टाओइज्म। टाओवाद का आरम्भ एक दर्शन के रूप में हुआ, किन्तु उसने एक धर्म का रूप धारण कर लिया। दर्शन के रूप में इसके प्रवर्तक टाओत्से थे जिनका जन्म ईसा से ६०४ वर्ष पूर्व हुआ था। वे गम्भीर विचार के, राजनैतिक, दार्शनिक और नीतिशास्त्र के उपदेशक थे। उनकी मृत्यु के सात शताब्दी पश्चात् उनके उपदेशों को विकृत कर डाला गया और टाओवाद में विश्वास करने वाले भूत-प्रेत और जादू-टोने आदि में विश्वास करने लगे।

चांग लिआंग ने, जिन्होंने हान वंश की स्थापना की थी, टाओवाद को अंगीकार किया। टाओवाद के महन्त आदि ताओ शिह कहलाते हैं। उनके अपने अलग मन्दिर होते हैं। ये लोग विवाह कर सकते हैं। संयम, नियम और त्याग के मार्ग को अपनाकर ये लोग स्वर्ग की कामना करते हैं।

इसके बाद वहाँ कन्फ्यूशियस का दार्शनिक प्रभाव पड़ा। कन्फ्यूशियसवाद एक पश्चिमी नाम है। लेकिन चीनी कुंगचिऊ अर्थात् कन्फ्यूशियस के उपदेशों को मानने वाले कहे जाते हैं। यह भी शंका की जाती है कि कन्फ्यूशियसवाद कोई धर्म भी है अथवा नहीं, क्योंकि विद्वानों के उपदेशों को कन्फ्यूशियसवाद की संज्ञा दी गयी है यथार्थ में कन्फ्यूशियसवाद एक दर्शन-शास्त्र है। वह एक प्रकार की नीति-संहिता

है जो जीवन-प्रणाली को नियमित करने के लिए है। चीनी जीवन पर कन्फ्यूशियस-वाद का बड़ा प्रभाव रहा है और अभी भी है।

इसके बाद वहाँ पहुँचा बुद्धमत। बुद्धमत का ही वहाँ सबसे अधिक प्रचार हुआ। चीन में बुद्ध धर्म भारत से ईसा की पहली शताब्दी में पहुँचा। भारत के बुद्ध धर्म और चीन के बुद्ध धर्म में समानता कम है। चीन की अनेक गाथाएँ, परम्पराए, और रीतियां उससे सम्बद्ध हो गयीं।

पहले चीन में हीनयान का सूत्रपात हुआ और बाद में महायान का। बाद में बौद्ध धर्म के सूत्रों का चीनी भाषा में अनुवाद किया गया। पाँचवीं शताब्दी में चट्टानों और पत्थरों पर बुद्ध की मूर्तियां अंकित की जाने लगीं। अनुमान है कि चीन में २,६७,००० से अधिक बौद्ध-विहार और ७,३८,००० से अधिक बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियां होंगी। वैसे बौद्ध धर्म में विश्वास रखने वालों की तो संख्या ही नहीं बतायी जा सकती।

युद्ध-काल में चीनी बौद्धों ने घायलों की परिचर्या का महान् कार्य किया। शंघाई की लड़ाई में और चुंकिंग पर बमवर्षा होने पर ये लोग घायलों को स्ट्रेचर पर लिटाकर सुरक्षित स्थानों को पहुँचाते थे।

इसके पश्चात् ईसाई धर्म और इस्लाम के भी वहाँ के कुछ लोग अनुयायी हुए।

परन्तु टाओइज़्म, कन्फ्यूशियस का दर्शन, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम किन्हीं धर्मावलम्बियों में वहाँ किसी प्रकार का झगड़ा नहीं रहा। एक ही कुटुम्ब में भिन्न-भिन्न धर्म मानने वाले रहे और आज भी हैं।

धर्म का प्रभाव अब वहाँ बहुत कम होता जा रहा है, यद्यपि सभी धर्मों के अनुयायी अभी भी वहाँ हैं। आज भी चीन में बौद्ध धर्म का ही सबसे अधिक प्रभाव है। बौद्ध मन्दिर, पैगोडा यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं। भगवान् बुद्ध के जन्म-दिवस को इन सभी मन्दिरों में, विशेषकर देहात के मन्दिरों में, दर्शनार्थ बड़ी भीड़ होती है। हर मास की पूर्णिमा और अमावस्या को भी दर्शनार्थियों की काफी संख्या पहुँचती है। बौद्ध धर्म के हीनयान का चीन में अधिक प्रचार नहीं हुआ, यह हुआ महायान का ही। अतः बौद्ध धर्म के दर्शन की अपेक्षा उसके नाना प्रकार के प्रदर्शनों को ही यहाँ की जनता ने अपनाया। इस सम्बन्ध में आज भी वही स्थिति है।

कन्फ्यूशियस के उपदेश आज के साम्यवादियों को प्रगतिशीलता के विरुद्ध जान पड़ते हैं और इनका काफी खण्डन किया जा रहा है।

इतने बड़े चीन की भाषा एक है। यह इस देश की संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है। हां, इस भाषा के उच्चारण में स्थान-स्थान पर विभिन्नता अवश्य है। चीन

की यह भाषा तीन लिपियों में लिखी जाती है। चीनी लिपि, मंगोलियन लिपि और तिब्बती लिपि। सबसे अधिक प्राचीन चीनी लिपि है और इसी का सब से अधिक प्रचार भी है।

चीनी भाषा संसार के जितने अधिक लोगों की मातृ-भाषा है उतनी अन्य कोई भाषा नहीं। भौगोलिक दृष्टि से कदाचित् अंग्रेजी, फ्रेंच और रूसी भाषा का अधिक प्रसार है, लेकिन इनमें से कोई भी भाषा इतने बड़े जनसमूह की मातृ-भाषा हो ऐसा नहीं है।

इतने विशाल भू-भाग की भाषा होने के कारण उसकी अनेक बोलियाँ हैं। चीनी भाषा के अक्षर कुछ असाधारण होते हैं और ऊपर से नीचे की ओर लिखे जाते हैं। इनमें से कुछ तो चित्र और संकेत मात्र होते हैं। जापान और चीन की लिपियाँ मिलती-जुलती हैं।

चीन की इस काल की वेश-भूषा में प्राचीनता और नवीनता का मिश्रण है। पुराने चीनी पुरुष ऊपर के अंग पर लम्बी कोट के सदृश वस्तु और नीचे के अंग पर पाजामे के समान चीज पहनते थे। स्त्रियाँ ऊपर से नीचे तक एक घेरदार पोशाक। पुरुषों का पुराना कोट छोटा हो गया है और पाजामे की जगह पतलून आ गयी है, पर पश्चिमी नेकटाई, हैट आदि नहीं। स्त्रियों की पोशाक भी ठीक पुरुषों के समान हो गयी है और सबकी पोशाक प्रायः नीले रंग की है, कुछ लोग गहरा नीला रंग पसन्द करते हैं कुछ हलका। पोशाक में यत्र-तत्र काला और खाकी रंग भी दिख पड़ता है। देहात में स्त्रियों की पोशाक प्रायः काले रंग की रहती है। वे चारों ओर झालर-सी लगी हुई लच्छेदार काली टोपी भी पहनती हैं। एक रंग की ऐसी पुरुष-स्त्रियों की एक-सी पोशाक मैंने दुनियाँ के किसी देश में नहीं देखी। इस नीले रंग की पोशाक देख मेरी इच्छा तो चीन को लाल चीन न कहकर नीला चीन कहने की होती है। हम जाड़े के मौसम में वहाँ गये थे। उस समय वहाँ के लोग रुई-भरे कपड़े पहनते थे। रुई-भरे कपड़े देख मुझे भारत के देहातियों के जाड़े के कपड़े याद आये। जाड़े में चीन के लोग कानों को भी ढाँकने के लिए कनटोप के सदृश टोपियाँ लगाते हैं।

लाल चीन की हद में प्रवेश करने पर जब हमने चारों ओर के प्राकृतिक दृश्य को देखा तब हमें ऐसा जान पड़ा जैसे हम भारत के उत्तर प्रदेश, बिहार, महाकोशल आदि राज्यों में हों। हांगकांग यदि बम्बई से मिलता-जुलता है तो चीन की मुख्य भूमि उपर्युक्त प्रदेशों से। चीन के प्राकृतिक दृश्यों से भारत के प्राकृतिक दृश्यों का हमें जितना साम्य दिखायी दिया उतना संसार के किसी देश के प्राकृतिक दृश्यों से नहीं। फिर हमें यहाँ की भूमि, उसके धान के खेत, खलिहानों में धान की इकट्ठी की हुई फसलें, पियार और घास की गंजियाँ, गाँव, उनके खपरैल और फूस की छावनी वाले

छोटे-छोटे मकान, उनमें कहीं-कहीं खड़े हुए ढोर, बकरियाँ, मुर्गियाँ, कुत्ते, सभी भारत के समान जान पड़े। हाँ, जहाँ कहीं मानव दिख जाते, उनके रंग, रूप और पोशाक के कारण मालूम हो जाता कि यह भारत नहीं अन्य कोई देश है। जब तक मानव न दिखते जान पड़ता हम भारत में ही भ्रमण कर रहे हैं। चीन की समूची यात्रा में, उस दृश्य को छोड़कर जो शंघाई से पीकिंग जाते हुए सैकड़ों मील तक बर्फ की वृष्टि के कारण सफेद हो गया था, हमें सारा दृश्य भारत के समान ही दिखायी दिया।

ता० २५ नवम्बर को जब हम कैण्टोन पहुँचे उस समय अँधेरा हो चुका था। स्टेशन पर हमारे स्वागत के लिए साइनो-इंडिया फ्रैंडशिप एसोसियेशन की ओर से मिस ली और चीन की सरकार की ओर से मिस्टर ल्यू उपस्थित थे। मि० वी० ने इन दोनों से हमारा परिचय कराया और स्टेशन से हम ओइ क्याँ नामक होटल में आये जहाँ हमारे ठहरने का प्रबन्ध था।

होटल में कुछ देर ठहर हम रात को ही कैण्टोन नगर देखने के लिए रवाना हुए। हमारे लिए दो मोटरों का प्रबन्ध भी था। कैण्टोन च्यू चंग नामक नदी पर बसा हुआ चीन का एक बड़ा नगर है। आबादी है करीब १५ लाख। यहाँ हमने पहले-पहल नये चीन के एक बड़े नगर की बस्ती, वहाँ के मकान, सड़कें और मानवों को देखा। नगर में बड़े-छोटे हर प्रकार के मकान दिखायी दिये। सड़कें न बहुत अच्छी और न बुरी, सफाई जापान से कहीं अधिक। मानव श्वेतवर्ण के, स्त्री-पुरुष एक-से नीले रंग के कपड़े पहने हुए। और कैण्टोन नगर हमें जिस प्रकार का दिख पड़ा वैसे ही चीन के अन्य नगर भी, कोई छोटे, कोई बड़े।

दूसरे दिन प्रातःकाल हम श्यूई नामक एक छोटी-सी पहाड़ी पर गये, जिस के एक ओर एक स्टेडियम बनाया गया था, जिसमें कोई पचास हजार मनुष्यों के बैठने का स्थान था और दूसरी ओर तैरने का एक विशाल एवं सुन्दर कुण्ड (स्विमिंग पूल)। इसी पहाड़ी पर वहाँ के मजदूर वर्ग के लिए एक कल्चरल पैलेस नामक स्थान था और एक छोटा-सा अजायबघर। इस प्रकार के छोटे-बड़े अनेक कल्चरल पैलेस चीन में निर्मित हुए हैं जिनमें मजदूर वर्ग के लोग आते हैं, खेलते-कूदते हैं, अखबार आदि पढ़ते और यहाँ के छोटे-छोटे पुस्तकालयों का उपयोग करते हैं। इन कल्चरल पैलेसों में रेडियो आदि से लगातार साम्यवादी प्रचार भी होता रहता है।

यहाँ से हम आये डाक्टर सुनयतसेन मिमोरियल हॉल को। यह एक विशाल, सुन्दर और भव्य इमारत है। हॉल में पाँच हजार मनुष्यों के बैठने के लिए कुर्सियाँ लगी हुई हैं। हॉल की गैलरी भी दर्शनीय है। सुना कि यह हॉल चीन के बड़े-से-बड़े हॉलों में से एक है।

अपराह्न में हम गये टा टोंग शिश्रान नाम के एक गाँव और वहाँ का जीवन

देखने के लिए। किसान एसोसियेशन के सभापति श्री वैंग पौंग ने हमें वह गाँव दिखाया तथा वहाँ के जीवन के सम्बन्ध में सब बातें बतायीं। श्री वैंग पौंग अंग्रेजी नहीं जानते थे और हम चीनी नहीं। श्री वी० महोदय इस वार्तालाप में दुभाषिये का कार्य करते थे। हम उस गाँव की बस्ती में भी घूमे और वहाँ के खेतों पर भी। जिन के पास भी १'३ माम्रो से अधिक भूमि थी वह सब छीन ली गयी। श्री वैंग पौंग का मत था कि १'३ माम्रो भूमि में एक व्यक्ति अच्छी तरह से गुजर कर सकता है।

टा टोंग शिम्रान गाँव कैण्टन के पास है। लगभग नगर से ६ किलोमीटर की दूरी पर होगा। यहाँ की आबादी कुल २,७०० है। इस गाँव में चीन की जनवादी सरकार का भूमि-सुधार का कार्यक्रम कार्यान्वित हो चुका है। श्री वैंग पौंग से ज्ञात हुआ कि गाँव में प्रति पुरुष, स्त्री और बच्चे पर १'३ माम्रो भूमि है। चूँकि कुछ कुटुम्ब बड़े हैं इसलिए एक कुटुम्ब पर १३ माम्रो तक भूमि भी पायी जाती है। प्रति व्यक्ति के हिसाब से जमीन वितरित की गयी है। भूमि-सुधार के पूर्व ५१ कुटुम्बों के पास अधिकांश जमीन थी।

पूरे ग्राम की भूमि के लिए सिंचाई की व्यवस्था थी। हमें यह बताया गया कि जनवादी सरकार की स्थापना के पूर्व भी यह व्यवस्था थी, किन्तु अब बाँधों इत्यादि की मरम्मत करके उसे और अधिक सुधार लिया गया है।

हमें श्री वैंग पौंग ने यह भी बतलाया कि नयी सरकार ने खाद, और इन्सेन्टिसाइड्स का विशेष इन्तजाम किया है जिसके कारण उत्पादन विशेष रूप से बढ़ा है। उनका कहना था कि जहाँ नयी सरकार की स्थापना के पूर्व प्रति माम्रो ६०० केटी धान उत्पन्न होती थी वहाँ अब प्रति माम्रो १,००० केटी धान का उत्पादन होने लगा है।

इस गाँव के किसान एसोसियेशन का कार्यालय गाँव की समस्त गतिविधियों का केन्द्र-सा ज्ञात हुआ। चीन के सभी महत्त्वपूर्ण कार्यालयों की भाँति यहाँ भी अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन के नेताओं के चित्र लगे थे और नयी साम्यवादी सरकार द्वारा प्रसारित साहित्य पढ़ने के लिए रखा हुआ था।

गाँव में नया बैंक भी हमें दिखाया गया। एक पुराने मकान में बैंक खोला गया था। एक स्कूल की नयी इमारत भी बनायी गयी थी।

गाँव की परिस्थिति में कोई विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता था और गाँव में गरीबी के चिह्न अभी भी वैसे ही दिखायी पड़ जाते थे। एक वृद्ध पुरुष अत्यन्त मैले-कुचैले कपड़े पहनकर एक काँवर ले जा रहा था। इसी प्रकार कई मजदूर अत्यन्त दीन-हीन अवस्था में दृष्टिगोचर हुए (चित्र नं० १५५, १५६, १५७)।

१५५. काँवर लेकर जाता हुआ एक किसान
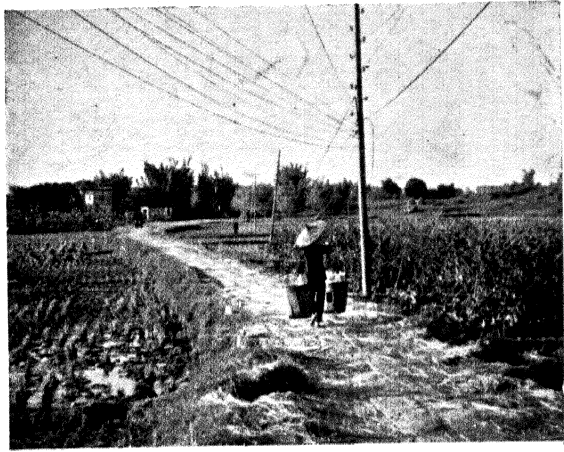
५६. कटी फसल ट्ट्रे की घसिटनेवाली गाड़ी में लादताहुआ एक किसान

१५७. एक गाँव के कुछ भाग- । इनको देखने से ज्ञात हो जाता है कि चीन अभी भी कितना गरीब है
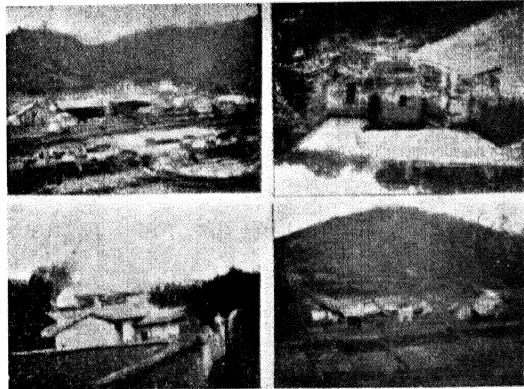
१५८. 'शान्ति-चिन्ह'

१५९. स्तालिन और माओ

१६०. कैन्टोन में सांस्कृतिक भवन के (कल्चरल पैलेस) में माओ की मूर्ति के सामने लेखक जगमोहनदास और घनश्यामदास के साथ

१६१. लेखक और घनश्यामदास मिस्टर वी और मिस वी के साथ कैन्टोन के सांस्कृतिक भवन के सामने

इनके सम्बन्ध में पूछने पर यह बताया गया कि गाँव का नव-निर्माण अभी प्रारम्भ ही हुआ है और नयी व्यवस्था का लाभ जनसाधारण तक पहुँचने में विलंब लगना स्वाभाविक है।

रात को उस दिन हम ने रेलवे वर्कर्स क्लब में रूस का एक फिल्म देखा। इस सारे फिल्म में एक सर्कस दिखाया गया था और इसे देखकर हम इस निर्णय पर पहुँचे कि सर्कस-कला में रूस शायद संसार में सबसे आगे है।

ता० २७ को प्रातःकाल हम एक सरकारी कागज बनाने का कारखाना (पेपर मिल) देखने गये। यह कारखाना कोई एक वर्ष पहले खोला गया था। लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठों से यहाँ अखबार का कागज बनाया जाता है। लट्ठे पहले पानी में गलाये जाते हैं। इसके बाद काटकर और कूटकर उनकी लुगदी तैयार की जाती है। सरकार ने कारखाने का एक निर्देशक नियुक्त कर रखा है। यदि कोई मजदूर बुरा व्यवहार करता है तो डायरेक्टर उसे बर्खास्त या मुअत्तल नहीं कर सकता। ऐसे अवसर पर सम्बन्धित ट्रेड यूनियन की सभा बुलायी जाती है जो मामले पर पूरी तरह विचार करने के बाद अपना निर्णय देती है। इस कारखाने में कम-से-कम मजूरी पाने वाले मजदूर की आय लगभग ६३ रुपया मासिक होती है। कारीगर मजदूर का वेतन लगभग १६८ रुपया मासिक होता है। एक और विशेषता यह है कि वेतन माल-भाव को ध्यान में रखकर दिया जाता है और चीजों की कीमतें बढ़ जाने पर वेतन भी बढ़ जाता है।

आज अपराह्न में हमने देखा कैण्टोन का सबसे बड़ा कल्चरल पैलेस। इसे देख कर हमें सचमुच महान् प्रसन्नता हुई। इस पैलेस के ग्यारह विभाग हैं। इसके द्वारा ज्ञान-वृद्धि और प्रचार दोनों का जैसा कार्य होता है वह अनुकरणीय है (चित्र नं० १५८-१५९)।

ता० २७ की शाम के ६ बजे हम कैण्टोन से शंघाई के लिए रवाना हुए। और ता० २९ की शाम को चार बजे १,८२१ किलोमीटर की लम्बी-से-लम्बी यात्रा कर शंघाई पहुँचे। जिस ट्रेन से हम गये उससे एक अंग्रेज व्यापारी श्री एडलर और कुछ रूसी भी यात्रा कर रहे थे। इन लोगों से हम लोगों की खूब बातचीत होती रही। श्री एडलर से हमें यह भी मालूम हुआ कि चीन की चुंगी वालों से उन्हें कितना तंग होना पड़ा। साइनो-इंडिया फ्रैंडशिप एसोसियेशन के महमान होने के कारण हमें चीन का यह अनुभव न हुआ था।

शंघाई स्टेशन पर हमें लेने के लिए चीन सरकार की ओर से उनके वैदेशिक विभाग के प्रधान कर्मचारी मिस हो और मिस्टर चैंग तथा भारतीय सरकार के कौंसलेट जनरल श्री मनी आये थे।

शंघाई में हम 'शंघाई मेंशन' नामक होटल में ठहरे ।

शंघाई चीन देश का सबसे बड़ा नगर है। यह नगर बसा हुआ है व्हांग पू नामक नदी के किनारे। आबादी है पचास लाख मानवों की। एक जमाना था जब शंघाई पर सबसे अधिक विदेशी प्रभाव था और यह नगर चीन का पेरिस कहा जाता था।

उसी दिन रात को हम शहर घूमने निकले। कैण्टोन के सदृश ही शहर, पर उससे कहीं बड़ा और उसकी अपेक्षा एक ओर कहीं बड़ी इमारतों और चौड़ी सड़कों का तथा दूसरी ओर टूटे-फूटे छोटे-छोटे मकानों, गन्दी से-गन्दी गलियों तथा बुरी-से-बुरी बदबूवाली नालियों एवं गँदले पानी तथा कीचड़ से भरे गढ़ों से घिरी हुई मजदूरों की बस्तियों (स्लम्स) का। संसार की इस यात्रा में हमने शंघाई से बुरे स्लम्स कहीं नहीं देखे थे। भारत की हरिजन बस्तियाँ भी अब इनसे कहीं अच्छी हो गयी हैं। हम आज शंघाई के जिन प्रधान-प्रधान स्थानों को घूमे उनमें थे—नेनकिंगरो, उसका पश्चिमी सिरा, बर्बलिंग बैल, पैनयान रो, बंड इत्यादि। शंघाई चीन के व्यापार-धन्धे का मुख्य केन्द्र है। पहले यहाँ का सारा व्यापार विदेशियों के हाथ में था, पर अब वे प्रायः बिदा हो गये हैं। नमूने के रूप में कहीं-कहीं कोई दिख जाता है, जैसे हमने व्हाइटवे लैडला का स्टोर देखा। सुना यह गया कि ऐसे विदेशी व्यापारियों को यहाँ की सरकार अपने काम बन्द करने की इजाजत नहीं देती, जिससे चीन के निवासी जो इनके यहाँ काम करते हैं वे बेकार न हो जायँ। आज रात को हम गये चीन का प्रसिद्ध शूशेन आॅपेरा देखने। चीन में दो आॅपेरा प्रसिद्ध हैं—एक शूशेन आॅपेरा और दूसरा पीकिंग आॅपेरा। दोनों में गीत, नाटक खेले जाते हैं। शूशेन आॅपेरा में सारा काम स्त्रियाँ ही करती हैं, पुरुषों के वेष में भी स्त्रियाँ रहती है, जापान के काबुकी रंगमंच के सदृश ही शूशेन और पीकिंग आॅपेरा को सिनेमा आदि कोई क्षति नहीं पहुँचा सके। काबुकी के सदृश इन रंगमंचों पर भी चीन की पुरानी कथाएँ कविता में खेली जाती हैं। भाषा न समझते हुए भी हमें यह प्रदर्शन बहुत पसन्द आया। मि० टाई नामक एक चीनी सज्जन, जो इस विषय में दक्ष है, हमें भाषा आदि समझाने के लिए हमारे साथ गये थे।

ता० ३० के प्रातःकाल हम सबसे पहले उस पार्क को देखने गये जहाँ पहले शंघाई का प्रसिद्ध जुआघर घुड़दौड़ के साथ चलता था। अब यह स्थान हो गया है जनता के आमोद-प्रमोद के लिए घूमने-फिरने का स्थान। यहाँ एक छोटा-सा अजायबघर भी है। वहाँ से हम शंघाई नम्बर दो टैक्सटाइल मिल देखने गये। यह भी सरकारी मिल था। इसे हमें दिखाया इस मिल के डायरेक्टर श्री चैंग मिंग और वाइस डाइरेक्टर श्री टाइकाउ डाउ ने। दुभाषिये का काम फिर श्री वी ने किया।

जिस मिल को देखने हम लोग गये थे वह नयी सरकार द्वारा संचालित कार-

खानों में कदाचित् एक विशेष स्थान रखता था इसीलिए हम लोगों को वहाँ खास तौर पर ले जाया गया था।

यह मिल सन् १९१४ में जापानियों की एक कम्पनी 'नेकामी कम्पनी' ने बनाया था। चीन और जापान में जो युद्ध हुआ उसमें जापानियों की पराजय के बाद यह मिल कोमिंतांग सरकार द्वारा संचालित चाइन टेक्सटाइल रिकन्सट्रक्शन कम्पनी के अधिकार में आया। साम्यवादी क्रान्ति के पश्चात् आजकल यह मिल चीन की साम्यवादी सरकार के द्वारा चलाया जा रहा है।

चीन के बड़े-से-बड़े कपड़े के मिलों में यह मिल एक है, इसमें ५,००० व्यक्ति कार्य करते हैं। इनमें निरीक्षण और व्यवस्था करने वाले तथा मजदूर दोनों ही शामिल हैं। मिल में १,५०,००० स्पिन्डल और १,००० लूम हैं। सबसे पहले हमें मिल के नये डायरेक्टर श्री चेंग मिंग ने मिल के मजदूरों के लिए जो विशेष व्यवस्था की गयी थी, उसके सम्बन्ध में बताया।

नयी व्यवस्था प्रारम्भ होने के पश्चात् मजदूरों के लिए दो नये सामान्य कमरे, मुस्लिम मजदूरों के लिए एक अलग भोजन के कमरे का इन्तजाम किया गया था। साथ ही मिल में कार्य करने वाली स्त्रियों के बच्चों के लिए एक विशेष नर्सरी बनायी गयी थी जिसमें २०० बच्चों के रखने का इन्तजाम है। हमें यह बताया गया कि इन बच्चों को देखने के लिए ३ डाक्टर, ४ मिडवाइफ और १२ नर्स तथा कई अन्य नौकरों का प्रबन्ध है। यहाँ के बच्चे सचमुच ही बहुत अच्छी तरह देखे जाते हैं। हमें यहाँ के बच्चे बड़े हृष्ट-पुष्ट और तन्दुरुस्त दिखायी दिये। इसके अतिरिक्त जहाँ-जहाँ दुर्घटना होने की संभावना है, वहाँ पहले की तुलना में विशेष बचाव का प्रबन्ध किया गया है, यह भी हमें समझाया गया। डायरेक्टर महोदय ने हमें बताया, मजदूरों की प्रतिष्ठा पहले से बढ़ गयी है और अब यदि कहीं कोई दुर्घटना होती है तो उसका उत्तरदायित्व सेक्शन के प्रधान अधिकारी पर रहता है। इस सीधे उत्तर-दायित्व के कारण दुर्घटनाओं में विशेष कमी हो गयी है।

मिल के अधिकारियों ने हमें यह भी बताया कि नयी व्यवस्था के पश्चात् सूत के उत्पादन में ३० प्रतिशत और कपड़े के उत्पादन में २७ प्रतिशत वृद्धि हुई है। हम लोगों ने यह जानना चाहा कि पहले कुल उत्पादन कितना था और अब कुल उत्पादन कितना है, किन्तु इन उत्पादन के अंकों का पता नहीं चल सका।

यह अवश्य मालूम हुआ कि मजदूरों की मानसिक स्थिति में विशेष परिवर्तन होने के कारण उन्होंने अधिक कार्य करना प्रारम्भ किया है। पहले चार बुनाई

की मशीनों को एक मजदूर देखता था, अब वही मजदूर बारह बुनाई की मशीनों को देखता है। इसी प्रकार पहले वह ४०० स्पिन्डल देखता था और अब वही १,२०० स्पिन्डल देखने लगा है।

मिल की वर्क्स कमिटी पर ११ व्यक्ति थे उनमें से ७ व्यक्ति मजदूरों के प्रतिनिधि थे।

एक मजदूर की मासिक आय ५,००,००० येन के लगभग थी। अधिक-से-अधिक पारिश्रमिक जो मिल के अधिकारियों को मिलता था वह इससे बहुत अधिक था। मजदूरों को मुनाफे में हिस्सा नहीं मिलता था और न उन्हें बोनस ही दिया जाता था।

इस मिल के मजदूर वर्ग की मुद्राओं से जो सन्तोष, हर्ष और उत्साह दिख रहा था उससे हमें मालूम हुआ कि नये चीन में मजदूर वर्ग के लिए सचमुच कुछ किया गया है।

अपराह्न में हम गये पहले चीन के आधुनिक प्रगतिवादी महान् साहित्यकार लूशेन की यादगार देखने। यह यादगार चीन की सरकार ने उस मकान को लेकर बनायी है जहां लूशेन महोदय रहते थे। लूशेन के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले सारे चित्र, उनका सब प्रकार का सामान, उनके ग्रन्थों आदि की उनकी हस्तलिखित प्रतियाँ, उनका सारा छपा हुआ साहित्य तथा उसके अंग्रेजी आदि भाषाओं में छपे हुए अनुवाद यहाँ संग्रहीत हैं। मकान बहुत बड़ा नहीं पर यह संग्रह हृदयग्राही है। काश ! हमारे साहित्यकारों के भी हमारी राष्ट्रीय सरकार इस प्रकार के स्मारक बना सके, बार-बार मेरे मन में ये भावनाएँ उठने लगीं। लूशेन महोदय का नये चीन में वही स्थान है जो रूस में गोरकी का; वरन् ये चीन के गोरकी कहे ही जाते हैं। मैं श्री लूशेन का नाम ही न जानता था बल्कि अंग्रेजी के द्वारा उनके साहित्य का रसास्वादन भी कर चुका था। चीन के इस अमर मानव को परम श्रद्धा और भक्ति से प्रणाम कर हम यहाँ से एक बौद्ध मन्दिर को पहुँचे।

इस बौद्ध मन्दिर का नाम है यू फू शोह। अत्यन्त विशाल और भव्य मन्दिर तथा वैसी ही भगवान् बुद्ध एवं उनके समीपवर्तियों की मूर्तियां। शक मुनि कहे जाने वाले बुद्ध की मूर्ति बीच में और उसके आस-पास अलन्दो और काशी कहे जाने वाले दो बुद्धों की मूर्तियां शक मुनि की मूर्ति के आस-पास। इन तीन मूर्तियों की ओर मुख किये हुए दो दहलानों में एक-एक ओर नौ-नौ इस प्रकार बौद्ध मत की अठारह शाखाओं की अठारह मूर्तियाँ और हैं। इस मन्दिर की एक पाषाण की बुद्ध-मूर्ति १,५०० वर्ष पुरानी है। मन्दिर के एक विभाग में १,५०० वर्ष पहले के लियांग यूटी

चीन के उन सम्राट् का चित्र है, जो बौद्ध मत ग्रहण करने वाले वहाँ के पहले सम्राट् थे और जिन्होंने बौद्ध धर्म को राज्याश्रय दे चीन में राज्य की ओर से बौद्ध मत का प्रचार कराया। यह चित्र कोई ८०० वर्ष पहले बना था। इस मन्दिर में चीनी भाषा और लिपि में कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ भी हैं, जिनमें एक है १,३०० वर्ष पुराना। मन्दिर के पुस्तकालय में ५,७७० प्रतियाँ हैं बौद्ध त्रिपटक के अनुवाद की। यह अनुवाद १,००० वर्ष पहले चीनी भाषा में हुआ था। भगवान् बुद्ध की जन्मतिथि को इस मन्दिर में कोई डेढ़ लाख दर्शनार्थी आते हैं, हर मास की पूर्णिमा और अमावस्या को कोई तीस हजार और हर दिन कोई दस हजार। मन्दिर को साम्यवादी सरकार होने पर भी सरकार से प्रचुर आर्थिक सहायता मिलती है। चीन में कोई एक लाख बौद्ध मन्दिर हैं यह हमने यहाँ सुना। सबसे पुराना १,६०० वर्ष पहले श्वेत अश्व नामक बौद्ध मन्दिर पश्चिमी चीन के लोयांग नामक स्थान में है। कुमराशि प्रथम बौद्ध भारत से यहाँ आये थे। समस्त चीन के बौद्धों का एक संगठन है। चीन के सबसे बड़े बौद्ध आचार्य का नाम है यून चिन। इनकी अवस्था ७५ वर्ष की है। चीन के एक बौद्ध आचार्य ११३ वर्ष की अवस्था के भी हैं। इनका नाम है श्री सू यून शुयेन। हमें यह बौद्ध मन्दिर यहाँ की एक बौद्ध कमेटी के सदस्य श्री चाओ पू चू ने दिखाया और इस मन्दिर के पुजारी श्री वेर फॅग को बौद्ध भिक्षुक के रूप में देख और उनसे मिल हमें बड़ी प्रसन्नता हुई।

आज सन्ध्या को हमें भारतीय कौंसलेट जनरल श्री मनी ने चाय के लिए बुलाया था। हम तीनों उनके यहाँ गये। वहाँ श्रीमती मनी से भी भेंट हुई। बहुत देर तक श्री मनी से नये चीन के सम्बन्ध में अनेक बातें होती रहीं।

कोई सात बजे हमारे होटल में चीन सरकार के वैदेशिक विभाग की कौंसल के सदस्य श्री शिया सेन और शंघाई म्यूनिस्पिल के वैदेशिक विभाग के डायरेक्टर श्री हुंग हुआ हमसे मिलने आये। इनसे भी चीन के सम्बन्ध में अनेक जानकारियाँ प्राप्त हुईं।

आज रात को हम सोवियत रूस के सांस्कृतिक प्रतिनिधिमण्डल के एक प्रदर्शन में गये। यह सांस्कृतिक मण्डल की सांस्कृतिक कमिटी के उप-सभापति श्री कुलांची के नेतृत्व में चीन आया हुआ था। श्री कुलांची रूस के प्रसिद्ध नेताओं में एक हैं। प्रदर्शन में रूस के कुछ प्रसिद्ध कलाकारों के गायन, नृत्य आदि थे।

प्रदर्शन अच्छा था, पर अद्भुत नहीं। इससे अच्छे इस प्रकार के प्रदर्शन हम इस दौरे में देख चुके थे। आज शंघाई में इनका अन्तिम प्रदर्शन था, अतः प्रदर्शन के पश्चात् श्री कुलांची का एक भाषण भी हुआ। सारी नाट्यशाला चीन-निवासियों से खचाखच भरी हुई थी और ये लोग जिस प्रकार की हर्ष-ध्वनियाँ करते थे उनसे

इस बात का भी पता लगता था कि चीन और रूस के सम्बन्ध सांस्कृतिक दृष्टि से भी कितने गहरे हो गये हैं तथा इस प्रकार के प्रतिनिधिमण्डलों के आवागमन से और भी कितने गहरे होते जा रहे हैं। अन्त में हमने शंघाई के मजदूर वर्ग का कल्चरल पैलेस देखा और शंघाई से ता० १ दिसम्बर को १२ बजे दिन को हम पीकिंग के लिए रवाना हो गये।

जिस दिन हम पीकिंग के लिए बिदा हुए उस दिन दिन भर और रात भर कोई नयी बात न हुई। पर दूसरे दिन प्रात:काल जब हमने खिड़की के बाहर देखा तब हमने सारे प्राकृतिक दृश्य को एकदम सफेद रंग का पाया, पर्वत, भूमि, वृक्ष, नदी, नाले, सरोवर, पोखरे घर सब एक श्वेत वर्ण के थे। नदी-नालों, सरोवर-पोखरो सबका पानी जम गया था और जान पड़ता था जैसे उन स्थलों पर बड़ी-बड़ी स्फटिक की नाना रूपों वाली लम्बी, चौकोर, गोल चट्टानें रखी हों। वृक्षों की टहनियों से यह सफेदी नीचे की ओर वृक्षों के डंठलों-सी दिखायी देती थीं। मीलों तक भूमि पर शुभ्र रंग की चादर बिछ गयी थी और उस चादर पर उसी रंग के कहीं छोटे-मोटे टीले और कहीं बड़े-बड़े पर्वत ऐसे जान पड़ते थे जैसे उसी चादर को यत्र-तत्र ओढ़े हुए उसी चादर पर कोई ऐसे जीव बैठे हैं जिनके सारे अवयव चादर से ढके हुए हैं और जो किसी प्रकार की समाधि में स्थित रहने के कारण हिलते-डुलते भी नहीं हैं। घरों के सफेद छप्परों को देख मुझे सन् '२१ की अहमदाबाद कांग्रेस का खादीनगर याद आया, जिसमें प्रतिनिधियों आदि के ठहरने की झोंपडियों को श्वेत खादी से ही आच्छादित किया गया था। मालूम हुआ कि रात को जोर की हिम-वृष्टि हुई है और बरफ इस समय सर्वत्र जमा हुआ है। थोड़ी ही देर में उदय होते हुए सूर्य की लाल आभा ने इस सारे श्वेत रंग पर यत्र-तत्र गुलाल-सी उड़ा दी। थोड़ी ही देर में इस लाल गुलाल ने सुवर्ण का रंग ले लिया और इसके थोड़ी ही देर बाद ऐसा जान पड़ा जैसे उस सोने पर ढेर-के-ढेर हीरे जड़ दिये गये हैं तथा इस जड़ाई के कारण पीला सोना चमकीले हीरों से ढक गया है। कभी-कभी चमकीले हीरों में कहीं-कहीं रवि-रश्मियां इन्द्र-धनुषवाले रंग दे देतीं और उस समय ऐसा जान पड़ता कि मानों इन हीरों में अनेक वनस्पति हीरे (रंगवाले हीरे) हैं या यत्रतत्र नवरत्नों के ढेर लगे हैं। दिन भर यही दृश्य चलता रहा। न जाने कितने हजार मील पर यह वृष्टि हुई थी। जब तक सन्ध्या न हुई सफेद सूरज कभी बादलों से बाहर आ इस दृश्य को जाज्वल्यमान करता और कभी बादलों में छिप इसे फिर से स्वच्छ धुले हुए कपड़े की संज्ञा दे देता। सन्ध्या को आज साँझ फूली। अब तो क्या कहना था। फूली साँझ की लाल आभा ने आकाश और सफेद पृथ्वी पर ऐसी लाली फैलायी कि मुझे निम्नलिखित कविता का स्मरण हो आया—

लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन में गयी, में भी हो गयी लाल॥

जब तक रजनी मुख प्रदोष ने धीरे-धीरे रात्रि की काली चादर से इस सारे दृश्य को ढांक न दिया तब तक आज तो मैं साथियों से इधर-उधर की बीच-बीच में थोड़ी-बहुत बातचीत कर लेने के सिवा इस दृश्य को ही देखता रहा, न कुछ पढ़ सका और न लिख।

पीकिंग हम रात्रि को १० बजे पहुँचे। स्टेशन पर हमें लेने 'चाइना रीकन्स्ट्रक्ट्स, एक द्वैमासिक पत्र के सम्पादक तथा साइनो-इंडिया फ्रेंडशिप एसोसियेशन के उप-सभापति श्री चैन-हैन सिंग, वहाँ की एक यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर तथा उपर्युक्त एसोसियेशन के एक कर्मठ सदस्य श्री ली रूमेन, चीन के एक प्रसिद्ध चित्रकार और इसी एसोसियेशन के एक दूसरे सदस्य श्री यू सो जेन, सरकारी वैदेशिक विभाग के एक मुख्य कर्मचारी श्री लांग सिंग कोंग और भारतीय दूतावास के श्री सकलानी और श्री परांजपे मौजूद थे।

जब हम रेल के डब्बे से बाहर निकले, जो डब्बा बिजली से गरम किया हुआ था, तब हमें मालूम हुआ जैसे किसी ने हमको बरफ की एक विशाल पेटी में बन्द कर दिया है। ऐसी सरदी इसके पहले जीवन में हमने कभी नहीं देखी थी और इस सरदी को और कड़ाके की कर रही थी काटती हुई जोर से चलनेवाली सर्द हवा। गरम पश्मीने का सूट और उस पर मफलर तथा मोटा ओवर कोट कोई भी वस्तु इस जाड़े को बचाती हुई न जान पड़ी। सारे कपड़ों को विदीर्ण कर यह सरदी शरीर को गला-सी रही थी। जान पड़ता था जैसे सारे अंगों पर कोई बरफ की मालिश कर रहा हो। मालूम हुआ इस समय वहाँ का तापमान ज़ीरो से दस डिग्री नीचे था और दो दिनों से वहाँ ऐसी ठंड की लहर (कोल्ड वेव) आयी हुई थी जैसी वहाँ के निवासियों ने भी कई वर्षों से नहीं देखी थी।

कठिनाई से हम लोग मोटर तक पहुँचे। मोटर का भीतरी भाग भी बिजली से गरम किया हुआ था। जान में जान-सी आयी और हमने तय किया कि होटल में उतरते समय हम सड़क से होटल के भीतर पहुँचने तक साधारण चाल से न चल एक दौड़ लगायेंगे। पर इसकी आवश्यकता इसलिए न पड़ी कि मोटर होटल के दरवाजे के बहुत निकट खड़ी हुई। फिर भी हम मोटर से उतर साधारण चाल से न चल झपट-कर ही होटल में घुसे।

पूरा होटल बिजली के द्वारा गरम था। हम तीनों जहाँ ठहराये गये वह कमरा बड़ा ही अच्छा था। मालूम हुआ कि श्री विजयालक्ष्मी पंडित जब भारतीय सांस्कृतिक प्रतिनिधिमण्डल की नेत्री की हैसियत से आयी थीं तब इसी

कमरे में ठहरी थीं। हमारे इस होटल का नाम था पीकिंग होटल।

पीकिंग हम ता० ७ के प्रातःकाल तक अर्थात् पूरे चार दिन ठहरनेवाले थे। रात्रि को ही इन चार दिनों के सारे कार्यक्रम पर चर्चा हो पूरा कार्यक्रम तैयार किया गया। हमारे इस समस्त कार्यक्रम में हमारे साथ श्री चैन महोदय रहनेवाले थे। श्री चैन हमें केवल बड़े सज्जन पुरुष ही न जान पड़े, परन्तु विद्वान् एवं सारे संसार में भ्रमण किये हुए भी। वे बीस वर्ष अमेरिका में रह चुके थे, कुछ वर्ष यूरोप में भी और दो बार भारत भी हो आये थे। उनके सदृश अंग्रेजी समझने और बोलनेवाले व्यक्ति हमें चीन तथा जापान में बिरले ही मिले।

ता० ३ को प्रातःकाल ६॥ बजे से हमारा पीकिंग का कार्यक्रम आरम्भ होता था। ठण्ड आज कुछ घट गयी थी, फिर भी काफी से अधिक थी, अतः हमारा सारा कार्यक्रम ठिठुरते-ठिठुरते ही चला। सबसे पहले हम भारतीय दूतावास को गये। यहाँ हम भारत के राजदूत श्री राघवन तथा उनकी मातहती में काम करनेवाले मिनिस्टर श्री कॉल एवं वहाँ के अन्य कर्मचारियों से मिले। भारतीय दूतावास अच्छी जगह स्थित है। मकान किराये का है जिसे खरीदने का प्रयत्न हो रहा है। श्री राघवन हाल ही में यहाँ आये थे। ये नेता जी सुभाषचन्द्र बोस की आजाद हिन्द सरकार के मलाया में अर्थ-मंत्री रह चुके थे। श्री कॉल दो वर्ष से इस दूतावास में काम करते थे। यहाँ के लोगों से मिलकर मुझे हर्ष हुआ। यहाँ का दूतावास शायद जापान के सदृश निकम्मा नहीं है। दूतावास से होटल लौटकर श्री चैन को साथ में ले हमने नगर का एक चक्कर लगाया। पीकिंग को हम 'दीवालोंवाला शहर' नाम देंगे। शहर-पनाह की दीवाल, राजमहल की दीवाल, और न जाने कितनी इमारतें यहाँ दीवालों से घिरी हुई हैं और शहर में सर्वत्र दीवालें-ही-दीवालें दृष्टि-गोचर होती हैं। इतनी अधिक दीवालें हमने दुनियाँ के किसी नगर में नहीं देखी थीं। पीकिंग की आबादी है कोई पच्चीस लाख। अधिकतर छोटे-छोटे मकानों और साधारण सड़कों का मामूली-सा नगर है। नगर हमें किसी दृष्टि से भी दर्शनीय न जान पड़ा, हाँ, कुछ विशिष्ट इमारतें और चीजें यहाँ की देखने योग्य अवश्य हैं जिनका वर्णन यथास्थान किया जायगा।

शहर का चक्कर लगाने के पश्चात् हम 'टिन हैन' नामक 'स्वर्ग मन्दिर' को गये जहाँ चीन के सम्राट् वर्ष में एक बार चीन में अच्छी फसल हो, इसके लिए प्रार्थना किया करते थे (चित्र नं० १६०)।

यह मन्दिर मिंग वंश के शासकों ने १४१६ ईसवी में बनवाया था। सन् १७५१ ई० में मांचू शासकों ने इसकी मरम्मत करायी। सन् १८८६ ई० में इसका एक भाग नष्ट हो गया था पर फिर मूलरूप में बना दिया गया।

मन्दिर के बड़े द्वार भारत के साँची द्वारों से मिलते-जुलते हैं और इस बात का संकेत देते हैं कि भारतीय कला का इस पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा था। मन्दिर के ऊपर चीनी भाषा में कुछ शब्द लिखे हुए हैं जिनका अर्थ है 'अच्छे वर्ष के लिए प्रार्थना करो।' कई शताब्दियों तक केवल सम्राट् यहाँ आकर दर्शन करते थे और जन-साधारण को प्रवेश करने की आज्ञा न थी।

'टीन हैन' अथवा स्वर्ग मन्दिर पीकिंग के दक्षिण में युंग टिंग मेंग जाने वाली सड़क के पूर्व में स्थित है। एक के अन्दर एक ईंट की दीवार के दो चतुष्कोण हैं। इस लम्बी-चौड़ी भूमि में पाँच हजार से अधिक साइप्रस के वृक्ष हैं जो पाँच-पाँच सौ वर्ष से भी अधिक प्राचीन हैं। मन्दिर में चार मुख्य हॉल हैं। ये सभी भीतरी चतुष्कोण में एक दूसरे की सीध में बने हुए हैं। ईंट की दीवाल वाला एक रास्ता उन्हें एक दूसरे से मिलाता है।

मन्दिर के मुख्य भाग में व्यक्ति की आवाज चारों ओर से प्रतिध्वनित होती है।

प्राचीन काल में चीनियों ने नक्षत्र-विद्या, भौतिक शास्त्र, गणित शास्त्र और ललित कला के क्षेत्र में भारी उन्नति की थी। स्वर्ग मन्दिर से इन सबका बोध होता है।

अपराह्न में हम 'यंग-हो-कुंग' नामक लामा मन्दिर को गये। लामा बौद्धमत की ही एक शाखा है और तिब्बत में लामाओं का ही दौरदौरा था। तिब्बत के लामाओं के सम्बन्ध में अनेक ऐतिहासिक बातें और किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं।

पीकिंग का यह लामा मन्दिर पीकिंग और आस-पास के स्थानों में बहुत प्रसिद्ध है। मन्दिर और भगवान् बुद्ध की मूर्ति दोनों ही अत्यन्त विशाल हैं। बौद्ध-प्रतिमा है काष्ठ की, ९९ फुट ऊँची। कहते हैं यह एक ही चन्दन के वृक्ष से बनायी गयी है। इतना ऊँचा और भारी चन्दन का वृक्ष आज तो कहीं दिखायी नहीं पड़ता।

यह मन्दिर पीकिंग के उत्तर-पूर्वी कोण में है। इसके उत्तर में नगर की दीवाल है और पश्चिम में यंग-हो-कुंग सड़क। सबसे पहले यह चिंग वंश के युवराज युंग का मन्दिर था, किन्तु १७४४ ईसवी में लामा मन्दिर बन गया। यही कारण है कि इसकी सभी इमारतें चीन के राजमहलों के ढंग की हैं। मन्दिर के अन्दर तिब्बती ढंग की सजावट है और भगवान् बुद्ध की आकृतियाँ अंकित हैं। इन दिनों मन्दिर का प्रबन्ध ८० लामा चलाते हैं और टिकट लेकर कोई भी अन्दर जा सकता है।

इस लामा मन्दिर में बड़े-बड़े हॉल हैं। वास्तु-कला का यह अद्भुत नमूना है।

जापानी युद्ध और चीन के गृह-युद्ध के समय यह मन्दिर टूट-फूट गया था। इस समय इसकी मरम्मत की जा रही है। मरम्मत के इस काम के लिए चीन की वर्तमान सरकार ने १०·४ मिलियन युवान दिये हैं। ४,७०० युवान का हमारा एक रुपया होता है।

तिब्बत को छोड़ चीन के अन्य विभागों में भी लामा मन्दिर हैं। लामा भी यहाँ अनेक रहते हैं। पीकिंग की म्यूनिस्पैलिटी और जिले बोर्ड में भी एक-एक लामा नामजद है।

लामावाद बौद्ध धर्म का ही एक रूप है। तिब्बत और मंगोलिया में इसका विशेष प्रभाव है। पहले लामावाद पर लाल टोपा पहननेवालों का प्रभुत्व था, बाद में पीले टोपे धारण करने वालों का हो गया। लामावाद को स्वर्ग में विश्वास है, किन्तु उसे पाने की आकांक्षा लामावाद का सर्वप्रमुख अंग नहीं है। वे बुद्ध के पुनः प्रकट होने में विश्वास करते हैं। दलाई लामा तिब्बत के आध्यात्मिक गुरु माने जाते हैं। पंचन लामा का स्थान उनके पश्चात् आता है।

मंगोलिया में लामावाद का विकास कुबलाई खाँ के समय से आरम्भ हुआ।

आज सन्ध्या को हम यहाँ के मार्केट में गये। मार्केट में विविध प्रकार के सामान की दूकानें थीं, पर दूकानें बड़ी तंगी से तंग-तंग गलियाँ छोड़-छोड़कर बनी हैं। भीड़ इतनी अधिक थी कि वहाँ चल सकना कठिन था। मार्केट में कोई खास बात न थी। हमें यह मार्केट जरा भी पसन्द न आया।

आज रात को हमारे सम्मान में साइनो-इंडिया फ्रेंडशिप एसोसियेशन ने एक भारी भोज दिया था। इस भोज में पीकिंग के हर क्षेत्र के लोग निमंत्रित थे। यहीं हमें सर्वप्रथम इस एसोसियेशन के सभापति श्री टिंग सी लिंग मिले। श्री टिंग सी लिंग का चीन के जीवन में बहुत बड़ा स्थान है। सन् '५१ में चीन का जो सांस्कृतिक प्रतिनिधिमण्डल भारत गया था उसके नेता आप ही थे।

भोज में श्री टिंग सी लिंग का हमारे स्वागत में चीनी भाषा में भाषण हुआ जिसका उत्तर मैंने अंग्रेजी में दिया और मेरे अंग्रेजी भाषण का चीनी में अनुवाद किया श्री वी महोदय ने, जो लाल चीन की सीमा से ही हमारे साथ थे। मैंने अपने भाषण में सर्वप्रथम तो अपने महान् आतिथ्य-सत्कार के लिए साइनो-इंडिया फ्रेंडशिप एसोसियेशन को धन्यवाद दिया। फिर मैंने कहा कि चीन और भारत का अक्षुण्ण मैत्री-सम्बन्ध गत दो हजार वर्षों से रहा है। यदि भारत के बौद्धधर्म के चीन में प्रभाव होने के कारण चीन अपने को भारत का ऋणी मानता है तो भारत भी

चीन का कम ऋणी नहीं, क्योंकि बिना फाहियान और यानचांग की यात्रा के वर्णनों के भारत का उस काल का इतिहास ही नहीं लिखा जा सकता। अपने भाषण का अन्त मैंने किया यह कहकर कि हर देश को अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार अपने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संगठन करने का अधिकार है और किसी देश को यह हक नहीं कि वह दूसरे पर अपने ढंग के संगठन को लादने का प्रयत्न करे। जिस प्रकार भिन्न धर्मों को मानने वाले धर्मों की भिन्नता रहने पर भी मित्रता से रह सकते हैं उसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संगठन वाले भी। चीन और भारत का मैत्री सम्बन्ध सदा अचल रहे यही मेरी कामना है। बाद में मैंने सुना कि मेरे इस भाषण की चीन के अनेक क्षेत्रों में बहुत समय तक चर्चा होती रही, क्योंकि इस भोज में पीकिंग के हर क्षेत्र के लोग मौजूद थे।

ता० ४ को प्रातःकाल १० बजे हम संसार की सात आश्चर्यजनक वस्तुओं में से एक चीन की महान् भित्ति को देखने मोटरों पर रवाना हुए। हमें चीन वालों ने कहा था कि वहाँ ठण्ड बहुत अधिक होगी, अतः हमने अधिक-से-अधिक कपड़े पहने। मैंने तो आज जितने कपड़े पहने उतने जीवन में कभी न पहने थे। सूती बनियान पर गरम स्वेटर, उस पर गरम जवाहर जैकेट, उस पर गरम कमीज, उस पर वास्कट, उस पर कोट, उस पर मफलर, उस पर ओवरकोट और ओवरकोट पर गरम चादर। चूड़ीदार गरम पैजामा, उस पर पतलून, दो जोड़ी गरम मोजे और भारी जूते। सिर पर रुई-भरे हुए चीनी कन्टोप जिनसे कान भी ढके हुए थे और जो हमने इसी दीवाल की यात्रा के लिए पहले दिन मारकेट में खरीदे थे। जगमोहनदास और घनश्यामदास के कपड़े इससे कुछ कम थे। इतने पर भी जब दीवाल के निकट पहुँच हम मोटर से उतर दीवाल पर चढ़े तब आकाश निर्मल और सूर्य के पूर्ण तेज से चमकने तथा मध्याह्न का समय होने पर भी ठण्ड और हवा दोनों का इतना जोर था कि हम पन्द्रह मिनिट से अधिक उस दीवाल पर न रह सके और लौटकर जब हम वापस मोटर में बैठे तब हमें जान पड़ा जैसे हमारी पैरों की उँगलियाँ या तो गलकर गिर गयी हैं या कोई चुपके-चुपके ही उन्हें निकालकर ले गया है। जो लोग कहते हैं कि नंगे सिर, कुरता और धोती से हर जगह काम चल जाता है उन्हें ऐसे स्थान पर भेजकर थोड़ा अनुभव कराना चाहिए। दिल्ली के हकीमों की बात तो मैं नहीं कहता, क्योंकि दिल्ली की सरदी में मैंने हकीम भूरे मियाँ आदि को तन्जेब के अँगरखे पहने देखा है, जो शायद कुश्तों की गरमी के कारण हो सकता होगा, या योगियों की बात भी मैं नहीं करता, पर साधारण लोगों का काम ऐसे स्थानों पर कुरता और धोती से कदापि नहीं चल सकता और यह मान लेना पड़ता है कि पोशाक की मूल जननी जलवायु ही है।

पीकिंग से चीन की यह महान् भित्ति लगभग ६० मील दूर पड़ती है। मार्ग में हमें कई गांव, कस्बे आदि मिले जिन्हें हमने कहीं-कहीं मोटर से उतरकर भी खूब ध्यान से देखा। रास्ते में ही हमें इस जिले का चेंगयिंग नामक एक छोटा-सा नगर भी मिला। इस क्षेत्र के लोग बड़ी गरीबी में रहते हैं और अत्यधिक सर्दी के कारण भेड़ों के बालदार चमड़े की पोशाक पहनते हैं।

भित्ति बहुत दूर से दिखने लगती है, पर भित्ति पर चढ़ना होता है पाइटालिंग नामक पहाड़ी दर्रे को पार कर। इस भित्ति की बनावट भारत के किलों की चहार-दीवारी के सदृश है। भित्ति की बनावट में हमें कोई नयी बात न दिखी। इसकी विशेषता है इसकी लम्बाई चित्र नं० (१६१-१६२)।

यह भित्ति ईसा से पूर्व तीसरी शताब्दी के मध्य में सम्राट् शी हुआंगटी ने बनवायी थी, जिन्होंने कि चीन में प्रथम साम्राज्य की स्थापना की थी। पूर्व से पश्चिम तक यह भित्ति एक हजार चार सौ मील लम्बी है और पर्वत प्रदेश व मैदानों में होकर गयी है। औसत से इसकी उँचाई २२ फुट है, किन्तु स्थान-स्थान पर बुर्ज बने हुए हैं जिनकी उँचाई चालीस से साठ फुट तक है। इसे संसार की सात आश्चर्यजनक वस्तुओं में गिना जाता रहा है। भित्ति बनाने का उद्देश्य तातारों के आक्रमणों से रक्षा का प्रबन्ध करना था। इस भित्ति के निर्माण में हजारों-लाखों निर्वासित बन्दी लगा दिये गये थे। लोगों के मुँह से सुना जाता है कि इसके बनाने में कम-से-कम दस लाख व्यक्ति मरे होंगे। अब यह दीवाल कई स्थानों पर टूट-फूट गयी है। इसकी मरम्मत आदि नहीं की जाती। आज की दुनियाँ में इसकी आवश्यकता भी नहीं है। अब इसका महत्त्व केवल दर्शनीय स्थान के रूप में है।

यहाँ से हम लोग जब पीकिंग लौटे तब सन्ध्या के पाँच बज चुके थे। आज रात्रि को ७॥ बजे साइनो-इंडिया फ्रेंडशिप एसोसियेशन के तत्वावधान में पुरानी भारतीय संस्कृति और भारत की वर्तमान अवस्था पर मेरा सार्वजनिक भाषण था। सभा में बड़ी अच्छी उपस्थिति थी। सभा के अध्यक्ष थे एसोसियेशन के सभापति। पहले अध्यक्ष का एक छोटा-सा भाषण हुआ। उसके पश्चात् मेरा बड़ा लम्बा-चौड़ा परिचय दिया गया श्री चैन के द्वारा और इसके पश्चात् मेरा अंग्रेजी में कोई पौन घण्टे भाषण हुआ जिसका अनुवाद श्री चैन ने ही किया। बीच-बीच में तालियाँ बहुत बजीं। इन तालियों तथा इसके बाद इस भाषण के सम्बन्ध में जो बातें मैंने सुनीं उनसे जान पड़ा कि यह भाषण वहाँ असाधारण रूप से पसन्द किया गया था।

ता० ५ को प्रातःकाल हम राज्य-भवन देखने गये जहाँ पहले चीन के सम्राट् रहते थे और अब वहाँ अजायबघर बना दिया गया है। इससे विशाल भवन हमने

१६२. टी' इन टा' न' पैलेस ग्राफ़ हैविन (स्वर्ग का महल)

१६३. चीन की प्रसिद्ध दीवाल के सामने लेखक जगमोहनदास के साथ अत्यधिक सरदी के कारण कनटोप लगाये तथा ओवर-कोट पहने खड़े हैं

१६४. चीन की प्रसिद्ध दीवाल का एक दृश्य
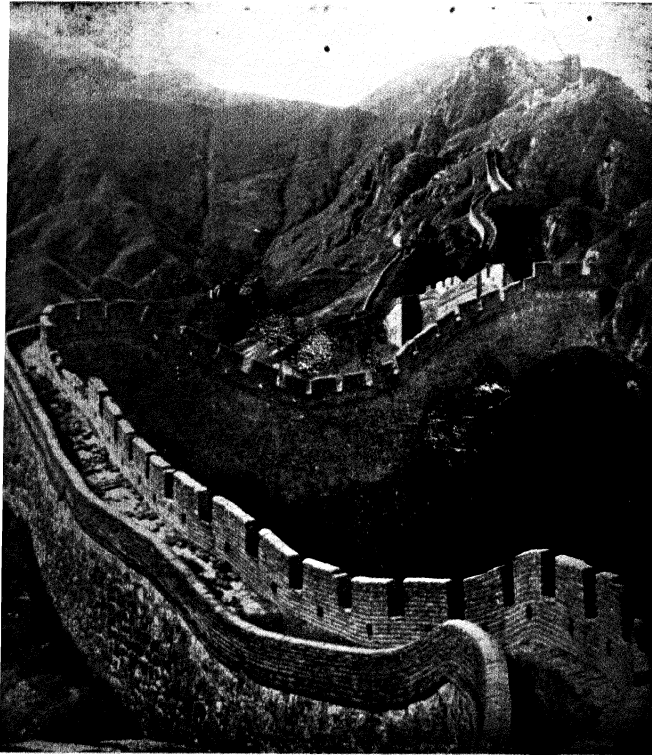
दुनियाँ में कहीं नहीं देखा था। कितना स्थान घिरा हुआ था इस महल से। जान पड़ता था कि पीकिंग के भीतर एक दूसरा शहर बसा हुआ है। सारे भवन में कोई पांच हजार कमरे हैं। तीन घण्टे उस भवन में घूमने पर भी हमारी पहुँच अढ़ाई-तीन सौ कमरों से अधिक स्थान पर न हो सकी। यथार्थ में यह भवन मिंग और चिंग राज-वंशों के दरबार का एक प्रकार का नगर था और जनसाधारण को वहाँ जाने की आज्ञा नहीं थी। इसका निर्माण १४१७ ईसवी से १४२० ईसवी तक हुआ। कमरों की छतें टाइल की हैं और फर्श संगमरमर के। भवन के चारों ओर दीवाल बनी हुई है। चार कोनों पर चार मीनारें हैं। हरेक मीनार तीन मंजिली और लकड़ी की बनी है। छतें इनकी भी पीली टाइल की है। इन मीनारों से पता चलता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में ही चीनियों को भौतिक शास्त्र और रेखागणित का प्रचुर ज्ञान था। इस विशाल नगर में उत्तर व दक्षिण और पूर्व व पश्चिम की ओर चार द्वार हैं जिनमें प्रमुख दक्षिणी द्वार है। प्राचीन समय में जब सम्राट् भवन से बाहर जाते थे तो मृदंग पर इक्यासी आघात किये जाते थे और उनके लौटते समय उनचास। यह राजभवन चीनी वास्तु-कला का एक आश्चर्य माना जाता है। दर्शक पर भवन की विशालता और कारीगरी की गहरी छाप पड़ती है (चित्र नं० १६३)।

कहा जाता है कि राजभवन की कई बहुमूल्य वस्तुएँ और कला-कृतियाँ भ्रष्ट कोमिंतांग अधिकारियों ने विदेशियों को बेच दी थीं। इनमें से कई वस्तुएँ चीनी राष्ट्र के लिए अब दुष्प्राप्य हैं, किन्तु नयी सरकार ने कुछ वस्तुएँ पुनः प्राप्त करके फिर वहाँ स्थापित कर दी हैं।

इस भवन के अजायबघर का संग्रह भी महान् है। संग्रह में पाँच हजार वर्ष पुराने मिट्टी के बर्तन, तीन हजार वर्ष पुराने तांबे (ब्रांज) के बर्तन, पन्द्रह सौ वर्ष पुरानी पालिश की हुई पाटरी, तेरह सौ वर्ष पुराना लकड़ी की खुदाई का काम और एक हजार वर्ष पुराने चित्र हैं। सबसे अधिक पाटरी है जिसके लिए चीन सारे संसार में प्रसिद्ध है। इस पाटरी के कैसे-कैसे रंग और रूप हैं। किसी को देख धोखा होता कि यह मिट्टी नहीं धातु है और किसी को देख जान पड़ता कि यह लकड़ी है। इस संग्रह में आधुनिक काल की भी अनेक कारीगरी की वस्तुएँ दर्शनीय थीं।

अजायबघर के तीन विभिन्न विभाग इस प्रकार हैं—(१) राजमहल का अजायबघर (२) क्रांति विषयक वस्तुओं का अजायबघर और (३) ऐतिहासिक अजायबघर। कोई भी व्यक्ति इन अजायबघरों को देखने जा सकता है।

इन अजायबघरों को देखने के लिए वर्ष भर दर्शकों का तांता लगा रहता है।

इस अजायबघर में चीन को छोड़ और कहीं का कोई संग्रह नहीं है। प्राचीनतम देश मिश्र का एक और अजायबघर हम इस दौरे के आरम्भ में देख चुके थे।

उसका नाम मैंने रखा है मुरदों का अजायबघर। आज अपने दौरे की समाप्तप्राय: स्थिति में हम संसार के एक दूसरे प्राचीनतम देश का अजायबघर देख रहे थे। मिश्र के अजायबघर के समान यहाँ का वायुमण्डल न था। चीन की अजीब चीजों के संग्रह के कारण यह सच्चा अजायबघर जान पड़ता था। इसे देख मन में उत्पत्ति होती थी अद्भुत रस की।

चीन के सरकारी पुरातत्व और वैज्ञानिक विभागों के अध्यक्ष श्री चैन संगटो ने हमारे साथ रह हमें यह अजायबघर दिखाने की कृपा की थी।

अपराह्न में हम चीन का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय पीकिंग यूनिवर्सिटी देखने गये। यूनिवर्सिटी के उपसभापति और डीन महोदय ने हमारा स्वागत किया। यहाँ हम भारत से आये हुए हिन्दी भाषा के अध्यापक प्रोफेसर जैन और उनकी पुत्री सु श्री चक्रेश से भी मिले। चीन के पाठ्यक्रम आदि के सम्बन्ध में हमें यहाँ अनेक जान-कारियाँ प्राप्त हुईं।

नये शिक्षा-अधिकारियों ने पुरानी पाठ्य-पुस्तकों के स्थान पर नयी पाठ्य-पुस्तकें लागू की हैं। इनका प्रमुख उद्देश्य बालकों में मातृभूमि और साम्यवाद के प्रति गहरी श्रद्धा और अनुराग उत्पन्न करना है। इसके बाद दूसरी वस्तु जिस पर सबसे अधिक बल दिया जाता है वह शान्ति-प्रेम है। विद्यार्थियों को शान्ति चाहनेवाले सभी देशों से प्रेम करना सिखाया जाता है। उन्हें इस बात की भी शिक्षा दी जाती है कि उन सभी देशों के प्रति सहानुभूति रखें जो ऊपर उठने का प्रयत्न कर रहे हैं और जिनमें क्रांति की लहर फैली हुई है। विद्यार्थियों को क्रांति विषयक विचारों की शिक्षा दी जाती है। भारत की शिक्षा-प्रणाली से यहाँ की शिक्षा-प्रणाली एकदम भिन्न प्रतीत होती है। शिक्षकों और विद्यार्थियों में जैसा उत्साह पाया जाता है उसका भारतीय स्कूलों में प्राय: अभाव रहता है। इन लोगों में कर्तव्य-भावना बहुत गहरी जमी मालूम होती है। उनके मन में यह प्रेरणा काम करती जान पड़ती है कि हमें कुछ करना है। विद्यार्थियों और शिक्षकों का सम्बन्ध बड़ा निकट का और सरस होता है। दोनों ही एक दूसरे में और अपने-अपने काम में दिलचस्पी लेते हैं। देश के सब से बड़े नेता माओत्से तुंग के प्रति उनमें बड़ा आदर-भाव है।

वहाँ के मिडिल स्कूल भारत के हाई स्कूल अथवा हायर सेकेण्डरी स्कूल जैसे ही होते हैं। पहली तीन कक्षाएँ निम्न मिडिल और बाद की तीन कक्षाएँ उच्च मिडिल कहलाती हैं। इन कक्षाओं के लिए विद्यार्थी को ६ महीने के लिए फीस भारतीय मुद्रा के अनुसार नौ-दस रुपये देनी होती है। भारत में इन्हीं कक्षाओं के लिए लगभग इतनी फीस एक महीने में ली जाती है।

हमने देखा कि विद्यार्थियों में से कोई बीस प्रतिशत किसान परिवारों के होंगे और
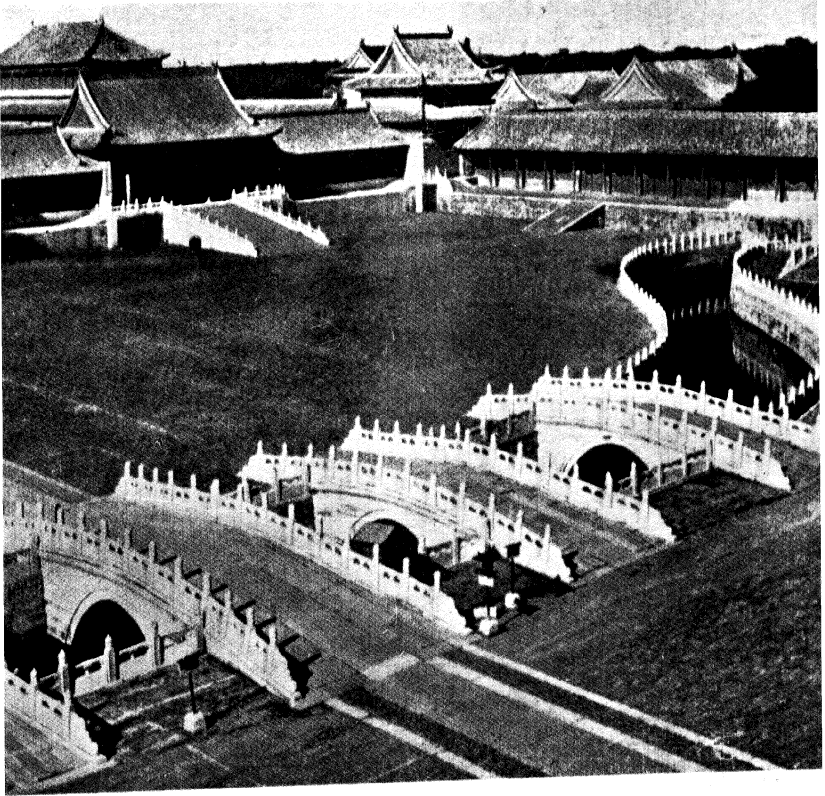
१६५. पीकिंग का राजभवन । संसार का शायद यह सब से बड़ा भवन है । भवन में पाँच हजार कक्ष हैं । पहले इसमें चीनी सम्राट् रहते थे । अब यह अजायबघर बना दिया गया है
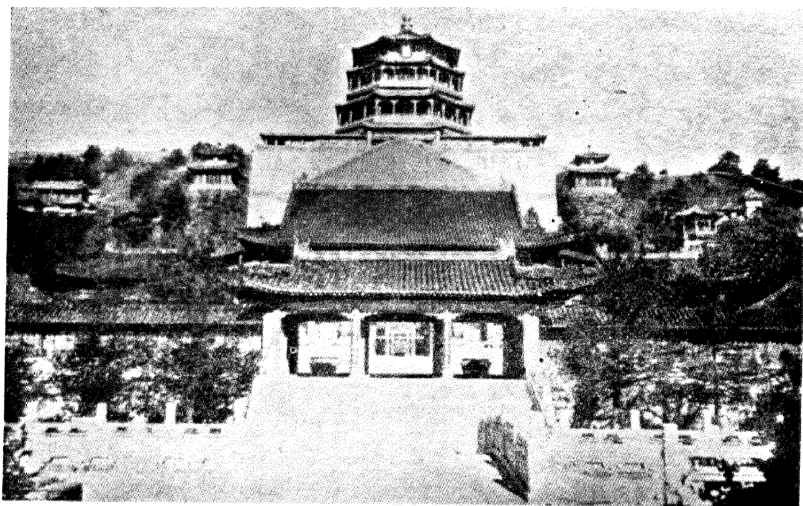
१६६. सम्राट् का ग्रीष्म भवन

१६७. पीकिंग की नरसरी के हृष्ट-पुष्ट बच्चे

कोई छप्पन प्रतिशत मजदूर परिवारों के। गरीब विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था है। भारत की तरह चीन के विद्यार्थी न तो निरुद्देश्य पढ़ते हुए जान पड़ते हैं और न ऐसा ही मालूम होता है कि वे राष्ट्रीय जीवन से अनभिज्ञ हों। वे राष्ट्र की सामाजिक और राजनीतिक गतिविधि में पूरी तरह भाग लेते हैं। बच्चों के स्वास्थ्य और बौद्धिक विकास की सूचना विद्यार्थियों के अभिभावकों को बराबर दी जाती रहती है। विद्यार्थियों को निश्चित समय के लिए शारीरिक परिश्रम का कोई काम करना होता है और बारी-बारी से वे कृषि-शिक्षा के लिए फार्मों पर भी भेजे जाते हैं। चीन की शिक्षा का माध्यम चीनी भाषा है। वैज्ञानिक शब्दावली भी वहीं की है। पीकिंग यूनीवर्सिटी से हम गये चीन के सबसे बड़े कला-कौशल (टेक्नोलोजीकल) संस्था देखने जिसे हमें यहाँ के डीन श्री चिन वी चैन ने दिखाया। चीन की शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं के पक्ष में उपर्युक्त बातें कहने के बाद एक बात उनके विपक्ष में भी कहे बिना मै नहीं रह सकता। शिक्षा का स्टैण्डर्ड चीन में अभी जैसा उन्नत होना चाहिए वैसा नहीं हो पाया है; इस दिशा में भारत चीन से काफी आगे है।

अब हम ग्रीष्म का राजभवन देखने पहुँचे। यह भवन पहाड़ों से घिरे हुए एक सुन्दर झील के किनारे बड़े रमणीय स्थान पर बना हुआ है। चीन सम्राट् ग्रीष्म ऋतु में यहाँ निवास करते थे। अब यह आम जनता के घूमने-घामने के लिए एक बगीचे के रूप में खोल दिया गया है। यहाँ की एक पहाड़ी पर एक कलापूर्ण सुन्दर बौद्ध मन्दिर भी बना हुआ है। ठण्ड के कारण समूची झील के पानी की ऊपरी तह जम गयी थी। पीकिंग का यह स्थल अत्यन्त सुन्दर है और अपनी कमनीयता व विपुल सौंदर्य के लिए संसार भर मे विख्यात है। वास्तव में ग्रीष्म का राजभवन एक भवन नहीं वरन् वहाँ कई भवन, मन्दिर, पुल; बाग और झीलें हैं। ये सभी इतिहास के भिन्न-भिन्न समयों पर भिन्न-भिन्न शासकों द्वारा निर्मित की गयी थीं वहाँ पर भी एक अजायबघर है। सब मिलाकर वहाँ कोई ६२ दर्शनीय वस्तुएँ है, जिन्हें देखने में सारा दिन लग जाता है किन्तु फिर भी दर्शक उनके साथ पूरा न्याय नहीं कर पाता। यहाँ की कई इमारतें ११५० ई० तक की हे। १९२४ में इसका प्रबन्ध पीकिंग म्युनिसिपैलिटी ने सम्हाल लिया और तब से उसी के अधीन है। लड़ाई के दिनों में कई बार यहाँ की इमारतें काफी नष्ट हो चुकी थीं, पर अब उनकी मरम्मत कर दी गयी है। (चित्र नं० १६६)

आज रात को हमारा भोजन भारतीय राजदूत श्री राघवन् के यहाँ था। यहाँ श्रीमती राघवन् से मिल हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। श्रीमती राघवन् ने हमें बड़ा अच्छा भोजन दिया। चीन में अब हम यथेष्ट वस्तुएँ देख चुके थे अतः चीन के सम्बन्ध में आज बहुत रात गये तक ी राघवन से हम तीनों की अनेक प्रकार की बातें होती रहीं

ता० ६ दिसम्बर पीकिंग में हमारी अन्तिम तारीख थी।

आज प्रातःकाल हमने पाइही नामक वहाँ की नर्सरी देखी। सुना कि इस प्रकार की अनेक नर्सरी चीन के बच्चों के लिए बनी हैं। इनकी एक सौ अस्सी संख्या तो पीकिंग और पीकिंग के आसपास ही बतायी जाती है, जो तीन वर्षों के समय में बन जाना कम-से-कम हमें कुछ अतिशयोक्ति जान पड़ा। जो कुछ हो, पाइही नर्सरी सचमुच बड़ी सुन्दर है। बच्चे खूब तन्दुरुस्त और प्रफुल्लित थे। इस नर्सरी में छोटे बच्चों का अच्छे वातावरण में लालन-पालन करने की बहुत अच्छी व्यवस्था करने का प्रयत्न किया गया है। नर्सरी के मुख्य कमरे में सोवियट बच्चों के प्रारम्भिक जीवन के अनेक चित्र लगे हुए थे जिनसे यह प्रकट होता था कि सोवियट यूनियन के बच्चों को विकास के सभी साधन उपलब्ध हैं। छोटे बच्चों के सोने के लिए अच्छे पलँगों की व्यवस्था है। उन्हें सभी कार्य स्वयं करने का शिक्षण प्रारम्भ से ही दिया जाता है। भोजन करने के लिए उनकी छोटी-छोटी विशेष प्रकार की टेबिल और कुर्सियाँ हम लोग कभी न भूल सकेंगे। विशेष प्रकार के खाने के बर्तनों की भी व्यवस्था उनके लिए की गयी है। उन्हें खेल २ में ही कुछ महत्त्वपूर्ण बातें सिखानेका विशेष इन्तजाम है। (चित्र नं० १६७)

इसके पश्चात् हमने यहाँ का 'पर्यूसिंग' नामक एक मैदा मिल देखा जो सरकारी न होकर एक व्यक्तिगत सम्पत्ति थी। इसके मैनेजर श्री सन् पर्यूसिंग ने हमें इस मिलका सारा हाल बताया। इस मिल के वर्तमान व्यवस्थापक श्री सन् पर्यूसिंग के पिता ने यह मिल प्रारम्भ किया था और आज भी इसमें लगी हुई सारी पूँजी पर श्री सन् पर्यूसिंग की माता का एकाधिकार था। व्यवस्था श्री सन् पर्यूसिंग देखते थे और उन्हें इस कार्य का पारिश्रमिक मिलता था।

इस मिल में १४ आटा पीसने, छानने इत्यादि की मशीनें थीं। इसका औसत उत्पादन १,४०,००० बोरा आटा प्रतिमास होता था। १ बोरे में २२ किलोग्राम आटा आता था। हमें यह बताया गया कि मजदूरों के विशेष उत्साहपूर्वक कार्य करने के फलस्वरूप अगले महीने में १,५०,६०० बोरा आटा तैयार होने वाला था।

यह मिल सरकार के लिए आटा तैयार करने का कार्य करता था। सारा गेहूँ सरकार की ओर से मिल को भेज दिया जाता था। मिल का यह कार्य था कि इस गेहूँ का आटा तैयार करके सरकार को भेज दे। ऐसी परिस्थिति में मिल को अपनी ओर से वर्किंग केपिटल के रूप में कुछ नहीं लगाना पड़ता था।

उत्पादन करने में जो व्यय होता (Cost of production) था उसका ४०% मुनाफे के रूप में बचता था। मिल को केवल एक ही कर देना पड़ता था। यह आयकर था। मुनाफे (Net profit) पर ५% से ३०% तक यह कर लगता था। अधिक से-अधिक मुनाफे पर ३०% ही आयकर के रूप में चीन में

लगता है। चूंकि इस मिल का मुनाफा अधिक-से-अधिक मुनाफे की सीमा के अन्तर्गत आ जाता था इसलिए इस मिल के मुनाफे पर ३०% टैक्स लग जाता था।

मुनाफे की रकम में से ३०% टैक्स देने के बाद १०% रिजर्व फण्ड में रखी जाती थी। शेष ६०% में से ६% प्रिफरेन्स शेयर पर ब्याज के रूप में देने के बाद जो रकम शेष रह जाती थी उसका ६०% सामान्य शेयर होल्डर्स को डिवीडेन्ड के रूप में दिया जाता था। १५% प्रतिशत मजदूरों को अतिरिक्त इनाम के रूप में दिया जाता था। १५% वेलफेयर और मजदूरों के विशेष प्रबन्ध में जाता था और १०% किन्हीं विशेष आवश्यकताओं के लिए रखा जाता था।

उपर्युक्त विवरण हमे बहुत जल्दी मे दिया गया था फिर भी यह बताया गया था कि यह बहुत कुछ ठीक है। इस विवरण में एक ही बात महत्त्वपूर्ण थी कि टैक्स इत्यादि चुकाने के बाद जो रकम शेष रहती थी उसका ६०% डिवीडेन्ड के रूप में व्यवस्थापक जी की माता को ही मिलता था।

व्यवस्थापक का मासिक वेतन १६ लाख युवान बताया गया। इसके साथ ही उन्हें मोटर, मकान इत्यादि की सभी सुविधाएँ प्राप्त थीं और सभी कुछ कर सकने के अधिकार भी प्राप्त थे। कितनी सुविधाएँ थीं इसका पूरा व्यौरा हमें नहीं मिल सका।

हमें यह भी बतलाया गया कि मिल में कार्य करने वाले प्रत्येक मजदूर को ८,००,७०० युवान मासिक वेतन मिलता था और साथ ही रहने का मकान, पानी और बत्ती सहित कपड़े का एक सूट प्रतिवर्ष, बच्चों की पढाई के लिए फीस, इलाज के लिए सुविधाएँ आदि भी दी जाती थीं।

इस प्रकार हमें यह समझाया गया कि व्यवस्थापक और मजदूर के वेतन में अन्तर को कम-से-कम करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

मिल का वातावरण अच्छा था और मजदूर कार्य प्रसन्नता से कर रहे थे। कहीं-कहीं मिल मे अमेरिका-विरोधी पोस्टर लगे हुए थे जिनमें यह दर्शाया गया था कि अधिक उत्पादन से ही अमेरिकी साम्राज्यवाद का विनाश हो सकता है।

मिल के व्यवस्थापक अत्यन्त उत्साही और मिलनसार व्यक्ति थे।

आज दोपहर का भोजन हमें भारतीय दूतावास के मिनिस्टर श्री कौल के यहाँ करना था। भोज में भारतीय दूतावास के सभी प्रतिष्ठित कर्मचारी सम्मिलित हुए थे।

खूब अच्छा भारतीय खाना मिला और खूब ही चर्चा हुई चीन की भिन्न-भिन्न समस्याओं तथा विषयों पर।

अपराह्न में हम चीन के सरकारी विभागों के कुछ उच्च अधिकारियों से मिले। इनमे थे—साइनो-इण्डिया फ्रेंडशिप एसोसियेशन के सभापति, चीन के सांस्कृतिक

मन्त्रिमण्डलके उपमंत्री श्री टिंग सीलिंग, जिनसे इसके पहले भी हमारी भेंट हो चुकी थी, पर सरकारी विषयों पर चर्चा आज ही हुई। शिक्षा-विभाग के एक पदाधिकारी श्री चाम्रो फिंग। चीन के उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) के उपसभापति श्री चेंग चूरिम्रान, जो पहले चीन के किसी विश्वविद्यालय में आचार्य थे। वे अत्यन्त विद्वान् व्यक्ति मालूम हुए। उनकी विचार-प्रणाली बड़ी सुलझी हुई और क्रांतिकारी थी। उन्होंने बातचीत के दौरान में यह बताया कि चीन की पुरानी न्याय-पद्धति अत्यन्त कुत्सित हो गयी थी। उसमें बिना आमूल परिवर्तन के कोई सुधार सम्भव ही नहीं था। इसीलिए नये चीन की न्याय-व्यवस्था में पुराने कानूनों को कोई स्थान देना उचित नहीं माना गया। पुराने सभी कानून रद्द कर दिये गये हैं और एक नयी न्याय-व्यवस्था स्थापित की गयी है। इस नयी न्याय-व्यवस्था में न्यायाधीश का कार्य केवल चुपचाप बैठकर गवाहों और मुल्जिमों के बयान सुनकर फैसला लिखना ही नहीं है बल्कि वादी और प्रतिवादी में समझौता कराना उसका सबसे पहला कर्तव्य है। इसी के अनुसार जनता की अदालतें (Peoples Courts) कार्य करती हैं। जहाँ तक दण्ड का प्रश्न है इसका अभी पूरा-पूरा विवेचन नहीं हुआ है। जहाँ जैसे-जैसे मुकदमे आते हैं उनका फैसला किया जाता है। धीरे-धीरे इन फैसलों के आधार पर नये कानून की रूपरेखा तैयार हो रही है। उनकी बातचीत से यह प्रतीत हुआ कि चीन की वर्तमान न्याय-प्रणाली का निर्माण हो रहा है और उसमें अभी जो कुछ होता है वह अधिकतर किसी लिखित कानून के आधार पर न हो न्यायाधीशों की न्यायबुद्धि के आधार पर होता है। उन्होंने यह बताया कि पश्चिमी न्याय-पद्धति चीन के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है और चीन को अपनी स्वयं की न्याय-प्रणाली बनानी होगी।

रात को हम पीकिंग ऑपेरा देखने गये। शंघाई का ऑपेरा हमें इससे अधिक पसन्द आया था। हाँ, यहाँ एक सर्कस भी दिखाया गया। इसके कार्य बड़े ही अच्छे और अद्भुत थे।

ता० ७ को प्रातःकाल हमने पीकिंग छोड़ दिया। स्टेशन पर हमें बड़ी शानदार बिदाई दी गयी। उपस्थित सदस्यों में साइनो-इण्डियन फ्रेण्डशिप एसोसियेशन के सभापति श्री टिंग, उप-सभापति श्री चेन और पीकिंग में रहनेवाले एक भारतीय श्री वीरूमल भी थे जिनसे भारतीय दूतावास के जरिये हमारी कल ही जान-पहचान हुई थी। इन सज्जन से भी चीन के सम्बन्ध में हमें अनेक बातें मालूम हुई थीं। आज ये हमारे लिए भारतीय भोजन बनाकर लाये थे जो हमने मार्ग में बड़ी रुचि से खाया।

ता० ७ को पीकिंग से रवाना होकर ता० ८ को २ बजे दिन को हम हैंको पहुँचे। यहाँ हमारी गाड़ी बदलती और हमें चार घण्टे का समय चीन का यह नगर

देखने को भी मिलता था। हैंको स्टेशन पर हमारे स्वागत के लिए अनेक प्रतिष्ठित चीनी सरकारी कर्मचारी और दो भारतीय सिक्ख डाक्टर मौजूद थे। ये दोनों वर्षों से चीन में रहते थे। इन्हें हमारे आने की सूचना पीकिंग के भारतीय दूतावास ने दी थी।

हैंको स्टेशन से हम होटल आये जहाँ हम दोनों भारतीय डाक्टरों से कुछ देर बातें करते रहे। इसके बाद हम गये हैंको देखने के लिए। हैंको भी चीन के अन्य शहरों के समान ही एक शहर है। हमने शहर के साथ ही यहाँ का एक बगीचा भी देखा। कोई ऐसी नयी बात हमें यहां न मिली जिसका उल्लेख किया जाय, सिवा रेशम पर कसीदे के कुछ चित्र। चीनी प्रान्त फूकिंग इस तरह की कारीगरी और चीनाई रेशम के लिए प्रसिद्ध है। इसके नमूने हैंको में बिकते हैं। करीब ५ बजे हम होटल लौट आये और वहाँ से वू छांग स्टेशन चले। इस स्टेशन पर पहुँचने के लिए यांगसी नदी पार करनी पड़ती है। इस नदी को पार करने के लिए यद्यपि थोड़ी-थोड़ी देर में छोटे-छोटे जहाज आते-जाते हैं, जिन पर टिकट लेकर लोगों का यातायात होता है, पर हमारे लिए चीन सरकार ने एक खास मोटर बोट का प्रबन्ध किया था।

लगभग ६ बजे संध्या को हमारी ट्रेन हैंको से कैण्टोन के लिए रवाना हो गयी। कैण्टोन हम पहुँचे ता० ९ की रात को १० बजे। जिस होटल में हम चीन आते समय ठहरे थे उसी होटल में आज भी ठहराये गये थे। रात भर कैंण्टोन में ठहर ता० १० को प्रातःकाल ९ बजे हम कैण्टोन से चीन की सीमा के सिम सांग स्थान को रवाना हुए। यह रास्ता चार घण्टे का था। रास्ते में कोई नयी बात नहीं हुई पर नयी बात हुई अंग्रेजी राज्य की सीमा पर पहुँचते ही। यह थी अंग्रेजी राज्य के इमीग्रेशन अफसर की हद दरजे की बदतमीजी। चीन की सीमा पर हमें लेने चाइना ट्रेवलिंग एजेन्सी के प्रतिनिधि आ गये थे। चीन की सीमा पर हमें कोई कष्ट नहीं हुआ। श्री वी से मिल-भेंटकर तथा उन्होंने जो कुछ हमारे लिए किया था उसके सम्बन्ध में उन्हें अगणित धन्यवाद दे हम उस पुल की ओर चले जिसे पार कर अंग्रेजी राज्य की सीमा में प्रवेश होना था। हांगकांग आते समय चुंगी वालों ने तथा इमीग्रेशन के दफ्तर वालों ने हमारे साथ जैसा व्यवहार किया था उसे ध्यान में रखते हुए शंघाई में ब्रिटिश कौंसलेट से हमने हांगकांग में प्रवेश करने के लिए आज्ञा लिखवा ली थी अतः ये सज्जन हमें रोक तो सकते न थे, पर इन्होंने हमें तंग जरूर किया। हमारी ट्रेन चीन की सीमा पर पहुँची थी लगभग १२॥ बजे और ब्रिटिश सीमा से हांगकांग हमारी ट्रेन जाती थी ढाई बजे। हमारे पासपोर्ट इमीग्रेशन के अफसर महाशय ने जाँच के लिए रख लिये और आप चल दिये लंच खाने। पासपोर्टों की जाँच में पांच मिनिट से अधिक समय न लगता पर अफसर महाशय का खाना खाने का समय जो हो गया था। हमने तमाम दुनिया के इस दौरे में कहीं भी यह नहीं देखा था कि किसी अधिकारी के खाना खाने का समय हो जाने

के कारण पासपोर्टों की जाँच के सदृश आवश्यक कार्य रोक लिये जायँ। ढाई बजे वाली गाड़ी से जाने की चिन्ता हमें इसलिए अधिक थी कि हांगकांग के पैन अमेरिकन लाइन के दफ्तर में ५ बजे के पहले हम जिस पैन अमेरिकन हवाई जहाज से दूसरे दिन जा रहे थे उस उड़ान की ताईद करनी थी। कोई पौन बजे से लेकर दो बजकर दस मिनिट तक इस हद दरजे के अहम्मन्य और बदतमीज अंग्रेज की हमें राह देखनी पड़ी। दो बजकर दस मिनिट पर यह दफ्तर में आया। पासपोर्ट देखने की रस्म-अदायी में तीन मिनिट से अधिक न लगे और किसी तरह दौड़ते-भागते हमें हांगकांग की गाड़ी मिल सकी जिसके कारण हम ठीक समय पैन अमेरिकन लाइन के दफ्तर में पहुँच सके। इस भलेमानस अंग्रेज को इस बात की जरा भी चिन्ता न थी कि यदि हम इस गाड़ी को चूक जाते तो हमारे कार्यक्रम में जो गड़बड़ होती वह उसके पाँच मिनिट देर से लंच खाने की अपेक्षा हमारे लिए न जाने कितनी बड़ी मुसीबत लाती। मेरा निश्चित मत है कि इंग्लैण्ड के बाहर बचे-खचे अंग्रेजी राज्य को यह अंग्रेजी नौकरशाही समाप्त करने वाली है। अंग्रेजी में एक कहावत है—भगवान ऐसे मित्रों से बचावें। मैं कहता हूँ अंग्रेजी राज्य को भगवान् ऐसे नौकरों से बचावे। पीकिंग से इस सीमा तक की हमारी यात्रा २,४५० किलोमीटर की थी।

बेंकाक हमारा हवाई जहाज ता० ११ को १२ बजे दिन को जाता था। नियमानुसार हम ११ बजे पैन अमेरिकन लाइन के दफ्तर को पहुँच गये और सारी रस्मी कार्रवाई से छुट्टी पायी। पर थोड़ी देर में हमें सूचना मिली कि मशीन में कुछ गड़बड़ होने के कारण हमारा प्लेन ३ बजे के लगभग जायगा। यहाँ हमें मिल गये थे चीन के शान्ति-सम्मेलन में आने वाले उड़ीसा के एक साम्यवादी सज्जन श्री रामकृष्ण पाटी जो इसी प्लेन से वापस कलकत्ते जा रहे थे। अब प्लेन जाने में देर थी अतः हम चारों भोजन के लिए चले। भोजन से लौटने पर हमें सूचना दी गयी कि आज हमारा हवाई जहाज जायगा ही नहीं। कब जायगा इसकी भी कोई निश्चित सूचना नहीं थी। मुझे याद आयी सन् '५० की आस्ट्रेलिया की सिडनी की घटना जब मौसम खराब होने के कारण मुझे सिडनी में ३ दिन पड़ा रहना पड़ा था, जिसके कारण मुझे अपनी हिन्देशिया वाली यात्रा मन्सूख करनी पड़ी थी। मुझे भय लगा कि इस बार स्याम और बर्मा की रही हुई यात्रा के विषय में भी कहीं ऐसा ही न हो। पर चारा क्या था! थोड़ी ही देर बाद हमें यह मालूम हुआ कि बी० ओ० ए० सी० का हवाई जहाज कल प्रातःकाल ग्यारह बजे जा रहा है और हम चाहें तो उस जहाज से जा सकते हैं। हमने अपने पैन अमेरिकन लाइन के टिकट तत्काल बी० ओ० ए० सी० के कराये और दूसरे दिन प्रातःकाल की प्रतीक्षा करने लगे।

दूसरे दिन प्रातःकाल तक कोई काम न रहने के कारण मैंने सोचा कि मेरी

खोयी हुई फाउण्टेनपेन और पेंसिल की पूर्ति हांगकांग से ही कर ली जाय, क्योंकि खुला बन्दरगाह होने के कारण यह सुना था कि यहाँ इस प्रकार की चीजें सस्ती मिलती हैं। हांगकांग का बाजार हमें सचमुच ही बड़ा अजीब जान पड़ा। छोटी से बड़ी हर चीज की एक दूकान से दूसरी दूकान की कीमत में बड़ा भारी अन्तर और इतने अधिक मोल-तोल की आवश्यकता कि किसी को अन्त तक यह विश्वास ही नहीं हो पाता कि जो वस्तु वह खरीद रहा है उसकी उचित कीमत दे रहा है या नहीं। हांगकांग चाहे खुला पोर्ट हो, पर हांगकांग के सदृश वाहियात बाजार हमने और कहीं न देखा था।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब हम बी० ओ० ए० सी० के दफ्तर को जा रहे थे तब हमें पता लगा कि उस लाइन का हवाई जहाज भी लेट हो गया है और कब जायेगा इसे कोई नहीं कह सकता। थोड़ी देर बाद मालूम हुआ कि पैन अमेरिकन लाइन का एक जहाज आने वाला है और वह शायद तीसरे पहर चला जाय। कम-से-कम तीसरे पहर तक हांगकांग से रवाना होने की कोई संभावना न देख जगमोहनदास और घनश्यामदास हांगकांग के एक प्रसिद्ध पैगोडा को देखने गये और मैंने अपना समय लगाया इस पुस्तक में।

कोई १२।। बजे हमें निश्चित सूचना मिली कि बी० ओ० ए० सी० का हवाई जहाज ४।। बजे संध्या को जा रहा है और हम लोगों को ३ बजे के पहले बी० ओ० ए० सी० के दफ्तर पहुँच जाना चाहिए।

करीब ५ बजे हमने हांगकांग छोड़ दिया।

३२
चीन पर ही कुछ और

इधर भारत से और अन्य देशों से भी अनेक लोग चीन गये हैं और उन्होंने अपने-अपने विचार प्रकट किये हैं। जितने विभिन्न और परस्पर विरोधी विचार चीन के सम्बन्ध में पाये जाते हैं उतने अन्य किसी देश के सम्बन्ध में नहीं। कुछ लोगों का मत है कि नया चीन एक जीता-जागता स्वर्ग बन गया है। कुछ और लोगों का मत इसके बिलकुल विपरीत है कि नयी शासन-व्यवस्था के अधीन चीन घोर दुर्दशा को पहुँच गया है और वहाँ की जनता एक सर्वाधिकारवादी व्यवस्था के अधीन सदा के लिए बन्दी हो गयी है। इसलिए जहाँ एक ओर नये चीन की भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती है वहाँ दूसरी ओर चीन की उतनी ही कड़ी निन्दा भी सुनने में आती है। स्पष्ट है कि ये दोनों दृष्टिकोण वास्तविकता पर आधारित न होकर दलगत भावनाओं से प्रेरित रहते हैं। नये चीन के पक्षपाती अधिकांश रूप में प्रचार के लिए उसका भव्य चित्र प्रस्तुत करते हैं, उधर नये चीन के विरोधी मुख्यत: बहिष्कार के लिए नये चीन में केवल कालिमा ही देख पाते हैं। मेरा मत है कि ये दोनों ही बातें भ्रामक हैं। मैंने चीन में जो कुछ देखा उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि न तो चीन में इतना अधिक विकास हो गया है कि वहाँ अब और कुछ करना बाकी न हो और न ऐसा ही है कि नयी सरकार ने चीन को तबाही की राह पर डाल दिया हो।

मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि आज का चीन एक शक्तिशाली देश और विश्व की एक प्रबल शक्ति है उसी तरह जैसे नये स्वतन्त्र भारत की गणना महानतम् देशों में होने लगी है। इसमें सन्देह नहीं कि कोमिंतांग चीन की तुलना में आज का चीन कहीं अधिक संगठित और कहीं ज्यादा शक्तिशाली है। चांगकाई शेक के दिनों में शासन-प्रबन्ध भ्रष्टाचार-पूर्ण था और अयोग्य एवं कम अनुभवी अधिकारों के हाथ में चला गया था। जनता की भलाई और उसके कल्याण की बातें न सोचकर चांग सरकार के अधिकारी स्वार्थ-साधना में लिप्त रहते थे। ऐश्वर्य और विलासिता का जहाँ महलों में बोलबाला था वहाँ गाँवों में जनता की पुकार सुनने वाला कोई न था। देश में उत्पादन भी इसी लिए कम होता था और चांगकाई शेक को अपनी सत्ता

बनाये रखने के लिए विदेशियों का आश्रय लेना पड़ता था।

चांगकाई शेक सरकार का जनता पर न तो प्रभाव ही था और न जनता की उसमें आस्था थी। चांगकाई शेक और उसकी सरकार के अन्य अधिकारी जनता के प्रतिनिधि तो थे नहीं, क्योंकि चुनाव जैसी कोई व्यवस्था वहाँ न थी; सैनिक बल पर उनकी सत्ता टिकी हुई थी और दमन ही उनका सबसे बड़ा अस्त्र था। सरकार सामन्तों और जागीरदारों का पक्ष लेती थी इसलिए राष्ट्र की जनशक्ति निष्क्रिय पड़ी थी। जिन दिनों चीनी कम्यूनिस्ट आगे बढ़ रहे थे और चांगकाई शेक की सेनाएँ हारती हुईं, आत्मसमर्पण करती हुईं, एक शहर से दूसरे शहर को हट रही थीं उसका मुख्य कारण यही था कि चीन की जनता चांगकाई शेक के साथ न होकर नये क्रान्तिकारियों के साथ थी और यद्यपि अमेरिका का प्रश्रय चांग सरकार को मिला हुआ था फिर भी वह नष्ट होने से न बच सकी। 'एशिया की स्थिति' नामक पुस्तक के अंग्रेज लेखक ओवन लेटीमोर ने लिखा है कि अमेरिका ने चांग को सुरक्षा और विरोधियों को परास्त करने के लिए जो सैनिक सामान दिया था उसे अपने पास रख सकने की भी सामर्थ्य चांगकाई शेक में नहीं रह गयी थी। अकेले मुकदन और चिनचो में कम्यूनिस्टों के हाथ १२,५०,००,००० करोड़ डालर का अमेरिकी सैनिक सामान लगा था। इस तरह के सामान और जनता के सहयोग से कम्यूनिस्ट-विजय अवश्यम्भावी थी। जहाँ उनकी विजय होती थी वहीं पर वे भूमि किसानों में बाँट देते थे। इसलिए वहाँ की जनता की सहानुभूति उन्हें सहज ही प्राप्त हो जाती थी और जिस प्रदेश की ओर वे बढ़ते थे वहाँ की जनता भी ऐसे ही लाभ की आशा में उनके स्वागत के लिए तैयार रहती थी। जनता का जो समर्थन चीनी कम्यूनिस्टों की विजय का कारण बना वह नये चीन को अब निर्माण-कार्य के लिए भी प्राप्त है इसमें कोई सन्देह नहीं।

क्षेत्रफल की दृष्टि से चीन संसार के सबसे बड़े देशों में है। आकार में वह समूचे यूरोप के बराबर है अथवा संयुक्त राज्य अमेरिका से कुछ ही कम है। जनसंख्या वहाँ की लगभग पचास करोड़ है और संस्कृति पांच हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन है। चीन एशिया के पूर्वी भाग में विस्तृत और महान् भूखण्ड है। उसका क्षेत्रफल लगभग पन्द्रह लाख वर्ग मील होगा और पूर्व से पश्चिम तक तथा उत्तर से दक्षिण तक उसकी लम्बाई एक-डेढ हजार मील है। उसकी उत्तरी सीमा उसकी सुरक्षा के लिए लाभदायक है किन्तु समुद्र-तट बहुत बड़ा और विदेशी आक्रमणों के लिए खुला है। चीन का अतीत बड़ा ही गौरवमय है। अब से कोई तीन हजार वर्ष पूर्व वहाँ कुतुबनुमे (कम्पास) का आविष्कार हो चुका था। सत्रह सौ वर्ष पहले वहाँ कागज तैयार होने लगा था। लगभग बारह सौ वर्ष पहले वहाँ मुद्रण-कला की नींव

पड़ चुकी थी और आठ सौ वर्ष पहले वहाँ गोला-बारूद बनने लगा था। प्राचीन काल में भी चीन की संसार के महानतम देशों मे गणना की जाती थी और आज भी वह दुनिया के अत्यन्त शक्तिशाली देशों मे है। नये चीन ने दुनिया में एक दुर्जेय शक्ति के रूप में पदार्पण किया है। कुछ देश इस तथ्य को स्वीकार करने में आनाकानी कर रहे है, पर इसमें सन्देह नहीं कि नया चीन एक वास्तविकता है।

भारत और चीन के बड़े पुराने सांस्कृतिक सम्बन्ध है और दोनों की सब से बड़ी समानता यह है कि वे कृषि-प्रधान देश है। चीन के अधिकांश भाग को तीन बड़ी-बड़ी नदियाँ सींचती है जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण, तीन हजार लम्बी यांग्सी क्यांग नदी है। दूसरी महत्त्वपूर्ण नदी 'ह्वांगहो' है जो निरन्तर अपना पथ बदलती रहती है, और चीन में काफी तबाही करने के कारण 'चीन के आंसू' नाम से विख्यात है। देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है जो देश की भौगोलिक स्थिति और जलवायु के अनुकूल ही है। चीन में मुख्य रूप से खाने-पीने की चीजों की ही खेती होती है; साथ ही सुअर पालने और मुर्गियाँ व बतख पालने का भी रिवाज है। वहाँ की मुख्य फसलें चावल, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, जौ, मकई, आलू, सोयाबीन और सब्जियाँ आदि है। व्यापारी फसलों का वहाँ दूसरा स्थान है और चाय, तम्बाकू, कपास आदि की खेती भी होती है। रेशम के कीड़े पालना वहाँ का एक प्रमुख उद्योग है। कहा जाता है कि नये चीन में भूमि के पुनर्वितरण और कृषि के नये तरीके के कारण पैदावार काफी बढ़ गयी है, पर हमे इसके कोई प्रमाण नहीं मिले; नये तरीकों से खेती होते हुए भी हमने वहाँ नही देखी।

चीन जितना बड़ा देश है उसके हिसाब से उसके प्राकृतिक साधन उतने अधिक नहीं है। हाँ, चीन मे कोयला बहुत अधिक पाया जाता है। रांगा और लोहा भी समुचित मात्रा में है। इसके अतिरिक्त वहाँ पेट्रोलियम, गन्धक और ताँबा भी निकाला जाता है। चीन के संचार-साधन बहुत विकसित नहीं है नयी रेल-पटरियाँ बिछायी गयी है, किन्तु अब भी ऐसे स्थान ही अधिक है जहाँ आने-जाने के और सामान पहुँचाने के लिए घोड़ा खच्चर अथवा कुली आदि काम में लाये जाते है। आर्थिक विकास के लिए नयी सरकार की कुछ योजनाएँ सफल हुई हैं, पर देश की महानता को देखते हुए ये अभी नहीं के बराबर कही जा सकती हैं। हमारे देश की इस प्रकार की योजनाएँ चीन की योजनाओं से कहीं महान् है।

अब जरा चीन के राजनीतिक स्वरूप पर विचार करें। इस दृष्टि से चीन दो भागों में विभक्त है—मुख्य चीन और बृहत्तर चीन। मुख्य चीन वह भाग है जिसमें चीन के वे अठारह, प्राचीन प्रान्त आते हैं जो चीन की महान् भित्ति के दक्षिण में हैं। बृहत्तर चीन में वह सब भूभाग गिना जाता है जो प्राचीन मांचू वंश के समय

चीन साम्राज्य कहलाता था। इसमें मंचूरिया, मंगोलिया, सिनक्यांग और तिब्बत इन चार को भी सम्मिलित किया जाता है।

आज चीन में 'मुक्ति' शब्द जितना प्रचलित है उतना और कोई नहीं। कल का चीन एशिया का एक रोगी देश था जो साम्राज्यवादी देशों की एक पूरी शताब्दी की कुचालों और च्यांगकाई शेक के बीस वर्ष के कुशासन से पीड़ित था।

चीन जनराज्य की स्थापना को ही चीनी लोग मुक्ति कहते हैं। इससे पहले च्यांगकाई शेक के शासन मे स्थिति बड़ी असन्तोषजनक थी और दिन-पर-दिन बिगड़ती जा रही थी। देश में आवश्यकता से कम अनाज पैदा होता था और विदेशों से मँगाना पड़ता था। बाहर से अन्न मँगाने पर भी अभाव और अकाल मुँह बाये रहते थे। मुद्रा का चलन बहुत बढ़ गया था। उन दिनों की सरकार विश्व में अत्यन्त भ्रष्ट सरकार मानी जाती थी और यह तथ्य सर्वविदित था। अमीरी-गरीबी का भेद पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। किसानों पर सामन्त वर्ग का भीषण अत्याचार होता था। उधर मिलों के मजदूर कराहते थे। सरकार सब कुछ देखते हुए भी कुछ न देखती थी और पीड़ितों की पुकार पर कान न देती थी। सत्ता मद में चूर, चीन का शासक वर्ग अपनी जनता का शोषण करता था और विदेशियों के इशारों पर नाचता था। बेकारी, बेईमानी, भूख, बीमारी, गरीबी, वेश्यावृत्ति और भिक्षावृत्ति का बोलबाला था।

नये चीन के जो सरकारी अधिकारी भारत के आई० सी० एस० अफसरों से मिलते-जुलते हैं अधिकांश रूप में विश्वविद्यालयों के ऐसे छात्र हैं जो कोमिंतांग सरकार के विरुद्ध आन्दोलन में भाग ले चुके हैं और अपने विश्वासपात्र होने का सबूत दे चुके हैं। इन अधिकारियों ने अपनी मर्जी से सुख-सुविधा का परित्याग कर दिया है। उनका कहना है कि जनता पानी के समान है जिसमें हमारा अस्तित्व मछलियों-का-सा है। पानी के न रहने पर मछली जीवित नहीं रह सकती। इसलिए वे अपने आप ही बहुत कम वेतन लेते हैं जो कारखाने के किसी भी मजदूर के वेतन के बराबर होगा। वे दो-दो जोड़ी सूती और ऊनी यूनीफार्म लेते हैं जो अत्यन्त सादे होते हैं। दुनिया के किसी भी देश में शायद इस वर्ग के अधिकारी इतना अधिक काम न करते होंगे और न इतनी असुविधा ही सहन करते होंगे जो चीनी अधिकारियों ने सहर्ष स्वीकार की है।

यही नहीं बीस वर्ष के संघर्ष और निराशाओं के बाद जब कम्यूनिस्टों को सत्ता प्राप्त हुई तो वे मद से चूर नहीं हो गये और उन्होंने निर्माण के काम की ओर ध्यान भी दिया। पहले ख्याल यह किया जाता था कि कम्यूनिस्ट सभी वर्गों और पार्टियों को भंग करके अन्त में सर्वाधिकारवादी सरकार बनायेंगे, पर उन्होंने ऐसा

नहीं किया। इसके विपरीत उन्होंने अपने को गौण ही रखा। चीन की संसद् में उनके पास एक तिहाई जगहें हैं। नयी शासन-व्यवस्था के हरेक क्षेत्र में और हरेक स्तर पर गैर कम्यूनिस्ट ही नहीं पिछले कोमिंतांग वर्ग के कुछ लोग भी काम करते हैं जिनमें सुधार होगया है। आज चीन के ६ उपप्रधानों में से तीन गैर कम्यूनिस्ट हैं और माओत्से तुंग के बाद इन्हीं का स्थान है। सरकार में आधे दर्जन से अधिक पार्टियों के मंत्री हैं। सरकार की रूपरेखा एक विशाल पिरामिड जैसी है। गाँव, शहर, प्रान्त और चीन की केन्द्रीय सरकार एक दूसरे से खूब मजबूती के साथ सम्बन्द्ध हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में संस्थाएँ बनी हुई हैं। जनता की जरूरतें और जनता की इच्छा ही सरकार में व्यक्त होती है। जिस प्रकार शरीर में अनगिनत धमनियों और शिराओं का जाल फैला है उसी प्रकार केन्द्रीय सरकार का गाँवों, नगरों और प्रान्तों के साथ सम्बन्ध है। केन्द्रीय सरकार का कोई भी आदेश चीन के हरेक कोने में पहुँच जाता है। नयी व्यवस्था की छोटी-से-छोटी कड़ी ग्राम-संस्थाएँ हैं और पीकिंग सरकार उन सबसे ऊपर है जिसका पूरा नियंत्रण रहता है। फिर भी यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि चीन की किसी भी शासकीय संस्था का चुनाव नहीं हुआ; सब की सब सरकार द्वारा नामजद है।

आर्थिक क्षेत्र में चीन सरकार की नीति को कम्युनिस्ट-नीति नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसने निजी सम्पत्ति को मान्यता दे रखी है। लोगों को जमीन, जायदाद अथवा कारखानों का मालिक होने का अधिकार है। साथ ही इसमें सामूहिक खेती की भी कोई चर्चा नहीं की गयी। इन सुधारों को लागू करने में कितनी उदारता से काम लिया जा रहा है इसका अनुमान एक मिसाल से लग जायगा। इन सुधारों के साथ एक व्यवस्था यह है कि यदि कोई व्यक्ति लगान के रूप में अथवा कर्जे के ऊपर व्याज के रूप में रकम लेकर शोषण करता हुआ पाया जायगा और उसके परिवार के सदस्यों की संख्या अधिक न होगी और खर्च कम होगा तो उसे जमींदार समझा जायगा परन्तु परिवार बहुत बड़ा होने और खर्च अधिक होने पर ऐसे व्यक्ति को धनी किसान माना जायगा चाहे इन दोनों अवस्थाओं में वह व्यक्ति खुद ही परिश्रम क्यों न करता हो।

भूमि-सुधारों के सम्बन्ध में सरकार की नीति वास्तविकता पर आधारित है। निजी सम्पत्ति रखने के साथ-साथ लोगों को मुनाफा कमाने का हक भी है, किन्तु यह मुनाफा बहुत सीमित ही हो सकता है। सामन्तवादी शोषण का अवश्य कोई स्थान नहीं रहा है और उसे सभी रूपों में समाप्त कर दिया गया है। भूमि-कर पैदावार का कोई पच्चीस से तीस प्रतिशत होता है जो अनाज के रूप में दिया जा सकता है। मुद्रा-स्फीति को रोकने के लिए चीन में जो उपाय किये गये हैं उनमें यह काफी

महत्त्वपूर्ण है। जमींदारों की जमीनें तो जब्त कर ही ली गयी हैं पर जो खुद खेती करना चाहते थे उन्हें इसकी अनुमति भी दी गयी है। नयी चीन सरकार को थोड़े ही समय में अपने दृढ़ निश्चय के कारण उस चोरबाजारी और भ्रष्टाचार को समाप्त करने में भी सफलता मिली है जो च्यांगकाई शेक के समय में फैला हुआ था। इस दिशा में उनकी सफलता को अनेक विदेशियों ने स्वीकार किया है।

किन्तु मैं यह भी कहे बिना नहीं रह सकता कि चीन के भूमि-सुधारों को जितनी तूल दी जाती है उतने प्रभावकारी वे सिद्ध नहीं हुए। हमारे देश में भूदान-यज्ञ के रूप में जो नयी भूमि-क्रान्ति हो रही है वह भी किसी तरह कम सराहनीय नहीं है। हम कह सकते है कि आचार्य विनोबा भावे का यह आन्दोलन जो हमारे देश की गांधीवादी विचारधारा के अनुकूल है और जिससे व्यक्ति की स्वेच्छापूर्ण त्याग-भावना प्रकट होती है अपने आप में किसी तरह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी नयी चीन सरकार ने कुछ परिवर्तन किया है। पहले चीन में शिक्षा कुछ इने-गिने व्यक्ति ही प्राप्त कर सकते थे जिनके पास साधन होते थे। नये चीन में शिक्षा सबके लिए आवश्यक वस्तु समझी जाती है। नये चीन में सारे स्कूल सरकार ने अपने अधिकार में ले लिये हैं, और शिक्षा का उद्देश्य लोगों को केवल क्लर्क बनाना नहीं है। नये चीन में शिक्षा को जीवनोपयोगी बनाने का लक्ष्य सामने रखा जाता है। सेना में अफसर अपने खाली समय में सैनिकों को पढ़ना-लिखना सिखाते है। सैनिक स्वयं अपने खाली समय में किसानों को सहायता देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। अन्तिम आँकड़ों के अनुसार १९५१ में प्राइमरी स्कूलों में ३ करोड़ ७० लाख, स्कूलों में १५ लाख ७० हजार और कॉलेजों में १ लाख २९ हजार विद्यार्थी पढ़ रहे थे। इसी वर्ष १५ लाख मजदूरों ने दस्तकारी के स्कूलों में शिक्षा ली और ढाई करोड़ किसानों ने जाड़ों के दिनों में पढ़ाई का कार्यक्रम पूरा किया। फिर भी जैसा पहले कहा गया है कि शिक्षा का स्टैण्डर्ड वहाँ का ऊँचा नहीं कहा जा सकता।

औद्योगिक क्षेत्र में भी चीन उन्नति कर रहा है, पर बहुत अधिक नहीं। स्वदेशीपन पर जोर देने के कारण वहाँ आत्मनिर्भरता कुछ दूर तक सम्भव हो सकी है। एक और कारण यह है कि मजदूरों को अधिक-से-अधिक सुविधाएँ देने का यत्न किया जाता है।

आज का चीन काफी अच्छी प्रगति कर रहा है। सारा राष्ट्र पुनर्निर्माण के काम में जुटा हुआ है। ईमानदारी, सादगी और जनता की सेवा ये सिद्धान्त सामने रखे गये हैं। कुछ लोगों का मत है कि चीन पर रूस का अत्यधिक प्रभाव है, और मेरी राय में यह मत सही है।

जो कुछ हो एक बात स्पष्ट है। नये चीन में उस राजनीतिक एकता की स्थापना हो गयी है जिसका पिछली एक शताब्दी से अभाव था। जहाँ तक भाषा, लिपि, रीति-रिवाज और विश्वासों की एकता का सम्बन्ध है वह तो सदा से बनी हुई थी ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार विदेशी शासन के अधीन भारत का पतन तो हो गया था किन्तु नैतिक विश्वासों की और संस्कृति की एकता अटूट बनी रही। चीन में अल्प समय में जो कुछ हुआ है उसने संसार का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। चीन में भारत के लिए मैंने बड़ा सद्भाव पाया। भारत भी आज के चीन को बड़े आदर की दृष्टि से देखता है। यदि आने वाले दिनों में भारत और चीन का सम्पर्क और भी गहरा होता गया तो इससे अधिक हर्ष की और क्या बात हो सकती है। जब मैं सारे दक्षिण-पूर्वी एशिया और दूर पूर्व पर दृष्टिपात करता हूँ तो मुझे ज्ञात होता है कि द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् इस भूखण्ड में चीन, जापान और भारत इन तीन नयी एशियाई शक्तियों का उदय हुआ है। हम कह सकते हैं कि जहाँ चीन की शक्ति का सबसे अधिक परिचय सैनिक क्षेत्र और जापान की शक्ति का परिचय औद्योगिक क्षेत्र में मिला है वहाँ भारत की शक्ति का परिचय नैतिक क्षेत्र में मिला है।

३३

संसार के उस देश में जिसमें सबसे अधिक धार्मिक वायुमण्डल है

हांगकांग से रवाना होने भर की कठिनाई थी, फिर वहाँ से चलकर स्याम की राजधानी बेंगकाक पहुँचने में केवल ५। घण्टे लगे, क्योंकि हांगकांग से बेंगकाक लगभग एक हजार मील ही था। इंगलैण्ड से कैनेडा और सैन्फ्रेन्सिस्को से हनालुलू तथा हनालुलू से टोकियो की उड़ानों के सामने यह उड़ान तुच्छ-सी जान पड़ती थी। इस उड़ान से बड़ी तो और भी कई उड़ानें उड़ी जा चुकी थीं।

बेंगकाक के हवाई अड्डे पर भारतीय दूतावास के श्री सुब्रह्मण्यम् हमें लेने के लिए मौजूद थे। बेंगकाक में हमारे ठहरने का प्रबन्ध वहाँ के सबसे अच्छे होटल में किया गया था। हवाई अड्डे से हम लोग सीधे होटल पहुँचे। होटल पहुँचते-पहुँचते ही हमें मालूम हो गया कि स्याम देश और भारत में कोई अन्तर नहीं है। वैसे ही प्राकृतिक दृश्य, वैसी ही उद्भिज सृष्टि और वैसी ही गेहुँए वर्ण की जनता। हाँ, वहाँ की जनता की पोशाक और भारत की जनता की पोशाक में काफी अन्तर था। वहाँ के उन नर-नारियों को छोड़, जिनकी वेशभूषा पश्चिमी थी, शेष लोग स्यामी लिबास में थे।

स्याम में स्त्रियों और पुरुषों दोनों की ही मुख्य पोशाक कोई ढ़ाई फुट चौड़ी और सात फुट लम्बी धोती होती है जो कमर से घुटनों तक का शरीर ढक लेती है। इसके दोनों सिरे आगे की ओर लटकते रहते हे, जिनको लपेटकर लांग बना ली जाती है। इस वस्त्र को स्याम में 'पानूंग' कहा जाता है और यह सूती या रेशमी होता है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण लोग शरीर के ऊपरी भाग पर या तो कुछ नहीं पहनते या छोटी ढीली जाकट पहनते है। स्त्रियाँ 'पाहूम' नामक एक पट्टी वक्ष-स्थल पर बाँध लेती है या चुस्त बाहोंवाली जाकट पहनती हैं। उच्च वर्ग के लोग जो पूरी पश्चिमी पोशाक नहीं पहनते वे सफेद ड्रिल अथवा टसर के कोट, यूरोपीय ढंग की मलमल की कमीज, हैट, सूती मोजे पहनते है जो 'पानूंग' के साथ बड़े

अच्छे लगते हैं। सरकारी और सैनिक अधिकारियों को हमने यूरोपीय ढंग के वस्त्र पहने देखा। उच्च वर्ग की महिलाएँ ब्लाउज़, रेशमी मोजे और ऊँची एड़ी की जूती पहनती हैं। छोटे बच्चे विशेष अवसरों को छोड़ अधिकतर कोई वस्त्र नहीं पहनते।

होटल पहुँचते-पहुँचते ही हमें वहाँ अनेक भारतीय भी दृष्टिगोचर हुए जिनमें अधिकांश धोती पहने हुए थे। कितने समय और कितनी दूर घूमने के बाद हमने फिर से धोती पहने हुए लोग देखे। इनके सिवा पीत चीवर धारण किये हुए अनेक बौद्ध भिक्षु भी हमें होटल पहुँचते-पहुँचते ही दिखायी दिये। जापान और चीन में भी जहाँ के अधिकांश निवासी अभी भी बौद्ध धर्मावलम्बी हैं, हमें इस प्रकार के बौद्ध भिक्षु नहीं दिख पड़े थे। बाद में हमें मालूम हुआ कि स्याम में हर व्यक्ति को पाँच वर्ष से पच्चीस वर्ष की अवस्था के बीच चार महीने से लेकर चार वर्ष तक बौद्ध भिक्षु होना पड़ता है। जिस प्रकार भारत में एक समय द्विज उपनयन संस्कार से लेकर समावर्तन संस्कार तक ब्रह्मचारी रहते थे उसी प्रकार स्याम में आज भी कुछ-न-कुछ समय के लिए हर व्यक्ति बौद्ध भिक्षु होता है। बौद्ध धर्म स्याम में जीवित धर्म है। बौद्ध धर्म ही वहाँ का राजधर्म है। किसी देश में किसी धर्म का हमने ऐसा जीता-जागता प्रभाव नहीं देखा जैसा स्याम में बौद्ध धर्म का।

कितना हर्ष हुआ हमें आज भारत के इतने सन्निकट पहुँचकर भारत के समान ही भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत भारत के पड़ौसी इस स्याम देश के दर्शन कर।

होटल पहुँचकर हमने अपने स्याम में ठहरने के ढाई दिन का कार्यक्रम निश्चित किया। इस कार्यक्रम में बैंगकाक के दर्शनीय स्थानों को देखने के अतिरिक्त, जिनमें अधिकतर बौद्ध मन्दिर थे, मेरे सार्वजनिक भाषण का आयोजन भी था। इस भाषण का प्रबन्ध बैंगकाक की 'थाई-भारत कल्चरल सुसाइटी' करने वाली थी। स्याम में लगभग दस हजार भारतीय रहते हैं जिनमें लगभग आठ हजार बैंगकाक में हैं। मेरा यह भाषण भारतीय जनता के बीच होने वाला था।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही से हमारी बैंगकाक घुमाई आरम्भ हुई जो बैंगकाक से बिदा होने तक चलती रही।

बैंगकाक का अपना इतिहास है। गत सत्रह सौ वर्ष में धीरे-धीरे ही यह नगर बन पाया है। धीरे-धीरे मेनाम नदी की मिट्टी से समुद्र पटता गया और बैंगकाक नगर का निर्माण हुआ। इस नदी की मिट्टी अब भी जमती जा रही है और हो सकता है कि कभी आगे चलकर बैंगकाक भी समुद्र से उसी तरह दूर हो जाय जैसे कि अयोध्या हो गया है।

दक्षिण-पूर्वी एशिया में बैंगकाक सबसे बड़ा नगर है और १७८२ से ही

१६८. 'वात अरुण' बैंगकाक का सबसे बड़ा बौद्ध-मन्दिर
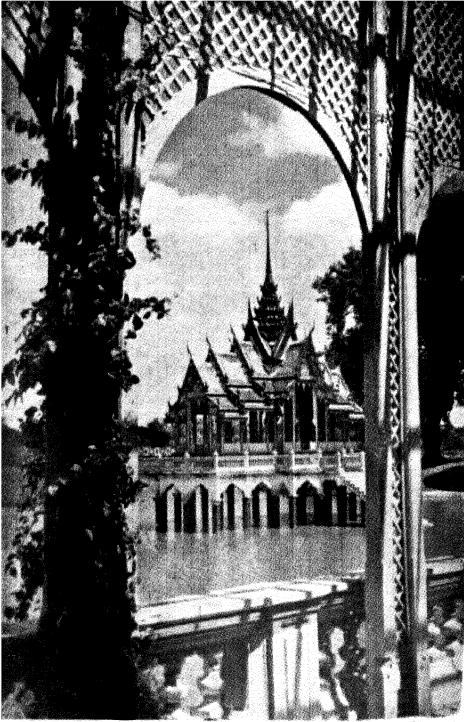
१६९. 'वात वैन्यामा बोर पितृ' संगमरमर मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध बैंगकाक का एक अन्य बौद्ध-मन्दिर

१७०. बैंगकाक में बुद्ध की एक विचित्र मूर्ति

स्याम की राजधानी है। इसके अतिरिक्त बैंगकाक देश के व्यापारिक और औद्योगिक जीवन का भी केन्द्र है। दर्शकों के दृष्टिकोण से इसे एक बेजोड़ नगर समझना चाहिए। मनोहर प्राकृतिक दृश्यों का बाहुल्य तो है ही, सुन्दर महलों और मन्दिरों से उसकी छटा द्विगुणित हो गयी है। पुरातन और नूतन का जैसा मोहक संगम यहाँ है वैसा संसार के अन्य किसी देश की राजधानी में कदाचित् ही देखने को मिले। आधुनिक युग की कोई भी ऐसी सुविधा नहीं जो वहाँ प्राप्त न हो किन्तु इस पर भी वहाँ के सदियों से वैसे हं. चले जाने वाले जीवन की झाँकी भी सहज ही मिल जाती है। प्राचीन और नवीन के ताने-बाने से बुना हुआ दर्शक के सामने ऐसा स्वप्निल जगत् उपस्थित होता है कि वह आत्मविभोर और आत्मविस्मृत रह जाता है।

इस सबके बावजूद भी बैंगकाक भारतीय नगरों से मिलता-जुलता ही जान पड़ा। सफाई में बैंगकाक कदाचित् भारतीय नगरों से अच्छा है। बाहरी बस्तियों समेत इस नगर की आबादी है लगभग दस लाख। धनवान और गरीब सभी तरह के लोग हैं, स्वभावतः धनवानों से गरीबों की संख्या अधिक है ही पर गरीबी भारत से बहुत कम है। फिर सुना गया कि वहाँ के निवासी बड़े बेपरवाह स्वभाव के हैं। जो मिलता है कल के लिए उसका संग्रह न कर उसी दिन उसे खर्च कर डालते हैं।

बैंगकाक में हमने वहाँ के बौद्ध मन्दिरों तथा कुछ बौद्ध विहारों को भी देखा। कुछ बौद्ध मन्दिर सचमुच ही कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं। तीन बौद्ध मन्दिर वहाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। पहला है 'वात अरुण'। यह अपने अत्यन्त विशाल पैगोडा के कारण प्रसिद्ध है। (चित्र नं० १६८) दूसरा है 'वात वेन्चामा बोरपितृ'। इसमें संगमरमर, चीनी मिट्टी और कांच का बड़ा कारीगरी का काम है (चित्र नं० १६९) और तीसरा है 'पन्ने की बुद्ध मूर्ति वाला'। इसकी पन्ने की बुद्ध मूर्ति तो विलक्षण है ही; इसके सिवा इसकी भित्तियों पर पूरी रामकथा चित्रित है। पर स्याम की रामकथा और हमारी रामकथा में अनेक अन्तर हैं; दृष्टान्त के लिए हमारे हनुमान ब्रह्मचारी हैं पर स्यामके हनुमान अनेक पत्नियों और रखैलों वाले। एक खड़ी, एक शयन करती हुई बौद्ध मूर्तियाँ भी बड़ी विशाल हैं (चित्र नं० १७१, १७२, १७३)। एक बौद्ध विहार में हमने बौद्ध भिक्षु और बौद्ध भिक्षुणियों के भी दर्शन किये। बौद्ध भिक्षु पीत चीवर पहने हुए अन्य बौद्ध भिक्षुओं के समान ही थे, परन्तु बौद्ध भिक्षुणियों के हमने पहले-पहल दर्शन किये थे। ये भिक्षुणियाँ सद्धर्म्म की साधना में संलग्न थीं। हमें दो भिक्षुणियों के दर्शन हुए—एक की अवस्था थी कोई पैंतालीस वर्ष की और दूसरी की लगभग पच्चीस वर्ष की। दोनों सफेद साड़ियाँ पहने थीं और जब उनके गुरु ने उन्हें हमें दर्शन देनेको बुलाया तब अपने साधनास्थल से जहाँ वे बुलायी गयीं वहाँ तक आते-आते उन्हें न्द्रह-बीस मिनिट लग गये, यद्यपि इस बीच उन्हें केवल कुछ ही गज पैदल चलना

पड़ा। वे एक-एक डग इतना सँभालकर धीरे-धीरे रखती थीं कि इतनी धीरी चाल से महीनों लंघन करनेवाला अथवा कोई बड़े भारी ऑपरेशनसे मुक्त हुआ रोगी ही चलता है। सुना कि धर्म की साधना के समय इन्हें अपने शरीर को भी इतना सँभालकर रखना पड़ता है कि मस्तिष्क, हृदय अथवा शरीर के किसी अवयव को किसी प्रकार का धक्का या झटका न लगने पावे।

बौद्ध मन्दिरों और बौद्ध विहारों को देखने के सिवा हमने स्याम का प्रसिद्ध रंगमंच भी देखा। इन दिनों बैंगकाक में एक प्रदर्शनी भी हो रही थी। हम इस प्रदर्शनी को भी देखने गये।

स्याम की कला और वहाँ का साहित्यधर्म से बहुत अधिक प्रभावित है यहाँ तक कि धर्म का ही एक अंग रहा है। आधुनिक समय में इस स्थिति में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ है। स्याम का रंगमंच उन्नत है। कुछ समय पहले तक प्राचीन शास्त्रीय नाट्य-शैली का अनुसरण किया जाता था किन्तु १९१० के बाद से नयी दिशा में भी उन्नति होने लगी है। इसमें प्राच्य और यूरोपीय पद्धति का मिश्रण कर दिया गया है। स्याम के प्राचीन शास्त्रीय नाटकों की तुलना हम अपने यहाँ की रामलीला आदि से कर सकते हैं। इसमें चेहरे पर नकली चेहरे लगाने का प्रयोग होता है; आवाज भी स्वाभाविक नहीं रहती और हावभाव प्रकट करने के निश्चित तरीके होते हैं। इस प्रकार के नाटक वहाँ जन नाटक कहे जाते है, क्योंकि लोग कला में परिष्कार की ओर अधिक ध्यान दिये बिना इनसे आसानी से मनोरंजन प्राप्त कर लेते हैं।

स्याम की शास्त्रीय नाट्य-कला को पूर्ण रूप से स्याम की कला तो नहीं कहा जा सकता किन्तु उसकी कुछ अपनी विशेषताएँ अवश्य हैं। स्याम को यह कलानिधि भारत से प्राप्त हुई। स्याम के नाटक दो कोटि के हैं—(१) खोन—जिसमें सभी पुरुष-पात्र नकली चेहरे लगाते हैं, (२) लाकौन —जिसमें पुरुष-पात्र केवल दैत्यों अथवा पशुओं का चित्रण करने के लिए ही नकली चेहरों का प्रयोग करते हैं। इन नाटकों में वस्त्रों की विविधता और शृंगार बाहुल्य का बहुत अधिक स्थान है। शृंगार और वेशभूषा के साथ-साथ संगीत और नृत्य का प्राधान्य रहता है। (चित्र नं० १७४,१७५)

ता० १५ के प्रातःकाल मेरा सार्वजनिक भाषण हुआ और इस भाषण के अवसर पर ही मैंने स्याम की उस प्रसिद्ध थाई-भारत कल्चरल सुसाइटी के भवन तथा कार्यों को देखा एवं इस संस्था के प्रधान-प्रधान संचालकों से भेंट की, जिस संस्था ने मेरे इस भाषण का प्रबन्ध किया था। इसके प्रधान संचालक आजकल श्री रघुनाथ शर्मा हैं।

प्रातःकाल का समय होने पर भी इस सभा में बड़ी ही अच्छी उपस्थिति थी। इस उपस्थिति तथा मेरे भाषण की जो प्रतिक्रिया हुई उससे मुझे ज्ञात पड़ा कि

१७१. खड़े हुए बुद्ध की प्रतिमा
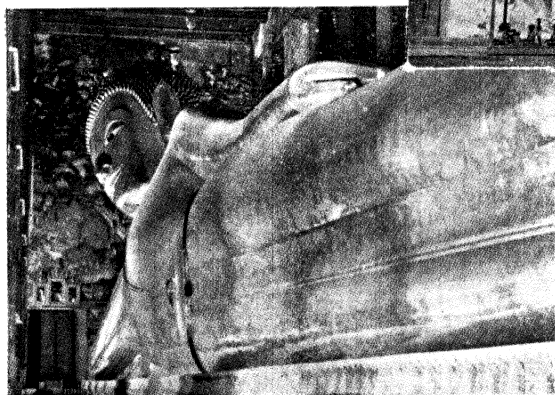
१७२. लेटे हुए बुद्ध
की प्रतिमा

१७३. लेटे हुए बुद्ध
की प्रतिमा के चरण
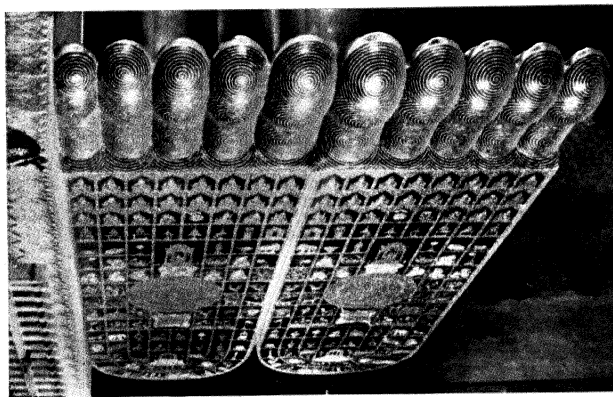
१७४-१७५. बैंगकाक के नाटक के दो दृश्य

यहाँ बसे हुए भारतीयों का भारत के प्रति कितना अधिक अनुराग है। अफ्रीका के भिन्न-भिन्न देशों, फीजी, न्यूजीलैण्ड सभी स्थानों में बसे हुए भारतीयों में मैं यही भावना देख चुका था। भारत की सुन्दर भूमि और उसकी संस्कृति को भारतवासी चाहे कितनी ही दूर और कितने ही दीर्घकाल से क्यों न बस जायँ विस्मृत नहीं कर पाते। अफ्रीका और फीजी में तो मै ऐसे भारतीयों को भी देख चुका था जिनके पूर्वज भारत से उन देशों को गये थे, जिन्होंने स्वयं भारत के दर्शन तक न किये थे और भारत से उनके पूर्वज उन देशों को आर्थिक कष्ट, महान् कष्ट, के कारण गये थे। ऐसे व्यक्तियों को भी भारत का नाम सुनते ही रोमांच हो आता था, उनकी आँखों में आँसू छलछला आते थे। धन्य ! तू धन्य है भगवान की प्रिय भूमि ! जहाँ विहार करने भगवान् स्वयं अवतार धारण करते हैं। और मुझे तो तेरा वियोग बहुत काल तक सह सकना ही महान् कष्टप्रद हो जाता है। मैं सोचने लगता हूँ कि इन सुखमय वैदेशिक दौरों से भी मैं कितने शीघ्र भारत लौटने को आतुर हो जाता हूँ। अफ्रीका, न्यूजीलेंड, आस्ट्रेलिया, फीजी, मलाया और इस पृथ्वी-परिक्रमा में हर बार तो मैंने यही अनुभव किया।

अपने बैंगकाक के भाषण में भी मैंने वहाँ बसे हुए भारतीयों से वही बातें कहीं जो मैं विदेशों में बसे हुए भारतीयों से कहा करता हूँ। भारत को कदापि न भूलो, उस पुण्य भूमि के प्रति अगाध भक्ति, उसकी संस्कृति के प्रति असीम श्रद्धा रखो, परन्तु जिस देश में बसे हो उसे विदेश न मान अपना देश समझ वहीं के निवासियों को अपना भाई मानो, उनसे घुल-मिल जाओ। अपने पृथक् अधिकारों की बात कभी न उठाओ और जहाँ बसे हो उस देश तथा वहाँ की जनता के हित में अपना हित समझो।

मैंने सुना कि मेरे इस भाषण की बैंगकाक में बहुत समय तक चर्चा होती रही।

ता० १५ को हवाई जहाज से हम लाग स्याम से बर्मा के लिए रवाना हो गये।

३४
स्याम पर एक दृष्टि

न जाने क्यों मैं यह समझता था कि स्याम एक बहुत ही छोटा देश है और वहाँ की आबादी भी नगण्य है। मैंने देखा कि मेरा यह निरा भ्रम था।

स्याम दक्षिण-पूर्वी एशिया के उस छोर का ही एक भाग है जिसमें बर्मा, हिंदचीन और मलाया आदि देश हैं। स्याम इन तीनों देशों और समुद्र से घिरा हुआ है। स्याम का क्षेत्रफल दो लाख एक सौ अड़तालीस वर्ग मील और आबादी ८८ लाख के लगभग है। देश का शासन-प्रबन्ध सम्राट् के हाथ में है जो मंत्रिमण्डल के परामर्श से कार्य करता है। शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से सारा राज्य अठारह भागों में बँटा है। स्याम में एक हजार तीन सौ मील लम्बी सरकारी रेलें हैं। वहाँ के जन-जीवन पर धर्म का कितना गहरा प्रभाव है इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वहाँ मंदिरों की संख्या तेरह हजार से अधिक और पुरोहितों की संख्या ८७ हजार से अधिक होगी।

स्याम भूमध्य रेखा के पास वाले उन गिने-चुने देशों में से है जिन्हें पूर्ण स्वतंत्र रहने का अवसर मिला। यहाँ के ९५ प्रतिशत निवासी खेती से आजीविका कमाते हैं। यहाँ के चीनियों का काम अधिकतर व्यापार है।

स्याम के ९० प्रतिशत लोग बौद्ध हैं। आकृति, वर्ण, रंग और आकार की दृष्टि से स्यामवासी मंगोल रक्त के हैं, किन्तु वास्तव में स्याम-वासियों को किसी एक जाति का नहीं कहा जा सकता। मध्य भाग में, जो कि स्याम का सबसे घनी भाग है, वे लोग रहते हैं जो अपने को थाई कहते हैं। इनकी संख्या कोई चालीस लाख होगी। इसके अतिरिक्त स्याम में बर्मियों, करेनियों, अलामियों और मलय लोगों से गहरी समानता रखने वाले लोग पाये जाते हैं।

यहाँ के निवासियों का रंग गहरा भूरा होता है। उच्च कुल की महिलाओं का रंग काफी सफेद भी पाया जाता है, किन्तु दूसरी ओर चाकलेट रंग से मिलते हुए व्यक्ति भी पाये जाते हैं। इन लोगों के बाल काले और आँखें भूरी चमकदार होती हैं। साधारणतया आदमियों की ऊँचाई पांच फुट दो इंच और स्त्रियों की चार

फुट दस इंच होती है।

व्यापारिक क्षेत्र में स्यामवासी कोरे हैं इसलिए अधिकांश व्यापार विदेशियों के हाथों में है। किसानों की आवश्यकताएँ कम होती हैं। दो-तीन महीने के परिश्रम से वे वर्ष भर के लिए चावल की फसल उगा लेते हैं। शहर के लोगों की आवश्यकताएँ अधिक हैं। किसानों के मकान लकड़ी के बने होते हैं। ये मकान अत्यन्त सादे ढंग के होते हैं, किन्तु शहरों में विशेषकर बेंगकाक में पक्के भवन बनाये जा रहे हैं। समुद्र-तट के पास आसपास तैरते हुए मकान स्याम की विशेषता है। ये मकान बड़ी-बड़ी नावों पर बने होते हैं। स्याम में उद्योग-धन्धे कम हैं। चावल की खेती बहुत बड़े पैमाने पर होती है, इसलिए चावल साफ करने के कारखाने हैं। अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के बाद जो चावल बचा रहता है विदेशों को भेज दिया जाता है। चावल के अतिरिक्त स्याम में नारियल, खोपरा, कालीमिर्च, दालें, रबर और फल उत्पन्न होते हैं। अन्य छोटे-मोटे उद्योगों में नाव बनाने, ईंट पकाने, मिट्टी के बर्तन बनाने, बुनाई और रेशम-उद्योग की गणना की जा सकती है। लोगों की मुख्य खुराक चावल और मछली है। स्याम में अन्य मवेशी तो होते ही हैं पर वह हाथियों के लिए भी प्रसिद्ध है। उत्तरी स्याम में सागौन की इमारती लकड़ी प्राप्त होती है। वहाँ पाये जाने वाले खनिज पदार्थों में कोयला, लोहा और राँगा मुख्य हैं। स्याम के जीवन में जलस्थल का लगभग बराबर महत्त्व है। कहना चाहिए कि जब से बच्चा चलना सीखता है लगभग तभी से तैरना भी सीख जाता है। स्त्रियाँ नावों पर बाजारों को जाती हैं जो बहुधा पानी पर ही होते हैं। रेलें होने पर भी उत्पादन-स्थल से मंडियों तक माल को पहुँचाने का मुख्य साधन अब भी नाव है। व्यापार का सात बटा दस भाग नावों की सहायता से ही होता है। बहुत से लोग अपने जीवन के बहुत भाग में या सारे जीवन भर नावों पर ही रहते हैं।

स्याम में बच्चे के जन्म आदि का प्रबन्ध भारत जैसा ही किया जाता है। होने वाली माता को बिलकुल अलग रखा जाता है। बच्चे का जन्म होने के बाद पंडित को बुलाया जाता है जो उसकी जन्म-कुण्डली तैयार कर देता है। पाँच वर्ष की अवस्था तक बच्चे नग्न रहते हैं। ६ वर्ष की उम्र में अक्षर-बोध शुरू किया जाता है और वस्त्र भी पहनाने आरम्भ कर दिये जाते हैं। उन्नीस-बीस वर्ष का होने पर लड़का और लगभग पन्द्रह वर्ष की होने पर लड़की विवाह-योग्य हो जाते हैं। भारत की तरह विवाह की रस्म लड़की के पिता के यहाँ ही होती है।

स्याम की भाषा में पाली और संस्कृत दोनों का मिश्रण है। इसमें ४४ व्यंजन और ३२ स्वर-चिह्न होते हैं। स्यामी भाषा बायें हाथ से दायें हाथ की ओर लिखी जाती है और शब्दों के बीच रिक्त स्थान नहीं छूटता। इतने स्वर और व्यंजन शायद

ही किसी दूसरी भाषा में हों।

स्याम भारत का पड़ोसी देश होने के कारण भारतीय संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित है। यों तो बौद्ध धर्म के कारण भारतीय संस्कृति का प्रभाव चीन, जापान आदि सभी पूर्वीय देशों पर है, पर स्याम, बर्मा, मलाया, सीलोन आदि पर बहुत अधिक।

इन देशों में भारतीय जन-संख्या भी बहुत अधिक है। जैसा ऊपर कहा गया है स्याम में लगभग दस हजार भारतीय रहते हैं।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का आजाद हिन्द फौज के काल में स्याम भी आना हुआ था।

३५

विहारों और स्तूपों के देश में

बेंगकाक से रंगून पहुँचने में हमें केवल ३६२ मील जाना था जिसमें लगभग दो घण्टे लगे। रंगून हम अपराह्न में लगभग ४ बजे पहुँचे। रंगून के हवाई अड्डे पर हमें लेने भारतीय दूतावास के प्रतिनिधि के अतिरिक्त मेरे भारत के परम मित्रों में से श्री व्रजवल्लभदास जी मूँदड़ा तथा बर्मा की अनेक भारतीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों का एक खासा जमाव था। जिन संस्थाओं के लोग हवाई अड्डे पर आये थे उन संस्थाओं के नाम हैं—ऑल बर्मा-इण्डियन कांग्रेस, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, मारवाड़ी नवयुवक संघ। जो सज्जन आये थे उनमें मुख्य थे श्री जयन्ती भाई जोशी, व्रजवल्लभदास जी मूँदड़ा, डा० ओमप्रकाश, श्री सत्यनारायण गोयनका, श्री गोपीकृष्ण केजड़ीवाल, श्री भट्टड़, श्री सुन्दरलाल कोचर, श्री दादाचन्द आदि। जब हम रंगून के हवाई अड्डे पर उतरे उसी समय हम जिस हवाई जहाज से आये थे उसी हवाई जहाज से बर्मा के साम्यवादी दल के वे प्रतिनिधि भी उतरे, जो चीन के हाल ही के शान्ति-सम्मेलन में भाग लेने गये थे। उनके स्वागत के लिए भी लाल झण्डों के साथ एक भीड़ इकट्ठा थी, जिससे हमें मालूम हुआ कि बर्मा में कुछ न कुछ साम्यवादी अवश्य है। इनके कारण हमें चुंगी आदि के कामों से निपटने के लिए हवाई अड्डे पर काफी देर लगी।

रंगून में हमारे ठहरने की व्यवस्था श्री व्रजवल्लभदास जी मूँदड़ा के स्थान पर थी। हमारे बर्मा आने की खबर मिलते ही उन्होंने जब हम जापान में थे, उसी समय मुझे लिखा था कि हम उन्हीं के साथ ठहरें और यद्यपि मैंने उन्हें दो बार लिखा था कि इस दौरे के अन्य स्थानों के सदृश रंगून में भी हम किसी होटल में ठहर जायेंगे, और वे इस सम्बन्ध में कष्ट न करें, पर भला मूँदड़ा जी कब मानने वाले थे। सामाजिक सुधार के क्षेत्र में वे और मैं माहेश्वरी महासभा में अनेक वर्ष साथी कार्यकर्ता रहे थे। आजकल रंगून में भी उनका व्यापारी दफ्तर था। हम लोग उन्हीं के साथ ठहरे और कितनी महान् आवभगत की उन्होंने हम लोगों की।

रंगून एरोड्रोम से ज्यों ही हम रवाना हुए हमें जान पड़ा जैसे हम भारत में

ही आ गये हैं। रंगून हमें कलकत्ते का ही एक हिस्सा जान पड़ा। आखिर बर्मा वर्षों तक भारत का ही भाग रह चुका था और मेरा तो विश्वास है कि विदेशी शासकों ने बर्मा को यदि भारत से पृथक् न किया होता तो बर्मा भारत के ही संग रहता तथा भारत में आज खाद्य-पदार्थों में चावल की जो सबसे बड़ी समस्या है वह हमारे सामने खड़ी ही न होती। बर्मा और भारत के स्वार्थों में भी कोई संघर्ष न था और जिस समय बर्मा भारत से अलग किया गया उस समय भी बर्मा की जनता का बहुमत इस पृथक्करण के विरुद्ध था।

हम लोग तीन दिन रंगून में रहे। इन तीन दिनों में रंगून देखने के कार्यक्रम को गौण तथा सार्वजनिक कार्यक्रम को मुख्य स्थान मिला जो इस दौरे के अब तक के कार्यक्रमों में कैनेडा के कार्यक्रम को छोड़कर उल्टी बात थी।

रंगून की सबसे अधिक दर्शनीय वस्तु 'श्वेड्गान' पगोडा है (चित्र नं० १७७)। कहा जाता है कि इसका निर्माण ईसा से ५५८ वर्ष पूर्व हुआ था। यह पगोडा शहर से १६८ फुट ऊँचे और ६०० फुट लम्बे व ६०० फुट चौड़े चबूतरे पर बना है। सीढ़ियों से चढ़कर ही इस पर जाना होता है। यात्रीगण जूते उतारकर ही वहाँ जाते हैं। सीढ़ियों के दोनों ओर पत्र, पुष्प तथा अन्य सामग्री बेचने वाले लोग बैठे रहते हैं। पगोडा की परिधि १,३५५ फुट और उँचाई ३६० फुट है। नीचे से लेकर ऊपर तक इस पर स्वर्णपत्र चढ़ा हुआ है जिसे समय-समय पर बदला जाता है। सबसे ऊपर जो छत्र है उसे सबसे पहले राजा मिडनमिन ने बनाया था और इस पर सात लाख रुपया व्यय हुआ था, किन्तु १६३० के भूचाल में यह छत्र नष्ट हो गया था। इसके स्थान पर एक वर्ष उपरान्त ही सोने का रत्न-जटित छत्र लगा दिया गया।

हम चाहे खुश्की के रास्ते रंगून जायँ चाहे समुद्र अथवा आकाश के रास्ते, यह पगोडा हमें अलग से दिखायी देता है। बर्मा, स्याम, भारत और लंका के कोने-कोने से यात्री यहाँ आते हैं। रात्रि में बिजली के प्रकाश में पगोडा कई मील दूर से दिखायी देता है। चांदनी रात में इसकी छटा अद्‌भुत होती है और आगरे के ताज-महल का स्मरण हो आता है।

पगोडा के हरेक कोने में आधे सिंह और आधे मनुष्य की मूर्ति है। यह मूर्ति लगभग हरेक पगोड़ा में रहती है। इसे द्वारपाल कहा जाता है।

पगोडा के नीचे चार मन्दिर हैं जिनमें भगवान् बुद्ध की अनेक मुद्राओं में मूर्तियाँ हैं। स्थान-स्थान पर विभिन्न आकार की घंटियाँ हैं। एक घण्टा ४२ टन का है जिसे राजा तारावड़ी ने १८४० में भेंट किया था।

पगोडा के पास ही रॉयल लेक और डलहौजी पार्क है। इसके बाद सूल पगोडा आता है। सूल पगोडा के समीप शहर का सभा-भवन है।

१७६. रंगून का एक मार्ग

१७७. रंगून का विश्व-विख्यात् श्वेड्गान पगोड़ा
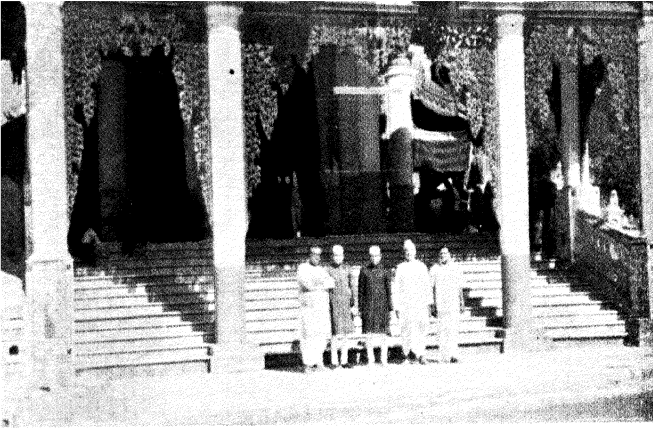
१७८. श्वेड्गान पगोड़ा के मुख्य द्वार पर लेखक और जगमोहन-दास रंगून में बसे कुछ प्रमुख भारतीयों के साथ
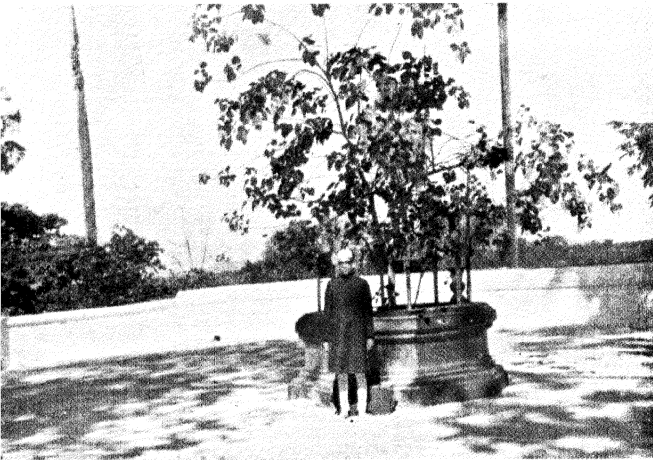
१७९. श्वेड्गान पगोडा के हाते में डाक्टर राजेन्द्र-प्रसाद द्वारा लगाये गये एक वृक्ष के सम्मुख लेखक
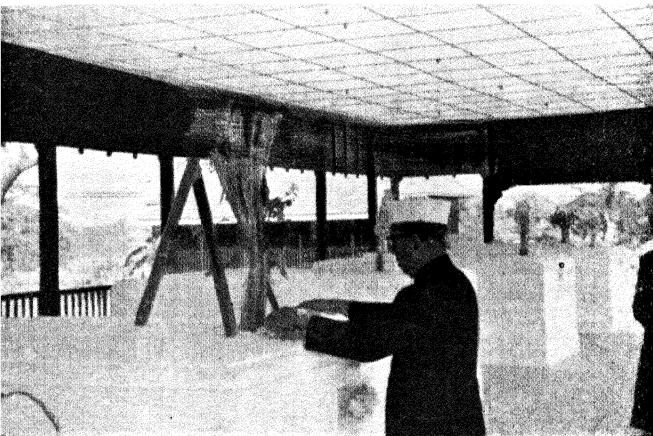
१८०. बर्मा के प्रधान मन्त्री श्री आगसान का समाधि पर लेखक पुष्प-हार समर्पित कर रहे हैं

रंगून की प्रमुख सरकारी इमारतों में गवर्नमेण्ट हाउस, सरकारी दफ्तर, हाई कोर्ट, जनरल पोस्ट आफ़िस, कैथोलिक गिरजाघर और जनरल अस्पताल की इमारतें हैं। शहर से पांच मील दूर प्रोप जानेवाली सड़क पर विश्वविद्यालय है, जो चार सौ एकड़ के क्षेत्रफल में फैला हुआ है।

सिरियाम (Syriam) में नदी पार बर्मा आयल कम्पनी का तेल साफ करने का कारखाना है। रंगून से कोई दो सौ मील उत्तर में येनांग यांग (Yaenang Yaung) में तेल बिना साफ हालत में निकलता है। वहाँ से पाइप लाइन द्वारा और बड़े तेल ढोनेवाले जहाजों की सहायता से, जो ईरावदी नदी में चलते हैं, यह रंगून लाया जाता है।

सिरियाम में हवाई जहाजों के काम आने वाला पेट्रौल तैयार किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य कई वस्तुएँ तैयार की जाती हैं।

बर्मा के बाजार पूर्वी भारत जैसे ही हैं। सबसे बड़ा बाजार मौंटगुमरी सड़क पर बागयोक मार्केट के नाम का है। रंगून में पाँच सौ से अधिक चावल मिल हैं और डेढ़ सौ से अधिक लकड़ी चीरने की मिलें हैं।

रंगून की स्थापना १७५५ ईसवी में राजा अलुंगप्या ने एक विजय के बाद की थी। इसका बर्मी नाम यानगौन (Yangon) है जिसका अर्थ होता है लड़ाई का अन्त। रंगून शहर समुद्र से इक्कीस मील दूर है और इसकी आबादी है पाँच लाख से अधिक। नगर के पन्द्रह मील उत्तर में मिंगलाडन हवाई अड्डा है। रंगून में बौद्ध, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और चीनी बड़े प्रेम-भाव से रहते हैं।

रंगून में जो सार्वजनिक आयोजन मेरे लिए रखे गये थे वे बड़े ही सफल हुए। पहला आयोजन ऑल बर्मा इंडियन कांग्रेस की ओर से उसके सभापति सरदार दुग्गल के सभापतित्व में हुआ। इसमें रंगून के सभी प्रतिष्ठित भारतीय उपस्थित थे। दूसरा आयोजन बर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से था। हमें यह देखकर परम हर्ष हुआ कि बर्मा में भारतीयों के बीच हिन्दी का खासा प्रचार है और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति एक अहिन्दी भाषा-भाषी श्री दादाचन्द जी हैं। तीसरा आयोजन एक बड़े भोज के सहित मारवाड़ी नवयुवक संघ ने किया। इसमें बर्मा के मंत्री श्री रशीद, जिनका कुटुम्ब बर्मा भारत से गया था और जिनके भाई डाक्टर रऊफ अभी जापान में भारतीय राजदूत हैं, उपस्थित थे। चौथा आयोजन वहाँ के राजदूत श्री चेटूर का दिया हुआ एट-होम था। इसमें भारतीयों के अतिरिक्त अनेक प्रमुख बर्मा के निवासियों से भेंट हुई। इनमें मुख्य थे बर्मा के बर्मीय संसद् के अध्यक्ष श्री यूम्यां और इसी नाम के बर्मा के प्रसिद्ध व्यापारी जो हाल ही में रूस की यात्रा करके लौटे थे। बर्मा के कुछ प्रसिद्ध साहित्यिक भी इस आयोजन में उपस्थित थे।

भारतीयों में उल्लेखनीय थे—श्री पी० के० बसु, और श्री एच० सुब्रह्मण्यम् उपसभापति बर्मा इंडियन कांग्रेस, भारतीय दूतावास के श्री कानन पिल्ले, श्री विभाकर और झालावार की रानी साहिबा। अन्तिम आयोजन था श्री ब्रजवल्लभदास जी मूँदड़ा द्वारा दिया गया भोज, जिसमें वहाँ के सभी प्रमुख मारवाड़ी उपस्थित थे।

यहाँ हम लोगों ने जिनसे भेंट की उनमें मुख्य भेंट हुई बर्मा के प्रधान मंत्री से। श्री ऊ नू हमें राजनीतिक क्षेत्र के ऐसे कार्यकर्ता जान पड़े जिनके लिए धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्र का राजनीतिक क्षेत्र से अधिक महत्त्व है। बर्मा के प्रधान मन्त्री पद पर रहते हुए भी वे घण्टों बौद्ध मन्दिर में भजन में बिताते हैं और न जाने कितना सांस्कृतिक काम करते हैं। साहित्यिक क्षेत्र में उन्होंने एक नाटक लिखा है। कैसा भोला तथा सीधापन, कैसी शान्ति और कैसा उल्लास दिखता था उनके मुख पर। ये भाव केवल राजनैतिक कार्यकर्ताओं के मुखों पर दुर्लभ रहते हैं। अभी हाल ही में श्री ऊ नू ने एक बौद्ध मन्दिर बनवाया है जिसके प्रांगण में एक विश्वविद्यालय का निर्माण होने वाला है। पर इस विश्वविद्यालय की स्थापना के पहले बौद्ध धर्म की सारी शाखाओं की एक विषद परिषद् होगी। यह परिषद् बौद्ध धर्म की ऐसी परिषदों में चौथी परिषद् है। पहली परिषद् हुई थी सम्राट् अशोक के समय और दूसरी हुई थी सम्राट् कनिष्क के समय भारत में। इस परिषद् की तैयारी आरम्भ हो गयी है। दो वर्षों के बाद यह आरम्भ होगी और फिर दो वर्ष ही चलेगी। बर्मा में भी बौद्ध धर्म एक जीता-जागता धर्म है और बर्मा के ऐसे प्रधान मंत्री के कारण उसे और अधिक प्रोत्साहन मिल गया है। श्री ऊ नू से मेरी मुलाकात खूब देर तक चली। उनकी और मेरे जीवन की पटरी ठीक बैठती जान पड़ी। कितनी धार्मिक, कितनी सांस्कृतिक, कितनी साहित्यिक चर्चा हुई इस भेंट में। राजनीतिक विषयों का तो अत्यन्त गौण स्थान रहा।

३६
बर्मा पर एक दृष्टि

बर्मा पगोडों, बौद्ध भिक्षुओं, और विहारों का देश है। भारत से यह देश न केवल भौगोलिक दृष्टि से मिला हुआ है वरन् आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी उसी का एक अंग है। बर्मा की सीमा पूर्वी पाकिस्तान, भारत, चीन और स्याम से मिली हुई है। इसके दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम में समुद्र है। बर्मा में पाँच बड़ी नदियाँ हैं—ईरावदी, चिंदविन, सालवीन, सिहांग और मिटंग। सबसे बड़ी नदी ईरावदी है। वर्षा के दिनों में तो इस नदी पर ६०० मील तक स्टीमर और जहाज आ जा सकते हैं।

बर्मा का क्षेत्रफल कोई २ लाख ७२ हजार वर्ग मील है। इसमें से शान राज्यों का क्षेत्रफल ५६ हजार वर्ग मील है। बर्मा का समुद्र-तट दो हजार मील है। बर्मा की जनसंख्या लगभग १ करोड़ ६० लाख है।

बर्मा की मुख्य चीजें चावल, सागौन की लकड़ी और तेल हैं। उत्तरी शान राज्य खनिज-पदार्थों से सम्पन्न है। दक्षिणी बर्मा में तम्बाकू और गन्ने की खेती होती है। ईरावदी नदी का डेल्टा ही सबसे अधिक उपजाऊ प्रदेश है, जहाँ चावल होता है। सारे बर्मा के दो-तिहाई लोग आजीविका के लिए भूमि पर निर्भर रहते हैं। एक हजार व्यक्तियों में से लगभग ६९६ या तो खेती से या जंगलों से जीविका कमाते हैं।

वन सम्पत्ति में बर्मा संसार का सबसे अधिक सम्पन्न देश है। कुछ वृक्ष डेढ़ सौ फुट तक ऊँचे होते हैं। युद्ध से पहले कोई साढ़े चार लाख टन लकड़ी प्रति-वर्ष काटकर गिरायी जाती थी और कोई साढ़े तीन करोड़ रुपये के मूल्य की विदेशों को भेजी जाती थी। देश के ५७ प्रतिशत भाग में यानी एक लाख पैंतालीस हजार वर्ग मील में जंगल हैं। बर्मा की जैसी सागौन की लकड़ी शायद ही संसार में कहीं मिलती हो।

बर्मा की तीसरी महत्त्वपूर्ण वस्तु वहाँ का तेल है। जापानी आक्रमण से पहले चार हजार चार सौ कुँओं में से लगभग ३० करोड़ गैलन तेल निकाला जाता था।

इससे बर्मा की आवश्यकता तो पूरी हो ही जाती थी, ६ करोड़ गैलन पैट्रोल और १४ करोड़ गैलन मिट्टी का तेल भारत को भी दिया जाता था। बर्मा का तेल क्षेत्र मध्य बर्मा में ईरावदी नदी के किनारे है।

बर्मा के लोग बहुत ऊंचे नहीं होते, किन्तु उनका शरीर गठा हुआ और सुडौल होता है। वे रंगीन व भड़कीले, सूती अथवा रेशमी वस्त्र पहनना पसन्द करते हैं। खेल-कूद का भी उन्हें यथेष्ट शौक रहता है। बर्मा के अधिकांश लोग अर्थात् कोई ८५ प्रतिशत बौद्ध हैं। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है इनके पवित्र स्थान पगोडा कहलाते है। स्वयं बर्मी इन्हें पगोडा नहीं बल्कि 'जेदी' अर्थात् पूजा का स्थान कहते हैं। बर्मा के लोग बड़े उदार और दानशील होते हैं। कैसे आश्चर्य की बात है कि बौद्ध धर्म जिसका भारत में जन्म हुआ भारत से तो लगभग मिट गया है, किन्तु बर्मा से लेकर जापान तक सारे दक्षिण-पूर्वी एशिया पर इसी का प्रभुत्व है।

इतिहास के अनुसार बर्मा के लोगों का मूल स्थान तिब्बत का पर्वत प्रदेश और युन्नान (Yunnan) प्रदेश था। धीरे-धीरे ये लोग ईरावदी नदी के उपजाऊ प्रदेश की ओर बढ़े। बर्मा का इतिहास ईसा से ६ शताब्दी पूर्व का है। १०३४ ईसवी से १०७७ ईसवी तक राज्य करने वाले पागान (Pagan) के शासक अना-वर्त ने बर्मा को संगठित व संयुक्त किया। बर्मा के इतिहास में उसे वही स्थान प्राप्त है जो भारत के इतिहास में अशोक को प्राप्त है।

१२८७ में कुबलाई खाँ के आक्रमण के बाद पागान वंश समाप्त हो गया और शान साम्राज्य की स्थापना हुई। स्याम पर भी इस वंश का अधिकार था। आज स्याम के लोग अपने को थाई कहलाना पसन्द करते हैं जो कि शान लोगों का ही प्राचीन नाम है।

धीरे-धीरे कई यूरोपीय देश बर्मा की ओर आकर्षित होने लगे, ये थे पुर्तगाल, हालैण्ड, इंगलैण्ड और फ्रांस। सत्ता के लिए प्रतियोगिता छिड़ गयी। अन्त में विजय अंग्रेजों की रही। १८६६ में उन्होंने बर्मा के अन्तिम राजा थीबा (Thibau) को गद्दी से उतार दिया। अंग्रेजों के शासन-काल में बर्मा में बराबर शान्ति रही। दिसम्बर १९४१ में जापान के आक्रमण के कारण पूरी आधी शताब्दी में बर्मा पहली बार युद्ध-क्षेत्र बना। जापान का उद्देश्य अपने साम्राज्य का विस्तार करना मात्र न था किन्तु बर्मा सड़क पर भी अधिकार करना था जो चीन को जाने वाला मुख्य मार्ग थी। युद्धकाल में चीन को सामान आदि इसी सड़क से पहुँचता था। बर्मा सड़क एक हजार डेढ़ सौ मील लम्बी है और बर्मा के रेलवे शहर लाशिओ से चीन की युद्धकालीन राजधानी चुंकिंग तक जाती है। जून १९४० में बर्मा के समुद्री बेड़े की नींव पड़ी। सितम्बर १९४० में बर्मा में हवाई बेड़े की स्थापना हुई। मई १९४५ में

अंग्रेज और भारतीय सेनाओं ने पुनः रंगून में प्रवेश किया। जनवरी १६४८ में ब्रिटेन का शासन समाप्त हो गया। बर्मा को स्वतन्त्रता प्रदान की गयी और बर्मा में स्वतन्त्र गणराज्य की स्थापना हुई। बर्मा ने कॉमनवेल्थ से भी अपना नाता तोड़ लिया। बर्मा के स्वतन्त्र होने से ठीक पहले एक दिन सारा संसार इस समाचार से आतंकित रह गया कि तत्कालीन प्रधान मन्त्री आगसान और उनके ६ अन्य मन्त्रियों की हत्या कर दी गयी।

इस समय बर्मा को कई बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। सबसे बड़ी समस्या तो बर्मा के विद्रोहियों की है, जो इस समय पहले जितनी उत्कट नहीं रह गयी है। बर्मा में श्वेत, लाल और हरे झण्डे वाले कम्यूनिस्ट है, जिनमें श्वेत झण्डे-वाले दल का जोर है। इसके अतिरिक्त करेनों का जोर है। बर्मा के किसी प्रदेश पर अगर अधिकार है तो करेनियों का ही। सरकार को यद्यपि विद्रोहियों का दमन करने में बहुत कुछ सहायता मिली है, किन्तु उतनी नहीं जितनी कि होनी चाहिए। आज भी बर्मा में लोगोंमें असुरक्षा की भावना फैली हुई है। तरह-तरह की अफवाहें भी आसानी से फैल जाती हैं। हाँ, यह अवश्य है कि बर्मी सेना को काफी सफलतामिली है।

करेनियों की स्थिति अन्य विद्रोहियों से एकदम अलग है। वे राजनीतिक और सैनिक दृष्टि से संगठित हैं। सालवीन जिले से लेकर क्वाकारेक शहर तक २०० मील लम्बी और कोई ४५ मील चौड़ी पट्टी में उन्हीं का शासन है। करेन प्रदेश में बाईस सदस्यों की एक सैनिक सरकार कार्य-संचालन करती है। करेनों के लगभग आठ-दस हजार सैनिक हैं। कहा जाता है कि करेनों में फूट पड़ चुकी है, किन्तु अभी इस हद तक तो नहीं कि उनकी शक्ति का ह्रास हो सके।

बर्मा की एक और बड़ी समस्या उन बचे-खुचे कोमिंतांग छापामारों की है, जो लड़ाई के बाद से उत्तरी बर्मा में घूमते फिरते हैं। बर्मा के लिए तो ये छापामार मुसीबत की जड़ हैं ही, ये चीन पर आक्रमण करते रहते हैं जिसके कारण बर्मा की चिन्ता और भी बढ़ी हुई है। कोई भी स्वतंत्र देश इस तरह के विदेशी सैनिकों का अपने प्रदेश में घूमना पसन्द नहीं कर सकता; फिर इन छापामारों का सम्बन्ध तो फारमोसा के कोमिंतांग अधिकारियों से बताया जाता है। बर्मा ने अमेरिका के सद्-भाव की सहायता से इस समस्या को निपटाने का प्रयत्न किया था, किन्तु इसमें उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। अब इस मामले को संयुक्त राष्ट्र में पेश किया जा चुका है। कितने ही देशों ने, जिनमें भारत भी है, बर्मा की माँग का समर्थन किया है और यद्यपि संयुक्त राष्ट्र ने इस सम्बन्ध में जो प्रस्ताव पास किया है उससे बर्मा को अधिक सांत्वना तो नहीं मिली, पर आशा है कि इस समस्या से बर्मा को जल्दी ही छुटकारा मिल जायगा।

बर्मा और भारत की भी कुछ समस्याएँ हैं। एक समस्या है बर्मा में भूमि-सुधार के सम्बन्ध में पैदा होनेवाले भारतीयों को मुआवजा देने का सवाल और दूसरी है सीमा पर के छोटे-मोटे झगड़े। अभी हाल में भारत के प्रधान मन्त्री भारत-बर्मा सीमा पर गये थे और वहाँ उन्होंने बर्मा के प्रधान मन्त्री श्री ऊ नू के साथ मिलकर दौरा किया था। दोनों देशों के अत्यन्त प्राचीन सम्बन्ध हैं और दोनों में यथेष्ट सद्भाव है ही इसलिए आशा है कि भारत-बर्मा समस्या जैसी कोई उलझन पैदा नहीं होगी।

दक्षिण-पूर्वी एशिया के अन्य देशों की तरह बर्मा भी एक कम उन्नत देश है। लोगों के रहन-सहन का दरजा गिरा हुआ है और गरीबी व बेकारी आदि की समस्याएँ हैं। इसके अतिरिक्त पिछली बड़ी लड़ाई के आघात से बर्मा अभी तक नहीं संभल पाया। जगह-जगह ध्वंस के चिह्न दिखायी देते हैं। सारे बर्मा का ही रूप बिगड़ा हुआ है और ऐसा प्रतीत होता है कि लड़ाई को खत्म हुए मानों कुछ ही महीने हुए हैं। इसलिए बर्मा को पुनर्निर्माण का बड़ा काम व्यापक रूप से करना है। हम आशा करते हैं कि अपने प्राकृतिक साधनों, उद्योगों, जनशक्ति आदि की सहायता से बर्मा को शीघ्र ही सफलता मिलेगी। उसका भविष्य उज्ज्वल है।

भारत और बर्मा के सम्बन्ध दोहजार वर्ष प्राचीन हैं! स्थिति बर्मा की ऐसी है जिसके कारण वह चीन और भारत दो मित्र देशों के बीच एक कड़ी का काम करता रहा है। भारत का प्रभाव न केवल बर्मा के धर्म पर पड़ा है, वरन् वहाँ के दर्शन और साहित्य पर भी है। भौगोलिक दृष्टि से और वैसे भी भारत व बर्मा को एक ही भूखण्ड समझना चाहिए। इसका एक बड़ा प्रमाण यह भी है कि दूसरे महायुद्ध से पहले बर्मा का दो तिहाई व्यापार भारत से ही होता था। आशा है कि दोनों देशों के बीच पूरा सहयोग रहेगा और वे मिलकर दक्षिण-पूर्वी एशिया की जागृति के अग्रदूत हो सकेंगे।

३७

पुनः जन्म-भूमि में

ता० १८ दिसम्बर को प्रातःकाल रंगून से हवाई जहाज से रवाना हो तीन घण्टों में लगभग छः सौ मील उड़कर हम कलकत्ता पहुँच गये। कैसा तूफान-सा मचा हुआ था इन घण्टों में मेरे हृदय में। कैसी भावनाओं की कलोलें उठ और विलीन हो रही थीं मेरे मन में। चार महीने और अठारह दिन पहले मैंने इस विश्व-भ्रमण के लिए भारत में भारत की राजधानी दिल्ली से प्रस्थान किया था। दिल्ली लौटने तक लगभग बीस हजार मील की यात्रा हुई थी। क्या-क्या देखा था इस बीच हमने; कितने देश, उनके कैसे-कैसे दृश्य, कैसी जनता, उनके भिन्न-भिन्न प्रकार के संगठन और रीति-रिवाज ! कितनी संस्थाएँ, कितने रंगमंच कितने अजायबघर ! और ऐसा जान पड़ता था कि प्रकृति ने भारत को किसी देश से भी कम नहीं दिया है। विचार-धाराओं में भी भारत किसी से पीछे नहीं। बुद्धिमत्ता में भी भारत के जन कहीं के लोगों से कम नहीं। इसीलिए कभी भारत संसार का मुकुट-शिरोमणि रह चुका था, पर समय ने पलटा खाया। हम पराधीन हुए, निर्धन हुए, निरक्षर हुए। विदेशी भारत से गये भी तब जब हमारा देश हर प्रकार से खण्डहर बन गया और यदि गांधी जी पैदा न हुए होते तो क्या अभी भी वे जाते ? स्वतन्त्र हम हो गये, पर जो देश संसार का मुकुट-मणि था उसे फिर से उसी स्थान पर पहुँचाने में हमें क्या-क्या तथा कितना-कितना करना है। संसार की इस परिस्थिति में और हमारे देश के राजनैतिक दल-दलों के कारण क्या हमें यह सब करने के लिए समय मिल जायगा ? अमेरिका को अपने उत्कर्ष के लिए कितना समय मिला—रूस को भी कितना और हमें ? भविष्य-वाणी कौन कर सकता है ?

और इस खण्डहर में भी विविध प्रकार की सम्पन्नताओं से सम्पन्न देशों से आने पर भी कितना उत्साह, कितना उल्लास था मेरे मन में ! कुटुम्बियों से मिलने की उत्कण्ठा का भी इस उत्साह और उल्लास में कम स्थान न था। जैसा मैंने अपने सुदूर दक्षिण-पूर्व ग्रंथ में लिखा है मैं हूँ यथार्थ में घरेलू जीव।

जब हमारा वायुयान कलकत्ते के हवाई अड्डे पर उतरा तब हमने देखा कि

मेरे सम्बन्धी श्री गोवर्धनदास जी बिन्नाजी अपने कई मित्रों के साथ तथा मेरी पुत्री रत्नकुमारी एवं मेरे ज्येष्ठ पुत्र मनमोहनदास हमारे स्वागत के लिए उपस्थित हैं। ये दोनों जबलपुर से हमें लेने के लिए ही कलकत्ते आये थे।

इतनी लम्बी यात्रा के निर्विघ्न समाप्त होने के लिए भगवान् को कोटिशः धन्यवाद दे तथा जन्मभूमि को अगणित प्रणाम कर हम लोगों ने पुनः भारत-भूमि पर पदार्पण किया।

उपसंहार

अपनी इस पृथ्वी-परिक्रमा से कोई बहुत अधिक सन्तोष मुझे नहीं हुआ। मन में एक अजीब उथल-पुथल मच गयी। तरह-तरह के विचार मन में आये। एक ओर पृथ्वी की विशालता से मन चकित हुआ तो दूसरी ओर उसकी सूक्ष्मता से मन क्षुब्ध भी हुआ। हमारी पृथ्वी से यह सूर्य न जाने कितना बड़ा है और इस सूर्य से भी बड़े न जाने कितने सूर्य अन्य सौरमण्डलों में स्थित हैं। अकेली आकाश-गंगा में जो हमें आकाश में दुग्धधारा की भाँति रात्रि में दिखलाई देती है अनेक सूर्य बनाये जाते हैं। बृहत् ब्रह्माण्ड की इस विशालता के आगे भला बेचारी पृथ्वी की हस्ती ही क्या है और इस पृथ्वी के देशों की तो फिर बात ही क्या हो सकती है। पर दूसरी ओर जब हम मनुष्य की भौतिक सीमाओं के सामने पृथ्वी को देखते हैं तो वह अत्यन्त विशाल प्रतीत होती है, यद्यपि इस पृथ्वी के तीन-चौथाई भाग में जल है और थल केवल एक-चौथाई भाग में ही है। फिर भी बड़े-बड़े महाद्वीप इसमें स्थित हैं। दूर-दूर तक फैले हुए देश हैं। कहीं ऊँचे पर्वत-शिखर हैं, तो कहीं हरीभरी लहलहाती घाटियाँ हैं। कहीं शुष्क बंजर पठार हैं तो कहीं विस्तृत उजाड़ रेगिस्तान हैं। विविध प्रकार की विचित्र छटाओं से पूर्ण और विविध कठिनाइयों, बाधाओं से युक्त यह धरती लम्बी-चौड़ी अनेक देशों वाली अपने आँचल में मानवता को सँजोये हुए है। पर मानव प्रकृति की ही गोद में पलकर आज प्रकृति पर विजय पाने को कटिबद्ध है।

आदिकाल में मनुष्य गिरि-गह्वरों में निवास करता था। पाषाण का एवं धातु का प्रयोग कर किसी प्रकार उदर पालन करता था। धीरे-धीरे वह प्रगति करता हुआ पृथ्वी के कोने-कोने की टोह लेने लगा। आज जब कि संचार के साधन बहुत हो गये हैं, संसार के किन्हीं भी दो छोरोंके बीच टेलीफोन, तार या बेतार द्वारा किसी भी समय सम्पर्क स्थापित हो सकता है, जब इतने अधिक वेग वाले वायुयान चुटकियों में मनुष्य को अगम्य पर्वतों और सागरों के पार पहुँचा सकते हैं तब बेचारी धरती को भी सिमटकर रह जाना पड़ता है।

इस पृथ्वी-परिक्रमा के पश्चात् मुझे संसार की अपार विविधता का बोध हुआ और साथ ही उस एकरूपता का भी जो इस विविधता में निहित है। विविध प्रकार

के देश हैं, विभिन्न जातियों के लोग हैं, विविध रूप-रंग के व्यक्ति हैं, और विभिन्न उनके रीति-रिवाज और परम्परायें हैं। यह तो है संसार की विविधता का रूप। पर इसके पीछे छिपी है वह एकरूपता जो एक देश और दूसरे देशके बीच, जो एक संस्कृति और दूसरी संस्कृति के बीच समानता उत्पन्न करती है। सर्वत्र ही मानव जीवित रहना चाहता है, सर्वत्र ही वह शान्ति चाहता है, शान्ति पाने के लिए ही गत दो महायुद्ध हुए। शान्ति और समृद्धि की खोज में ही संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्था की स्थापना हुई। पर इसी उद्देश्य को लेकर आज दुनिया संगठित होने के बजाय विभक्त है।

संसार में अस्सी से अधिक प्रभुसत्ता प्राप्त देश हैं, किन्तु उनकी जनसंख्या और क्षेत्रफल में बड़ी विषमता है। उदाहरण के लिए युद्ध-पूर्व की जर्मनी में १,८१,००० वर्ग मील में ६,७०,००,००० व्यक्ति रहते थे जब कि कैनाडा में ३४,६२,००० वर्ग मील में केवल १,१५,००,००० कैनाडियन रहते थे। रूस का क्षेत्रफल ८०,००,००० वर्ग मील है पर उधर मनकाओ राज्य भी है जिसका क्षेत्रफल केवल ०.६ वर्ग मील है। महान् संयुक्त राज्य अमेरिका का क्षेत्रफल ३०,००,००० वर्ग मील है किन्तु अन्डोरा का केवल १९१ वर्ग मील है। किन्तु आबादी और जनसंख्या की विषमता से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है साधनों की विषमता। उदाहरण के लिए छोटा-सा बेल्जियम अत्यन्त साधन-सम्पन्न है, लेकिन विशाल मंगोलिया अथवा पाकिस्तान को वही सुविधायें प्राप्त नहीं हैं। इससे भी आगे देशों के सामाजिक और आर्थिक विकास की स्थिति में पायी जाने वाली विषमता है। उदाहरण के लिए हालैंड-वासियों ने कर्मठता का परिचय दिया है जब कि आयलैंड-निवासियों ने उतनी ही कर्मनिष्ठा नहीं दिखायी, चीन में जिस हद तक सांस्कृतिक विकास हुआ है, ब्राजील में उस हद तक नहीं हुआ। अमेरिका में मशीनी सभ्यता का प्रादुर्भाव हो सका है, किन्तु इन्डोनेशिया में ऐसा ही नहीं हो पाया। अफगानिस्तान के निवासी सैनिक जाति के रूप में अपना विकास कर सकते हैं; किन्तु तिब्बतवाले अब तक धर्मनिष्ठ बने रहे हैं। यही नहीं इतिहास इस बात का साक्षी है कि जहां हिन्दू जाति अन्तर्राष्ट्रीय मामलों की ओर से उदासीन रही है वहां जर्मन जाति ने संसार को बार-बार युद्ध की ज्वाला में ढकेला है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारी इस दुनिया में राष्ट्र तो अनेक हैं, किन्तु राजनीतिक शतरंज के मोहरे बांधने वाले राष्ट्र गिने-चुने ही हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में महान् राष्ट्रों की गणना में कई राष्ट्र आते थे, किन्तु युद्धोपरान्त दुनिया में उनकी संख्या उत्तरोत्तर घटती गयी है। १९१४ तक आठ राष्ट्र बड़े देश माने जाते थे। जिनके नाम इस प्रकार हैं—फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, रूस, आस्ट्रिया, हंगरी, संयुक्त राज्य अमेरिका, इटली और जापान। प्रथम युद्धके पश्चात् उनकी संख्या रह गयी पाँच

ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका, जापान और इटली। १९३९ तक अर्थात् द्वितीय महायुद्ध आरम्भ होने के पूर्व दो और बड़ी शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। इस बीच जर्मनी ने अपनी शक्ति पुनः प्राप्त की और रूस का उदय एक महान् देश के रूप में हुआ। इस प्रकार महान् देश फिर सात हो गये। क्रमशः जर्मनी, ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, फ्रांस, जापान और इटली। युद्धोतर काल के पाँच शक्तिशाली देश इस प्रकार हैं, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन। शान्ति-काल में अथवा कहें कि तृतीय महायुद्ध के प्रस्तावना-काल में रूस और चीन मिलकर संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, और फ्रांस के मुकाबले के हो गये हैं। इसके अतिरिक्त भारत और जापान इन दो एशियाई शक्तियों का उदय हुआ है।

यह राष्ट्रों के उत्थान-पतन और उनके वर्तमान शक्ति-सन्तुलन की गाथा है।

संचार-साधनों ने जहां दूरी को कम किया और उसे एक ही इकाई बनाने की दिशा में इतना कुछ किया वहां दूसरी ओर राजनीति के कारण दुनिया का कलेजा दो टूक हो गया है। दो अलग शिविर बन गये हैं, एक का नेतृत्व करता है अमेरिका जिसे कहते हैं पश्चिम। दूसरे का नेतृत्व करता है रूस जिसे कहते हैं पूर्व। दोनों ही अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाने की जी-जान से चेष्टा करते हैं। दोनों ही मानवता के हिमायती हैं और दोनों ही शान्ति-पथ के दावेदार बनते हैं। किन्तु आश्चर्य है कि दोनों पक्ष शान्ति-रक्षा के लिए युद्ध की तैयारी में संलग्न हैं। अणुबम, हाइड्रोजन बम, कोबाल्ट बम, रडार और ऐसे ही अनेक घातक अस्त्र तैयार किये जा रहे हैं जिनसे शान्ति-रक्षा का दावा किया जाता है। पर क्या इन सब से शान्ति-रक्षा होगी? पिछले महायुद्ध की विभीषिका हमारे सामने है और अगले युद्ध की संभावना से मानव-जाति त्रस्त है। यदि युद्ध हुआ तो क्या मानव-जाति सचमुच जीवित रह सकेगी? कौन कह सकता है कि यदि शस्त्रीकरण की होड़ इसी तरह बनी रही तो एक दिन ऐसा अस्त्र न निकल आयेगा जिससे हमारी पृथ्वी के ही टुकड़े हो जायें।

जहाँ एक ओर सैनिक शस्त्रीकरण की योजनायें बनाकर मानव-जाति का अन्त करने का षड्यंत्र चल रहा है वहाँ दूसरी ओर संसार के सभी विचारक शान्ति-रक्षा के लिए वास्तव में प्रयत्नशील हैं। जहाँ तक मैं समझता हूँ इस दुनिया में दो ही महान् व्यक्ति ऐसे हैं जो शान्ति न चाहकर युद्ध चाहते हैं। वे हैं जनरल च्यांगकाई शेक और डाक्टर री। दोनों ही का स्वार्थ युद्ध छिड़ने में है। युद्ध के बिना न तो उनका कहीं अस्तित्व ही है और न उनका उत्कर्ष ही संभव है। जहाँ ये दो व्यक्ति युद्ध के प्रबल समर्थक हैं वहाँ दुनिया का एक व्यक्ति उतना ही शान्ति का समर्थक है; वह हैं भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू। उनके नेतृत्व में अग्रसर होता हुआ केवल भारत ही एक ऐसा देश है जो सचमुच शान्ति चाहता है और शान्ति के लिए

निःस्वार्थ भाव से प्रयत्नशील है। अंधकारपूर्ण दुनिया में आज भारत ही आशा की एक-मात्र किरण है यह मैं निःसंकोच कह सकता हूँ।

जैसा कि मैं पीछे कह आया हूँ यूरोप जर्जर अवस्था में है, अमेरिका उन्नति के शिखर पर अवश्य है किन्तु मेरे मतानुसार वहाँ पर वह क्रिया आरंभ हो चुकी है जो अन्त में किसी भी देश के पतन का कारण बनती है। अमेरिका के लोग 'खाओ-पीओ मस्त रहो' के सिद्धान्त पर चल पड़े हैं और यह सिद्धान्त राष्ट्र के चरित्र को हीन बनाकर अन्त में उसके पतन का कारण होता है। रही रूस की बात सो वह सत्ता-मद में चूर जान पड़ता है, और प्रचार-मात्र में आवश्यकता से अधिक विश्वास रखता है।

जैसा कि मैंने कहा राष्ट्रों की विषमता दुनिया की प्रगति में काफी हद तक बाधक है। एक ओर तो अत्यन्त छोटे राज्य हैं जो सब प्रकार परावलंबी हैं, और दूसरी ओर अत्यन्त विशाल राज्य हैं। अत्यन्त छोटे ६ राज्यों के नाम और उनका क्षेत्रफल इस प्रकार है—

देश का नाम	क्षेत्रफल
लक्समबर्ग	९९८ वर्ग मील.
अंडोरा	१९१ वर्ग मील.
लीचटेंस्टीन	६५ वर्ग मील.
सन मेराइना	३८ वर्ग मील.
मोनकाओ	३७० एकड़.
वैटिकन राज्य	१०८.७ एकड़.

संसार के विशाल राज्य ८ हैं, और उनका विवरण इस प्रकार है—

देश का नाम	क्षेत्रफल
सोवियत रूस	८४,७७,००० वर्ग मील.
चीन जनराज्य	३८,७७,००० वर्ग मील.
कैनेडा	३४,६२,००० वर्ग मील.
ब्राजील	३२,८६,००० वर्ग मील.
संयुक्त राज्य अमेरिका	२९,७७,००० वर्ग मील.
आस्ट्रेलिया	२९,७५,००० वर्ग मील.
भारत	१२,००,००० वर्ग मील.
अर्जेंटाइना	१०,८०,००० वर्ग मील.

यद्यपि यह वर्गीकरण विभिन्न राज्यों का आकार जानने में सहायक है, किन्तु आकार किसी राज्य विशेष की शक्ति का परिचायक भी हो ऐसा नहीं है।

उदाहरण के लिए ब्राजील भारत से आकार में लगभग तीन गुना है, फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसका उतना प्रभाव नहीं है जितना भारत का। भारत ने अपनी स्वतन्त्र विदेश-नीति द्वारा विचार-स्वातन्त्र्य का परिचय दिया है। बड़े राष्ट्रों की गुटबन्दी से अलग रहकर, और अपने स्वार्थ से नहीं बल्कि विश्व-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर भारत ने जो कदम उठाये हैं उनकी संसार के सभी देशों में मुक्त कंठ से सराहना हुई है।

मुझे जान पड़ता है कि भविष्य एशिया और अफ्रीका के हाथों में है। एशिया में तो अरुणोदय की झलक स्पष्ट दिखने लगी है। चीन और भारत प्रगति-पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। अफ्रीका में जागरण उतना स्पष्ट नहीं है किन्तु लोग दासता की श्रृंखलायें तोड़ने को छटपटा रहे हैं। दमन की चक्की का पाट उल्टा जाने वाला है और क्रान्ति अधिक दूर नहीं है। मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूं कि जो देश अब तक दलित थे और अपमानित होते रहे थे वही अब सभ्य संसार के अगुआ बनेंगे।

इसका कारण मैं तो यही समझता हूँ कि दलित देश दासता की अपमान-जनक स्थिति और जलन को समझते है और दूसरों के दर्द को समझने की क्षमता रखते हैं। भारत ने अपनी स्वतन्त्रता का संग्राम तो लड़ा ही आज वह सर्वत्र उपनिवेशवाद का विरोधी है। किसी भी स्थान पर किसी भी रूप में उपनिवेशवाद का मौजूद रहना मानवता के लिए कलंक की बात है। इसके अतिरिक्त एक और तरह का उपनिवेश-वाद है जो उतना ही घृणित है और वह है दक्षिण अफ्रीका का रंग-भेद। दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों और अफ्रीकियों को किस अपमान और यातना का सामना करना पड़ रहा है, यह तो बेचारे वे ही जानते हैं लेकिन संसार के सभी विचारशील व्यक्ति इस प्रकार के अन्याय का विरोध करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संस्था तक जो उच्च आदर्शों और उद्देश्यों की पोषक कही जाती है, इस तरह की शिकायतों को सुनते समय मानो कान में तेल डाले रहती है।

किन्तु आज के संसार में केवल यही एक ऐसी संस्था है जिससे मानव के त्राण की थोड़ी-बहुत आशा हो सकती है। किन्तु खेद की बात यही है कि वहां पर भी राजनीतिक पांसा पड़ा हुआ है। कुछ राष्ट्रों ने इस प्रकार अपनी स्थिति बना ली है कि वे अन्य राष्ट्रों की एक नहीं चलने देते। संयुक्त राष्ट्र का जो उद्देश्य-पत्र है उसके अनुसार शर्तों को पूरा करने वाला कोई भी राष्ट्र इस विश्व-संस्था का सदस्य हो सकता है, और हो सकना चाहिए। किन्तु चौदह राष्ट्र जो अर्से से इस संस्था की सदस्यता के लिए द्वार खटखटा रहे थे, आज भी संस्था के सदस्य हो सकने में सफल नहीं हुए, और अब तो सदस्यता के इच्छुक राष्ट्रों की संख्या २१ तक पहुंच गयी है।

रूस ने कहा था कि सदस्यता चाहने वाले चौदह देशों का संयुक्त राष्ट्र में सम्मिलित कर लिया जाय, लेकिन अमेरिका मार्ग में बाधक हो गया। इस सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि रूस के इस समर्थन में साम्यवाद को बढ़ावा मिलता, क्योंकि रूस ने जिन चौदह देशों का समर्थन किया था उनमें से कम-से-कम नौ तो कम्युनिस्ट देश नहीं थे।

सरासर ज्यादती की बात है कि चीन जनराज्य देश को संयुक्त राज्य में प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। भारत प्रारम्भ से इस खटकने वाली स्थिति पर जोर देता आया है। संयुक्त राज्य में प्रतिनिधित्व की बात तो अलग रही कुछ राष्ट्र तो चीन जनराज्य का अस्तित्व तक स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। किन्तु चीन जन-राज्य एक ऐसी वास्तविकता है जिसकी ओर से आँखें मूंदने से कोई लाभ होने वाला नहीं है। कोमिंतांग सरकार अथवा बाओदाई सरकार जैसी कठपुतली सरकारें आखिर कितने दिन चल सकती हैं ? चीन के प्रति उपेक्षा का जो रवैया है वह अकेले चीन के प्रति ही नहीं समस्त एशिया के प्रति है।

कोरिया राजनीतिक सम्मेलन की रचना को ही लीजिए। यूरोप के देश और अमेरिका मिलकर एशिया की समस्याओं को सुलझाना चाहते हैं। यह कैसे आश्चर्य की बात है ! यूरोप और अमेरिका एशिया की कब तक उपेक्षा कर सकेंगे ? वे तो एशिया के अस्तित्व को ही भूल जाना चाहते हैं। पर काहरा से जकार्ता तक सारा एशिया जाग चुका है और उधर अफ्रीका भी करवट ले रहा है। यदि उन्नत देश एशिया की उपेक्षा कर अपना स्वार्थ साधने के स्वप्न देख रहे हैं तो वे भ्रम में हैं। संसार की तीन-चौथाई आबादी इस भाग में स्थित है। इसके कल्याण के उपाय करने में ही उन्नत राष्ट्रों का कल्याण हो सकता है। पर यदि उन्नत राष्ट्र एशिया और अफ्रीका के प्रति ईर्ष्यालु बने रहे और उनके उचित स्थान प्राप्त करने के मार्ग में रोड़े अटकाते रहे तो सम्भव है कि उनके अपने ही अस्तित्व के लिए खतरा पैदा हो जायेगा। प्रचण्ड वायु के वेग में बड़े पुराने और विशाल वृक्ष भी उखड़ जाया करते हैं यह उन्हें स्मरण रखना चाहिए। इसके विपरीत यदि वे सद्भाव लेकर इस प्रदेश की दीन-हीन जनता के उत्थान में सहायक होंगे तो वह भी विनम्र भाव से उनका आभार मानेगी।

हम पाते हैं कि पृथ्वी पर मनुष्य-जाति का प्राणी मात्र में सर्वोत्तम स्थान है। पृथ्वी के पशु-पक्षियों तथा अन्य प्राणियों से मनुष्य जिस शक्ति के कारण ऊँचा है वह है उसकी ज्ञान-शक्ति। अपनी इस ज्ञान-शक्ति की सहायता से मनुष्य सत् और असत् की पहचान करता है और अनुसन्धान, आविष्कार आदि विभिन्न क्षेत्रों में अपनी कुशाग्रता का परिचय देता है। इतिहास का गहराई से अध्ययन करने पर

हम पाते हैं कि आदिकाल से मनुष्य ने आध्यात्मिक और आधिभौतिक इन दो दिशाओं की प्रगति की है। अध्यात्म और अधिभूत में मानव का समस्त विकास निहित है।

जहाँ तक आध्यात्मिक क्षेत्र में मनुष्य के विकास को आँकने की बात है वहाँ निःसंकोच कहा जा सकता है कि पूर्व के देश इस क्षेत्र में सबसे आगे रहे हैं। जिस समय पश्चिमी जगत अन्धकारमय था और वहाँ सभ्यता का नाम-निशान नहीं था उस समय पूर्व के देश आध्यात्मिक उन्नति के शिखर पर थे। मिस्र से चीन-जापान तक और तिब्बत से स्याम, जावा, सुमात्रा तक आचार्य सद्भाव और प्रेम का सन्देश देते थे। कई हजार वर्ष पश्चात् आज भी इस प्रदेश के नैतिक सिद्धान्तों की मूल एकरूपता को सरलता से पहचाना जा सकता है। मैं निःसंकोच और गर्व के साथ कह सकता हूँ कि आध्यात्मिक क्षेत्र में मानव ने जो कुछ विकास किया उसमें भारत ने सबसे अधिक योग दिया।

पर समय आने पर दूसरे क्षेत्र में अर्थात् आधिभौतिक क्षेत्र में पश्चिम पूर्व के देशों से बहुत आगे निकल गया। इस क्षेत्र की सारी प्रगति एक वाक्य में कही जा सकती है और वह है निसर्ग पर विजय पाने का प्रयत्न। इस क्षेत्र में पश्चिम का सबसे बड़ा कदम उठा लगभग दो सौ वर्ष पूर्व औद्योगिक क्रान्ति से; अग्रगामी रहा ब्रिटेन। सबसे पहले भाप की शक्ति का पता चला, फिर विद्युत-शक्ति का, जिससे भौतिक प्रगति की गति और भी बढ़ गयी। विद्युत-युग के बाद अणु-युग आ पहुँचा है और प्रकृति पर विजय पाने का आकांक्षी मानव प्रयोगों और अनुसन्धानों के सहारे आगे ही बढ़ता जाता है।

भौतिक क्षेत्र में पश्चिम की प्रगति का परिणाम यह हुआ कि तैयार माल के लिए कच्चे माल की कमी और तैयार माल की बिक्री के लिए मंडियों की आवश्यकता के परिणामस्वरूप साधनों की निरन्तर कमी होने लगी। नये साधनों की खोज के कारण उपनिवेशों का जन्म हुआ और धीरे-धीरे पश्चिम का प्रभुत्व सारे देश में छा गया। दो विश्वव्यापी युद्ध हुए और तीसरे युद्ध के भय से सारा संसार काँप रहा है। यदि यह युद्ध रुका हुआ है तो केवल इस कारण कि न अमेरिका को अपनी विजय का पूरा विश्वास है और न रूस को ही। गत युद्ध के बाद के इन आठ वर्षों में दुनिया पर घोर आर्थिक संकट रहा। टीस और कराह से दुनिया सिहर उठी। कम उन्नत देशों में जागरण की लहर फैल गयी। बर्मा, भारत, पाकिस्तान एक के बाद एक उपनिवेश स्वतन्त्र होने लगे। आध्यात्मिकता का सन्देश फिर सुनायी देने लगा। मानवता की दुहाई देते हुए दलित के कल्याण के लिए मानवता के पुजारी महात्मा गांधी अवतरित हुए।

आज भी आध्यात्मिक और आधिभौतिक संघर्ष चल रहा है। जहाँ पश्चिम के देश आधिभौतिक उन्नति को ही सब कुछ मान बैठे हैं वहाँ भारत आज भी आध्यात्मिक पक्ष पर ही बल देता है। किन्तु जिस तरह केवल आधिभौतिक पक्ष पर बल देने से सन्तुलन बिगड़ता है उसी तरह अकेले आध्यात्मिक पक्ष की ओर ध्यान देने से सन्तुलन बिगड़ सकता है और आधुनिक संसार में हमारा अस्तित्व भी खतरे में पड़ सकता है, इसलिए हम दोनों पक्षों को समुचित स्थान देने का प्रयत्न कर रहे हैं।

हमारे सामने मुख्य समस्या यही है कि दुनिया को युद्ध की लपटों से किस प्रकार बचायें और शान्ति का उपयोग करती हुई मानव-जाति किस तरह समृद्धि की ओर बढ़ती जाय। यदि यही स्थिति बनी रही कि दुनिया के एक भाग में बेशुमार आबादी हो और वहाँ के लोग बेकारी और भूख के कारण आगे न बढ़ सकें और दूसरे भाग में आबादी अत्यन्त कम हो और लोग गुलछर्रे उड़ाते रहें तो स्पष्ट है कि संसार को त्राण नहीं मिल सकता, फिर तो संघर्ष भी रहेगा, और महायुद्ध भी होगा और संसार भी विनाश को प्राप्त हुए बिना न रहेगा।

पर शान्ति का मार्ग भी है और वह महात्मा गांधी, जीसस क्राइस्ट और भगवान् बुद्ध का दिखाया हुआ प्रेम और अहिंसा का मार्ग। यह वही मार्ग है जिसका भारत के प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख है, 'वसुधैव कुटुम्बकम्', अर्थात् सारा संसार एक बड़ा परिवार है। इस रास्ते पर हमें विभिन्नता को भुलाकर मूल एकता को समझना होगा जैसा कि ऋग्वेद में भी कहा गया है :

"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति"

समाप्त